
20.9.1926 – 6.9.2002

स्व. लाला शिखर चँद जी जैन

दृढ़ संयमी और कर्मठ साधक

(ले. कुन्दन लाल जैन)

स्व. लाला शिखर चँद जी ने 6 सितम्बर 2002 को नेमावर जी क्षेत्र पर आचार्य श्री विद्यासागर जी के सान्निध्य में सल्लेखना गृहण की और समता एवं शान्त परिणामों से युक्त चैतन्य दशा में 'ओम्' का उच्चारण करते हुए देह विसर्जन की। उन के उच्च परिणामों एवं निर्मल भावों को देखते हुए आचार्य श्री ने उन्हें साधक की संज्ञा दी और अपने प्रवचनों में उस कर्मठ साधक की दृढ़ता व साधना की भूरिभूरि प्रशंसा की साधक पर यमराज का आक्रमण नहीं हुआ है अपितु साधक ने स्वयं मेव स्वेच्छा से यमराज को आमन्त्रित किया और सहर्ष अपनी नश्वर देह उन्हें सौंप दी ऐसा महान् कार्य हर कोई नहीं कर सकता कोई समता भावी ही शूरता पूर्वक देह विसर्जित कर सकता है।

प्रिय पाठकों धन कमा लेना इतना कठिन नहीं है जितना उसका विवेक पूर्वक सदुपयोग कर पाना ला. जी इसके साक्षात उदाहरण रहे हैं। वे बड़े उद्यमी और परिश्रमी थे, उन्होंने खूब धन उपार्जित किया तथा उसे जैन संस्कृति और साहित्य के संरक्षण के लिए बड़ी उदारतापूर्वक विवेक से दान दिया। वे आचार्य श्री विद्यासागर के प्रवचनों से अत्यधिक प्रभावित थे अब से 15 – 20 वर्ष पूर्व आचार्य श्री के जहां प्रवचन होते थे ला. जी वहां पहुंच जाते और वहां आचार्य श्री का प्रवचन बड़े मनोयोग से सुना करते थे। थूवोन जी, चन्देरी आदि बुन्देलखंड के कई तीर्थों पर उन्होंने आचार्य श्री के प्रवचन सुने अंत में ललितपुर (क्षेत्रपाल) में वे आचार्य श्री के प्रवचन से इतने अधिक प्रभावित हुए कि भावुकता पूर्वक उन्होंने चुपचाप स्व. श्री दरबारी लाल जी कोठिया से एक लाख रुपये के दान की चर्चा की। कोठिया जी स्वयं बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने जाकर आचार्य श्री से निवेदन किया जिससे प्रसन्न हो आचार्य श्री ने भरी सभा में इस की घोषणा कर दी, ला. जी बड़े संकुचित हुए और संकुचाते हुए आचार्य श्री से निवेदन किया कि मैंने दान आत्म ख्याति या प्रशंसा के लिए नहीं दिया है यह तो मेरा गुप्त दान है। आचार्य श्री मुस्कराते हुए बोले यह तुम्हारी प्रशंसा नहीं अपितु इस सभा में बैठे लोगों को प्रेरित करने की सद्भावना है हो सकता है इस सभा में दो एक लोग तुम जैसे उदार हो, ला. जी मौन रह गये। फिर दोपहर में कई विद्वानों ने मिल कर इस द्रव्य के सदुपयोग पर चर्चा की और "दि. जैन

PDF Scanner ACE Scanner

संस्कृति साहित्य संरक्षण समिति'' की स्थापना का अंतिम निर्णय लिया गया। पहले अध्यक्ष पूज्य पं. पन्ना लाल जी साहित्याचार्य को आचार्य श्री की स्वीकृति के साथ मनोनीत किया गया कुछ दिन बाद साहित्याचार्य जी अस्वस्थ रहने लगे तथा दिल्ली और जबलपुर की दूरी को देखते हुए आदरणीय कोठिया जी को अध्यक्ष का भार सौंपा गया, स्वस्थ रहते हुए उन्होंने ला. जी को खूब प्रेरित किया तथा कई ग्रन्थ प्रकाशित कराये। संयोग की बात है कि आदरणीय कोठिया जी का स्वास्थ्य गिरने लगा और चर्चा होने लगी कि आगे के लिए किसी अन्य विद्वान का सहयोग लिया जाए। संयोग वश मैं वहां उपस्थित था श्री कोठिया जी ने तत्काल ही मुझे इस समिति का कार्यकारी अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव पेश किया, चूंकि मैं विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली में रहता हूं तथा समिति का कार्यालय विवेक विहार दिल्ली में है अत: मैं इस कार्य में सहयोगी बन सकता हूं, चूंकि मैं स्वयं अस्वस्थ रहता था घर ला. जी का और मेरा सम्पर्क पुराना था अत: उन्हें यह प्रस्ताव रुचिकर लगा और उपस्थित लोगों ने इसका समर्थन और अनुमोदन कर दिया तब मुझे कोठिया जी का आदेश पालन करना पड़ा और तभी से मैं इस समिति की उन्नति में यथा योग्य सहयोग देता आ रहा हूं।

ला. जी विद्वानों के प्रति अत्यधिक आदरभाव रखते थे। जब कभी ला. जी को किसी परामर्श की जरूरत होती वे नि: संकोच मेरे घर आ जाते या गाड़ी भेज कर अपने घर बुलवा लेते और दोनों परस्पर चर्चा कर एक अंतिम निर्णय पर पहुंच जाते कभी कभी अपनी घरेलू समस्याओं पर भी चर्चा हो जाती और परस्पर विचार विमर्श कर उनको भी सुलझा लेते हमारे घर की परेशानियां उन्हें ज्ञात थीं तथा उन के घर की परेशानियां मुझे ज्ञात हैं। इस तरह हम दोनों अंतरंग सखा की भांति परस्पर मिलकर समिति के उत्थान में तत्पर रहे हैं आज मैं निरा अकेलापन अनुभव कर रहा हूं। एक बार ऐसी ही चर्चा चल रही थी ला. जी बोले मैं तो आप से छोटा हूं मैने तत्काल ही उनसे कहा कि फिर आप मेरी समाधि करा देना वे तुरन्त मुस्करा कर बोले भाई सा. समय किसने देखा है कहीं आपको ही मेरी समाधि कराना न पड़े आज उनके इन शब्दों की बार बार स्मृति आती है वे तो बंधन मुक्त हो गये और मैं यहीं पड़ा हूं उनका अभाव बड़ा अखर रहा है वे तो भरत चक्रवर्ती की भांति घर से बिलकुल अनासक्त हो गये थे उन्हें न पत्नी का मोह रहा न पुत्रों का और न ही पौत्र और पौत्रियों का। वे अनासक्त कर्मयोगी बन कर और दृढ़ संयम धारण कर कर्मठ साधक बन गये।

ला. जी के स्वर्गीय पिता श्री का नाम स्व. जोहरी मल जी जैन था और

PDF Scanner ACE Scanner

मातृ श्री का नाम स्व. श्रीमति कम्पा जैन। 20 सितम्बर सन 1926 की पावन बेला में आपने सोनीपत में जन्म लिया था। माता कम्पा जैन धार्मिक विचारों की आदर्श महिला थी उन्ही की प्रेरणा से बालक शिखर चंद में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपन हुआ था और उन्हीं के कारण शिखर चन्द धार्मिक संस्कारों से परिपूर्ण हुए। प्राथमिक शिक्षा सोनीपत में ही लेने के तत्पश्चात सारा परिवार दिल्ली आ गया और पहाड़ी धीरज सदरबाजार में बस गया और यहां अच्छा व्यवसाय करने लगा तथा शिखर चन्द्र जी उच्च शिक्षा हेतु कालेजों में पढ़ने लगे अंत में आपने श्री राम कालेज आफ कामर्स में शिक्षा हेतु B.Com (Hons) में दाखिला लिया यह कालेज उन दिनों दरियागंज दिल्ली में स्थित था। अब वह दिल्ली विश्व विद्यालय परिसर में प्रतिष्ठित है। युवक शिखर चंद B.Com (Hons) पास करके व्यवसाय की ओर उन्मुख हुए और उन्हें U.G.C. (विश्व विद्यालय अनुदान आयोग) में नौकरी मिल गई। उस समय भारत के विख्यात वैज्ञानिक डा. दौलत सिंह जी कोठारी U.G.C. के चेयरमेन थे युवक शिखर चंद प्रखर बुद्धि और अध्यवसायी थे। डा. कोठारी उनके कार्यो से बड़े प्रभावित हुए थे। जब उन्हें यह पता चला कि यह युवक रात्रिभोजन नहीं करता है तब उन्होंने उसे आफिस से एक घंटा पहले घर चले जाने की अनुमति दे रखी थी। और ये हमेशा रात्रि भोजन त्यागी बन गये थे, धीरे धीरे उनकी और अधिक धार्मिक क्रियाओं की रूचि बढ़ती गई। अचानक पिता जी अथवा बड़े भाई की सलाह से आपने नौकरी छोड़ उद्योग (Industry) की ओर कदम बढ़ाया और सन 1967 में स्वयं अपना उद्योग प्रारंभ कर दिया और बड़े परिश्रम से उन्हें खूब सफलता मिली और अच्छा धन संचय किया। विवेक विहार के D-302 में आपने बड़ी विशाल कोठी बनवाई जब कोठी बनवाई तो उसमें आवास से पूर्व ही जैन मंदिर के निर्माण में भरपूर सहयोग दिया और जब मंदिर बन गया तो पहाड़ी धीरज से सारा परिवार विवेक विहार में आ बसा। उससे पूर्व उनका श्रीमति कमला देवी के साथ स्नेह परिणय हो गया वे उस समय बड़े रईस परिवार की बेटी थी। तत्पश्चात दोनों ने मिल कर पारिवारिक रथ को बड़ी सफलता पूर्वक आगे बढ़ाया और उन्नत किया।

सन् 1987 से उनके मन में वैराग्य की चिनगारी प्रज्वलित होने लगी उन्होंने अपना पूरा उद्योग अपने तीनों पूत्रों को विधिवत् सौंप दिया। उनके ज्येष्ठ पूत्र श्री नरेश जी, मझले पुत्र श्री अनिल तथा छोटे पुत्र श्री प्रवीण जी हैं जो बड़ी सफलतापूर्वक पिता से प्राप्त धरोहर स्वरूप उद्योग को तत्परता से संभाल रहे हैं और उद्योग को आगे बढ़ा रहे हैं। ला. जी की एक पुत्री है जो सोनीपत

PDF Scanner ACE Scanner

के धार्मिक संस्कारों वाले परिवार में विवाहित है।

उद्योग से वैराग्य लेने पर आप आचार्य श्री विद्यासागर जी की शरण में पहुंचे और उन्हें अपना गुरू बना कर द्वितीय प्रतिमा के व्रत धारण किए। और बड़ी दृढ़ता से व्रतों का पालन करते हुए संयम धारण किया। और ''घर में भरत भये बैरागी'' जैसे जीवन यापन करने लगे। सहसा उन्हें स्वयमेव आभास होने लगा कि समय नजदीक आ गया है वे आचार्य जी के पास दौड़े आचार्य श्री ने उनकी परीक्षा ली और उन्हें सलाह दी कि अभी आप घर जायें और कुछ दिन बाद आये। अब वापिस आकर उनका मन और वैराग्योन्मुख हो गया और घर से जी उचटने लगा। वे नित्य पूजा अर्चना और स्वाध्याय करते पर मन आचार्य श्री के चरणों में रहने लगा। अंत तो गत्वा 17 अगस्त 2002 को पुनः परिवार सहित नेमावर आचार्य श्री के चरणों में जा पहुंचे। आचार्य श्री ने अब भी उनकी कठोरतम परीक्षा ली और जब उन्हें विचलित होता न पाया तो उनकी निर्मल परिणति और निष्कपाय विचारों में दृढ़ता देख और आयुकर्म के निषेकों की परिपूर्ति का समय जान उन्हें सल्लेखना व्रत धारण करने का उपक्रम प्रारंभ कर दिया धीरे धीरे सभी वस्तुओं का त्याग कराकर अंत समय छांछ और पानी मात्र पर रखा और 5 सितम्बर को आचार्य श्री का उपवास था सो शिखर चंद्र जी ने उपवास निर्विघ्न पूरा किया और 6 सितम्बर को आचार्य श्री की वंदना करते हुए शाम 4 बजे 'ओम्' ध्वनि का उच्चारण करते हुए उस चिदानन्द चैतन्य आत्मा ने उनके पौद्धलिक नश्वर शरीर को छोड़ अपने गन्तव्य गति को चली गई और ला. शिखर चंद का पार्थिव नश्वर शरीर वहीं का वहीं पड़ा रह गया। आचार्य श्री का पूरा संघ ला. जी को संबोधित करने में तत्पर रहता था।

ऊँ शान्ति: ऊँ शान्ति: ऊँ शान्ति:

सर्वे सुरिवन: सन्तु सर्वे सन्तु निरामया:
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुख भाग् भवेत्

श्रुति कुटीर
68 विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली - 32

PDF Scanner ACE Scanner

अपनी बात

काफी दिनों से चर्चा के दौरान यह बात स्पष्ट हो रही थी कि जैन मनीषियों के लिए होने वाला कार्य अपेक्षा रूप से बराबर या उचित नहीं हो पा रहा है। जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन जिनवाणी एवं धर्मक्षेत्र की सेवा में व्यतीत किया, उन्हें हम और हमारी पीढ़ी पहचान भी सकेगी या नहीं ? यह बात अलग है कि आज जैसी आवश्यकताएं एवं व्यस्तताएं कुछ समय पहले तक नहीं थी। जिनके चलते संशय को स्थान मिला है।

हम और हमारी पीढ़ी इन सेवाभावी पूर्वजों से किञ्चिदपि प्रेरणा ले, आज भी विकास के मार्ग पर बढ़ सकती है। भौतिक चकाचौंध ही नहीं, आध्यात्मिक जीवन का विकास भी आज अनिवार्य होता जा रहा है। अन्यथा एकांगी विकास हमें कहीं का नहीं होने देगा।

इसी दृष्टि से दिवंगत जैन मनीषियों के जीवन से सम्बन्धित कुछ जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास किया है। इसके संयोजन के समय मानकों के स्थिरीकरण में लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि इसे दिवंगत की सीमा में ही रखा जाए एवं वह भी बीसवीं सदी की मर्यादा में। कारण, अनेक व्यक्तियों के जीवन-सन्दर्भ की वैसी जानकारी नहीं मिलती/ मिल सकती जितनी कि अपेक्षा होती है। हमने सायास कोशिश की है कि बीसवीं सदी के लगभग सभी मनीषियों का परिचय दिया जाए। परन्तु यह कह पाना संभव नहीं है कि लक्ष्य पूर्णत: साधित हुआ है। कारण, काम करने पर निरन्तर ही नये-नये नाम जुड़ते रहे और कार्य को अपूर्ण घोषित करते रहे। फिर भी प्रमुख रूप से कहने योग्य बना सका हूं। ऐसे अनेक परिचय अभी भी शेष हैं जिनके नाम तो जानते हैं पर परिचय नहीं, और कुछ के नाम भी नहीं जानते, तब परिचय की बात ही क्या ? इसलिये कार्य को पूर्ण कहने के बजाय आरम्भ मानने में अधिक सुकून मिल रहा है।

इसको तीन भागों में संकलित किया है - एक, पूज्य त्यागियों के नाम से जिन्हें पद व सम्मान के अनुसार व्यवस्थित किया गया है,

PDF Scanner ACE Scanner

द्वितीय, जानकारी पूर्ण परिचय वाले विद्वानों के नाम से, जिन्हें अकारादि क्रम से विशोजित किया गया है और तृतीय, वे नाम जो परिचय की अपूर्णता के कारण अपना आकार स्थिर नहीं कर सके। इन्हें भी अकारादि क्रम में ही रखा है। इन्हें अलग करने के पीछे हमारी अवधारणा है कि इनके परिचय की पूर्णता के प्रयास की दृष्टि बनी रहे। कतिपय विद्वानों के विषय मात्र जानकारी मिल सकी है, उन्हें परिशिष्ट-१ में अलग से सूचीबद्ध करने की कोशिश की है। इन सभी के आधार ग्रन्थों की जानकारी हमने परिशिष्ट-२ में दी है। परिशिष्ट-३ में सभी मनीषियों की प्रदेशानुसार सूची दी गई है। जिनकी सही जानकारी नहीं हो सकी है उन्हें अन्त में दिया गया है। अनेक परिचय स्वयं भेंटवार्ताओं से संग्रहीत हैं। इसके लिए निरन्तर अनेक वर्षों तक श्रम करना पड़ा, तब कहीं कुछ मिल सका। सामग्री संकलन में अनेक ग्रन्थकार व सहयोगी रहे उनके प्रति कृतज्ञ होना मेरे लिए गौरव की बात है।

संकलन एवं लेखन के कार्य में हमारा सहयोग किया है डॉ. कु. आराधना जैन, गंजबासौदा एवं डॉ. कु. नीलम जैन, दमोह ने। जिन्होंने अपने कार्य से अधिक महत्त्व देकर इसको किया। इनकी कार्यक्षमता पर जहां हमें फक्र है, वहीं उनकी सहयोग की भावना के प्रति कृतज्ञता का भाव भी। सम्पादन का कार्य संकलन से भी कठिन था, अनेक बैठकों में इसे अन्तिम रूप दे सका।

इसके प्रकाशन एवं संयोजन का कार्य श्री दिग. जैन साहित्य-संस्कृति संरक्षण समिति, विवेक विहार, नई दिल्ली के सौजन्य से हो रहा है। इस संस्थान ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन समाज को उपलब्ध कराये हैं। जिनकी उपयोगिता भी स्वीकारी जा रही है। प्रस्तुत प्रकाशन भी कुछ इसी तरह का हो, ऐसी अपेक्षा है।

- राकेश जैन, कुण्डलपुर

PDF Scanner ACE Scanner

अनुक्रम

आचार्य शान्तिसागर दक्षिण	१
आचार्य शान्तिसागर छाणी	५
आचार्य कुन्थुसागर	७
आचार्य सुधर्मसागर	१०
आचार्य ज्ञानसागर	१४
आचार्य सूर्यसागर	२०
आचार्य देशभूषण	२५
आचार्य विमलसागर	२७
आचार्य विमलसागर	३१
आचार्य सुमतिसागर	३२
आचार्य समन्तभद्र	३५
आचार्य आर्यनन्दी	३७
आचार्य अजितसागर	३९
आचार्यकल्पश्रुतसागर	४१
मुनि वीरसागर	४४
मुनि नेमिसागर	४५
मुनि क्षीरसागर	४७
मुनि वर्धमानसागर	४९
मुनि ज्ञानभूषण	५०
मुनि ज्ञानसागर	५१
मुनि जयकीर्ति	५२
मुनि आदिसागर	५३
मुनि जम्बूसागर	५४
मुनि कुलभूषण	५५
मुनि विश्वनन्दि	५६
मुनि गजपतिसागर	५७
मुनि समकितसागर	५९
आर्यिका जिनमति	६१
आर्यिका विमलमति	६३
आर्यिका विशालमति	६४
ऐलक सम्यक्त्वसागर	६६
क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी	६७
क्षु. मनोहरलाल वर्णी	७१
क्षु. नेमिसागर वर्णी	७३
क्षु. जिनेन्द्र वर्णी	७६
क्षुल्लकमणि शीतलसागर	७९
क्षु. सिद्धसागर	८०
क्षु. गुणभद्रसागर	८२
क्षु. इन्द्रभूषण	८३
क्षु. ज्ञानसागर	८४
क्षु. विशालमति	८५
क्षु. चन्द्रमति	८६
ब्र. शीतलप्रसाद	८७
ब्र. कस्तूरचन्द नायक	९२
ब्र. दीपचन्द वर्णी	९५
ब्र. प्रेमसागर	९६
पं. गौरीलाल सिद्धान्तशास्त्री	९८
ब्र. श्रीलाल काव्यतीर्थ	९९
ब्र. मूलशंकर देसाई	१०१
ब्र. पं. सरदारमल 'सच्चिदानन्द'	१०२
ब्र. लाडमल	१०४
ब्र. जयसागर	१०६
ब्राह्मी पं. चन्दाबाई	१०७
पं. अजितकुमार शास्त्री	११३
मिर्जी अण्णाराय	११५
अण्णासाहेब बाबासाहेब लट्टे	११६

PDF Scanner ACE Scanner

वी. के. अनन्तराम शास्त्री ११९
पं. एम. पी. अनन्तराज शास्त्री १२०
एम. अन्नयन नैनार १२१
बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय १२२
अर्जुनलाल सेठी ११३
पं. इन्द्रकुमार शास्त्री १२६
पं. इन्द्रलाल शास्त्री १२७
डॉ. ए. एन. उपाध्ये १२८
प्रो. एस. ए. जैन १३३
डॉ. कन्छेदीलाल साहित्याचार्य १३५
पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद' १३६
पं. कमलकुमार जैन १३८
कविवर कल्याणकुमार 'शशि' १३९
पं. कल्लप्पा भरमप्पा निटवे १४०
डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल १४२
पं. कस्तूरचन्द शास्त्री १४४
बाबू कामताप्रसाद १४६
पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य १५१
पं. कैलाशचन्द्र जैन 'पंचरत्न' १५३
प्रो. खुशालचन्द गोरावाला १५४
पं. गुणभद्र जी १५७
डॉ. गुलाबचन्द चौधरी १५८
पं. गुलाबचन्द दर्शनाचार्य १६०
पं. गोरेलाल शास्त्री १६०
पं. गोविन्दराय शास्त्री १६३
पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ १६४
प्रो. ए. चक्रवर्ती १६६
बैरिस्टर चम्पतराय जैन १६८
पं. चैनसुखदास जैन १७०
बाबू छोटेलाल जैन १७३
पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री १७६
पं. जम्बूप्रसाद शास्त्री १७९
एस. वी. जिनचन्द्र शास्त्री १८१
पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले १८२
पं. जीवन्धर जैन न्यायतीर्थ १८४
जुगमन्दरलाल जैनी १८५
पं. जुगलकिशोर मुख्तार १८७
जैनेन्द्रकुमार जैन १९१
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन १९४
पं. झम्मनलाल १९६
पं. ठाकुरदास शास्त्री १९७
तात्यासाहेब केशवराव चौपडे १९८
पं. तेजपाल काला २००
दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे २०२
बाबू दयाचन्द गोयलीय २०४
पं. दयाचन्द सिद्धान्तशास्त्री २०७
पं. दरबारीलाल कोठिया २०९
पं. दामोदरदास जी २१३
दिगम्बरदास जैन एडवोकेट २१४
पं. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री २१७
दौर्बली जिनदास शास्त्री २२०
के. एस. धरणेन्द्रय्या २२१
स. सिं. धन्यकुमार जैन २२२
धन्यकुमार 'सुधेश' २२३
जी. पी. धन्यकुमार शास्त्री २२५
पं. नरेन्द्रकुमार भिसीकर २२६
डॉ. नरेन्द्र जैन 'विद्यार्थी' २२७
डी. नागराज शास्त्री २३१
एस. डी. नागेन्द्र शास्त्री २३२
पं. नाथूराम प्रेमी २३३

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य २३५
एस. पी. पद्मण्णा २३८
पं. डी. पद्मनाभ शर्मा २३९
पन्नालाल अग्रवाल २४१
पं. पन्नालाल बाकलीवाल २४३
पं. परमानन्द शास्त्री २४६
पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ २४७
पं. फूलचन्द्र शास्त्री जखौरा २४९
पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री २५०
पं. बलभद्र जैन २५४
बाबगोंडा भुजगोंडा पाटील २५५
पं. बाबूलाल जैन जमादार २५७
पं. बारेलाल राजवैद्य २५९
बालचन्द जैन पुराविद् २६०
पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री २६२
बिहारीलाल जैन 'चैतन्य' २६४
ब्रह्मसूरि शास्त्री २६६
पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ २६७
भगवत्स्वरूप 'भगवत्' २६७
टी. एस. भरतचक्रवर्ती २७०
पं. के. भुजबली शास्त्री २७१
पं. मक्खनलाल शास्त्री २७५
महात्मा भगवानदीन २७८
डॉ. महेन्द्रकुमार जैन २८०
पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २८१
पं. माणिक्यचन्द्र कौन्देय २८४
मिलापचन्द कटारिया २८६
डॉ. मुनीन्द्रकुमार २८७
पं. मुन्नालाल 'मणि' २८९
पं. मुन्नालाल रांधेलीय २९१
पं. मूलचन्द शास्त्री २९२
पं. मूलचन्द 'वत्सल' २९४
पं. मूलचन्द किसनदास काप. २९६
पं. मोहनलाल शास्त्री २९९
यशपाल जैन ३००
पं. रतनचन्द मुख्तार ३०२
पं. राजधरलाल जैन ३०४
मा. रामसिंह जैन ३०५
सेठ रावजी नेमचन्द शहा ३०७
श्रीमती रूपवती 'किरण' ३०९
लक्ष्मीचन्द 'सरोज' ३१२
डॉ. लालबहादुर शास्त्री ३१३
पं. लालाराम शास्त्री ३१५
पं. बी. लोकपाल शास्त्री ३१७
पं. वंशीधर न्यायालंकार ३१८
पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य ३२०
पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री ३२२
प्रो. वी. वी. बागी ३२५
कवि शर्मनलाल 'सरस' ३२६
ए. शान्तराज शास्त्री ३२७
पं. शोभाचन्द भारिल्ल ३२८
पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री ३२९
जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल ३३१
पं. सिद्धिसागर प्राणाचार्य ३३४
ए. सुब्बैय्या शास्त्री ३३६
बाबू सुमेरचन्द्र ३३७
पं. सुमेरुचन्द्र 'दिवाकर' ३३८
पं. सुमेरुचन्द शास्त्री ३४१
बाबू सूरजभानु वकील ३४३
हजारीलाल 'काका' ३४५

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन ३४७
हिराचन्द नेमचन्द दोशी ३४९
पं. हीरालाल 'कौशल' ३५२
डॉ. प्रो. हीरालाल जैन ३५४
पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ३५७
हुकमचन्द बुरवारिया 'तन्मय' ३५९
पं. ज्ञानचन्द्र 'स्वतन्त्र' ३६१
मुनि अमृतचन्द्र 'सुधा' ३६५
अमृतलाल 'चंचल' ३६५
अमृतलाल 'फणीन्द्र' ३६५
आनन्दीलाल 'आनन्दोपाध्याय' ३६५
कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा कोविद' ३६६
पं. कल्लप्पा निटवे ३६६
चन्द्रराज इन्द्र ३६७
श्री चन्द्रराज शेट्टी ३६७
चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर' ३६८
चांदमल जैन 'शशि' ३६८
पं. चिमनलाल ३६८
चैनसुख लुहाडिया ३६९
ए. पी. चौगुले ३६९
एम. जगत्पालैय्या ज्योतिषी ३६९
जवाहरलाल शाह ३७०
जवाहिरलाल जैन ३७०
टी. के. तुकोल ३७१
टी. के. पाटिल ३७१
तात्याराव नेमिनाथ पांगल ३७२
थानसिंह अजमेरा ३७२
पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त' ३७२
ए. दुरई स्वामी नैनार ३७३
डॉ. धन्यकुमार इजारी ३७४
पं. नाथूराम डोंगरीय ३७४
मास्टर नानूलाल भांवसा ३७५
एम. सी. पद्मनाभ शर्मा ३७५
डॉ. वाय. जे. पद्मराजय्या ३७६
पद्मराज हुन्गुन्द ३७६
डी. एस. परमाज ३७७
पार्श्वनाथ निगोत्या ३७७
डी. पुट्टुस्वामी ३७८
प्रकाश शास्त्री ३७९
फूलचन्द 'मधुर' ३७९
टी. सी. ब्रह्मसूरिय्या ३७९
भंवरलाल पोल्याका ३८०
भगवन्त गणपति गोयलीय ३८०
मंजय्या हेगडे ३८१
पं. महाचन्द ३८१
पं. मिलापचन्द शास्त्री ३८२
मोतीचन्द हीराचन्द गांधी ३८२
राजमल बेगस्या ३८३
राजेन्द्रकुमार 'कुमरेश' ३८३
लक्ष्मीचन्द जैन ३८४
लोकनाथ शास्त्री ३८४
मारुनाडु वर्धमान हेगडे ३८४
वीरेन्द्रकुमार जैन ३८५
शान्तिस्वरूप 'कुसुम' ३८५
सुमेरुचन्द्र शास्त्री 'मेरु' ३८५
डॉ. सौभाग्यमल दोशी ३८५
हीराचन्द नेमचन्द ३८६
मुंशी हीरालाल छाबडा ३८६

❑❑❑

PDF Scanner ACE Scanner

आचार्य शान्तिसागर महाराज (दक्षिण)

जैनधर्म संस्कृति के विकास तथा उन्नति के इतिहास को देखने पर ज्ञात होता है जैनधर्म के चौबीस तीर्थंकरों ने अपने पंचकल्याणकों के द्वारा उत्तर भारतभूमि को पवित्र बनाया किन्तु दिव्य-देशना का पान कर आर्षमार्ग के सिद्धान्त शास्त्रों के निर्माता धुरन्धर आचार्यों ने अपने जन्म से ही दक्षिणभारत भूमि को श्रुतितीर्थ बनाया।

इसी श्रुतितीर्थ दक्षिणभारत में बेलगांव जिला के भोजग्राम से चार मील दूर येलगुड ग्राम में आषाढ कृष्ण षष्ठी, वि.सं. १९२१ अर्थात् सन् १८७२ को बुधवार की रात्रि में आपका जन्म हुआ। आप क्षत्रियवंशज चतुर्थ जैन जाति के थे। श्री भीमगौडा पाटील को पिता तथा श्रीमती सत्यवतीदेवी को इनकी जननी होने का सौभाग्य मिला। इनका जन्म नाम सातगौडा रखा गया। इनके दो ज्येष्ठ बन्धु आदिगौडा और देवगौडा तथा एक अनुज कुम्भगौडा एवं एक अनुजा कृष्णाबाई थी। आपका परिवार धार्मिक एवं सम्पन्न था।

आप जन्म से ही पुण्यशाली महापुरुष, असाधारण गुणागार, करुणा, गंभीरता, पराक्रम और प्रतिभा के पुंज, शरीर से सुदृढ़ एवं निरोग, शक्तिसम्पन्न, असाधारण क्षयोपशमवान् एवं सदाचार से सम्पन्न जीवन-सौरभयुक्त थे।

शिक्षा एवं विवाह :

सातगौडा ने मराठी, हिन्दी और कन्नडभाषा की सामान्य ही योग्यता हासिल की थी। परन्तु इनकी अलौकिक धार्मिक मनोवृत्ति एवं विकासप्रद कार्यशैली के कारण घर पर ही अच्छा वातावरण मिलने से शिक्षा की पूर्ति होती रही।

नववर्षीय अवस्था में ही आपका विवाह परम्परानुसार एक छह वर्षीय कन्या से करा दिया गया। यह कन्या लगभग छह-सात माह बाद ही अपने माता-पिता के यहां से ही स्वर्ग-निवासिनी हो गयी।

योग्यताएं :

आपकी शारीरिक एवं कलाकौशल की अनेक योग्यताएं प्रसिद्ध हैं, जिनमें कतिपय निम्न हैं -

अतुल-बलशाली होने के कारण आप व्यायाम में चार-छह व्यक्तियों को एक साथ गिरा देते थे। हृष्ट-पुष्ट बैलों की जोड़ी द्वारा खींची जाने वाली पानी की

PDF Scanner ACE Scanner

गोद आप अकेले ही खींच लेते थे। अनाज के बोरों को दोनों बगलों में दबाकर अनायास चलना, शिखर जी जाने पर स्वयं शिखर पर जाकर दर्शन करना व अन्य अशक्त/असमर्थ व्यक्तियों को पीठ पर बैठाकर ऊपर ले जाना और सकुशल वापिस लाना आदि। किन्तु कभी भी परपीड़न के लिए या शक्तिप्रदर्शन के लिए अपने बल का प्रदर्शन नहीं किया।

एकदा भोजग्राम में अपने मामा के यहां बन्दूक से एकाग्रतापूर्वक निशाना साधकर एक बार में ही नारियल को गिरा दिया। आप अश्वपरीक्षा में भी निपुण थे। घर में गाय-बैलों को खूब खिलाना आपका अन्यतम शौक था।

वीतरागप्रवृत्ति को जीवन की आदि से ही धारण करने के कारण आप अपने ही घर में अनुज एवं भगिनी के विवाह कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हुए। मुनियों के प्रति अपार भक्ति आप में थी, जिसके परिणामस्वरूप ही एक मुनिराज को आप वेदगंगा एवं दूधगंगा के संगम से पार कराने हेतु अपने कंधे का प्रयोग करते थे।

व्यवसाय :

सांसारिक कार्यों के प्रति अरुचि होने पर भी पिता की आज्ञानुसार आपने गृह-परम्परानुसार कृषि एवं अनाज का कार्य किया तथा कुछ समय बाद कपड़े का व्यापार भी किया।

बालब्रह्मचर्यमय जीवन :

अठारह वर्ष के होते ही आपके पुनर्विवाह की चर्चा माता-पिता द्वारा शुरु करने पर आपने मायाजाल में लिप्त नहीं होने का संकल्प स्पष्ट कर दिया और अन्यथा होने पर मुनिदीक्षा की ओर अग्रसर होने का वचन दिया। जिसे सुनकर माता-पिता ने निर्विघ्नरीत्या व्रत पालन करने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

त्यागभाव :

सत्तरह-अठारह वर्ष में ही पर्याप्त विरक्ति के परिणाम थे, किन्तु माता-पिता के अनुरागवश आरम्भिक वर्षों की साधना घर में ही की। आदि गुरु सिद्धसागर जी महाराज के सानिध्य में कुछ विशेष व्रत ले १८ वर्ष में ही सोने में गादी एवं चलने में पादत्राण का त्याग कर दिया। ३८ वर्ष की अवस्था में श्रीशिखर जी की यात्रा करते हुए निर्वाणभूमि की स्मृतिस्वरूप घी और तेल का त्याग करते हुए एक बार आहार-जल भी आरम्भ कर दिया।

PDF Scanner ACE Scanner

पिता के स्वर्गस्थ होने के चार वर्ष बाद अर्थात् ४१ वर्ष में गृहत्याग कर मुनिराज देवप्पा स्वामी जो देवेन्द्रकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध थे, से ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी वि.सं. १९७२ को क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की और आप सातगौडा की जगह क्षुल्लक शान्तिसागर के नाम से सम्बोधित होने लगे।

सिद्धक्षेत्र गिरनार पर ऐलक दीक्षा धारण की और शीघ्र ही मुनिव्रत धारण करने की भावना करने में तत्पर हुए।

वि. सं. १९७६ सन् १९१९ में यरनाल में पंचकल्याणक महोत्सव में पधारे मुनि देवेन्द्रकीर्ति से दीक्षा कल्याणक के अवसर पर फाल्गुन शुक्ल ग्यारस बुधवार को वस्त्र त्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली। अब आप मुनि शान्तिसागर बन गये।

समडौली में आपने श्रमणसंघ का निर्माण किया। अत: वि.सं. १९८१ सन् १९२४ आश्विन शुक्ल ग्यारस बुधवार को आप आचार्य पद पर चतुर्विध संघ के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये।

योगदान :

आपने अपने जीवनकाल में ससंघ अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए विभिन्न स्थानों पर चातुर्मास एवं उन्हीं प्रसंगों पर धर्मोपदेश देकर अनेक लोगों को मद्य, मांस आदि के सेवन का त्याग एवं भय-आतंकादि से मुक्त जीवन जीने की कला सिखाई। आपके उपदेशों से ही कटनी, धरियावद आदि स्थानों पर पशुबलि जैसी अनेक कुरीतियों का अन्त हुआ। आपके उपदेश के प्रभावस्वरूप स्त्रीशिक्षा एवं कर्नाटक के मूडबिद्री में ताडपत्रीय ग्रन्थों की सुरक्षा संरक्षा की विशिष्ट योजनाओं ने जन्म लिया। आपके सत्प्रयत्न से ही षट्खण्डागम, कसायपाहुड आदि का टीका सहित ताम्रपत्रों पर अंकन एवं उनके प्रकाशन का अद्वितीय कार्य संभव हो सकता। इसके अलावा भी आपने अनेक ग्रन्थों के उद्धार एवं प्रकाशन में गहरी रुचि ली। साथ ही आपने नानाविध तप रूप कृच्छ्रसाधन कर धर्म एवं धर्म के फल के प्रति लोगों को आश्वसित किया।

चारित्र चक्रवर्ती :

आचार्य श्री ने वि. सं. १९९४, सन् १९३७ में गजपंथा, महाराष्ट्र में चातुर्मास किया। यहां आयोजित हुए पंचकल्याणक महोत्सव के दौरान उपस्थित जैन समाज एवं संघ ने आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत कर स्वयं को धन्य माना।

PDF Scanner ACE Scanner

आपके वीतरागता पूर्ण आचरण एवं सम्यक् तत्त्वबोध से
अनेक शिष्यों ने दिगम्बरी दीक्षा एवं यथायोग्य व्रत धारण किये। जिनमें आचार्य श्री वीरसागर जी, आचार्य कुन्थुसागर जी, आचार्यकल्प चन्द्रसागर जी, आचार्य सुधर्मसागर जी, आचार्य पायसागर जी, आचार्य नमिसागर जी, मुनि श्री समन्तभद्र जी, मुनि श्री वर्धमानसागर जी के नाम प्रमुखतया गणनीय हैं। इनके अलावा भी अनेक दिवंगत मुनिराज, ऐलक, क्षुल्लक-क्षुल्लिका एवं ब्रह्मचारी शिष्य समुदाय है। प्राप्त जानकारी के अनुसार लगभग सात सौ व्यक्तियों ने आपका शिष्यत्व स्वीकार कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस किया।

यम सल्लेखना :

सन् १९५१ में गजपंथा में सल्लेखना का निश्चय कर वहां से विहार कर आप कुंथलगिरि पहुंचे, जहां आपने यम सल्लेखना धारण की। स्वयं अपने आचार्य पद का परित्याग कर अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री वीरसागर जी को "हम स्वयं के संतोष पूर्वक अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य वीरसागर को आचार्य पद देते हैं" लिखते हुए अपना दायित्व सौंपा।

शरीर से निर्मोहत्व रख आत्मसाधना में सजग एवं सतर्क बने रहने का हमेशा प्रयत्न करते रहे। आपने क्रमशः आहार का त्याग करते हुए १४ अगस्त को अल्प आहार के उपरान्त आहार का त्यागकर मात्र जल की छूट रखी तथा ४ सितम्बर को अन्तिम बार जल ग्रहणकर उसका भी परित्याग कर दिया। आत्मबल को प्रकट करते हुए सल्लेखना के २६ वें दिन आपने २२ मिनिट तक लोककल्याणार्थ अमर सन्देश प्रसारित किया और अन्त में शरीर से पूर्ण ममत्व का त्याग करते हुए १८ सितम्बर १९५५, तदनुसार भादो शुक्ला द्वितीया, रविवार को अमृतसिद्धि योग में प्रातः छह बजकर पचास मिनिट पर इस क्षपकराज ने महाप्रयाण किया।

बीसवीं सदी में दिगम्बर जैन साधुओं की परम्परा को सर्व-सुलभ एवं युगानुरूप शास्त्रानुकूल प्रयोगों द्वारा आचरण कर नई दिशा देने का महनीय कार्य आपने किया। आपके जीवनव्यापी राष्ट्र तथा समाजोत्थान के कार्यों का विवरण प्राप्तकर तत्कालीन राष्ट्रपति एवं महान् दार्शनिक डॉ० एस्० राधाकृष्णन् ने अपने उद्गारों में कहा - आचार्य श्री शान्तिसागर जी भारत की आत्मा के प्रतीक हैं तथा ऐसे लोग हमारे देश की आत्मा के मूर्तस्वरूप होते हैं।

आत्मसाधना एवं समाजोद्धार का अथक पुरुषार्थ करने वाला यह साधक सदा चिरस्मरणीय रहेगा।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

आचार्य शान्तिसागर महाराज (छाणी)

उत्तर भारत में झील की नगरी के लिए सुख्यात उदयपुर के खेरवाडा से पांच मील दूर राणी व विजयनगर मार्ग पर छाणी ग्राम है। यहां दशाहुमड समाज के श्री भागचन्द एवं भार्या श्रीमती माणिकबाई के धार्मिक परिवार में १९४५ कार्तिक वदी ११ को हस्त नक्षत्र में आपका अवतरण हुआ। माता-पिता ने बड़े ही प्यार से आपका नाम केवलदास रखा। आपके एक बड़े भ्राता एवं दो बहिनें भी थीं।

बाल्यकाल एवं शिक्षा :

सामान्यतया अन्य बालकों से भिन्न रुचि संपन्न हो आपका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। तब विधिवत् विद्यालयों का प्रचार-प्रसार नहीं था अत: गांव में ही छोटी-सी पाठशाला में एक या दो कक्षा तक हिन्दी, गणित आदि की शिक्षा प्राप्त की।

आरम्भ से विरक्त मन को यद्यपि किसी साधु-संत का समागम न मिल सका तो भी आपने अपने संस्कारों की स्थिरता से ही विवाह एवं व्यापार का आश्रय नहीं लिया। आवश्यकतावश कुछ समय तक अरुचिभाव से नौकरी अवश्य की। बहनोई श्री पानाचन्द जी के छाणी आगमन पर पुराण सुनने का अवसर मिलता। जिससे ही आपको स्वाध्याय की रुचि एवं वैराग्य ने आपके जीवन में प्रवेश किया।

वैरागी जीवन :

उन्नीस वर्ष में माता के देहावसान होने के बाद, एक बार नेमिनाथ भगवान् का चरित्र सुना। उसी रात्रि में आपको दो स्वप्न दिखाई दिये - एक, जिसमें आप शिखरजी की वन्दना कर रहे हैं और दूसरा में, अष्टद्रव्य से भगवान् बाहुबली की पूजन करते देखा। नेमिनाथ भगवान् के विवाह के प्रसंग को श्रवण करते हुए कुदेवों की उपासना एवं रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। केशरिया जी की यात्रा में भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा का दर्शन हुआ तभी आजीवन अविवाहित रहने तथा दिन में एक बार भोजन करने का संकल्प ले लिया।

श्रीसम्मेदशिखर जी की यात्रा की नित्याभिलाषा रहने पर पिताजी से अनुरोध किया, परन्तु उनके द्वारा विवाह के लिए दबाव डाले जाने के कारण उसे अस्वीकार करते हुए मात्र पांच रूपये से यात्रा की। प्रथम पडाव में दिखे रात्रिकालीन सुस्वप्न के सुफल ने कठिनाई को दूर कर दिया और निर्विघ्न यात्रा सम्पन्न हो गयी।

जनवरी १९१९ में शिखर जी में सुवर्णभद्र कूट पर भगवान् पार्श्वनाथ की

PDF Scanner ACE Scanner

भक्तिपूर्ण वन्दना करते हुए ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करते हुए केशलौंच कर पहने हुए कपड़े की मर्यादा कर शेष परिग्रह का त्याग एवं सप्तमप्रतिमा के व्रतों को धारण किया। यहां से ऐसी ही अवस्था में अनेक तीर्थों की यात्रा धर्मोपदेश/धर्मप्रचार करते हुए की।

सन् १९२२ में सागवाडा में ढाईद्वीप महामण्डल विधान के अवसर पर क्षुल्लक दीक्षा के परिणाम होने पर समाज के सानिध्य एवं गुरु के अभाव में स्वयं भगवान् की साक्षीपूर्वक क्षुल्लकदीक्षा धारण कर अपना नाम शान्तिसागर घोषित किया।

संवत् १९८० में क्षुल्लकश्री को सागवाडा नगर में चतुर्थ चतुर्मास के समय भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को निर्ग्रन्थता अंगीकार करने की तीव्र भावना होने पर भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के सम्मुख विनयपूर्वक समस्त परिग्रह का त्याग एवं केशलौंच करते हुए दैगम्बरी दीक्षा धारण की।

आचार्यत्व :

आपके सानिध्य में अन्य ब्रह्मचारी एवं त्यागी-व्रती रहने लगे थे। तब विक्रम संवत् १९८५ में गिरिडीह नगर में चातुर्मास के दौरान जब ब्रह्मचारी सुवालाल को मुनिदीक्षा प्रदान कर उन्हें मुनि ज्ञानसागर के नाम से सुशोभित किया। उसी अवसर पर समाज ने आपको आचार्य पद से विभूषित कर दिया। आपके द्वारा दीक्षित अनेक साधुओं में मुनि श्री ज्ञानसागर जी, मुनि श्री आदिसागर जी, मुनि श्री नेमिसागर जी, मुनि श्री वीरसागर जी, मुनि श्री सूर्यसागर जी, मुनि श्री मल्लिसागर जी एवं क्षुल्लक धर्मसागर जी के नाम प्रमुख हैं।

सामाजिकोत्थान :

आपने क्षुल्लकावस्था से ही दृढ़ चारित्र के पालन व उपदेशों से प्रभावित कर लोगों को त्याग एवं संयम के रास्ते पर अग्रसर किया। अनेक अजैनों को मद्य-मांस जैसे सप्त व्यसनों का त्याग कराया। समाज में व्याप्त कन्या-विक्रय जैसी अनेक कुरीतियों को बन्द कराने में महती भूमिका अदा की। इसके साथ ही अनेक शिक्षा एवं धार्मिक जीवनोपयोगी संस्थाओं का नवनिर्माण किया।

दो संघों का मिलन :

वि.सं. १९९० में आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण एवं आचार्य शान्तिसागर छाणी दोनों के संघों का ब्यावर नगर में स्मरणीय तथा अद्भुत मिलन एवं एक साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। जिसमें समाज ने भरपूर लाभ प्राप्त किया।

PDF Scanner ACE Scanner

साहित्याभिरुचि :

आचार्य श्री शान्तिसागर जी द्वारा संगृहीत/रचित/उपदेश से प्रकाशित बहुविध साहित्य उपलब्ध है, जिनमें ये नाम गणनीय हैं - १. मूलाराधना, अनेक टीकाओं सहित, २. श्री शान्तिसागर सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला, ३. शान्तिसवैयाशतक, ४. आगमदर्पण आदि।

साहित्य प्रकाशन में रुचि लेते हुए ईडर में ग्रन्थमाला तथा सामाजिक एकता कर जैन वीरसंघ की स्थापना की।

महाप्रयाण :

भारत वसुन्धरा के अनेक स्थलों पर विहार एवं धर्मप्रचार करते हुए वि.सं. २००१ के वैशाख मास में पुनः सागवाडा पहुंचे। जहां निमोनियां ज्वर से पीडित हो जाने तथा मृत्यु की निकटता जान चतुर्विध आहार का त्याग कर सतत् दो दिनों तक आत्मध्यान में लीन रह इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया। अब उस समाधिस्थल पर एक छतरी का निर्माण हो गया है तथा आपका जन्म स्थल भगवान् महावीर स्वामी के अतिशय के कारण प्रसिद्धि को प्राप्त हो रहा है।

❑

आचार्य कुन्थुसागर महाराज

इस युग के अलौकिक प्रभावशाली और प्रतिभासम्पन्न थे आचार्य श्री कुंथुसागर जी। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, श्रेष्ठ प्रवचनकार, साहित्यकार, कवि, कुरीतियों के निवारक, क्रान्तिकारी, समाजोद्धारक के रूप में लब्धख्यात हैं।

जीवनवृत्त :

कर्नाटक प्रान्त के बेलगांव जिले में एनापुर स्थान है, जहां श्री सांतप्पा और श्रीमती सरस्वतीदेवी के धार्मिक परिवार में वीर निर्वाण सं. २४२० कार्तिक शुक्ल द्वितीया को एक अद्वितीय बालक का जन्म हुआ। माता-पिता ने इस बालक का नाम रामचन्द्र रखा। इस प्रान्त की परम्परानुसार इसे जन्म आदि सभी संस्कारों से सुसंस्कारित किया गया। बाल्यकाल में डाले गये सुसंस्कारों के बीज आयु की परिपक्वता के साथ फूलने फलने लगे। परिणामस्वरूप धर्मचर्चा, सत्संगति और स्वाध्याय की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती गई। आपका विवाह १८ वर्ष की उम्र

में ही हो गया था, पर धार्मिक संस्कारों के तीव्र प्रभाववश उनका मन घर में नहीं रमा। २५ वर्ष की उम्र तक सुसंस्कार व सद्गुण और भी प्रबल हो गये।

वैराग्य :

आरम्भ से ही धार्मिक रुचि श्रीरामचन्द्र की थी। इसके साथ उनके माता-पिता, भाई-बहिन के परलोकगमन की घटनाओं ने वैराग्य की भावना को और भी प्रबल बना दिया। इसी समय परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी के एनापुर में शुभागमन से इन्हें उनके चरणों में रहने का सुअवसर मिला। यहीं पर उन्होंने आचार्यश्री से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया।

ब्र. रामचन्द्र ने २८ वर्ष की उम्र में श्रवणबेलगोल में मूर्ति के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर आचार्य श्री शान्तिसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और उनका पायसागर नाम रखा गया। अब वे संघ में ही रहने लगे।

चार माह बांद कुंभोज में आचार्यश्री का चातुर्मास हुआ। क्षुल्लक श्री पायसागर जी की साधना से प्रभावित हो उन्हें ऐलक की दीक्षा प्रदान की और तब 'पार्श्वकीर्ति' नाम से सम्बोधित किया। संघ के साथ विहार करते हुए सम्मेदशिखर जी की वन्दना की। अनन्तर कटनी में चातुर्मास किया। आपकी योग्यता को परखकर आचार्यश्री ने उन्हें आचार्य श्रीसुधर्मसागर के सानिध्य में रहकर नियमित अध्ययन करने का आदेश दिया। गुरुवर्य की आज्ञा का पालन करते हुये वे संस्कृत, सिद्धान्त, न्याय आदि में निष्णात हो गये।

सोनागिर सिद्धक्षेत्र पर सं. १९८६, अगहन शुक्ला पूर्णिमा को ३५ वर्ष की उम्र में केशलोंच के उपरान्त आचार्यश्री से मुनिदीक्षा अंगीकार की। आपका दीक्षा नाम कुन्थुसागर जी रखा गया।

आचार्यपद :

आचार्यश्री के निर्देशानुसार मुनि श्री कुन्थुसागर जी ने तारंगा सिद्धक्षेत्र पर चातुर्मास किया। यहीं पर मानस्तम्भ प्रतिष्ठा के अवसर पर मुनिश्री की तपश्चर्या, विद्वत्ता, वाक्चातुर्य, धर्मोपदेश आदि से मुग्ध होकर समाज ने उन्हें आचार्यपद से सम्मानित करना चाहा। किन्तु आचार्यश्री की अनुमति के बिना यह पद अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में आचार्यश्री शान्तिसागर जी से अनुमति प्राप्त कर सैकड़ों विद्वान्, श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्द जी (महासभा के अध्यक्ष), अनेक श्रेष्ठी-साहूकार एवं दश सहस्र जनता के समक्ष आचार्यपद से सम्मानित किया गया।

PDF Scanner ACE Scanner

समाजोद्धारककार्य :

आचार्यश्री का जन्म स्थान व भाषा आदि दक्षिणप्रान्त की होते हुए भी उनका कार्यक्षेत्र गुजरात और उसमें भी पिछड़े हुए प्रदेश बागड और काठेरा रहा है। जब बागड प्रदेश में समाज को खोखला बनाने वालीं बालविवाह, वृद्धविवाह, मरणभोज, कन्याविक्रय जैसी भयंकर कुरीतियां अपना रौद्र रूप धारण कर नग्न ताण्डव कर रही थीं, उस भीषण समय में आचार्यश्री कुन्थुसागर जी ने धर्मोपदेश की वर्षा से व्याप्त कुरीतियों को सदा के लिए अन्त कर दिया था। उन्होंने १८००० से अधिक लोगों को कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञा दिलायी। इसी प्रान्त में हूमड सभा स्थापित करके मरणभोज का नामोनिशान मिटा दिया। दीन-अनाथ व विधवा सहायक फण्ड की स्थापना भी आपकी प्रेरणा से हुई।

साहित्यसेवा :

आचार्यश्री आत्मसाधना, समाजोद्धार और जनकल्याण में ही निरत थे। उन्होंने पूर्वाचार्यों की परम्परा तथा धर्मोपदेशों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु अपनी मौन बेला के अल्प समय में लगभग चालीस ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके द्वारा प्रणीत कतिपय ग्रन्थ हैं -

१. चतुर्विंशतिजिनस्तुति (हिन्दी तथा गुजराती), २. शान्तिसागर चरित्र, ३. बोधामृतसार, ४. निजात्मविशुद्धि भावना, ५. मोक्षमार्गप्रदीप, ६. ज्ञानामृतसार, ७. लघुबोधामृतसार (हिन्दी, गुजराती, कन्नड), ८. स्वरूपदर्शनसूर्य, ९. नरेशधर्मदर्पण और १०. सुवर्णसूत्र आदि।

ये सभी ग्रन्थ सहज सरल सुबोधशैली में हैं और विश्वकल्याण की भावना से ओतप्रोत हैं। इन ग्रन्थों का हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ है, जिससे इनका देश के सभी प्रान्तों में स्वाध्याय हो सके। ये ग्रन्थ आचार्यश्री के कठोरश्रम, संकल्प और साहित्यसेवा के सजीव उदाहरण हैं।

अलौकिकप्रभाव :

परम पूज्य आचार्यश्री की वीतरागप्रवृत्ति, तपस्या, विद्वत्ता, भाषाशैली का जन-जन के मानस पर अलौकिक प्रभाव रहा। राज्य के शासक, दीवान, जागीरदार, हिन्दू-मुस्लिम, ईसाई आदि सभी के हृदय पर उनके उपदेशों का गहरा प्रभाव हुआ। उनके उपदेशों के प्रभाव से मानव के आपसी मतभेद और द्वेषाग्नि बुझ जाती थी।

PDF Scanner ACE Scanner

को प्रभावित किया। वे भी गुरु रूपी चुम्बकीय शक्ति के आगे स्वतः खिंचे चले आते थे। बड़ौदा के न्यायमन्दिर में खास बड़ौदा राज्य के दीवान एवं हजारों श्रोताओं की उपस्थिति में आचार्यश्री जी का जो मार्मिक धर्मोपदेश हुआ था वह आज भी अविस्मरणीय है। अनेक राज्यों में आज भी आचार्यश्री की जन्म जयन्ती सार्वजनिक रूप से 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनायी जाती है। सैकड़ों विद्वान् जो कार्य नहीं कर सके उसे अकेले ही आचार्यश्री ने किया।

विद्वत्समाज और जनसामान्य में क्रान्ति पैदा करने वाले, गंभीर, निःस्पृही, प्रभावशाली, कठोर परिश्रमी, संकल्प के धनी, लोकहितैषी परम पूज्य १०८ श्री कुन्थुसागर जी महाराज आज हमारे मध्य नहीं हैं, पर उनका साहित्य उनकी साधना व यशोगाथा आज भी उनका स्मरण करा रहे हैं। ❑

आचार्य सुधर्मसागर महाराज

जीवनवृत्त :

स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) के शिष्य थे आचार्य सुधर्मसागर जी। आपका जन्म वि.सं. १९४२ भाद्रपद शुक्ला दशमी (सुगन्धदशमी) को चावली (आगरा) में हुआ था। इनका जन्म परिवार/परिजन के लिए हर्ष का कारण बना और नन्दलाल नाम रखा गया।

शिक्षा :

बालक नन्दलाल ने अपने ग्राम में ही आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् दिगम्बर जैन महाविद्यालय मथुरा और सेठ हीराचन्द्र गुमानचन्द्र जैन बोर्डिंग हाऊस बम्बई में रहे तथा शास्त्री (सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, साहित्य) का विधिवत् अध्ययन किया। जैन महासभा एवं बम्बई परीक्षालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण कर वे शास्त्री की उपाधि से विभूषित हुए। इसके बाद भी आपका अध्ययन क्रम नहीं रुका। स्वतः अध्ययन, अनुभव, अभ्यास, अध्यवसाय से हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती भाषा का ज्ञान भी प्राप्त किया।

PDF Scanner ACE Scanner

सामाजिक धार्मिक कार्य :

श्री नन्दलाल जी ने अपने ज्ञान से जन-जन को लाभान्वित किया। उन्होंने अपने तर्कसंगत उपदेश, मार्गदर्शन व प्रेरणा से अनेक भीलों को मांसाहार से विरत किया और उनका शिकार खेलना बन्द करवाया। ठाकुर क्रूरसिंह को कर्म से जैन बना दिया। इतना ही नहीं, उसके द्वारा एक जैन मन्दिर का निर्माण भी कराया। सुप्रसिद्ध श्रेष्ठि पूनमचन्द घासीलाल जवेरी परिवार को धार्मिक बनाने का श्रेय भी आपको ही है।

श्री नन्दलाल जी ने ईडर और बम्बई में रहकर वहां के शास्त्रभण्डारों को व्यवस्थित किया, सम्हाला। वे महासभा के सदैव सहायक रहे।

आत्मकल्याण के पथ पर :

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज से मंगल आशीर्वाद सहित द्वितीयप्रतिमा लेकर श्री नन्दलाल जी संयमी बन गये। उनके ही प्रयास से आचार्य श्री विहार करते हुए सम्मेदशिखर पहुंचे। यहीं पर वि. सं. १९८४ में आचार्य श्री से ब्रह्मचर्यप्रतिमा धारण की और आपका नाम ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द रखा गया। इस समय आपने लगातार दो घण्टे तक जैनधर्म पर धारावाहिक प्रवचन दिया था।

कुण्डलपुर क्षेत्र पर दशम प्रतिमाधारी बन गये और अल्प अवधि बाद ही क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार कर क्षु. ज्ञानसागर नाम से विख्यात हुए। धर्म प्रभावना की दृष्टि से आपने अपने भाईयों को प्रेरित किया और उन्होंने पंच परमेष्ठियों के स्वरूप की बोधक प्रतिमाएं गजपंथा में तथा अष्टप्रातिहार्य युक्त ३ फीट ऊँची प्रतिमा दिल्ली के धर्मपुरा जिनालय में विराजमान कराई।

मुनिदीक्षा :

प्रतापगढ में श्रेष्ठि पूनमचन्द घासीलाल जी द्वारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन आचार्य श्री शान्तिसागर जी के संघ सानिध्य में किया गया था। उस अवसर पर वीर निर्वाण सं. २४६० फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को केवलज्ञान कल्याणक के मंगल अवसर पर अपने गुरुवर श्री से मुक्तिदायिनी मुनि दीक्षा अंगीकार की। तब आचार्य श्री ने सुधर्मसागर नाम से सम्बोधित किया। इनके ही साथ क्षुल्लक श्री नेमिकीर्ति जी यथाजात रूप धारण कर मुनि आदिसागर जी हो

[illegible] ने क्षुल्लक दीक्षा लेकर अर्जितकीर्ति जी नाम पाया।
[illegible] का कार्तिक्य चातुर्मास हजार जनसमुदाय ने देखा और अनुमोदना की।

आचार्यपद :

मुनि श्री सुधर्मसागर जी आचार्य श्री की आज्ञा से संघ के सभी कार्य करते थे। आप उन्होंने अपने संघ में मुनि श्री को आचार्य पद के लिए सर्वश्रेष्ठ माना और उन्हें उनकी अनिच्छा होते हुए भी आचार्यपद प्रदान किया। पौष शुक्ल तृतीया रविवार को अपने संघ तथा विभिन्नस्थानों की समाज के समक्ष यह कार्यक्रम हुआ। इस कार्य की सभी ने सराहना की।

साहित्यसृजन एवं अध्यापन :

आचार्यश्री बहुभाषाविद् विद्वान्, सुयोग्य लेखक टीकाकार एवं सम्पादक होने के साथ कवि भी थे। इनके द्वारा रचित टीका ग्रन्थ हैं - रयणसार, पुरुषार्थानुशासन, रत्नमाला, उमास्वामी श्रावकाचार। गुजराती भाषा में लिखे गये प्रमुख ग्रन्थ हैं - जीव विचार, कर्मविचार, दानविचार आदि। इनके अतिरिक्त सामाजिक धार्मिक विषयों पर लघु पुस्तकें भी आपके द्वारा लिखी गई।

आचार्यश्री ने कतिपय भक्तिभावपूर्ण पूजनों का सृजन भी किया। जो आज भी समाज में आदर और उत्साहपूर्वक पढ़ी जाती है। लेखन के साथ उन्होंने क्षुल्लक अवस्था में आचार्य श्री कुन्थुसागर जी को लेखन के लिए प्रेरित कर संस्कृत में ग्रन्थ रचना करवायी।

विद्यार्थी जीवन में अर्जित विद्या का आचार्यश्री ने असंयमी अवस्था से ही यथाशक्ति सदुपयोग किया। अनेक ज्ञानपिपासुओं को पढ़ाया। क्षुल्लक अवस्था में सभी मुनिराजों को संस्कृत का अध्ययन कराया। संघस्थ क्षुल्लक-ऐलकों को भी संस्कृत अध्ययन हेतु सस्नेह प्रेरित किया। इस तरह अध्यापन कार्य के साथ अनुभवी वैद्य का कार्य भी सहज भाव से संघ हित में किया।

समाधिमरण :

आचार्यपद पर रहते हुए सुधर्मसागर जी ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक संघ का संचालन किया। उन्हें अपने अन्त समय का आभास दो माह पूर्व ही हो गया था। इसकी सूचना उन्होंने झाबुआवासियों को दे दी थी। मृत्यु की समीपता के आभास

से वे विशेष सावधानी पूर्वक समाधिमरण की तैयारी करने लगे। इन्हें क्षयरोग भी हो गया था। पौष शुक्ल नवमी को आहार जल का भी त्याग कर दिया था। इसके बाद आप स्वयं को क्षयरोग मुक्त अनुभव करने लगे। पौष शुक्ला द्वादशी सोमवार वि.सं. १९९५ को संघस्थ साधु आहारचर्या से दोपहर में लौटे तो उन्हें आचार्यश्री की समाधि बेला समीप प्रतीत हुई। अन्तिम समय में आचार्यश्री ने जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन की इच्छा प्रकट की तो श्री यशःकीर्ति भट्टारक जी ने भगवान् आदिनाथ के दर्शन कराये। दर्शन करते हुए अत्यन्त भक्ति भाव से गद्गद् हो उनके मुख से निकल पड़ा - हे प्रभो ! मेरे आठों कर्म नष्ट हों और मुझे मुक्ति श्री मिले। इसी दिन सन्ध्याकाल में सावधानीपूर्वक परिणामों की निर्मलता के साथ आचार्यश्री ने स्वर्गारोहण किया।

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री सुधर्मसागर जी के स्वर्गवास का समाचार अतिशीघ्र दाहोह, इन्दौर, रतलाम, थांदला, झाबुआ आदि प्रायः सभी स्थानों पर पहुंचा। उनके पद्मासनयुक्त दिव्यशरीर को विमान में विराजितकर नगर के प्रमुख मार्गों से शोभा यात्रा निकाली गई। जलधारा देते हुए पं. श्री लालाराम जी विमान के सबसे आगे थे। शोभा यात्रा में चतुर्विध संघ सम्मिलित था। शास्त्रोक्त पद्धति से अन्तिम संस्कार किया गया। शोक सभा में पं. लालाराम जी ने अपना भावविह्वल उद्बोधन तो दिया ही, द्वितीय प्रतिमा के व्रत अंगीकार उनके पदचिह्नों पर ही बढ़ने लगे। अन्तिम संस्कार स्थल पर तीन दिन तक बाजे बजवाये गये, जागरण, भजन, कीर्तन हुए और उनकी पूजा की गई।

घोषणा :

आचार्य सुधर्मसागर जी का स्मृति दिवस मनाने के लिए राज्य की ओर से अवकाश घोषित किया गया तथा हिंसा पर प्रतिबन्ध लगाया गया। आचार्यश्री के स्मृतिदिवस पर प्रतिवर्ष रक्षोत्सव की घोषणा मुनि संघ की ओर से की गई। इस संघ ने स्वेच्छा से आचार्य सुधर्मसागर संघ की स्थापना का भाव व्यक्त किया।

इस प्रकार आत्मसाधना द्वारा आचार्यश्री ने मानव जीवन को सार्थक बनाया। अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के कारण वे आज भी अमर हैं।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

आचार्य ज्ञानसागर महाराज

अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर उनकी शरण में समाधिमरण करने वाले इस शदी के मात्र एक ही आचार्य हैं श्री ज्ञानसागर जी। इन्होने राजस्थान की मरुभूमि में धर्म की हरियाली को स्थायित्व दिया। जो उनकी शिष्य परम्परा के रूप में देश और विदेश में प्रसारित हो रही है।

राजस्थान में जयपुर के समीप सीकर जिले के राणोली ग्राम में इनका जन्म हुआ। उनके पिता का नाम श्री चतुर्भुज एवं माता का नाम श्रीमती घृतवरीदेवी था। ये खण्डेलवाल जैन छाबडा गोत्रज थे। शरीर का गौरवर्ण एवं लुनाई देखते हुये इनका नाम भूरामल रखा गया था। श्री भूरामल जी के अग्रज थे श्री छगनलाल और तीन अनुज अन्य थे श्री गंगाप्रसाद, श्री गौरीलाल और श्री देवीदत्त।

पितृवियोग :

वि. सं. १९५९ में उनके पिताश्री चतुर्भुज जी का देहावसान हो गया। उस समय बड़े भाई बारह वर्ष के और भूरामल जी दस वर्ष के थे। पिता के आकस्मिक निधन से घर की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। फलस्वरूप बड़े भाई को आजीविका की खोज में बाहर जाना पड़ा। वे गया (बिहार) पहुंचकर एक जैन व्यवसायी के यहां कार्य करने लगे। एक वर्ष बाद भूरामल जी भी अपने अग्रज के समीप पहुंचे और एक जैन व्यापारी के प्रतिष्ठान में कार्य सीखने लगे।

शिक्षा :

शैशवकाल से ही भूरामल की अध्ययन के प्रति तीव्ररुचि थी। उन्होने अपने जन्मस्थल में ही कुचामनवासी पं. जिनेश्वरदास जी से प्रारम्भिक लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। गांव में उच्चशिक्षा की सुविधा न होने तथा पितृवियोग के कारण शिक्षा में व्यवधान आ गया। तब आप जीविकोपार्जन में लग गये।

गया में जीवन-यापन करते हुये श्री भूरामल को एक ही वर्ष न हो पाया कि उनका साक्षात्कार गया में किसी समारोह में भाग लेने आये स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के छात्रों से हुआ। उनको देखकर बालक भूरामल के हृदय में वाराणसी जाकर विद्याध्ययन करने की तीव्र उत्कण्ठा जागृत हुई। उन्होने बड़े भाई से अपनी इच्छा निवेदित की, पर आर्थिक प्रतिकूलता के कारण अनुमति न मिल सकी।

किन्तु श्री भूरामल अपनी पिपासा का दमन करने में समर्थ न हो सके और १५ वर्ष की आयु में अध्ययनार्थ वाराणसी चले आये।

स्याद्वाद महाविद्यालय में पहुंच कर श्री भूरामल ने मात्र अध्ययन को ही महत्त्व नहीं दिया। जहां उनके साथी श्री पं. वंशीधर जी, श्री पं. गोविन्दराम जी, श्री पं. तुलसीराम जी आदि का लक्ष्य परीक्षा उत्तीर्ण कर उपाधियां अर्जित करना था, वहां आपका उद्देश्य ज्ञानार्जन करना ही था। उन्होंने अनावश्यक परीक्षाएं न देकर अहोरात्र ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। स्वल्पकाल में ही शास्त्री स्तर तक के सभी ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण कर क्वीन्सकालेज काशी से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। स्याद्वाद महाविद्यालय से उन्होंने संस्कृत साहित्य और जैन दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

नव प्रवर्तन :

उस समय पाठ्यक्रम में व्याकरण, साहित्य आदि के जैनेतर ग्रन्थ ही निर्धारित थे क्योंकि अधिकांश जैन ग्रन्थ अप्रकाशित होने से अनुपलब्ध थे। फलस्वरूप जैन छात्रों को जैनेतर ग्रन्थों का ही अध्ययन करना पड़ता था। जैनाचार्यों द्वारा रचित व्याकरण, न्याय और साहित्य के अद्वितीय ग्रन्थों के पढ़ने का सौभाग्य श्री भूरामल जी को नहीं मिला, जिससे उनके मन में तीव्रपीडा उथल-पुथल मचती रहती थी। तब तक जैन न्याय और व्याकरण के कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे। इसका सुफल यह हुआ कि आपने अन्य लोगों के सहयोग से अथक प्रयत्न करके उन ग्रन्थों को काशी विश्वविद्यालय और कलकत्ता परीक्षालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवा दिये। उसी समय अध्ययन पूर्ण करके जैन वाङ्मय में साहित्य और काव्य ग्रन्थों की न्यूनता को दूर करने का संकल्प भी लिया। विशेष उल्लेखनीय यह है कि वाराणसी में आपने व्याकरण, न्याय और साहित्य के जैनाचार्य विरचित ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। उस समय विद्यालय में प्राय: सभी ब्राह्मण अध्यापक थे और वे जैन ग्रन्थों को पढ़ाने में आनाकानी करते तथा पढ़ने वालों को हतोत्साहित भी करते। अत: जैसे भी, जिस अध्यापक से संभव हुआ आपने जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया। इस समय महाविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक पं. श्री उमरावसिंह जी से श्री भूरामल को जैनग्रन्थों के पठन के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला।

श्री भूरामल अध्ययन काल से ही स्वावलम्बी थे। वे सायंकाल गंगा के घाटों पर गमछा बेचकर अपना काम चलाते थे। पं. श्री कैलाशचन्द्र जी के अनुसार इस विद्यालय के ७० वर्ष के इतिहास में ऐसी मिसाल देखने को अन्य न मिली, न सुनी।

PDF Scanner ACE Scanner

अध्ययन पूर्ण होने पर श्री भूरामल अपनी जन्मभूमि राणोली लौट आये। घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। अत: उन्होंने व्यवसाय द्वारा आजीविका अर्जित करते हुए निःस्वार्थ भाव से स्थानीय जैन विद्यार्थियों को अध्ययन कराया। अग्रज के भी गया से आने पर दोनों भाईयों ने मिलकर व्यवसाय किया और अनुजों के लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व बखूबी निभाया।

ब्रह्मचर्यसंकल्प :

पण्डित श्रीभूरामल की व्यावसायिक योग्यता और विद्वत्ता देखकर अनेक लोगों के द्वारा विवाह के प्रस्ताव आये पर अपने अध्ययन काल में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहकर साहित्य सृजन एवं प्रचार में ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले लिया था। अत: विवाह प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया।

साहित्यसृजन की प्रेरणा :

श्री भूरामल जी को साहित्य सृजन हेतु प्रेरित करने वाले दो कारण हैं। इनमें प्रथम है जैन वाङ्मय में काव्य और साहित्य की न्यूनता तथा अप्रकाशित होना और द्वितीय है अध्ययन काल की एक घटना। इसका सारांश है कि बनारस में एक दिन श्री भूरामल ने एक जैनेतर विद्वान् के समीप पहुंचकर जैन साहित्य का अध्ययन कराने हेतु निवेदन किया तो उन विद्वान् ने व्यंग्य करते हुये कहा कि 'जैनियों के यहां है कहां ऐसा साहित्य, जो मैं तुम्हें पढ़ाऊँ' यह सुनकर वे क्षणभर को तो अचेत-से हो गये। शब्दबाण से मन में बड़ी टीस हुई और संकल्प किया 'अध्ययन काल के बाद ऐसे साहित्य का निर्माण करूंगा जिसे देखकर जैनेतर विद्वान् भी दांतों तले अंगुली दबा लें।'

साहित्यसर्जना :

अपने संकल्प को साकार करने हेतु श्री भूरामल जी व्यवसाय से उदासीन हो गये। व्यवसाय का कार्य छोटे भाइयों को सौंपकर पूर्णरूपेण अध्ययन-अध्यापन और साहित्य सृजन में जुट गये। उन्होने अनेक संस्कृत एवं हिन्दी ग्रन्थों की रचना कर भारतीय भाषाओं के साहित्य को विपुल सामग्री प्रदान की जो इस प्रकार है -

संस्कृतसाहित्य :

१. जयोदय महाकाव्य - यह नैषधीय चरित्र के समकक्ष २८ सर्गगत ३०४७ श्लोक का आदिपुराण के आधार पर रचित महाकाव्य है। भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार और सुलोचना की प्रणयकथा तथा मुख्यत: परिग्रहपरिमाणव्रत की शिक्षा देने वाला बीसवीं सदी का प्रथम काव्य है।

२. वीरोदय काव्य - यह जयोदयवत् ही है। इसमें २२ सर्ग २१४ श्लोक एवं तीर्थंकर महावीर का जीवन चरित्र है।

३. सुदर्शनोदय - श्रेष्ठि सुदर्शन कामदेव का जीवन चरित्र तथा एकपत्नीव्रत की अलौकिक महिमा का दिग्दर्शन कराता है यह काव्य। यह नौ सर्ग में ४८१ श्लोकों से समन्वित है।

४. भद्रोदय - भद्रमित्र के आदर्श जीवन चरित्र एवं अस्तेय को लक्ष्यकर रचा गया है यह काव्य। यह ३४४ श्लोकगत नौ सर्गों में परिसमाप्य है।

५. दयोदय चम्पूकाव्य - एक धीवर के द्वारा मछली को जीवनदान देने का महत्त्व पुनर्जन्मों की कथा द्वारा समझाया गया है।

६. सम्यक्त्वसारशतकम् - १०४ श्लोकों में सम्यग्दर्शन के वैशिष्य का बोधक स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित आध्यात्मिक काव्य है।

७. मुनिमनोरंजनाशीति - उपदेशात्मक शैली में ८० पद्यों में श्रमणों की चर्या का वर्णन है।

८. भक्तिसंग्रह - संस्कृत में भक्तिरचना कर प्राचीन परम्परा को पुनरुज्जीवित किया गया है।

९. हितसम्पादकम् - १५९ श्लोकों का यह लघुकाव्य क्रान्तिकारी है, यह मिथ्या रूढियों का निराकरण और सम्यक् रूढियों का स्थापक है।

१०. वीरशर्माभ्युदय - शान्तिकुमार नामोल्लेख श्री दिगम्बर जैन मन्दिर दांता (सीकर) राज. से प्राप्त भगवान् महावीर चरित्र सम्बन्धी काव्यग्रन्थ। इसमें संस्कृत श्लोकों का अर्थ स्वयं लेखक ने किया है। यह दो खण्डों में विभाजित है, जिसमें प्रथमखण्ड ७ सर्गगत ७७७ श्लोकों तथा द्वितीयखण्ड ५७८ श्लोकों में निबद्ध है। इसकी एक अन्य प्रति भी प्राप्त होती है, जिसमें संस्कृत श्लोक के साथ स्वोपज्ञवृत्ति मात्र ६ सर्गों के ५३९ श्लोकों पर उपलब्ध है। यह कृति अद्यतन भी अप्रकाशित है।

हिन्दी साहित्य :

१०. भाग्योदय - धन्यकुमार का जीवन चरित्र।

११. ऋषभचरित - आदिपुराण पर आधारित प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जीवन चरित्र, इसमें १७ सर्ग ८११ पद्य हैं।

PDF Scanner ACE Scanner

१२. गुणानुरागकुलक - यह ५१५ पद्यों में रचित काव्य है। इसमें राजा श्रेणिक के समय से युवावस्था में दीक्षित एक श्रेष्ठिपुत्र का वर्णन है।

१३. पवित्र मानव जीवन - मानव जीवन के सफलतादायक कर्त्तव्यों का विवरण है।

१४. कर्त्तव्यपथप्रदर्शन - इसमें ८२ शीर्षकों में मानव के दैनिक कर्त्तव्यों का वर्णन है।

१५. सचित्तविवेचन - सचित्त-अचित्त वस्तुओं और सचित्त पदार्थों को अचित्त बनाने की विधि का आगम सम्मत निदर्शन है।

१६. सचित्तविचार - इसकी विषयवस्तु सचित्तविवेचनवत् ही है।

१७. स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म - इसमें स्वामी कुन्दकुन्द प्रणीत जैनधर्म के स्वरूप एवं मोक्ष के मार्ग को निरूपित किया गया है।

१८. सरल जैन विवाह विधि - जैन धर्मानुसार विवाह की विधि का वर्णन है।

१९. इतिहास के पन्ने - इसमें जैनदर्शन के प्रसिद्ध आचार्यों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण समाविष्ट किया गया है।

२०. ऋषि कैसा होता है - ४० श्लोक प्रमाण अप्रकाशित काव्य।

अनुवाद एवं टीकाग्रन्थ :

२१. प्रवचनसार - आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार की हिन्दी व्याख्या।

२२. समयसार - श्री जयसेनाचार्य द्वारा लिखित तात्पर्यवृत्ति का अनुवाद।

२३. तत्त्वार्थदीपिका - तत्त्वार्थसूत्र की सरल भाषा में टीका।

२४. मानवधर्म - रत्नकरण्डश्रावकाचार के श्लोकों पर हिन्दी टीका।

२५. विवेकोदय - समयसार की गाथाओं का गीतिका छन्द में हिन्दी पद्यानुवाद।

२६. देवागमस्तोत्र - समन्तभद्राचार्य के देवागमस्तोत्र का पद्यानुवाद, जो जैनगजट में सन् १९५६-५७ में प्रकाशित हुआ था।

२७. नियमसार - हिन्दी में पद्यानुवाद, श्रेयोमार्ग में प्रकाशित।

२८. अष्टपाहुड - हिन्दी में पद्यानुवाद, श्रेयोमार्ग में प्रकाशित।

२९. शान्तिनाथपूजनविधान - पूर्वाचार्य द्वारा रचित विधान का सम्पादन।

PDF Scanner ACE Scanner

चारित्र की ओर कदम :

अध्ययन-अध्यापन और अभिनव ग्रन्थों की रचना करते हुए युवावस्था बीतने पर श्री भूरामल जी के मन में चारित्र धारण कर आत्मकल्याण करने की भावना जो अन्त:स्थित थी, बलवती होने लगी। बालब्रह्मचारी होते हुए भी सन् १९४७ (वि.सं.२००४) में अजमेर नगर में आचार्य श्री वीरसागर जी से व्रतरूप ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। वि.सं. २००६ आषाढ शुक्ल अष्टमी को गृहत्याग कर दिया।

चारित्र के पथ पर अग्रसर होते हुये २५ अप्रेल (अक्षयतृतीया) सन् १९५५ को ब्रह्मचारी जी ने मन्सूरपुर (उ.प्र.) में क्षुल्लकदीक्षा ग्रहण की और उन्हें क्षुल्लक श्री ज्ञानभूषण नाम दिया गया।

सन् १९५७ में वे ऐलक के रूप में दीक्षित हुए। जब ऐलक श्री ने स्वयं को संयम पालन में पूर्ण समर्थ पाया तब २२ जून सन् १९५९ में खानियां जयपुर में आचार्य श्री शिवसागर जी से प्रथम मुनिशिष्य के रूप में दीक्षा ग्रहण की और मुनि ज्ञानसागर नाम से प्रसिद्ध हुये।

मुनिश्री संघस्थ व्रतियों, ब्रह्मचारियों, क्षुल्लक आदि को पढ़ाते थे, अत: उन्हें संघ का उपाध्याय बना दिया गया।

आचार्यपद :

वि.सं. २०२५ फाल्गुन कृष्ण पंचमी शुक्रवार (७ फरवरी सन् १९६९) को नसीराबाद जिला अजमेर की जैन समाज ने मुनि श्री ज्ञानसागर जी को आचार्य पद से अलंकृत किया, उसी दिन आपसे मुनि श्री विवेकसागर जी दीक्षित हुये।

सन् १९७२ में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के नसीराबाद चातुर्मास काल में उनसे २० अक्टूबर १९७२ को श्री स्वरूपानन्द जी ने क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की। इस अवसर पर जैन समाज ने आपको चारित्रचक्रवर्ती पद से अलंकृत कर अपना श्रद्धातिरेक एवं प्रगाढ़ भक्तिभाव अभिव्यक्त किया।

शिष्यवृन्द :

आचार्य श्री के अगाधज्ञान एवं प्रखरतप से प्रभावित होकर अनेक आत्मार्थियों ने उनका शिष्यत्व प्राप्त किया और मनुष्य पर्याय को सफल बनाया। उनके शिष्य के रूप में मुनि श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री विवेकसागर जी, ऐलक श्री सन्मतिसागर

PDF Scanner ACE Scanner

क्षु. श्री सुखसागर जी, क्षुल्लक श्री आदिसागर जी, क्षुल्लक श्री विनयसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी एवं क्षुल्लक स्वरूपानन्द जी प्रसिद्ध हैं।

आचार्यपदारोहण एवं समाधिमरण :

ज्ञान और तप से युक्त आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का शरीर वृद्धावस्था के कारण क्षीण होने लगा। स्वयं को आचार्य पद के निर्वाह में असमर्थ जान नसीराबाद में २२ नवम्बर १९७२ को २५००० जन समुदाय के समक्ष मुनिश्री विद्यासागर जी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। उनका शिष्यत्व स्वीकार कर यम सल्लेखना धारण की। २८ मई १९७३ को आहार जल का पूर्ण रूपेण त्याग किया। ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या १ जून १९७३ को प्रात: १० बजकर ५० मिनिट पर 'ॐ नम: सिद्धेभ्य:' उच्चारण के साथ पार्थिव शरीर का परित्याग कर दिया।

❑

आचार्य सूर्यसागर महाराज

जीवनारम्भ :

आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी की परम्परा के आचार्य रहे हैं पूज्य श्री सूर्यसागर जी महाराज। आप तेरहपंथ विचारधारा के प्रभावक, उग्र तपस्वी, निर्भीक, स्वतन्त्र विचारक, भेदभाव की विभेदक रेखा को गिरा कर अखण्ड वात्सल्यभाव को जन्म देने वाले, जैनत्व के प्रकाशक तथा प्राणियों के उद्धारक सन्त थे।

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज का जन्म कार्तिक शुक्ला नवमी शुक्रवार वि.सं. १९४० को ग्वालियर रियासत के शिवपुर जिलान्तर्गत पेमसर ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम था श्री हीरालाल और माता का नाम श्रीमती गेंदाबाई, जो पोरवाल दिगम्बर जैन जाति के वसलहा गोत्र में उत्पन्न हुए थे। गृहस्थ अवस्था में आपका नाम हजारीमल था।

श्री हजारीमल के पितृत्व श्री बलदेव जी (झालरापटन निवासी) नि:संतान थे। अत: उन्होंने इस बालक का लालन-पालन किया तथा दत्तक पुत्र भी बना लिया। वि.सं. १९५२ में श्री बलदेव जी का देहावसान हो गया। उनके ही मित्र श्री नाथूराम जी जोरंजीराव ने श्री हजारीमल का पालन पोषण किया।

PDF Scanner ACE Scanner

विद्यावैभव एवं गृहस्थजीवन :

परिस्थितिवश इनकी शिक्षा हिन्दी विषय तक ही सीमित रही। शिवपुर जिले के मेवाड़ा ग्राम में श्री ओंकारमल जी पोरवाल की सुपुत्री मोताबाई के साथ अल्पायु में ही पाणिग्रहण संस्कार हुआ। इसके कुछ समय बाद आप इन्दौर चले गये।

इन्दौर में सर सेठ हुकमचन्द जी के यहां तथा बाद में सेठ कल्याणमल जी के यहां नौकरी की, पर यह कार्य उन्हें रास न आया। स्वतन्त्र व्यवसाय करने का लक्ष्य बना लिया और कपड़े की दुकान खोल ली, साथ में कपड़े की दलाली भी करते रहे। जिससे आपकी आर्थिक स्थिति संतोषजनक हो गयी।

अभिरुचि :

श्री हजारीमल का झुकाव बाल्यकाल से ही धर्म की ओर था। देवदर्शन, प्रक्षाल-पूजन, शास्त्रस्वाध्याय, सामायिक करना उनका नित्यकर्म था। आयुवृद्धि के साथ यह रुचि भी बढ़ती गई। संयोग से पत्नी भी उनके अनुकूल धार्मिक रुचि सम्पन्न थी। वे धार्मिक चर्चा में रस लेती तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड आदि सिद्धान्तग्रन्थों का स्वाध्याय करती। इससे उन्हीं धार्मिक कार्यों तथा ज्ञानवृद्धि में भी बहुत सहायता मिली।

उदासीनता :

वि.सं. १९७२ में श्रीमती मोताबाई का स्वर्गवास हो गया। श्री हजारीमल जी वस्तुस्वरूप के ज्ञाता थे और धर्म सम्मुख भी। यह इष्टवियोग उनके लिए संसार, शरीर और भोगों की उदासीनता में निमित्त बन गया।

वि.सं. १९८१ में एक दिन रात्रि में श्री हजारीमल ने स्वप्न देखा कि जलाशय में एक तख्ते पर बैठा हुआ कोई आदमी उनसे कह रहा है कि चले आओ, देर न करो। पर उसके आग्रह पर भी उन्होने जलाशय में प्रवेश नहीं किया। तब उस व्यक्ति ने तख्ते को किनारे पर लगाया और उनको किसी तरह तख्ते पर चढ़ाया, फिर थोड़ी दूर जलाशय में ले जाकर एक स्थान पर रखे हुए पिच्छी-कमण्डलु की ओर संकेत कर उन्हें उठाने को कहा। उन्होने यह बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। दो-तीन बार आग्रह करने पर भी पिच्छी-कमण्डलु नहीं उठाये और नहीं उठाऊंगा कहकर विस्तर से कुछ हटे और पलंग से नीचे गिर पड़े। इस स्वप्नदर्शन से आपकी उदासीनता/वैराग्यभाव और भी दृढ़ हो गया।

PDF Scanner ACE Scanner

संयम :

शुभ संयोग से उसी वर्ष सं. १९८१ को आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी का चातुर्मास इन्दौर में ही था। आप उनके सानिध्य में पहुंच गये। उनके जीवन में आसौज शुक्ला षष्ठी का वह शुभ दिन आया और आचार्य श्री से ऐलक दीक्षा ली। ऐलक हो जाने पर श्री हजारीमल का नाम श्री सूर्यसागर रखा गया। इसके ५१ दिन बाद मगसिर कृष्णा एकादशी को हाटपीपल्या (मालवा) में आचार्य श्री के पास सर्वपरिग्रहों का त्यागकर निर्ग्रन्थ मुनिदीक्षा धारण कर ली। आप विद्वान्, ज्ञान और तपस्या में अग्रणी थे।

आचार्यपद :

आचार्य श्री शान्तिसागर जी ने अपने सुयोग्य शिष्य मुनि सूर्यसागर जी को कोडरमा में अपना आचार्यपद सौंपा, वह दिन था कार्तिक कृष्ण नवमी सं. १९८५।

पूज्य श्री गणेशप्रसाद वर्णी इन्हें अपना गुरु मानते थे और पत्रव्यवहार भी करते थे। उन्होने अपनी दैनन्दिनी के एक पृष्ठ पर आचार्य श्री की तपस्या का उल्लेख किया है -

"आचार्य श्री सूर्यसागर जी वर्तमान में उग्रतपस्वी हैं। एक बार उन्होने गर्मी की दोपहरी में १२ बजे से २.३०ह्नबजे तक पत्थर की उग्र शिला पर ध्यान लगाया और अपनी ध्यानावस्था से जरा भी चलायमान नहीं हुए। एक निर्विकल्पमूर्ति की तरह विराजमान रहे। यह देख मैं बड़ा प्रभावित हुआ और मैंने भी उन्हीं का अनुकरण कर ध्यान लगाया तो आधा घण्टे में ही व्याकुल हो गया। तब मेरी समझ में आया कि हाथी का भार तो हाथी पर ही चल सकता है, छोटे-मोटे जीव-जन्तुओं पर नहीं, अस्तु मैं पन्द्रह दिन बुखार में रहा।"

आचार्य जी एकान्त स्थान में ही ध्यान करते थे। कभी रात्रि में श्मशानभूमि पर जाकर ध्यान करते थे। इसी तरह केशलोंच भी एकान्त में ही करते थे। इनके द्वारा न तो विहार की घोषणा होती थी और न ही प्रवेश की।

आचार्य श्री का आहार भी सीधा और सरल था। एक बार लाडनूं में सेठ सेवाराम जी गुजराल के यहां महाराज श्री का पडगाहन हुआ। वे आहार में अंगूर-सेव देने लगे तो उन्होने अंजुली बंद कर ली। यह चर्चा का विषय बन गया। बाद में पूछने पर आचार्य श्री ने कहा - जो वस्तु आप भोजन में उपयोग करते हैं वही देना चाहिए।

PDF Scanner ACE Scanner

अनेक स्थानों पर जैन समाज में मतभेद, जातिभेद के कारण व्यक्तिगत, सामाजिक एवं पंचायत सम्बन्धी झगड़े चल रहे थे। समाज की शान्तिभंग करने वाले झगड़े न्यायालयों से भी नहीं मिट सके थे। हजारों रूपये पानी की तरह बहा दिये गये, बीसों बार मारपीट हुई किन्तु आपसी सम्बन्धों में एक दूसरे के विरोधी ही रहे। जिनमें एक-दूसरे का मुखदर्शन भी पसन्द नहीं करते थे। ऐसे सैकड़ों झगड़े आचार्य श्री के धर्मोपदेश और प्रेरणा से शान्त हुए और पारिवारिक, सामाजिक एकता स्थापित हुई। उनमें से कतिपय स्थानों के नाम हैं - चौमू, भिण्ड, जयपुर, मुंगावली, खुरई, चंदेरी, हाटपीपल्या, टीकमगढ़, नैनवां, उदयपुर, सेवारी, भीलवाड़ा, नरसिंहपुर, डबोक, साक, रोड़ा और भादवा आदि।

आपके सदुपदेशों से अनेक स्थानों पर पाठशालाएं, औषधालय आदि परोपकारी संस्थाएं भी खुलीं।

साहित्यसृजन :

आचार्यश्री सूर्यसागर जी ने जनकल्याणार्थ अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनमें स्वरचित, संकलित तथा उपदेश से प्रकाशित साहित्य हैं जो इस प्रकार है-

१. श्रावकधर्मप्रकाश - सामान्य रूप में।

२. श्रावकधर्म प्रकाश - विशेष रूप में।

३. संयमप्रकाश (सात भागों में)।

४. अध्यात्मग्रन्थ संग्रह - आठ ग्रन्थों का समन्वय करके उनकी बालबोधिनी टीका।

५. आत्मसाधनमार्तण्ड - आत्मा के अनुभव का उपाय।

६. आत्मसद्बोधमार्तण्ड - सामायिकादि का स्वरूप संग्रह।

७. अभक्ष्यविचारमार्तण्ड - २२ अभक्ष्यों का स्वरूप विवेचन।

८. सद्बोधमार्तण्ड - निगोद से निकलना तथा व्यवहारराशी व चतुर्गतिसहित मोक्ष का स्वरूप।

९. निर्जरामार्तण्ड - कर्म की सत्ता, उदय, बन्ध, उपशम आदि दश करणों सहित निर्जरा का स्वरूप।

१०. निजानन्दमार्तण्ड - शुद्धात्मा की व्यवस्था कैसे और क्यों करने की विवेचना गुणस्थान मार्गणा सहित।

PDF Scanner ACE Scanner

११. विवेकमार्तण्ड - संसारी जीव का आत्मानुभव तथा उसे बलवान् बनाने का उपाय।

१२. स्वभावबोधमार्तण्ड - आत्मा का परीषहजयी बनकर निजस्वरूप निजानन्द प्राप्ति का उपाय।

१३. प्रबोधमार्तण्ड - संसार के कारण और उसे पृथक् करने के उपाय (दो भागों में)

१४. आर्षमार्गमार्तण्ड - जिनप्रतिमा के पंचामृताभिषेक, प्रतिमा के शृंगार, स्त्रियों के प्रतिमा के प्रक्षाल, स्पर्श तथा रात्रिपूजन का निषेध।

१५. आवश्यकमार्तण्ड - पाक्षिकश्रावक से ग्यारहवीं प्रतिमा तथा समाधि-मरण का स्वरूप व विधि।

१६. लावनी संग्रह।

१७. विधि संग्रह - पूजन एवं मुनियों की आहारविधि।

१८. नित्यपाठ गुटका।

१९. परम अध्यात्म मार्तण्ड - शुद्धात्मद्रव्य का कथन।

२०. तत्त्वालोकमार्तण्ड - द्रव्य, गुण, पर्याय तथा परिणमनशीलता का स्वरूप।

२१. स्तोत्रमार्तण्ड - स्तोत्रों का संकलन।

२२. प्रभात प्रार्थना।

२३. सूर्यसागर ग्रन्थावली।

समाधिमरण :

डालमियां नगर में आचार्य श्री अस्वस्थ हो गये। अपना समय समीप जानकर सल्लेखना ले ली। वहीं पर जिनालय में प्रतिमा के समक्ष ध्यान लगाया और रात्रि में ॐ नमः सिद्धेभ्यः कहकर परलोक यात्रा पर प्रस्थान किया। वह समय था श्रावण कृष्णा अष्टमी सोमवार सं. २००९ की रात्रि १२ बजकर १५ मिनिट। इनके दाह संस्कार स्थल पर प्रसिद्ध उद्योगपति साहू शान्तिप्रसाद जी द्वारा निर्मित संगमरमर की समाधि बनी हुई है।

❑

आचार्य देशभूषण महाराज

जीवनवृत्त :

दक्षिण भारत के सुविख्यात आचार्य हैं श्री देशभूषण जी महाराज। आप बहुभाषाविद्, विशिष्ट विद्वान्, प्रभावशाली प्रवचनकार, ग्रन्थों के प्रणेता, सफल अनुवादक तथा स्व-पर कल्याण में रत दिगम्बर तपस्वी थे।

इनकी जन्मभूमि है दक्षिण भारत के बेलगांव जिले का कोथलपुर ग्राम और जन्म संवत् है १९६५। पिता का शुभ नाम श्री सत्यगौडा और माता का नाम श्रीमती अक्कावती था। किन्तु धर्मपरायण माता-पिता का स्नेह न मिल सका। इन्हें तीन मास की अवस्था में मातृवियोग तथा सात वर्ष की अल्पायु में ही पितृ वियोग सहना पड़ा। इस स्थिति में इनकी नानी ने इनका पालन पोषण किया।

शिक्षा और धार्मिक रुचि :

बालगौडा ने १६ वर्ष की आयु तक कन्नड और मराठी भाषा में शिक्षा प्राप्त की। ये सदैव धर्म, देव-गुरु-शास्त्र व जिनमन्दिर से विमुख ही रहे। धर्मविमुख होने से शीघ्र ही कुसंगति में फंस गये। कोथलपुर में संयोग से १०८ आचार्य जयकीर्ति जी का शुभागमन हुआ। उनके प्रवचनों की चर्चा प्रसारित हुई पर इनके ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा।

इनके जीवन में एक ऐसा शुभ दिन आया कि प्रसुप्त धर्म संस्कार जागे और स्वत: मुनिदर्शन और धर्मोपदेश श्रवण का भाव मन में उठा। वे अपनी इच्छातृप्ति के लिए पहुंच गये मुनिश्री के सत्सानिध्य में। उनके धर्मोपदेश से धर्म का बीज अंकुरित हो गया। अब उन्होने प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनने का नियम ही ले लिया।

विवाहविमुखता :

बालगौडा की विवाह योग्य वय होने से इनके नाना ने विवाह का प्रसंग छेड़ दिया। इन पर भी चारों ओर से दबाव पड़ने लगा। असमंजस की स्थिति में भी इन्होने दृढ़तापूर्वक निर्णय लेकर विवाह प्रस्ताव को ठुकरा दिया और आचार्य श्री की शरण ले ली। अब वे गुरुवर के साथ ब्रह्मचर्यावस्था में रहे तथा उनकी प्रेरणा से अल्पावधि में अनेक धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन व मनन किया।

PDF Scanner ACE Scanner

ज्ञानाभिमुखता :

ब्र. बालगौडा आचार्यश्री के साथ विहार करते हुए रामटेक तीर्थक्षेत्र पर पहुंचे। वहीं पर ऐलक दीक्षा अंगीकार की। कुछ दिन बाद आपके मन में निर्ग्रन्थ/दिगम्बर बनने की उत्कृष्ट भावना हुई। इसे साकार रूप मिला कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर, जब वे आचार्यश्री के साथ सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र की वन्दना कर उक्त सिद्धक्षेत्र पर पहुंचे, तब आचार्य जी से मुनिदीक्षा धारण की। इनका विद्याभ्यास निरन्तर जारी रहा।

अपूर्वप्रभाव :

मुनि श्री देशभूषण जी विहार करते हुए अयोध्या नगरी पहुंचे। जैन जनता के अभाव में उन्हें वह स्थान सूना-सूना लगा। उन्होंने वहां जैन गुरुकुल स्थापित कराया। इस तीर्थ को उन्नत बनाने के लिए ३१ फीट ऊँची १००८ श्री आदिनाथ भगवान् की विशाल व मनोज्ञ प्रतिमा भी रम्य बगीचे में विराजमान कराई। उनके प्रयास से आज यह क्षेत्र एक दर्शनीय स्थल बन गया है।

मुनि श्री देशभूषण जी को आचार्य पद कब और कहां मिला ? यह तथ्य अज्ञात है। आपके प्रवचन जनसामान्य की भाषा में विषय के विवेचक एवं उदाहरणों से परिपूर्ण होते थे, जो श्रोता को मन्त्रमुग्ध कर देते थे। जब आचार्य श्री दिल्ली के लाल मन्दिर में विराजमान थे तब वहां उनकी विद्वत्ता और चारित्र से प्रभावित होकर वहां के धार्मिक, राजनैतिक एवं अन्य प्रशासनिक व प्रतिष्ठित अनेकानेक व्यक्ति तथा जगत्प्रसिद्ध धनकुबेर श्री जुगलकिशोर जी बिडला भी उनके धर्मामृत पान करने वहां आते थे। वहां एक बार आचार्य श्री ने ३० फुट ऊँची भगवान् आदिनाथ की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की तो इस कार्य के लिए पचास हजार रूपये तथा लाखों रूपये की जमीन के पूर्ति कठिन प्रतीत हुई, पर मुनिभक्त श्री जुगलकिशोर जी बिडला ने हिन्दु होते हुए भी आचार्यश्री से विनम्र निवेदन किया कि यदि कोई जैन धनिक इस पुनीत कार्य के लिए अग्रसर नहीं होता तो मैं स्वयं इस कार्य को अपने व्यय से सम्पन्न कराऊँगा। ऐसा था आचार्य श्री का प्रभाव।

एक अमेरिकन महिला कुमारी चार्लटन भी आचार्य श्री से अत्यन्त प्रभावित थी और उनके चरणों में बैठकर 'णमोकार मन्त्र तथा एसो पंचणमोयारो सुनाकर' सबको हर्षान्वित करती रहती थीं।

नेपाल की राजकुमारी, मैसूर के मुख्यमंत्री आदि भी आचार्य श्री के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। इनकी अलौकिक साधना से प्रभावित मंगल आशीर्वाद और की गई भविष्यवाणियां सत्य और कार्यक्षम सिद्ध हुई। आचार्य श्री कुन्थुसागर जी पर भी इनका प्रभाव था।

साहित्यसृजन :

आचार्य श्री कन्नड, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं के विद्वान् थे। उनके द्वारा रचित स्वतन्त्र रचनाएं हैं - गुरुशिष्यसंवाद, चिन्मयचिन्तामणि आदि। अहिंसा का दिव्य सन्देश, महावीर दिव्य सन्देश आदि ग्रन्थों का प्रणयन भी किया है। अनेक ग्रन्थों का हिन्दी, गुजराती, मराठी में अनुवाद कर जन-जन के उपयोगी बनाया, जिनमें प्रमुख हैं - भरतेश वैभव, रत्नाकर शतक, परमात्मप्रकाश, धर्मामृत, निर्वाणलक्ष्मीपतिस्तुति, निरंजनस्तुति, मेरुमन्दरपुराण आदि। चातुर्मास काल में दिये गये आपके प्रवचनों के अनेक प्रवचन संग्रह पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हैं।

यद्यपि आचार्य श्री आज हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी विद्वत्ता, गम्भीरता, तपस्तेजस्विता, नि:स्पृहता, अद्‌भुतक्षमता, अतुलनीय गुणगरिमा तथा साहित्य निर्माण से आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

❑

आचार्य विमलसागर महाराज

जीवन परिचय :

निजघर या यथार्थ सुख की खोज के एक सत्यान्वेषी साधक हैं, आचार्य श्री विमलसागर जी। पौष शुक्ल द्वितीया वि.सं. १९४८ में मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के माहिनो ग्राम में आपका जन्म हुआ था। इनके पिता श्री भीकमचन्द जी और माता श्रीमती मथुरादेवी थी। इस पुत्र का नाम रखा गया किशोरीलाल। ये अपने पिता और उनके तीन भाईयों के बीच अकेले ही कुलदीपक बनकर आये थे। श्री भीकमचन्द जी जैसवाल जाति के भूषण और किराने के सफल व्यापारी थे। श्री किशोरीलाल की दो बहिनें थीं।

पितृवियोग :

जब किशोरीलाल आठ वर्ष के थे, उन्हें पितृवियोग सहना पड़ा। इनकी माता ने स्वयं को संभाला और पुत्र को लेकर पीरोठ नगर में आ बसी। इसी नगर में आपकी प्रारम्भिक लौकिक व धार्मिक शिक्षा सम्पन्न हुई।

गृहस्थाश्रम :

वि.सं. १९६८ में एक सुकन्या के साथ इनका पाणिग्रहण हुआ पर सात वर्ष बाद ही संवत् १९७५ में पत्नी इन्हें सदा के लिए छोड़ गई। इष्टवियोग से किशोरीलाल उदास हो गये। परिजनों ने दो वर्ष बाद इनका द्वितीय विवाह करा दिया। पन्द्रह वर्ष के वैवाहिक जीवन पश्चात् सं. १९९२ में इस जीवनसंगिनी ने भी इन्हें मझधार में छोड़ परलोक प्रस्थान कर दिया। माता भी इन्हें धैर्य बंधाने अधिक समय साथ न दे सकीं।

आत्मबोध/तत्त्वबोध :

बाल्यावस्था में पितृवियोग, पूर्णयौवन में दो-दो पत्नियों का विछोह, मातृवियोग आदि घटनाओं से पदार्थों की क्षणभंगुरता/नश्वरता का हृदयस्पर्शी बोध हो गया था श्री किशोरीलाल को। अब उनकी दृष्टि बदल गयी। दृष्टि बदलने से सृष्टि ही पलट गयी। गृहस्थी के बन्धन तोड़कर संयमसाधना के पथ पर चलने का दृढ़निश्चय कर लिया।

व्रतीजीवन :

श्रीकिशोरीलाल जी ने वि.सं. १९९३ में द्वितीयप्रतिमा धारणकर देशसंयम की द्वितीय सीढ़ी पर कदम रखा और मोक्षमार्ग की ओर बढ़ने लगे।

गृहवासत्याग की दृष्टि वाले श्री किशोरीलाल जी को घर बांधकर नहीं रख सका। वि.सं. १९९७ में ये पाटन (झालावाड) पहुंचे जहां आचार्यश्री विजयसागर जी ससंघ विराजमान थे। वहीं उन्होने आचार्यश्री से क्षुल्लक दीक्षा लेकर एक साधक का नवजीवन आरम्भ किया।

क्षुल्लकश्री ने अपने गुरुवर की प्रेरणा से शीघ्र ही कापरेन नगर में ऐलक दीक्षा ली और तीन वर्ष तक दिगम्बरी साधना का अभ्यास किया।

मोक्षमार्ग के पथिक को उत्कृष्ट श्रावक का अत्यल्प वस्त्रखण्ड भी कष्टदायी

प्रतीत होता है। यही स्थिति ऐलक श्री की थी। उन्हें इससे भी मुक्त होने का अवसर मिला कोटा में। वहां पर वि.सं. २००० में मुनिदीक्षा धारण कर महाव्रती बन गये। गुरुवर ने इन्हें मुनिश्री विमलसागर नाम से संबोधित किया।

मुनि श्री विमलसागर जी ने इन्द्रियदमन-कारक दुद्धर तप को अपनाया। उन्होने तप के सोने में त्याग की सुगन्ध कहावत को अपने जीवन में चरितार्थ किया और जनजीवन पर अपनी अद्‌भुत छाप छोड़ी। 'बहता पानी और रमता जोगी' उनके जीवन का सिद्धान्त था। स्व-पर कल्याण ही उनका चरम लक्ष्य था। अनेक स्थानों पर विहार करते हुए अपने उपदेश व प्रेरणा से जन-जन को सन्मार्ग पर लगाया।

आचार्यपद :

वि.सं. २०२१ में मुनि श्री विमलसागर का चातुर्मास कोटा में हुआ। उस समय ८१ वर्ष की वृद्धावस्था, शरीरक्षीण एवं अस्वस्थ चर्या के लिए चलने में असमर्थ हो गये थे मुनिवर। इनकी शारीरिक स्थिति देखकर कोटा निवासियों ने अत्यन्त विनम्र भाव से वहीं रुकने का निवेदन/आग्रह किया पर इनकी दृढ़संकल्पशक्ति ने यह मान्य नहीं किया। वे सागोद, जिला कोटा पहुंच ही गये। यहां पर हडौती दिगम्बर जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से सम्मानित किया गया। यह तिथि थी २ अप्रैल १९७३।

दीक्षित संघ :

आचार्यश्री द्वारा दीक्षित संख्या है - मुनि ३, ऐलक २, क्षुल्लक १। तीन मुनियों में से दो आचार्यपद पर सुशोभित हुए।

साहित्यसृजन :

आचार्यश्री विमलसागर जी द्वारा संगृहीत/रचित/उपदेश से प्रकाशित साहित्य है - १. श्रावकधर्म - जैनदर्शन एवं आचार के मूलभूत तत्त्वों की संक्षिप्त जानकारी।

२. बोधामृतसार - भव्य जीवों को सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने हेतु ४४९ विविध छन्दोबद्ध हिन्दी भाषा टीका सहित ग्रन्थ।

३. नियमसार - भव्य जीवों को सम्यक्चारित्र प्राप्ति हेतु लघुग्रन्थ।

PDF Scanner ACE Scanner

४. अध्यात्मपद संग्रह - आध्यात्मिक [illegible] उपदेश युक्त लघुपुस्तिका।

५. बनारसीविलास - कविवर बनारसीदास विरचित पद्यों एवं भजनों का संकलन।

६. ब्रह्मविलास - आध्यात्मिक पदों का संग्रह।

७. योगसार - आत्म-मनन हेतु परमोपकारी ग्रन्थ।

८. लक्ष्मीविलास - चारों गतियों के दुःखों की पद्यों में विवेचना।

९. आत्मानुशासन - हिन्दी भाषा टीका सहित २७० संस्कृत के छन्दों में जैन सिद्धान्तों के गूढ़ रहस्य से परिपूर्ण मोक्ष प्राप्ति के उपाय को दर्शाने वाला ग्रन्थ।

१०. तत्त्वार्थबोध - जैनदर्शन के तत्त्वों का परिचायक ग्रन्थ।

११. श्रीपालचरित्र -

१२. शान्तिसुखानन्दसिद्धान्त संग्रह।

१३. शान्तिशिखरविलास योगी संग्रह।

१४. शान्तिशतक सवैयासंग्रह।

१५. शान्तिधर्मशिक्षा।

इस प्रकार आचार्यश्री ने साहित्य संरचना तथा संकलन द्वारा जहां भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया वहां साहित्य भण्डार में श्रीवृद्धि भी की।

समाधिमरण :

आचार्यश्री ने समाधि की साधना बारह वर्ष पूर्व प्रारम्भ कर दी थी। भोजन में ग्रास कम करते गये। समय परिवर्तन, प्रतिसमय क्षीणमान आयु और सीमातीत शारीरिक दुर्बलता के फलस्वरूप आचार्यश्री को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह शरीर अब धर्माराधन के योग्य नहीं रहा, तब उन्होंने मृत्यु को एक आध्यात्मिक महोत्सव के रूप में वरण करने का निश्चय किया। स्वयं ही यमसल्लेखना धारण कर ली। यह व्रत २६ अप्रेल सन् १९७३ को सायंकाल ६ बजे लिया और उसी रात्रि ९.४४ पर समाधिस्थ हो गये।

वर्तमान में शेष है आचार्यश्री का आदर्शजीवन, तप-त्यागनिष्ठ चारित्र एवं पावन उपदेश। इनसे भव्य जीव आज भी अपना कल्याण कर सकते हैं।

आचार्य विमलसागर महाराज

वात्सल्यरत्नाकर नाम से विख्यात आचार्य श्री विमलसागर जी का जन्म आश्विन कृष्णा सप्तमी वि.सं. १९७३ को एटा जिले के जलेसर कस्बे से डेढ कि.मी. दूर कोसमा ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बिहारीलाल जी और माता का नाम श्रीमती कटोरीबाई था। माता-पिता ने आपको 'नेमिचन्द' नाम से सम्बोधित किया। भाग्य की विडम्बना से उन्हें मातृस्नेह मात्र छह माह तक मिल सका। अनन्तर बुआ दुर्गाबाई के संरक्षण में उनका पालन-पोषण हुआ।

शिक्षा :

अपने ग्राम में ही श्री नेमिचन्द ने आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर १० वर्ष तक गोपाल सिद्धान्त विद्यालय मुरैना में अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्ययनोपरान्त नौगामा विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। फिर किसी कारणवश उसे छोड़ दिया। पिताजी ने कपड़े की दुकान खुलवा दी पर उसमें भी मन न लगा। प्रयास करने पर भी पिताजी उन्हें सांसारिक बन्धन में न बांध सके। उन्होने शिखरजी तथा अन्य क्षेत्रों की यात्रा की।

संयम के पथिक :

एक बार आप जयपुर में परम पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागर जी महाराज के दर्शनार्थ गये। वहीं उनसे शूद्र जल के त्याग का नियम ले लिया। आचार्यश्री सुधर्मसागर जी महाराज के सदुपदेश से मन में स्थित वैराग्यभाव पुष्ट हुआ। अब वे पंचकल्याणक कराने तथा शिक्षण कार्य में ही अपने समय का सदुपयोग करने लगे।

आपने कुचामन रोड स्थित श्री नेमिनाथ विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया। यहां १०८ श्री वीरसागर जी महाराज का ससंघ आगमन हुआ और आपने उनसे द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। भावों में निर्मलता के वृद्धिंगत होने से अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा धारण की।

आषाढ शुक्ला पंचमी सं. २००७ को बडवानी सिद्धक्षेत्र पर आचार्य श्री महावीरकीर्ति से आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की तब आपका नवीन नाम क्षुल्लक वृषभसागर रखा गया।

माघ शुक्ला द्वादशी सं. २००७ को धर्मपुरा दिल्ली में ऐलक दीक्षा अंगीकार कर सुधर्मसागर के नाम से ख्यात हुए।

स्वर्णगिरि सिद्धक्षेत्र पर फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी सं. २००९ को परिग्रह त्याग कर यथाजात निर्ग्रन्थ रूप धारण कर मुनि बने और विमलसागर नाम से प्रसिद्ध हुए। स्वाध्याय और आत्मसाधना करते हुए लगभग ८ वर्ष पूर्ण हो गये, तब आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज के आदेश से अगहन वदी द्वितीया सं. २०१८ को टूण्डला (आगरा) में विशाल जनसमुदाय के बीच आपको आचार्यपद प्रदान किया गया।

आपके जीवन में तिर्यंचकृत और मानवकृत अनेक उपसर्ग आये। इन्हें समताभाव से सहकर आप उपसर्गविजेता बने। आचार्यपद के अनुरूप संघ का विस्तार कर अत्यन्त कुशलता से संघ संचालन किया। धर्मोपदेश द्वारा धर्म की अपूर्व प्रभावना की। उनकी हीरक जयन्ती के अवसर पर पाण्डुलिपि, हस्तलिखित ग्रन्थों का सम्पादन तथा अनुपलब्ध ग्रन्थों (कुल ७५ ग्रन्थों) का प्रकाशन हुआ, जो समाज के लिये बहुत बड़ी उपलब्धि है।

समाधिमरण :

सन् १९८४ से आपने अन्न का त्याग कर समाधि की तैयारी करने लगे। काय व कषायों को क्षीण करते हुए २१ दिसम्बर सन् १९९५ को सायंकाल ४ बजकर २७ मिनिट पर आपने समाधिमरण पूर्वक यह तन तज दिया।

❑

आचार्य सुमतिसागर महाराज

अपने जीवन में पर्याप्त यश: एवं गौरव प्राप्त करने वाले बालक नत्थीलाल का जन्म मुरैना जिले के श्यामपुर ग्राम के निवासी धर्मवत्सल श्री छिद्दूलाल जी एवं माता श्रीमती चिरोंजादेवी के वि. सं. १९७४ की आसौज शुक्ल चतुर्थी को हुआ। आपके अलावा आपके तीन भाई और एक बहिन थी, जिनमें धार्मिक संस्कार जन्मत: ही दिये जा रहे थे। इनको शील, संयम और सदाचार के पथ पर आरूढ देखकर माता-पिता खुशी से झूम उठते थे। घर पर विधिवत् शिक्षा न होने पर भी सत्संगति एवं ब्रह्मचर्यकाल में सतत् स्वाध्याय एवं अध्ययन कर अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

गृहस्थ जीवन:

बारह वर्ष की उम्र में वैवाहिक बन्धनों में बांधने के लिए रामश्री ने आपके जीवन में प्रवेश किया, जो कि धार्मिक स्वभाव एवं संयम-त्याग में अग्रणी थी। आपके सुशील एवं गुणज्ञ दो पुत्र एवं दो पुत्रियां थीं। नत्थीलाल जी तीव्र पुण्यशाली एवं क्षमाशील थे, तभी एक बार रामदयाल डाकू के द्वारा अपहरण होने पर भी आप न तो भयभीत हुए और न ही शोकाकुल। अपितु चौदह दिनों के बाद येन-केन-प्रकारेण डाकुओं के गिरोह से मुक्त हो अपनी वीरता व साहस को दिखाते हुए घर आ गये। आपके जीवन की इस प्रकार की अनेक घटनाएं बहुश्रुत हैं।

त्याग के पथ पर :

वि.सं. २०१० में मुरैना में आचार्य श्री विमलसागर जी ससंघ पधारे, तब इनकी धर्मपत्नी के आचार्य श्री को आहारदान देने के भाव हुए। उन्होने आपसे आज्ञा ले शूद्रजल के त्याग पूर्वक आचार्य श्री को आहारदान दिया। इस दिन आहारदान के प्रसंग से ही आपके जीवन में नया मोड़ आया। तब से आप तत्त्वज्ञान के प्रखर विद्वान् श्री पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. सुमतिचन्द शास्त्री एवं ब्रह्मचारियों आदि के समागम में रहने लगे और नियमपूर्वक स्वाध्याय इनका व्यसन बन गया।

वि.सं. १९२१ में आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी से द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर व्रती जीवन आरम्भ किया। इसी वर्ष मुरैना में पंचकल्याणक एवं गजरथ के अवसर पर पधारे आचार्यरत्न श्री विमलसागर जी से ब्रह्मचर्य नामक सप्तम प्रतिमा ली। वि. सं. २०२५ को चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन रेवाडी में आचार्य श्री विमलसागर जी से ऐलक दीक्षा अंगीकार कर वीरसागर नाम पाया।

अगहन वदी द्वादशी वि. सं. २०२५ को द्वितीय केशलोंच के अवसर पर गाजियाबाद में मुनि दीक्षा धारण करने पर सुमतिसागर के नाम से जाने जाने लगे।

आचार्यत्व :

मुनि श्री सुमतिसागर जी को मुरैना में वि. सं. २०३० ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी के मंगल अवसर पर आचार्यपद से सम्मानित किया गया।

PDF Scanner ACE Scanner

आचार्य जी के दिगम्बर जीवन की अनेक चमत्कारी घटनाएं हैं, जिनमें उदाहरणार्थ - बाबरपुर जिला इटावा का एक कलाकार दैववशात् पागल हो गया था। कुछ भाई उसे पकड़कर महाराज जी के समीप लाये तब अपने कमण्डलु का जल निकाल कर मन्त्र पढ़कर उसके ऊपर छिड़का। पांच दिन में उनका पागलपन सदा के लिए खत्म हो गया। इसी तरह मेहसाणा के दिगम्बर जैन मन्दिर के सूखे कुए में कमण्डलु से थोड़ा-सा पानी लेकर छिड़का और कुआं पानी से भर गया यह देख लोग आश्चर्यचकित हो गये। ईडर के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में लगातार पांच दिन तक केशर की वर्षा होना इनकी तपश्चर्या का प्रभाव है।

महाराज श्री से प्रभावित होकर कई खटीकों ने अपने पेशा छोड़ दिया और कई लोग मद्य, मांस का त्याग कर शाकाहारी बन गये।

साहित्य निर्माण :

आचार्य श्री सुमतिसागर जी द्वारा संग्रहीत/रचित/उपदेश से प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है - १. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (सदासुखदास जी टीका सहित), २. आत्म-शुद्धिप्रकाश, ३. शास्त्रसार, ज्ञानदीपक एवं आर्षमार्ग, ४. छहढाला, ५. जिनवाणी, ६. आस्तिकचिन्तन आत्मकल्याण का सहजमार्ग, ७. आगमदीपिका, ८. आर्षमार्ग भाग २, ९. भक्तामर, मोक्षशास्त्र, १०. प्रवचनसार।

आचार्य श्री के प्रवचन अत्यन्त सरल किन्तु हृदयंगम होने वाले होते थे।

संघ :

आचार्य श्री द्वारा दीक्षित साधुवृन्द ३३, आर्यिका १६, ऐलक ८, क्षुल्लक २७, क्षुल्लिका ८ हैं।

समाधिमरण :

वर्ष १९९४ में आचार्य श्री सुमतिसागर जी का चातुर्मास सोनागिर में हुआ। यहीं पर आश्विन वदी बारस (०३.१०.१९९४) को भरे-पूरे परिवार को स्वयं की अन्तःप्रेरणा से त्याग कर आत्मकल्याण के साथ धर्मोपदेश व साहित्य सृजन द्वारा जनकल्याण किया। आचार्य श्री सुमतिसागर जी सदैव स्मरणीय रहेंगे।

❑

आचार्य समन्तभद्र महाराज

शिक्षा जगत् में क्रान्तिकारी चेतना जागृत कर कल्याण पथ प्रदर्शक के रूप में आचार्यश्री समन्तभद्र विशेष रूप से लब्धख्यात हैं। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के सोलापुर जिले के अन्तर्गत करमाला ग्राम में हुआ था। ये सं. १८९१ में गुर्जर हुम्मड समाज के श्री कस्तूरचन्द जी एवं श्रीमती कंकुबाई के धार्मिक परिवार में पैदा हुए थे। इनका जन्म का नाम देवचन्द रखा गया।

विद्याध्ययन :

देवचन्द को घर के वातावरण से धार्मिक शिक्षा विरासत में मिली थी जैसे नित्य छने जल का प्रयोग/उपयोग, देवदर्शन, स्वाध्याय, रात्रिभोजन त्याग अष्टमूलगुणों का पालन आदि।

घर पर ही इनकी आरम्भिक विद्यालयीन शिक्षा हुई जिससे वे पुस्तक पढ़ना, शास्त्र पढ़ना सीख गये। शास्त्र स्वाध्याय की प्रेरणा इन्हें अपने पिताजी से ही मिली थी।

सोलापुर में महाविद्यालय की शिक्षा प्राप्त की। धार्मिक शिक्षा हेतु वे जयपुर भी गये पर यथोचित योग न बनने से वापिस आना पड़ा।

प्रेरणास्रोत :

महाविद्यालयीन शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त श्री देवचन्द जी ने धार्मिक जीवन जीने का संकल्प ले लिया था। क्रान्तिकारी स्व० अर्जुनलाल जी सेठी से सम्पर्क हुआ तो वे आपके प्रेरणास्रोत बन गये। अब वे आदर्श जीवन जीने का यथेष्ट पुरुषार्थ करने लगे। स्वयं ही ब्रह्मचर्यव्रत ले गुरुकुल की स्थापना एवं संचालन हेतु संकल्पित हो गये।

गुरुकुल स्थापना :

अपने संकल्प को साकार रूप देने के लक्ष्य से उन्होंने सर्वप्रथम हरिद्वार और हस्तिनापुर में गुरुकुलों का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। तत्पश्चात् महाराष्ट्र की काशी कारंजा पहुंचे। वहां पर अध्यात्मरसिक श्री वीरसेन जी भट्टारक तथा स्वाध्यायी पण्डित श्री प्रद्युम्न की सत्संगति का सुअवसर मिला। यहीं पर गुरुकुल

को स्थापित करने का निश्चय भी किया गया। कारंजा में गुरुकुल प्रणाली का वटबीज अंकुरित हुआ। समय पाकर यही गुरुकुल सशक्त वटवृक्ष के रूप में बना। उनकी ही प्रेरणा तथा मार्ग दर्शन से महाराष्ट्र में कारंजा के अतिरिक्त सोलापुर, कुंथलगिरि, बाहुबली (कुंभोज), एलोरा, कर्नाटक में स्तवनिधि, बेबागेवाडी, तेरदल, कारकल एवं मध्यप्रदेश में खुरई में गुरुकुलों की स्थापना हुई। ये सभी गुरुकुल आज भी व्यवस्थित रूप से चल रहे हैं और शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये हैं।

गुरुकुल वैशिष्ट्य :

मुनिश्री द्वारा स्थापित गुरुकुल शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र हैं। इनमें पुस्तकीय ज्ञान के अलावा नैतिक शिक्षा, सदाचार और मानवधर्म की शिक्षा दी जाती है।

सभी गुरुकुलों में एक जैनमन्दिर भी निर्मित है। बाहुबली (कुंभोज) में २८ फुट उत्तुंग प्रतिमा के विराजमान होने से यह प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र भी बन गया है। यहां प्रकाशन संस्था तथा एक शोध संस्थान भी कार्यरत है।

अन्य संस्थाएं :

महाराज श्री द्वारा प्रेरित और संस्थापित हाईस्कूल बेलगांव, तेरदाल, अक्किवाट, जयसिंगपुर में, महाविद्यालय जयसिंगपुर, बारामती एवं सोलापुर में उत्तमरीति से संचालित हैं। उनकी प्रेरणा से संस्थापित श्रविकाश्रम भी सोलापुर और कारंजा में सेवारत हैं।

विद्वान् :

मुनि श्री की प्रेरणा से अनेक संस्थाओं के कार्यरत सेवाभावी विद्वान् तैयार हुए हैं - पं. नरेन्द्रकुमार जी भिसीकर, पं. सुमेरचन्द जी एवं कुलभूषण लोखण्डे सोलापुर, ब्र. माणिकचन्द जी चंवरे, ब्र. देवचन्द जी जोहरापुरकर, पं. धन्यकुमार भौरे, ब्र. गजाबेन, ब्र. माणिकचन्द शहा, ब्र. बालचन्द जी शहा, ब्र. अजितकुमार जी कर्के, ब्र. माणिकचन्द भिसीकर, ब्र. भूपाल दलाल, पं. जीवेन्द्र जडे कुंभोज आदि कतिपय उल्लेखनीय नाम हैं।

कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की स्थापना में स्व० बाबूभाई मेहता फ तेहपुर को आपकी विशेष प्रेरणा रही। टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में आपने अनेक विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु भेजा।

PDF Scanner ACE Scanner

भ्रमणपथ पर :

सन् १९५२ में मुनि वर्धमानसागर जी से दीक्षा लेकर मुनि समन्तभद्र उत्कृष्ट आत्मसाधक बने। मौन रहकर चिन्तन-मनन अधिक करते थे। प्रवचन में कम, अध्यापन कार्य में इनकी अधिक रुचि रही। अध्यात्मग्रन्थों को विशेष पढ़ते थे और तात्त्विकचर्चा में उन्हें अधिक आनन्द आता था। दर्शनार्थी भी चर्चा के माध्यम से लाभान्वित होते थे।

साहित्यिक अभिरुचि :

हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, मराठी, कन्नडभाषा के ज्ञाता मुनिवर की प्रेरणा से चारों अनुयोगों के साहित्य का प्रकाशन मराठी, हिन्दी और कन्नड भाषा में जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर से होता रहा।

श्री समन्तभद्र मुनि यथानाम तथागुण (कल्याणस्वरूप) लोकैषणा से परे थे। दिनांक १८.८.८८ को समतापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। वे मुनिपद में शिक्षा जगत कृत क्रान्तिकारी कार्यों और अविस्मरणीय उपकारों से सदैव स्मरणीय बने रहेंगे।

❑

आचार्य आर्यनन्दी महाराज

ज्ञान, ध्यान, तप में रत श्रमण संस्कृति की रक्षा तथा प्राचीन तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा व संवर्धन के लिये आचार्य श्री आर्यनन्दी जी ने अपना जीवन समर्पित कर दिया। आपका जन्म २८ फरवरी सन् १९०७ को महाराष्ट्र के मराठवाडा संभाग में ठोरकीन ग्राम में हुआ। पिता श्री लक्ष्मणराव और माता श्रीमती कृष्णाबाई ने अपने इस पुत्र का नामकरण किया शंकर। वे दिगम्बर जैसवाल जैन थे। आगे चलकर शंकर ने अपने नाम को सार्थक किया। आपके एक भाई और दो बहिने थीं।

अर्जन :

बालक शंकर ने कक्षा १२ तक शिक्षा प्राप्त की। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण आगे अध्ययन न कर सके। पार्वतीदेवी से विवाह कर आपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। आप एक पुत्र एवं दो पुत्रियों के पिता बने।

ब्रह्मचारी श्री राजमल जी ने अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में सफलतापूर्वक व्रतविधि-विधान कराये। परिणाम स्वरूप समाज में आप 'प्रतिष्ठाचार्य' की उपाधि से विभूषित किये गये। आत्मकल्याणेच्छु श्रावक-श्राविकाओं को आगम का गहन अध्ययन कराने के कारण वे 'महापण्डित' की उपाधि से सम्मानित किये गये और विद्वत्तापूर्ण प्रवचन एवं लेखन शैली के कारण 'विद्यावारिधि' की पदवी से अलंकृत हुए।

ब्रह्मचारी जी में अनेक विशेषताएं थी, उनमें एक यह थी कि वे जब भी तर्कसंगत, विद्वत्तापूर्ण विशेष कल्याणकारक कार्य का सम्पादन करते, पर उसकी प्रतिष्ठा/श्रेय का अधिकारी अन्य व्यक्ति को बना देते। यह उनकी वृत्ति ही बन गयी थी। उन्हें पद और नाम का मोह नहीं था। आप महानता, प्रबल सांसारिक वैराग्य और क्षणभंगुर शरीर के प्रति निर्मलत्व के साथ सर्वजनहिताय की उत्कृष्ट भावना के प्रतीक थे।

मुनिदीक्षा :

जब ज्ञान और संयम की साधना में बढ़ते कदमों को सीमित/अल्पपरिग्रह भी अतिकष्टदायी प्रतीत होने लगा, तब ब्रह्मचारी जी ने सीकर में परम पूज्य श्री शिवसागर जी महाराज से चतुर्विध संघ के समक्ष बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर कार्तिक शुक्ल चतुर्थी संवत् २०१८ को शुभतिथि नक्षत्र में मुनि दीक्षा धारण की। इस समय आचार्य श्री ने आपका नाम अजितसागर रखा।

साहित्यिक अवदान :

आपको संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उनका चिन्तन-मनन और ज्ञान विशिष्ट विद्वान् को भी आश्चर्यचकित कर देता था। आपने अपने जीवन में अनेक प्राचीन पाण्डुलिपियों को अनुवाद के साथ सम्पादित कर प्रकाशित करने का श्रमपूर्ण कार्य किया। जिनमें श्लोकार्धसंग्रह एवं सर्वोपयोगिश्लोक संग्रह जैसे महद् ग्रन्थ भी सामिल हैं। कातन्त्ररूपमाला का सूत्रपाठ एवं धातुपाठ भी आपके द्वारा संकलित किया गया था। आपकी एक संस्कृत की रचना 'सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं' के नाम से प्रकाशित हुई।

आचार्यत्व :

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी के आदेश से आपको उदयपुर में ७ जून

१९८७ को पट्टाचार्य नियुक्त किया गया। जिसे आपने अनिच्छा से ही सफलता पूर्वक निर्वाह किया। आपने जीवन भर निर्विवादरूप से संघ का पोषण किया। और अन्त में समाधिपूर्वक देहपरित्याग कर इस संसार से मुक्ति की ओर अगला कदम बढ़ाया।

अल्पवय में गृहपरित्याग करने वाले, सत्संगति, ज्ञान और चारित्र की साधनापूर्वक स्व-पर का कल्याण करने वाले आचार्य श्री यद्यपि आज हमारे बीच नहीं हैं पर उनकी यशोगाथा एवं साहित्यसृष्टि सदा पथप्रदर्शित करती रहेगी।

❑

आचार्यकल्प श्रुतसागर महाराज

श्रमण संस्कृति के ऊर्ध्वमुखी चिन्तन ने मानव को न केवल जीने की राहें सुलभ की, अपितु मरने की कला से भी परिचय कराया है। पशुवत् जीवननिर्वाह के घेरे से निकाल कर यथार्थबोध कराना इस संस्कृति की विशेषता है।

ऐसी ही विशाल एवं उदार संस्कृति के प्रतीक रूप थे आचार्यकल्प श्रुतसागर जी महाराज। आपका जन्म राजस्थान के प्रसिद्ध शहर बीकानेर में फाल्गुन वदी अमावस्या संवत् १९६२ में झावक (ओसवाल) गोत्रोत्पन्न श्रीमान् सेठ छोगामल जी एवं माता श्रीमती गज्जोबाई के परिवार में हुआ था। गोविन्दलाल के नाम से संस्कारित इस लाडले को सभी फागोलाल के नाम से पुकारते थे।

आपके पिता कपड़े के व्यापारी थे। आर्थिक स्थिति से सम्पन्न घराने में पोषित गोविन्दलाल की बड़ी बहिन सोनाबाई धार्मिक संस्कारों से अतिसम्पन्न महिला थीं।

अक्षराभ्यास :

लाड-प्यार तथा आर्थिक सम्पन्नता आपकी शिक्षा में बाधक रही। यही वजह थी कि आपको लौकिक शिक्षा मात्र प्राथमिक विद्यालय तक की ही मिल सकी। व्यापारिक कार्य हेतु कलकत्ता प्रवास के समय आप भी एक बार पिताजी के साथ कलकत्ता गये। वहां चित्तपुररोड स्थित पाठशाला में आपको धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने का सुअवसर अवश्य मिला। जहां पं. मक्खनलाल जी एवं पं. झम्मनलाल जी के संरक्षण में आपके धार्मिक संस्कार सुदृढ बने।

गृहस्थजीवन :

१७ वर्ष की अवस्था में आपने बीकानेर निवासी व कलकत्ताप्रवासी सेठ जुगलकिशोर जी की शील व रूपसम्पन्ना सुपुत्री बसंताबाई से विवाह कर गृहस्थ जीवन को आरम्भ किया। प्राथमिक शिक्षा समाप्त होते ही आप पिताजी के साथ व्यवसाय में लग गये, जहां आपने अपनी कार्यकुशलता एवं निपुणता से व्यापारीवर्ग में प्रतिष्ठा स्थापित कर ली। श्रीमती बसंताबाई की कुक्षि से तीन पुत्र श्री माणिकचन्द, हीरालाल एवं पद्मचन्द के साथ तीन पुत्रियों ने भी जन्म ले आपके जीवन को सुख एवं शान्तिमय बनाया। माता-पिता के धार्मिक संस्कारों को विकसित करती हुई आपकी छोटी पुत्री सुशीला ने आर्यिका के व्रत धारण कर आर्यिका श्रुतमती नाम से वन्दनीय अवस्था प्राप्त की।

जब आपकी अवस्था लगभग २७ वर्ष की थी, तब आपके पिताश्री को एक साधारण-सी बीमारी ने पीडित कर लिया। किन्तु उसमें भी जीवन को असंभव जान उन्होंने समाधि धारण कर धर्मध्यानपूर्वक प्राणों का विसर्जन किया। पिताजी के इस असमायिक वियोग एवं उनके त्याग व संयम का आपकी माताजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी मात्र सात वर्ष पश्चात् समाधि द्वारा इस संसार को सदा के लिए त्याग दिया।

संयमी जीवन :

माता-पिता के स्वर्गारोहण कर जाने से फागोलाल जी को संसार की असारता उद्भाषित हो गयी। अपने हृदय में आत्मकल्याण की भावना लिये आप त्याग, व्रत, उपवास आदि धार्मिकक्रियाओं के साथ संयमित जीवन व्यतीत करने लगे। निरन्तर स्वाध्याय के अभ्यास से आप कुछ ही समय में शास्त्रीय विद्वान् के योग्य ज्ञानसम्पन्न हो गये। वैराग्य की बलवती होती भावना से आपने ४० वर्ष की अवस्था में ही आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया।

वि.सं. २००९ को उदासीन आश्रम ईसरी में पूज्य आचार्य वीरसागर जी महाराज के दर्शन से जाग्रत हुई वैराग्यभावना अनवरत प्रगतिशील तो थी ही, संवत् २०११ में टोडरायसिंह में आपने आचार्य वीरसागर जी से ही सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और मात्र चार माह पश्चात् ही यहीं पर कार्तिक सुदी तेरस सं. २०११ को क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली।

वैराग्य की चरमोत्कृष्ट अवस्था स्वरूप दैगम्बरी दीक्षा धारण करने का दिन था भादो सुदी तीज संवत् २०१४। जयपुर में खनियां जी के नाम से प्रसिद्ध जैनतीर्थ स्थल पर आचार्य वीरसागर जी से ही आपने मुनि दीक्षा अंगीकार कर जीवन को सुसंस्कृत कर लिया।

अनुगामिनीशीला :

पति के वैरागी हो जाने पर आपकी पत्नी, जो कि चारित्रशीला, धर्मानुरागिणी और कर्त्तव्यनिष्ठा थी, ने भी पांचवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर पतिपंथ की अनुगामिनी होने का संकल्प ले लिया।

उपसर्गविजेता :

मुनि पद की कठोर साधना और आत्मकल्याण में निरत मुनि श्रुतसागर जी अपने नाम के अनुरूप सदैव श्रुत की आराधना में लवलीन रहते। दैहिक असह्य वेदना को आप भेदविज्ञान की औषधप्रयोग से जीत लेते। प्रतिकूलता की तेज आंधी देह से टकराकर ही शान्त होने को विवश होती, कारण आप मन तक उसकी गति ही नहीं होने देते थे। इस प्रकार आपकी सहनशक्ति लोगों को आश्चर्यान्वित करती रहती थीं।

साहित्यिक अवदान :

आपने निरन्तर चिन्तन-मनन के साथ जिनवाणी के यथार्थ रहस्यों को प्राप्त कर प्रकट करने की भावना से अनेक विचारपूर्ण निबन्ध व लेखों को प्रसूत किया, जो जैन समाज की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। आपके कतिपय लेखों का एक संग्रह 'रत्नाकर की लहरें' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके अलावा आचार्य वीरसागर जी की समाधि हो जाने के पश्चात् आचार्य धर्मसागर जी के संघस्थ होने पर आचार्य धर्मसागर अभिवन्दन ग्रन्थ का विमोचन २ मार्च १९८२ को भीण्डर में लगभग २५ हजार लोगों के समक्ष कराने का श्रेय आपको ही है।

आपके आलेखों में मुख्यतया वर्णव्यवस्था को केन्द्रित किया गया है। जो आज भी प्राणियों में श्रुतपान कराकर तृप्त करने का प्रयास करते हैं।

आपने अन्त में अतिशय क्षेत्र लूणवां, राजस्थान में सल्लेखना पूर्वक देह परित्याग कर आपने जीवन की अन्तिम सार्थकता को भी प्राप्त कर लिया। आपके पुनीत विचार एवं आचार को जैन धार्मिक श्रद्धालुओं द्वारा प्रकाश स्तम्भ के रूप में देखा जाता रहेगा। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

मुनि वीरसागर महाराज

व्यक्ति अपने जन्म के उपरान्त ही अपने परिवेश को प्रभावित कर आदर्श छवि का निर्माण अनजाने ही कर लेता है। प्रारम्भ में यह धुंधली अवश्य होती है, किन्तु समय के चलते इसे स्पष्ट होने के सुअवसर प्राप्त होते रहते हैं। मनो-मस्तिष्क पर स्थायी होने वाले परिवेश के प्रथम चित्र में माता-पिता का व्यक्तित्व प्रमुख रूपेण सहयोगी होता है। बाद में व्यक्तिगत परिश्रम व आदर्श मानव को महामानव बनाने के सोपानों पर अग्रसर कर सकता है।

ऐसे ही पूजनीय अवस्था को प्राप्त करने वाले थे मुनि श्री वीरसागर जी महाराज। जिन्होंने संवत् १८६२ की चैत्र सुदी १३ रविवार दिनांक ५-५-१९४० को ग्राम भांणुडी जिला सोलापुर में मां चंचलबाई की कुक्षि को पवित्र करते हुये जन्म लिया। इस बालक का बचपन पिता श्री गुलाबचन्द जी कुर्दवाडी की गोद में व्यतीत हुआ।

शैक्षणिक योग्यता :

कुशाग्रबुद्धि इस बालक ने प्राथमिक शिक्षण अपने गांव में ही प्राप्त किया। तत्पश्चात् फलटण में हाईस्कूल का शिक्षण ले उच्चशिक्षा हेतु फर्ग्युसन कालेज, पूना चले गये और वहां बी. जे. मेडिकल कालेज से सन् १९६४ में एम. बी. बी. एस. की उपाधि प्राप्त की।

कर्मक्षेत्र :

जीवननिर्वाह हेतु आपने सन् १९६५ में जिला परभणी में निजी हॉस्पिटल खोला और कम फीस लेकर रोगियों को लाभ पहुंचाने का प्रयत्न करने लगे। सन् १९६६ में सोलापुर निवासी श्री छगनलाल जी गांधी की सुपुत्री कुमारी शकुन्तला के साथ आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। सौभाग्य व सर्वगुण सम्पन्न आपकी धर्मपत्नी ने लौकिक शिक्षा बी.ए. (आनर्स) तक प्राप्त की थी।

चारित्रपथानुगामी :

सरल, सहज व सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुये सन् १९६८ से आप अध्यात्म की ओर अग्रसर हुये। सन् १९७१ में कुन्थलगिरि पर मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज से कुछ व्रत ग्रहण कर जीवन को भव्यता की ओर अग्रसर किया। अनेक तीर्थस्थलों की यात्रा कर वैराग्य भावना को वृद्धिंगत करते हुये अपने लक्ष्य

PDF Scanner ACE Scanner

की ओर अगले कदम रूप १४ मई १९७५ अक्षय तृतीया की सुवर्ण वेला में अकलूज में विराजित पूज्य श्री आदिसागर जी महाराज से दैगम्बरीय दीक्षा ग्रहण की।

जिनवाणी के आराधक :

आपने स्वयं निरन्तर जिनवाणी का स्वाध्याय करते हुये दूसरों को प्रेरित करने का प्रयत्न किया। अध्यात्म में विशेष रुचि होने से आपके अनेक शिष्यों ने भी उसी क्षेत्र में गति पाई। आपका ज्ञान मात्र ज्ञान नहीं था, अपितु वह अनुभव के सागर में अवगाहित होने को विकल रहता था।

आपने मां जिनवाणी के प्रसाद से उसके रहस्य को समझने के लिये चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति व अध्यात्मन्यायदीपिका जैसे ग्रन्थ रत्नों को सृजित कर ख्याति अर्जित की।

अन्त समय में विचारपूर्ण सल्लेखना को धारण कर इस मानव देह का अन्तिम कार्य जिस भव्यता एवं उदाहरणरीत्या किया, वह जन-जन के लिए आदर्श है। आपके वियोग से आपके शिष्यों को जो क्षति हुई उसे लेखनी से व्यक्त करने की सामर्थ्य किसे हो सकती है।

❑

मुनि नेमिसागर महाराज

जीवनपरिचय :

अगाध ज्ञान और चारित्र के संगम थे मुनि श्री नेमिसागर जी। वि.सं. १९६० फाल्गुन शुक्ल दशमी रविवार को महरौनी के समीप पठा ग्राम में जन्म लेकर माता श्रीमती यशोदादेवी और पिता श्री मुन्नालाल जी तथा भारतभूमि को धन्य किया। इनका बाल्यकाल का नाम हरिप्रसाद जैन था।

शिक्षा :

श्री हरिप्रसाद को बचपन से ही पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी, मोतीलाल जी एवं बाबा गोकुलप्रसाद जी की सत्संगति मिली। इनकी प्रेरणा से वि.सं. १९७५ में पपौराजी में स्थापित श्री वीर विद्यालय में प्रथम छात्र के रूप में प्रविष्ट हुए और विशारद तक शिक्षा प्राप्त की। फिर सन् १९७८ में पितृवियोग के कारण घर पर रहकर स्व परिश्रम

द्वारा अनेक विद्याएं अर्जित कर विद्याओं के अथाह वारिधि बने। वे वैद्यक, ज्योतिष, गणित, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र, संगीत, नृत्यकलाओं में शिरोमणि एवं धर्मशास्त्र के कुशलज्ञाता थे। सभी उन्हें पण्डितों का पण्डित कहते थे।

चारित्र की ओर :

श्री हरिप्रसाद जी आजीवन बालब्रह्मचारी रहे। धार्मिक संस्कार तो इन्हें विरासत में मिले थे। आठ वर्ष की आयु में पाक्षिक व्रतों को एवं १५ वर्ष की आयु में द्वितीय प्रतिमा धारण की। ये निरन्तर स्वाध्याय में रत रहते थे। मु. पटना पोस्ट रहली जिला सागर में वि.सं. १९९६ में माघ कृष्ण प्रतिपदा गुरुवार को जलयात्रा महोत्सव का आयोजन मुनिश्री पद्मसागर के सानिध्य में हुआ था। इस अवसर पर आपने मुनि श्री से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये और नाम श्री विद्यासागर रखा गया।

वि.सं. २०१६ में देवास जिले के लुहावा ग्राम में पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। जिसमें पूज्य १०८ आचार्य श्री शान्तिसागर जी भी थे। फाल्गुन शुक्ल तृतीया सोमवार को दीक्षा कल्याणक की पावन बेला में ब्रह्मचारी श्री विद्यासागर ने आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर १०५ क्षुल्लक श्री नेमिसागर जी शुभ नाम पाया। आठ वर्ष बाद वि.सं. २०२४ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को सर्वपरिग्रहों का त्यागकर आचार्यश्री से दिगम्बर मुद्रा धारण की और ज्ञानाराधना के साथ आत्माराधना में संलग्न हो गये।

सामाजिकक्षेत्र में योगदान :

मुनि श्री गृहस्थावस्था के संयमी जीवन से ही सजग सामाजिक कार्यकर्ता रहे। वे क्षेत्र पपौरा जी, अहार जी एवं अनेक संस्थाओं के अधिष्ठाता, व्यवस्थापक एवं संचालक रहे। शिक्षा एवं धर्म की प्रगति में समर्पित योगदान रहा।

साहित्यसर्जन :

सोलह वर्ष की आयु से ही मुनिश्री का लेखन कार्य आरम्भ हो गया। उनका गद्य एवं पद्य दोनों पर समान अधिकार था। उनकी लेखनी से प्रसूत ग्रन्थ हैं -

१. श्रावकधर्मदर्पण - यह प्रकाशित भी हो चुका है।

२. हरिविलास।

३. प्रतिष्ठासार संग्रह - शास्त्राकार लगभग २००० पृष्ठों में परिसमाप्य।

४. अध्यात्मसारसंग्रह।

५. कवितासंग्रह।

मुनिश्री नेमिसागर का कतिपय वैशिष्ट्य है - सरल स्वभाव, शान्तचित्त, शरीर से कृश किन्तु तपस्तेज से दीप्त, हृदय के सच्चे, लंगोट के पक्के, परिस्थिति के अनुकूल चलने वाले प्रयोजनवश मधुर तथा ओजस्वी वाणी में बोलने वाले वक्ता, निष्पक्ष, इन्द्रियविजयी, स्वाभिमान एवं निर्भीकता से धर्म साधन करने वाले, समाज के गौरव एवं देश के अनमोल रत्न। उन्होंने अपने आत्मबल से समस्त आपदाओं को पराजित कर दिया था। देवगढ में जंगलों में डाकुओं और जंगली जानवरों के बीच किया गया चातुर्मास उनके अपूर्व साहस का द्योतक है।

समाधिमरण :

आपका अन्त समय में प्रवास श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी में रहा। वहां ही आचार्य पार्श्वसागर जी एवं अन्य मुनिराजों के सानिध्य में सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण हुआ। परमपूज्य मुनिश्री नेमिसागर भौतिक शरीर से हमारे बीच नहीं हैं, पर उनका प्रेरणादायी जीवन और कृतियां चिरस्मरणीय हैं।

❑

मुनि क्षीरसागर महाराज

जीवनवृत्तान्त :

गृहस्थ दशा की दलदल में फंसकर भी उससे निकलकर आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होने वाले विरल व्यक्तियों में गणनीय हैं मुनि श्री क्षीरसागर जी। इनका जन्म ग्वालियर के मुरैना जिले के रिठौरा ग्राम में श्रावण कृष्ण तृतीया वि.सं. १९६० में हुआ था। इनका नाम मोतीलाल बोहरे था। पिता का नाम बोहरे पन्नालाल एवं माता का नाम श्रीमती कौशल्याबाई था। आप कांडोर गोत्रज बरैया वैश्य जाति के थे। इनकी एक बड़ी बहिन थी द्रोपदी।

ज्ञानार्जन :

मोतीलाल की शिक्षा मुरैना जैन विद्यालय में चौथी कक्षा तक ही सीमित रही। इसके बाद ग्यारह वर्षीय अवस्था में इनका विवाह शाह नन्दराम जी मोहना की सुकन्या मथुरादेवी से हुआ और गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया।

PDF Scanner ACE Scanner

व्यवसाय एवं अभिरुचियां :

गृहस्थ जीवन के सफलतापूर्वक निर्वाह हेतु मुख्य व्यवसाय कपड़े की दुकान के साथ में साहूकारी का कार्य भी करते थे। इनके पांच पुत्र थे, जो सभी योग्य थे।

जैन विद्यालय में अध्ययन तथा सुसंस्कारों से प्रभावित मोतीलाल जी की अभिरुचि धर्मोन्मुख रही। विद्यार्थी जीवन में ही सप्तव्यसन से सदैव दूर रहे और देवदर्शन, पूजन, स्वाध्याय करना तो उनका नित्यनियम था। उनकी एक विशेषता थी कि नित्यनियम पालन के साथ एक ग्रन्थ के स्वाध्याय समापन के उपरान्त एक विशेष नियम लेते थे।

विरागता की श्रेणी पर :

एक नियम से ही व्यक्ति उन्नति के पथ पर सबसे आगे निकल जाता है। श्री मोतीलाल जी के जीवन में तो अनेक नियम थे। एकबार एक ग्रन्थ का स्वाध्याय पूर्ण होने पर एक महान् नियम लिया कि पुत्रवधू के घर आते ही गृहत्याग दूंगा। अब वे घर में उसी प्रकार रहने लगे जैसे जल में कमल। दो पुत्रों के विवाह होने के बाद उनकी छोटी अवस्था के कारण वे ३ वर्ष तक घर में ही सप्तमप्रतिमाधारी बनकर रहे। एक वर्ष तक आपने अपनी पत्नी के साथ लगभग सभी तीर्थक्षेत्रों की वन्दना की। घर-संसार से उनका मोह टूट गया था।

श्री मोतीलाल दम्पति घर में ही वैरागी बनकर रहते थे। उनकी निरन्तर वृद्धिंगत होती वैराग्य भावना उन्हें घर में न बांध सकी। उन्होने पत्नी सहित क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। उनकी पत्नी पद्माश्री क्षुल्लिका नाम से विख्यात हुईं। वे तीन वर्ष तक क्षुल्लिका अवस्था में रहीं।

सं. २००७ में भोपाल में पंचकल्याणक महोत्सव का आयोजन था। इस मंगल अवसर पर तपःकल्याणक के दिवस सर्वपरिग्रह का त्यागकर मुनिदीक्षा धारण की। दीक्षा का कार्यक्रम विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में हर्षध्वनि के साथ सम्पन्न हुआ। अब वे मुनि क्षीरसागर जी के नाम से सुख्यात हुए।

मुनिश्री का सहज-सरल स्वभाव, धार्मिक-आध्यात्मिक विषयों का गहन ज्ञान, सामयिक विषयों पर जन-जन के अन्तस् को छूने वाली प्रवचन शैली, भाषा का माधुर्य, दृढ़आत्मसाधना आदि गुणों से जन-समुदाय चुम्बकीय आकर्षणवत् प्रभावित होता था।

आप मुख्यता पंथ से परे और लौकिक, धार्मिक, सामाजिक झंझटों से सदैव विमुख ही रहे। इनके प्रवचन से प्रभावित हो श्रोता स्वयं ही नियम के प्रति संकल्पित होता था। इन्होने कभी भी किसी श्रोता को कोई नियम लेने या देने हेतु प्रेरित या विवश नहीं किया। मुनिवर के श्रोता स्वयं खिंचे आते थे।

लेखनकार्य :

अध्यात्मवाणी से युक्त मुनिश्री द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं - तत्त्वार्थसूत्र आदि। आपने अध्यात्म विषयों का विवेचन करते हुए २००-२५० दोहों की रचना की है, जो अभी तक अप्रकाशित है।

मुनिश्री ने ज्ञान, ध्यान एवं तप में ही अपने जीवन के प्रत्येक समय का सदुपयोग किया और अन्त में समाधिमरण पूर्वक जीर्णदेह का त्याग कर महाप्रयाण किया।

❑

मुनि वर्धमानसागर

काल शनैःशनैः गति से अपने गन्तव्य की ओर बढ़ रहा है, न जाने कितने प्राणियों को अपने में समाकर भी वह संतुष्टि को प्राप्त क्यों नहीं होता ? किन्तु कुछ विरले व्यक्तित्व समय से तेज गति से आगे बढ़कर अपने विचारों व कार्यों से उसके अहंकारी उत्तान मस्तक को अवनत करने के लिए विवश कर देते हैं।

राजकोट निवासी श्री कालीदास जी एवं श्रीमती उगमबाई की कोख से जन्मे इस लाडले ने समय को अपना दास बनाया और ब्र. चुन्नीलाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय को छोड़कर दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में आपने अध्ययन व लेखन से प्रसिद्धि और शान्ति का अनुभव किया।

अभिरुचि :

आपने अपने जीवन में अनेक धार्मिक ज्ञान की छोटी-बड़ी पुस्तकें तैयार कीं। अनेक ग्रन्थों के सम्पादन का अवसर भी आपको प्राप्त हुआ। आकर्षक व्यक्तित्व एवं वक्तृत्वशैली से समृद्ध आप कुछ समय तक सोनगढ के ट्रस्टी भी रहे, किन्तु वहां सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण आपने सोनगढ की एकान्तता का बहुत विरोध किया। जीवन के अन्त में मुनिपद स्वीकार कर मुनि वर्धमानसागर जी के रूप में अपना जीवन सफल किया।

❑

मुनि ज्ञानभूषण महाराज

ज्ञान, जीवन की विविधता में एकता व समरसता का जागरण करता है। जब यह जागरण अपने चरम ऊर्ज्वत्व को प्राप्त होता है तभी वह चेतना का रूप धारण कर जग को चमत्कृत व युगपरिवर्तन करने में समर्थ होता है।

अपने ज्ञान-ध्यान से सुषुप्त चेतना को जाग्रत करने वाले युगमनीषी थे मुनि श्री ज्ञानभूषण जी महाराज। जिनका जन्म जिला मुरैना के ग्राम एलहा में वि.सं. १९७७ की आषाढ शुक्ला सप्तमी को हुआ था। पिता श्रीलाल जी एवं मां श्रीमती सरस्वती जी ने अपने इस लाडले का नाम पोखेराम जी रखा। बड़े भाई श्री लज्जाराम व छोटे भाई श्री कपूरचन्द के साथ ही बहिन रामदेवी के बीच आप अद्वितीय एवं अनोखे कुलदीपक थे। आपके पिता घी तथा गिरवी का व्यवसाय किया करते थे।

विद्यालाभ व कार्यक्षेत्र :

लौकिकशिक्षा के रूप में आपने मात्र चार वर्ष तक अध्ययन किया। शिक्षण के दौरान ही पिता को व्यवसाय में सहयोग देने हेतु आप उनके साथ कलकत्ता जाया करते थे। परिणामस्वरूप आपने कुछ ही समय में कलकत्ता निवासी बन वहां कपड़े की एक दुकान आरम्भ कर दी। जिसे आपने सफलता पूर्वक संचालित किया।

संयम की ओर अग्रसर :

बचपन से धार्मिक रुचि होने के कारण एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में दिखे स्वप्न के अनुसार आप श्री सम्मेदशिखर जी की वन्दना करने चले गये। वहां पर भगवान् पार्श्वनाथ की टोंक पर मात्र १८ वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। इसके बाद आचार्य श्री देशभूषण जी से दूसरी प्रतिमा के व्रत ले संयम की ओर अग्रसर हो गये। वैशाख सुदी तेरस संवत् २०२० बुधवार को क्षुल्लकदीक्षा धारण की और उत्तरोत्तर विकास करते हुए माघ शुक्ला सप्तमी शुक्रवार सन् १९६९ को मुनिदीक्षा लेकर महाव्रतों के साथ मुनि ज्ञानभूषण नाम प्राप्त किया।

जिनवाणी सेवा :

आपने अपनी साधना से ज्ञान का विकास करते हुए विशिष्ट क्षयोपशम को प्राप्त कर लिया। जिसके परिणामस्वरूप आपने रयणसार आदि अनेक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा निरन्तर धर्मोपदेश देते हुए मां जिनवाणी की सच्ची सेवा की। आपने अपने ज्ञान को जीवन का आभूषण बनाकर सदैव जन-जन को सन्मार्ग प्रशस्त किया।

मुनि ज्ञानसागर महाराज

जन्म व जीवन की सार्थकता :

पाण्डित्यपूर्ण तपोनिष्ठ, प्रभावक वक्तृत्वशैली के धनी, चारित्रशिरोमणि, सहनशीलता के मेरु एवं उपसर्गविजेता श्री ज्ञानसागर जी का जन्म धार में हुआ। धार में ही धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-मनन कर सम्यग्ज्ञान में अवगाहित किया।

साधना की शुरूआत :

शान्तिरूप रत्नों को पाने के लिये आपने आचार्य शान्तिसागर जी छाणी की गहराई में अवगाहित हो मुनिपद को स्वीकार्य किया। मुनि साधना में निरत इस बहुमुखी व्यक्तित्व की कुछ तरंगें लहराती हुई संसार के प्राणियों के दृष्टिगोचर हो गईं।

आचाम्लवर्द्धन, मुक्तावली, कनकावली, जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति, सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित आदि अनेक व्रत-उपवास से उष्ण हुआ शरीर तपोबलिष्ठ हो सौम्य मुखमण्डल के साथ सूर्य-सा दैदीप्यमान होता था।

व्यक्तित्व की विशेषता :

निर्भीक एवं स्पष्टवादिता के रूप में आपकी वक्तृत्वशैली से निःसृत ललित, मधुर एवं सुश्राव्य स्वरलहरियां लोगों के अन्तर्जगत् में प्रवेश करने में सक्षम होती थीं।

साहित्याभिरुचि :

नारी उत्थान की भावना से प्रेरित हो करुणाशील महाराज ने 'व्रतकथाकोष' नामक ग्रन्थ की रचना अनेक शास्त्रों के आधार पर की। क्योंकि आपका मानना था कि प्रायः सर्वव्रतों का भार स्त्री समाज पर निर्भर है।

स्व-परोपकार में निरत एवं अपनी चर्या के लिए अत्यन्त कठोर हृदयवाले इन संतों ने जैन साहित्य को जो अमूल्य धरोहर प्रदान की है, आज उसकी रक्षा का कर्त्तव्य महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिये।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

मुनि जयकीर्ति महाराज

अंधेरा कितना मासूम, कितना भोला-भाला है, वह जानता है कि सूरज की एक ही किरण मेरे अस्तित्व के ताने-बाने को मिटा देगी, किन्तु फिर भी रोज शाम अपने कर्त्तव्यनिर्वाह हेतु बिना विरोध किये चला आता है।

दुनियां में अनेक लोग होते हैं, जो जीवन को उज्ज्वल प्रकाश से भर अपने और दूसरों को भी रोशनी से स्नान कराते हैं। ऐसा ही एक प्रकाशपुंज जो ६ मई १९३५ को श्री पार्श्वनाथ उर्फबाबूराम जी जैन के आंगन में मां श्रीमती पद्मावती की कुक्षि से जन्म लेकर इस धरा पर अवतरित हुआ। तेजोमय यह बालक पवनकुमार के नाम से ख्यात हुआ।

विरागीमन और समय की नियमितता :

बढ़ते हुये उम्र के पड़ावों ने इस बालक की देह को तो कठोर किया, किन्तु मन प्राणी मात्र के प्रति दुःखों से द्रवित हो करुणार्द्र होता गया। क्षुल्लक विमलसागर जी लेंगडे ने पवनकुमार के मन में संस्कारों की नींव इतनी गहरी जमा दी कि उस पर मानवीयता का भव्य महल निर्मित हो सके। अक्कलकोट में रोपित यह अंकुर समय के अनुसार अंकुरित हुआ।

संघर्ष व लक्ष्य :

आचार्य श्री पायसागर जी महाराज के चातुर्मास काल में संघ की सेवा करते हुये आपने अपने अंकुर को सत्संगति के शीतल जल से सींचा। १४ दिसम्बर सन् १९६१ को चारों ओर चहल-पहल होने से किसी मेले का आभास होता था। दिन जैसे नई रोशनी के साथ उदित हुआ हो, चारों ओर शोरगुल, किन्तु युवा पवनकुमार शान्तचित्त हो अन्तस्तल की गहराइयों में गोते लगा रहे थे। पूज्य अनन्तकीर्ति जी महाराज ने उदारता से पवनकुमार को सागरमय करने हेतु मुनि दीक्षा प्रदान की और उनकी विजय व कीर्ति को मुनिश्री जयकीर्ति के नाम से उद्घोषित किया।

रचनाकर्म :

स्वान्तःसुखाय व लोकहितार्थ आपने हिन्दी, कन्नड और मराठी भाषाओं में लगभग आठ ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया। आपने आयुर्वेद पर पांच पुस्तकें लिखीं। इनके अलावा अमोलक माणिक्यमाला, योगप्रदीप, आहारदान आदि रचनाएं भी आपकी लेखनी से प्रसूत हुईं।

आज भी आपका यश अपने नाम को सार्थक करता हुआ आपकी विजयपताका को लहरा रहा है

मुनि आदिसागर महाराज

मनुष्य पशुता पर, प्रकाश अन्धकार पर, सत्य असत्य पर जय हासिल कर जीवन के परम लक्ष्य की अनुभूतियां करना, यही हमारी संस्कृति एवं इतिहास का पथ है। इस जीवनधारा को अविरल प्रवहमान करते हमारे ऋषि-मुनियों ने न जाने कितने चिरसंत्रस्त प्राणियों को अपनी वाणी व सृजन से तृप्त करने का उद्यम किया है।

इसी शृंखला का एक नाम है मुनि आदिसागर। जिनका जन्म कार्तिक सुदी पंचमी वी.नि. २४१८ को जिला बेलगांव के जैन बहुलग्राम शेडवाल में श्री देवगौडा पाटिल की धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती बाई की कोख से हुआ था।

शिक्षा एवं संयम पथ के पथिक :

मातृभाषा कन्नड में ही बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण कर आपने लौकिक शिक्षण को पूर्णता प्रदान की।

चारित्रपथ पर अग्रसर होने हेतु आपने श्री शान्तिसागर जी महाराज से वीर निर्वाण संवत् २४७१ में फलटन में ब्रह्मचर्यव्रत ले शान्ति का अनुभव किया। संघस्थ हो आपने पठन-पाठन द्वारा चारों अनुयोगों में दक्षता हासिल कर ली। इसके बाद वीर निर्वाण संवत् २४८० में शेडवाल में ही मुनि वर्धमानसागर जी से मुनिदीक्षा ले आत्मसाधना की ओर अग्रसर हो गये।

साहित्याराधना :

साधक साधन को गतिशील रखता हुआ, अपने अनुभवों व साधना के पडावों से अन्य साधकों को लाभान्वित करने हेतु यदा-कदा मसि का भी उपयोग कर लेता है। आपने भी ऐसे ही क्षणों में त्रिकालवर्ती महापुरुष, आहारदानविधि, सूतकविधि, यह कौन है ?, श्रावकनित्यक्रियाकलाप, चौतीसस्थानदर्शन, नित्यप्रतिक्रमणविधि आदि को आकार प्रदान कर साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि करने का सार्थक प्रयास किया। इससे समाज को यथेष्ठ दिशा और दशा की जानकारी व उस पर अमल कर पाने की निश्चित रूपरेखा हाथ आ सकी। इसके अतिरिक्त आपने अनेक ग्रन्थों के सम्पादन में भी अपनी कुशाग्रबुद्धि का उपयोग किया।

स्व और पर के उपकार से समन्वित आपका व्यक्तित्व जनसमुदाय के लिये सदा अनुगमनीय रहा।

PDF Scanner ACE Scanner

मुनि जम्बूसागर महाराज

अन्त: की प्यास जब तीव्र से तीव्रतर होने लगती है तब प्राणी किसी पनघट की तलाश में इधर-उधर होता है। किन्तु सुख को पाने की चाह मृग-मरीचिका की भांति भ्रम उत्पन्न कर मानव को जीवन की अन्तिम घड़ियों से साक्षात्कार कराती है। कुछ विरले ही मानव मृत्यु से मिलने के पहले जीवन को इतना सौन्दर्यमय बना लेते हैं कि उसकी सुगन्ध उनके जीते जी तथा उनके बाद भी जनमानस को सुवासित करती रहती है।

मुनिश्री जम्बूसागर जी, जिन्होंने मैसूर प्रान्त के शालिग्राम में सन् १९०५ को बालक बम्मण के रूप में जन्म लिया, होनहार एवं धर्मप्रभावना करने में अत्यन्त प्रवीण थे।

गृहस्थजीवन :

अपने जन्म से माता-पिता की खुशियों को वृद्धिंगत करते हुये आपने २० वर्ष की अवस्था में गृहस्थजीवन में प्रवेश किया। उसमें भी संयम की सुवास से अपने जीवन व चरित्र को महकाने का प्रयत्न आपने किया। सन् १४ मई १९३७ को पांचवीं प्रतिमा धारण कर ब्रह्मचर्य पालन करते हुये कामदेव पर जय हासिल की। संयम के पथ पर निरन्तर गतिशील दम्पत्तियुगल ने तीर्थराज सम्मेदशिखर में पूज्य आचार्य श्री जयकीर्ति जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और क्रमश: नाम प्राप्त किया क्षुल्लक जम्बूसागर और क्षुल्लिका राजमती माता।

२९ अगस्त १९३९ को पूज्य नेमिसागर जी महाराज से दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर चारित्र की पराकाष्ठा को स्पर्शित किया।

गतिविधियां :

आचार-विचार पर विशेष महत्त्व देते हुये आपने अपने व्रतों का पालन तो किया ही, साथ ही अन्य अनेक लोगों को भी सन्मार्ग में लगाकर आचार-विचार में दृढ किया। आपने आचार-विचार की पवित्रता बनाये रखने हेतु 'यज्ञोपवीतसंस्कार' नामक लघुकाय रचना के सृजन के साथ अन्य अनेक ग्रन्थों के सम्पादन व प्रकाशन में बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मुनि कुलभूषण महाराज

चहकते और कलरव करते हुये पक्षियों ने, लहलहाते खेतों ने तथा हंसते हुये फूलों ने वर्षा ऋतु के आगमन की घोषणा की। इसी बीच किसी सिसकती आवाज से वातावरण उद्वेलित हुआ, किन्तु बालक के मुखमण्डल को निहारते ही उसने हवा को मन्द-मन्द चलने का आदेश दिया। बालक के आंखों से आंसुओं की धार ने मां का आंचल भिगो दिया था।

सोमवंशीय हरवरहही तहसील के बैलहोंगल, जिला बेलगांव में संवत १९७० को जन्मा यह बालक पिता यक्ताप्पा का दुलारा और मां गंगदेवी की आंखों का तारा था। धार्मिक संस्कारों से संस्कारित बालक जिनप्पा ने अपने नाम को सार्थक करने अर्थात् जिन बनने हेतु सत्संगति को जीवन का आधार बनाया। अपने ग्राम में आचार्य पायसागर जी महाराज एवं जयकीर्ति मुनिराज का दो माह प्रवास रहा, तब आप साधुओं के सम्पर्क में आये।

विरक्ति का क्षण :

संतसंगति के चलते बालक जिनप्पा के मन में संसार की असारता का प्ररूपण देख वैराग्य का अंकुरण हुआ। उसे पुष्पित व पल्लवित करने के लिये आपने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया।

चारित्र पथ पर आगे बढ़ते हुये आपने वि.सं.१९९३ माघ शुक्ला नवमी शुक्रवार को ब्र. जिनप्पा ने मुनि जयकीर्ति जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा तथा वि.सं. १९९४ में ऐलक दीक्षा ग्रहण की। दृढतापूर्ण व्रतों का पालन करते हुये आपने स्तवनिधि क्षेत्र पर दिगम्बर दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण करने का पूर्ण प्रयत्न किया। इसके साथ ही सदैव अध्ययन-चिन्तन में लीन मुनि श्री ने १५ मन्दिरों के निर्माण कार्य में आशीर्वाद देकर अनेक जैन परिवारों को जिनदर्शन सुलभ कराने में सहयोग किया।

साहित्योपासना :

आपने समयसार, प्रवचनसार आदि जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थों पर अधिकार प्राप्त करके अनेक ग्रन्थों के सम्पादन के साथ जैनधर्म की महती प्रभावना की।

अन्त में आपने समाधिपूर्वक प्राणों का विसर्जन कर स्वर्गगति की ओर गमन किया।

PDF Scanner ACE Scanner

मुनि वि

जीवन परिचय :

दक्षिण-कर्नाटक जिलान्तर्गत बेलतंगडि तालुक की पश्चिमी पर्वत श्रेणी के एक भाग में ग्राम नड है। इस ग्राम में पेरमाणु वसदि के जिनालय, जिसके मूलनायक अनन्तनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है, के पुरोहित श्री ब्रह्मय्या धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीमती के यहां द्वितीय संतान के रूप में पुत्र नाभिराज का जन्म हुआ। इनके पांच भाई थे - श्री वर्धमानइन्द्र, श्रीपालइन्द्र, श्रीपद्मराजइन्द्र, श्रीगुणपालइन्द्र और सिंहासनइन्द्र।

ज्ञानार्जन :

श्री नाभिराज ने आरम्भिक शिक्षा अपने ग्राम में ही प्राप्त की। अनन्त धार्मिक शिक्षा अपने छोटे पितृव्य श्री अनन्तराज शास्त्री के सहयोग से सम्पन्न हुई। शिक्षणोपरान्त आपने जिनालय में पुरोहित का कार्य एवं कृषि कार्य को आजीविका का साधन बनाया और संतोषपूर्वक गृहस्थाश्रम का निर्वाह किया।

संसार की यथार्थता :

धार्मिक शिक्षा, पूर्वसंस्कार के प्रभाव या अन्य कारण से मन में स्व वैराग्य भाव प्रस्फुटित हुआ। अब घर में उनका मन न लगा, अत: परिवार से मो छोड़कर परम पूज्य १०८ आचार्य श्री देशभूषण जी के संघ में सम्मिलित हो और निरन्तर साधना में निरत रहने लगे।

आचार्य श्री के संघ में कई वर्षों तक साधुत्व की साधना करने के आचार्यरत्न श्री बाहुबली महाराज से दिगम्बरी दीक्षा धारण की और मुनि विश्वनन्दि के नाम से ख्यात हुए।

साहित्यसृजन की ओर :

मुनि श्री ने कन्नड भाषा में ग्रन्थों का सृजन कर लोक कल्याण का प्रशस्त किया है। उनकी उपलब्ध कृतियों में -

१. **आत्मसिद्धिदीपिका** - इसमें जैनदर्शनाख्य परम्परा और तत्वदर्श की आध्यात्मिक विवेचना है।

२. **श्रावकक्रिया दर्पण** - यह गृहस्थ के षट्कर्मों की विवेचक कृति है। इसमें नित्योपयोगी पाठों का समावेश भी है।

३. **पाठक्रिया विधि** - इसमें नित्यनैमित्तिक होने वाले पाठों का संकलन है।

आपके द्वारा दीक्षित शिष्य हैं - मुनि श्री संभवनन्दि, मुनि श्री वीरनन्दि जी, क्षुल्लक श्री पद्मकीर्ति जी एवं क्षुल्लिका श्री पद्मश्री माता जी।

समाधि का लाभ :

जब शरीर धर्माराधन के योग्य न रहा, तब मुनि श्री ने कार्कल में सल्लेखना ली और पूर्ण समताभाव पूर्वक इस तन को जीर्ण वस्त्र की तरह त्याग दिया।

❑

मुनि गजपतिसागर महाराज

जीवन के अन्तिम समय में स्वयं ही मुनि दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया है मुनि श्री गजपतिसागर जी ने। इनकी जन्मभूमि है तिरुपनमूर (चेंगलपेट) और जन्मतिथि ३ नवम्बर सन् १९१३। आपके पिता का नाम था श्री कूरारपंतराव नैनार। आगम और अंग्रेजी साहित्य के मनीषी प्रो. एस. ए. जैन इनके अग्रज थे। आपका जन्म नाम था ए. गजपति जैन।

अक्षराभ्यास एवं जीवनक्रम :

श्री एस. गजपति जैन ने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। उदकमण्डलम् की एक ब्रिटिश कम्पनी में लेखापाल के पद पर कार्य किया पर उसे पराधीनता मानकर छोड़ दिया। अब कांजीपुरम् आकर निजी चश्मे की दुकान खोल ली, जो शीघ्र ही ख्याति प्राप्त कर अंग्रेजों व भारतीयों के लिए आकर्षक का केन्द्र बन गयी। इसका कारण यह था कि वे ग्राहक के चेहरे को देखकर ही उसकी पसन्द का फ्रेम, लेंस व साइज निर्धारित कर देते थे।

सहयोग के दिन :

श्री एस. गजपति अपने अग्रज के साथ ग्रामीण व निर्धन जैन विद्यार्थियों के लिए आवास और आर्थिक सहयोग प्रदान करने में श्रेष्ठ सहयोगी बन गये। इसके

साथ ही उनके लेखों की प्रतिलिपि तथा रियल्टी की पाण्डुलिपि में भी उनका सक्रिय योगदान रहा। इस प्रकार वे अपने बड़े भाई के दाहिने हाथ सिद्ध हुए। यह कार्य उन्हें जैनधर्म के प्रति रुचि जागृत करने तथा उसके मर्म को समझाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। वे जैनधर्म/दर्शन के ज्ञाता हो गये।

वैराग्य :

जैनधर्म का परिज्ञान ही उनके वैराग्य में निमित्त बना। प्रौढावस्था में अपने व्यवसाय को बन्द कर सपत्नीक शिखरजी गये। वहां लगभग आठ वर्ष तक ईसरी आश्रम में रहे। दीक्षा लेने के भाव वृद्धिंगत होते रहे। पत्नी को अस्थमा रोग हो जाने से वे श्रवणबेलगोला आ गये। यहां स्वाध्याय और दक्षिणभारत के प्रसिद्ध विद्वानों से विचार विमर्श का सुअवसर/सुयोग मिला।

साहित्यसेवा :

गहन अध्ययन के परिणाम स्वरूप श्री एस. गजपति जैन ने अंग्रेजी व तमिल में अनेक लेख लिखे, जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। मैसूर विश्वविद्यालय में आयोजित एक सम्मेलन में आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार पर शोध पत्र प्रस्तुत किया। आपने केवलज्ञान की त्रिकालज्ञता पर एक शोधालेख लिखा, जिसमें वेव थ्योरी और स्पेश थ्योरी के आधार पर केवलज्ञान को सिद्ध किया है। 'मिलिप्सस् आफ जैन फिलासाफी' उनकी एक प्रमुख कृति है। रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण का जैनरामायण के नाम से तमिल में अनुवाद आपने किया है, जो प्रकाशित भी है।

आत्मसाधना के क्षण :

स्वत: आत्मसाधना करते हुए ११.१०.१९८८ को मृत्यु को समीप जानकर सल्लेखना का नियम लिया। ३१.१०.८८ को सर्वपरिग्रह के त्यागपूर्वक स्वयं ही भगवत्साक्षी में मुनिदीक्षा ली और क्रमिक सल्लेखना पूर्वक ३.११.१९८८ को नश्वर संसार को तज दिया।

❑

मुनि समकितसागर महाराज

गृहस्थ जीवन का उपयोग करके उससे ममत्व तोड़कर आत्मसाधना करने वाले विरल व्यक्तियों में मुनि श्री समकितसागर जी की गणना होती है। इनका जन्म ललितपुर जिले के सिरगन ग्राम में कार्तिक शुक्ला दशमी संवत् १९८८ को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री परमानन्द और माता का नाम श्रीमती रामकुमारी था। आकर्षक मुखाकृति को लक्ष्यकर माता-पिता ने सुन्दरलाल नाम से सम्बोधित किया। जब वे ढाई वर्ष के थे उसी समय पितृवियोग सहना पड़ा। पर माता ने पारिवारिक कठिनाईयों का सामना करते हुए सुन्दरलाल और उनके अग्रज लखमीचन्द का स्नेह और सुसंस्कारों से पालन-पोषण किया।

विद्यार्जन :

अपने ही ग्राम में आरम्भिक शिक्षा पूर्ण कर श्री सुन्दरलाल जी ने धार्मिक शिक्षा हेतु अभिनन्दन जैन पाठशाला ललितपुर में चार वर्ष तक अध्ययन किया। अनन्तर शान्तिनाथ जैन गुरुकुल रामटेक में तीन वर्ष और मुरैना विद्यालय में चार वर्ष तक अध्ययन कर शास्त्री, साहित्यरत्न और इन्टरमीडियेट की परीक्षा सन् १९५४-५५ में उत्तीर्ण की। अल्पावधि की बाधा के बाद पुन: मुरैना रह विशारद तृतीय खण्ड का अध्ययन किया। यहां पर अध्ययन के साथ पं. श्री मक्खनलाल जी सिद्धान्तशास्त्री के साथ दर्शन, अभिषेक, पूजन, प्रवचन आदि भरपूर लाभ भी इन्होने लिया।

सन् १९५३ में अध्ययन काल के बीच में ही इनका विवाह ललितपुर निवासी श्री भुजबलप्रसाद की पुत्री कमलाबाई से हुआ। विवाहोपरान्त ही आपने इन्टरमीडिएट और साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्यापन कार्य एवं व्यापार :

अध्ययन के उपरान्त पं. श्री सुन्दरलाल जी ने कुरावली (मैनपुरी), कोछोर (सीकर), टोडारायसिंह और बरूआसागर की पाठशालाओं में कुल पांच वर्ष तक शिक्षण कार्य किया। अनन्तर आजीविका के लिए व्यापार करने का निश्चय कर गंजबासौदा को निवास स्थल बना लिया। यहां पर उन्होने असगन्ध का व्यवसाय किया और उसमें काफी सफल रहे।

PDF Scanner ACE Scanner

अभिरुचि :

व्यापार के साथ पंडित जी की विशेष रुचि शास्त्र प्रवचन की रही। तीर्थयात्रा की ओर उनका विशेष आकर्षण रहा। व्यापार हेतु सामान क्रय करने जब भी बाहर जाना होता तो वे आसपास के तीर्थक्षेत्रों के दर्शन करके ही लौटते। जब बम्बई गये तो वहीं से गजपंथा, मांगीतुंगी आदि तीर्थक्षेत्रों के दर्शन कर स्वयं को धन्य माना। इसी प्रकार जब अहमदाबाद जाने का अवसर मिलता तो गिरनार, पालीताणा, तारंगा व पावागढ आदि गुजरात प्रान्त की तीर्थयात्रा करके ही आते। सभी तीर्थक्षेत्रों के दर्शन किये। अनेक तीर्थक्षेत्रों की तो कई बार यात्रा की।

प्राकृतिक चिकित्सा को वे सर्वाधिक महत्त्व देते थे। कभी अस्वस्थ हो जाते तो स्वयं ही अपनी प्राकृतिक चिकित्सा कर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लेते थे। आप इस चिकित्सा सम्बन्धी आलेख भी समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते रहते थे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति भी आपका झुकाव था। रामटेक गुरुकुल में एक चेतना नाटक में आपने यशोधर मुनि का पाठ किया था। उसी समय हृदय में यथार्थ दिगम्बर मुनि बनने की भावना जागृत हो गयी थी।

वैराग्य के पथ पर :

विरासत में प्राप्त माता-पिता के धार्मिक संस्कार तथा पूर्वोपार्जित सुसंस्कारों के प्रभाव से उदासीनता तो जन्म से ही मिली थी। शास्त्री परिषद का अधिवेशन सन् १९७७ में फलटण में हुआ, उस समय वहां विराजमान आचार्य देशभूषण जी के ससंघ दर्शन कर उनसे द्वितीय प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये। सन् १९७९ में आचार्य श्री श्रेयान्ससागर जी के चातुर्मास काल में उनसे तृतीय प्रतिमा के व्रत लिए। जनवरी १९८२ में पारसोला (प्रतापगढ), में आचार्य श्री धर्मसागर जी का अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण समारोह में पौष शुक्ल पूर्णिमा दिनांक ३.१.१९८२ को उनसे सप्तम प्रतिमा धारण की। वैसे यह प्रतिमा सन् १९८१ में भगवान् बाहुबली महामस्तकाभिषेक के समय में वहां से वापसी में तीर्थवन्दना की सफलता हेतु स्वयं ने ली थी। तीर्थयात्रा काल में आपने लगभग एक शतक मुनियों के दर्शन किये थे।

मुनिदीक्षा :

वैराग्य के पथ पर अग्रसर होते हुए उन्हें बाल्यकाल में निर्ग्रन्थ मुनि बनने

की भावना को साकार करने का अवसर भी शीघ्र ही मिला। सन् १९८४ में आचार्य श्री धर्मसागर जी का चातुर्मास अजमेर में हुआ था। तब वे अपनी सात सन्तानों में से मात्र एक का विवाह कर तथा छह को अविवाहित छोड़कर, घर संसार के ममत्व का परित्याग कर आचार्य श्री के सानिध्य में पहुंच गये। वहां ब्र. पं. सुन्दरलाल जी ने आश्विन शुक्ला दशमी (विजयदशमी) दिनांक ४.१०.१९८४ को अपने गुरुवर्य से निर्ग्रन्थ यथाजात रूप धारण किया। इस समय आपका नाम मुनिश्री समकितसागर रखा गया।

साहित्यसंसार :

मुनि श्री ने अनेक आलेख लिखे हैं, उन सभी का संकलन 'आत्मोन्नति के साथ' कृति में है। यह प्रकाशित भी हो चुकी है।

समाधिमरण :

मुनिवर्य श्री समकितसागर जी अपने गुरु आचार्य श्री धर्मसागर जी के समाधिमरणोपरान्त एकल विहारी हो गये थे। सन् १९९१ में ग्रीष्मकाल में अकेले ही ग्वालियर से विहार करते हुए २५.६.९१ को प्रातः भिण्ड पहुंचे। ग्रीष्मकालीन तपन से वे अस्वस्थ हो गये। संध्याकाल में स्थिति बिगड़ने लगी। समाज के महानुभावों ने चिकित्सक को बुलाया तो उन्होंने कह दिया कि मेरी अनुमति के बिना किसी भी प्रकार की चिकित्सा न की जाए। उन्होंने स्वयं ही समाधि ग्रहणकर ली और २६.६.१९९१ को प्रातः सामायिक करते हुए ही नश्वर शरीर को त्याग दिया।

❑

आर्यिका जिनमति

आज चन्द्रमा की चांदनी शीतलता का आंचल ओढे हुए अपने आपसे शर्माती हुई सितारों से बातें कर रही थी कि निशा के उस सन्नाटे में भी निडरता हो आई है। बादलों की गडगडाहट के साथ अपने आगमन की सूचना देते हुई वर्षा की फुहारों ने उनके वार्तालाप को भंग किया। वर्षा की फुहारों से द्रवित हो वसुधा मानो अपनी खुशियां का इजहार कर रही थी। क्योंकि आज उसका मातृत्व धन्य हुआ था। म्हसवड (महाराष्ट्र) की वह भूमि पावन हुई थी जहां प्रभावती नामक एक

कन्या ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ उदय हो माता-पिता को शीतलता प्रदान की। बालावस्था में ही माता-पिता के वियोग के कारण अपने एक भाई व एक बहिन के साथ मामा के यहां पोषित हुई।

संतसंगति एवं वैराग्य का अंकुरण :

षोडशी अवस्था में पूज्य ज्ञानमती माता जी की संगति से संयम की ओर अपने कदम बढ़ाकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया। माधोराजपुरा में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा अंगीकार कर कठोरता से नियम व व्रतों का पालन करते हुए सीकर नगर में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका के व्रतों का ग्रहण किया।

साहित्यिक अभिरुचि :

संघ में निरन्तर स्वाध्याय एवं आचार्यकल्प श्रुतसागर जैसे बहुश्रुतज्ञानी, चिन्तक तथा आर्यिका ज्ञानमती माता जैसी विदुषी माताओं के सानिध्य में आपने अध्यवसाय कर अपने क्षयोपशम को बढ़ाया। जिसके परिणाम स्वरूप आपने प्रमेयकमलमार्तण्ड की तीन भागों में हिन्दी टीका करने का पुरुषार्थ जुटा पाया। श्री भास्करनन्दिकृत तत्त्वार्थवृत्ति का हिन्दी अनुवाद भी आपकी कुशल लेखनी से पूर्ण हुआ है। इसके अलावा भी आपने जैन साहित्य भण्डार को अनेक सैद्धान्तिक लेखों द्वारा समृद्ध किया।

महाप्रयाण :

सतत् निर्दोष चारित्र पालन में तत्पर रहते हुए आपने भारतवर्ष के प्राय: सभी नगरों में विहार कर धर्मप्रभावना की और अन्त में श्रवणबेलगोला से उत्तर भारत की ओर आते समय हासन में आपका सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण हो गया। आप जैसी विभूति के अभाव को जैन समाज ने बड़े कष्ट के साथ सहन किया।

आर्यिका विमलमति

आरम्भिक जीवन :

आर्यिकारत्न श्री विमलमती जी की जन्मभूमि है मध्यप्रदेश के गुना जिले की मुंगावली तहसील। यहां पर परवार जातीय श्री रामचन्द्र जी के सम्पन्न परिवार में वि.सं. १९६२ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को इनका जन्म हुआ था। घर के वातावरण से ही इन्होने सुसंस्कार और शिक्षा पायी।

बालावस्था में ही भोपाल निवासी श्री हीरालाल जी के साथ इनका विवाह कर दिया गया था। विवाह के बाद शीघ्र ही पति का वियोग हो जाने से बारह वर्ष की अल्पायु में ही वैधव्य का दु:ख आ पड़ा। अचानक आये इस दु:ख से मुक्ति हेतु वे बम्बई में विद्याध्ययन करने लगी। १९ वर्ष की आयु में कन्या पाठशाला, नागौर में अध्यापिका के पद पर नियुक्त होकर अपनी सेवायें देने लगीं।

चारित्र की ओर :

एक बार मुनि श्री चन्द्रसागर जी विहार करते हुए नागौर आये, उनकी देशना से प्रभावित हो द्वितीयप्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। घर में मन न लगने के कारण आठ वर्ष के अध्यापन के पश्चात् २७ वर्ष लगभग की उम्र में विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। अब वे मुनि श्री चन्द्रसागर जी के संघस्था हो विहार करने लगीं। संवत् २००० में कार्तिक कृष्णा पंचमी को क्षुल्लिका दीक्षा धारण की तब आपका नाम आर्यिका विमलमती हुआ। इस समय आपकी उम्र ३८ वर्ष के आसपास थी।

इनके दीक्षागुरु श्री चन्द्रसागर जी का बड़वानी क्षेत्र में संवत् २००० में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को देहावसान हो गया। अत: बाद में पूज्य श्री वीरसागर जी से सं. २००२ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी भगवान् महावीर के जन्मदिन के अवसर पर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर आत्मसाधना और धर्म का प्रचार करती रही।

वायुप्रकोप के कारण आर्यिका श्री अस्वस्थ हो गयीं। अत: सं. २०२० में नागौर और उसके आसपास ही विहार किया। एक बार गिर जाने के कारण पैर की हड्डी टूट गयी। यह पीड़ा भी समतापूर्वक सहन की।

साहित्यिकाभिरुचि :

उनके द्वारा अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यथा - कल्याणपाठ संग्रह, नित्यनियमपाठ पूजा, भक्तामर कथा (हिन्दी अनुवाद), शान्तिविधान (हिन्दी अनुवाद), देववन्दना, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, स्वरूपसम्बोधन, जिनसहस्रनामस्तवन, द्वादशानुप्रेक्षा, सूतकनिर्णय, नवधाभक्ति, आराधना कथाकोष (तीन भाग संस्कृत व हिन्दी) आदि।

समाधिमरण :

समाधिपूर्वक आर्यिका विमलमती जी ने वैशाख शुक्ला [illegible]दा वि.सं. २०३४ को भौतिकदेह का विसर्जन किया, पर वे और उनके कृ[illegible] आज भी स्मरणीय हैं।

आर्यिका विशालमति

जीवनारम्भ :

धर्म के स्वरूप को पहचानकर परम्परानुसार जातिसंस्कारों से ऊपर उठकर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होने वाले विरले मनुष्यों में आर्यिकारत्न विशालमती का नाम प्रतिष्ठित है। आपका जन्म निम्बाहेडा (राज.) में श्वेताम्बर परिवार में आसोज वदी अमावस २०१२ को हुआ था। इनका जन्म नाम था कुसुम। श्री बापूलाल चौरडिया आपके पिता और माता श्रीमती मोहनबाई थीं। दो भाई और चार बहिनों के साथ सुयोग्य पालन-पोषण हुआ।

प्रेरणा :

मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त कुसुम जी को सन् १९६४ में मुनिश्री भव्यसागर जी के दर्शन एवं धर्मोपदेश श्रवण करने का सुनहरा अवसर मिला। वे वीतरागधर्म से परिचित हुईं। उन्हें आत्मोत्थान की शिक्षा/प्रेरणा मिली और आजीवन अविवाहित रह दिगम्बर आम्नाय के अनुसार आर्यिकादीक्षा हेतु गुरुवर मुनिश्री भव्यसागर जी के चरणों में दृढ़संकल्प कर लिया। वे ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार कर आत्मसाधना में रत रहने लगीं।

विरक्ति :

ब्र. कुसुम दीदी के कदम आत्मसाधना के पथ पर आगे बढ़ते ही गये। उनके जीवन में ७ मार्च सन् १९८४ को वह शुभ दिन आया, जब परम पूज्य १०८ मुनिश्री विवेकसागर जी से पिडावा ग्राम में उन्होंने संसार, शरीर और भोगों से पूर्णतया विरक्त हो दिगम्बर आर्यिका दीक्षा अंगीकार की। वे आर्यिका विशालमती नाम से विभूषित हुईं। आगम का गहन अध्ययन किया तथा उसी के अनुरूप दृढ़ता पूर्वक चर्या करतीं थीं। आचार्य श्री विद्यासागर जी से दीक्षित आर्यिका संघ भी उनके दृढ़चारित्र का प्रशंसक रहा।

कृतियां :

यद्यपि आपने अपने जीवन में अधिक कृतियों का सृजन नहीं किया तथापि आपकी 'शीलमंजूषा' ही इतनी प्रसिद्ध हुई, जो आपकी कीर्ति को दिग्-दिगन्त विस्तृत करने में समर्थ है।

वात्सल्य, उदारता व गंभीरता की साक्षात् मूर्ति पूजनीय आर्यिकाश्री सतत् स्वाध्याय एवं अकाट्य तर्कणा युक्त अनोखी शैली से मुक्तिपथानुरागियों को प्रेरणा देती रहीं हैं।

अन्त समय :

विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न माता जी का शरीर अल्पायु में ही रोगग्रसित हो गया था। जब उपचार से भी संतोषजनक लाभ न मिला तो, उन्होंने अपना अन्तिम समय समीप जानकर परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी से मार्गदर्शन प्राप्त किया! उनके ही निर्देशानुसार वे समाधिमरण की तैयारी करने लगीं।

लगभग ४० वर्ष की आयु में भीलवाडा के समीप विजयनगर में अपने संघ के सानिध्य में पंचनमस्कार मंत्र के स्मरण के साथ इस नश्वर तन का त्यागकर इहलीला को समेट लिया। विदुषी आर्यिकारत्न विशालमती प्रत्यक्ष रूप में हमारे बीच न होते हुए भी अपने ज्ञान और वैराग्यपूर्ण आचरण से जन-जन के हृदय में बसी हुई हैं।

ACE Scanner
PDF Scanner

ऐलक [illegible]राज

बाल ब्रह्मचारी, अल्पवय से ही आत्मकल्याण की ओर अग्रसर कविहृदय और श्रेष्ठ साहित्यकार रहे हैं ऐलक श्री सम्यक्त्वसागर जी। मध्यप्रदेश के सागर जिलान्तर्गत खण्डा नगर में ४ दिसम्बर सन् १९६५ में आपका जन्म हुआ। आपका पूर्व नाम सनतकुमार था। पिता श्री बाबूलाल जी एवं माता श्रीमती कुन्तीबाई के नाम से जानी जाती हैं। आपकी दो बहने हैं - मनोरमा एवं माया। बहिन माया भी बालब्रह्मचारिणी एवं आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर हैं। आप परिवार के धार्मिक संस्कार में पले और बढ़े। उनका समूचा बचपन सन्त-समागम में ही बीता।

अक्षराभ्यास :

लौकिकशिक्षा मिडिल तक ही प्राप्त की पर उन्हें धार्मिक शिक्षा अधिक ही मिली। आपने आत्मसृजन की एकाकी यात्रा तो ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही आरम्भ कर दी थी। पारलौकिक विद्या के अन्वेषक आप अधिक रहे। इसी कारण ३ नवम्बर सन् १९८२ को उन्हें आचार्य श्री विद्यासागर जी के चरण सानिध्य प्राप्त करने का सुअवसर मिला और जीवन को सार्थक बनाने में संलग्न हो गये।

संयमानुराग :

८ नवम्बर सन् १९८५ में अहारजी सिद्धक्षेत्र पर आचार्य विद्यासागर जी से क्षुल्लक दीक्षा धारण की और जीवनमूल्य की प्राप्ति हेतु आत्मसाधना रत हुये। अब वे क्षुल्लक श्री सम्यक्त्वसागर जी हो गये।

आत्मविकास की तीव्राकांक्षा के कारण आपको थूबौनजी में वर्षायोग की प्रतिष्ठापना के समय १० जुलाई सन् १९८७ को आचार्य श्री जी ने ही ऐलक दीक्षा प्रदान की।

साहित्यिकगतिविधियां :

ऐलक श्री कविहृदय होने से उनके द्वारा रचित काव्य संग्रह अधिक हैं। जिनमें १. सम्बोधन शतक, २. रत्नत्रयशतक. ३. मुक्तकों के मुक्त शतक, ४. पूजा के फूल, ५. शाकाहार कब आयेगा ?, ६. वन्दना के स्वरों में, ७. प्रस्तर की पुकार, ८. सांसों का संगीत, ९. दस्तक (क्षणिकासंग्रह), १०. सूरज कुंहासे में, ११. सुबह की तलाश में (गजलसंग्रह) प्रमुख हैं।

कहानी संग्रह - १. होनी हो सो होय, २. जंचा सो लिखा, ३. टूटी वीणा के स्वर, ४. आस्था का सूरज।

उपन्यास - १. आप्तकाम, २. स्वार्थ समर। प्रवचनसंग्रह - हंसा मान सरोवर भूला, देखा, सुना, कहा। एवं नाटक - शाकाहारी शेर।

इसके अतिरिक्त 'श्रावक, समाज और राष्ट्र' तथा 'अनेक राष्ट्र एक धर्म' प्रवचन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कुछ कविताओं का गुजराती एवं मराठी में अनुवाद भी हुआ है और आपके लेख सतत् ही देश के अनके राष्ट्रीय दैनिकों, जैसे नवभारत, दैनिकभास्कर, नवीनदुनिया, देशबन्धु पत्रों एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर ही छपते रहते थे।

इस प्रकार ऐलक श्री आत्मसाधना, साहित्यसाधना और लोककल्याण में निरत रहे, पर कर्म किसी को भी नहीं छोड़ते। अशुभकर्मोदय से वे हृदय सम्बन्धी रोग से ग्रसित हो गये। परिणाम स्वरूप इन्दौर चातुर्मासोपरान्त जनवरी १९९७ में आपके हृदय का एक बाल्व बदला गया। स्वास्थ्यलाभ के उपरान्त पुनः धर्मप्रभावना में रत हो गये। इन्दौर में ही २८ मई सन् १९९९ को सल्लेखनापूर्वक शरीर से विलग हो गये।

❑

क्षुल्लक गणेशप्रसाद 'वर्णी' महाराज

जीवनवृत्त :

निर्भीक, दृढ़निश्चयी, शिक्षा के प्रचारक-प्रसारक एवं कुरीतियों के नाशक थे पूज्य गणेशकीर्ति जी महाराज। इनकी समग्र जीवन गाथा आज भी जन-जन के लिए प्रेरक है। इनका जन्म हंसेरा में असाटी वैश्य परिवार में वि.सं. १९३१ की आश्विन कृष्ण चतुर्थी को हुआ था। पिताजी का नाम श्री हीरालाल जी एवं माता का नाम श्रीमती उजयारीबहू था। बुन्देलखण्ड के गांवों में कृष्णपक्ष की चतुर्थी को लोग गणेश का व्रत रखते हैं। अतः इनका नाम गणेशप्रसाद रखा गया। आगे चलकर इन्होने अपने नाम (गण+ ईश = गणेश) को सार्थक किया। विशेष सावधानी से इनका लालन-पालन किया गया।

शिक्षा :

७ वर्ष के होने पर गणेशप्रसाद का नाम गांव के विद्यालय में लिखा दिया गया। इनका शिक्षा केन्द्र विद्यालय, घर के अतिरिक्त राममन्दिर भी था। सं. १९४६ में हिन्दी मिडिल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। फिर दो भाइयों के वियोग से शिक्षा प्राप्त न कर सके।

गुरुसेवा और निर्भीकता :

गणेशप्रसाद गुरुसेवा को अपना परमकर्त्तव्य समझते थे। गुरु जी की हुक्का-पाने की आदत थी, अतः वे रोज उनका हुक्का भी भरते थे। एक दिन उन्होंने निडर होकर गुरु जी को तम्बाकू के दुर्गुणों से अवगत कराया और उनके सामने ही हुक्का फोड दिया। गुरु जी अपने शिष्य के इस कार्य से प्रसन्न हुए एवं उन्होंने तम्बाकू पीना छोड़ दिया।

जैनधर्म से प्रभावित :

जब गणेशप्रसाद जी दस वर्ष के थे तब उन्हें जैन मन्दिर के चबूतरे पर प्रवचन सुनने का अवसर मिला। उस प्रवचन से इतने प्रभावित हुए कि रात्रि भोजन का त्याग कर जैनधर्म अंगीकार कर लिया। जैनधर्मानुयायी बनने पर भी जातीय परम्परा के अनुसार १३ वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया।

विवाह :

वि.सं. १९४९ को १९ वर्षीय होने पर मलहरा ग्राम की सत्कुलीन कन्या को अनिच्छापूर्वक अपनी जीवनसंगिनी बना लिया। इसके बाद पिताजी का देहावसान होने से इन पर घर की पूरी जिम्मेदारी आ गयी। अतः पास के गांव के विद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगे। पर मन में तीव्र ज्ञानपिपासा थी। अतः अध्यापनकार्य को तिलांजलि दे विद्यार्थी बन घर/ग्राम से प्रस्थान कर दिया।

धर्ममाता से मिलन :

यात्रा करते हुए संवत् १९५० में जब सिमरा ग्राम पहुंचे तो वहां उनका पूज्य माता सिंघेन चिरोंजाबाई से मिलन हुआ। यह मिलन दोनों के स्नेह का जनक बन गया। माताजी के हृदय से ऐसा पुत्रवात्सल्य उमड़ा कि स्तनों से दुग्धधारा प्रवाहित हो पड़ी। उन्होंने गणेशप्रसाद जी को अपना धर्मपुत्र मानकर उन्हें चिन्तामुक्त तो किया ही, आगे विद्याध्ययन हेतु अनुमति भी दी।

पुनः विद्यार्थी जीवन :

स्वयं की ज्ञानपिपासा की तृप्ति हेतु धर्ममाता की इच्छानुसार प्रस्थान किया। मार्ग में सामान की चोरी होने से पुनः चिन्तित हुए। पास की छतरी ६ आने में बेच दी और एक-एक पैसे के चने खाकर समय निकाला। इसी बीच एक बार रोटी खाने का भाव हुआ तो बर्तन के अभाव में पत्थर पर आटा गूंथा और कच्ची रोटी-दाल में भिगोकर ऊपर से पलाश के पत्ते में लपेटकर मंदी आंच में सेंकी। फिर दाल-रोटी का सानन्द भोजन किया।

अध्ययनकाल में एक बार खुरई पहुंचे। वहां पं. पन्नालाल जी न्यायदिवाकर से धर्म का मर्म जानने की जिज्ञासा व्यक्त की, तब पण्डित जी ने चिल्लाकर कहा- अरे तू क्या धर्म का मर्म जानेगा ? तू तो केवल खाने के लिए जैन हुआ है। ये कटुवचन भी शान्ति पूर्वक सुने।

अपने लक्ष्य की सिद्धि हेतु वि.सं. १९५२ में बनारस पहुंचे। पर वहां भी उन्हें नास्तिक कहकर किसी ने नहीं पढ़ाया। अब आपने बनारस में एक जैन विद्यालय खोलने का दृढनिश्चय किया और कठिन परिश्रम करके सं. १९५२ में ही स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना करा दी।

शल्य टली :

वि.सं. १९५३ में धर्मपत्नी का स्वर्गवास होने पर पूर्णरूपेण शान्त रहे। मन में इष्टवियोग का खेद न मान कर सोचा शल्य टली।

विद्योपार्जन के लक्ष्य को साकार करने के लिए सं. १९५४ तक विविध स्थानों पर गये पर उन्हें सफलता न मिली। अन्त में पुनः बनारस आये। वहां पं. अम्बादास जी को अपना गुरु बनाकर विधिवत् अध्ययन किया और न्यायाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की साथ ही पारितोषक भी प्राप्त किया।

बड़े पण्डित जी :

विद्वत्ता और संयम की साधना से वे पूज्य सन्त बन गये। अब बड़े पण्डित जी के रूप में इनकी प्रसिद्धि हो गई। उनका जैसा विद्या के प्रति अनुराग था, उससे भी बढ़कर था जिनभक्ति के प्रति। विद्यार्थी जीवन में सं. १९५२ से १९५९ तक गिरनार जी और शिखर जी जैसे तीर्थों की पैदल यात्रा करना उनकी जिनेन्द्र भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वि.सं. १९६२ में श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

की स्थापना सागर में करवाई और आपने उसके [illegible] सुशोभित किया।

सन्त वर्णी जी :

संयम की साधना ने सं. १९७० में उन्हें बड़े पण्डितजी से सन्त वर्णी जी बना दिया। उनकी यह साधना निरन्तर बढ़ती ही रही। सं. १९९३ में वाहन द्वारा सागर से बण्डा जाते समय ड्राइवर से झगड़ा हो गया। तब से मोटर-रेल आदि में बैठना ही छोड़ दिया। इसके बाद फाल्गुन मास में ७०० मील की पदयात्रा तथा मार्ग के तीर्थक्षेत्रों की वन्दना करते हुए शिखरजी पहुंचे। वहां कुछ समय रहे और उनकी प्रेरणा से उदासीनाश्रम की स्थापना हुई।

त्याग के पथ पर :

सन्त वर्णी जी आत्मसाधक तो थे ही। सं. २००१ में दशमप्रतिमा धारण की। इसी सं. में बुन्देलखण्ड में पुनः आये। सं. २००२ में जबलपुर में हो रही आमसभा में आजादी के पुजारियों की सहायतार्थ अपनी चादर समर्पित कर दी। इस चादर से उसी क्षण तीन हजार रूपये की मिली राशि ने सभा को आश्चर्यचकित कर दिया।

वर्णी जी ने २००४ में क्षुल्लक दीक्षा ली और अब वे बड़े बाबा कहलाने लगे। वि. सं. २००२ से २००९ तक बुन्देलखण्ड में भ्रमण किया। उनकी प्रेरणा और मार्गदर्शन से सैकड़ों पाठशालाएं, विद्यालय और महाविद्यालय खुले। वर्तमान में जितने भी विद्वान् देखे जाते हैं वह उनके ही अज्ञानान्धकार मिटाने के प्रयास का सुफल है।

सं.२००९ के सागर चातुर्मास के उपरान्त ७०० मील की लम्बी पदयात्रा कर शिखरजी पहुंचे। वहीं पार्श्वनाथ प्रभु की शरण में रहने का निश्चय किया। इस निश्चय के बाद सं. २०१२ में स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस तथा सं. २०१३ में गणेश विद्यालय सागर आये थे, तब विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। इसके बाद शिखरजी में यात्रार्थ पधारे कानजी स्वामी ने वर्णी जी के दर्शन किये तथा उनके प्रवचनामृत का पान कर आनन्दित हुए। विनोबा भावे ने तो वर्णी जी को अपना अग्रज माना और उनके चरण स्पर्श किये और कई बार उनका सानिध्य प्राप्त किया। सं. २०१६ में आचार्य तुलसी गणी ने वर्णी जी के दर्शन कर स्वयं को धन्य माना।

पूज्य वर्णी जी निःस्पृही, पारखी व गुणग्राही थे। वे ब्र० चन्दाबाई, ब्र० कृष्णाबाई जैसी महिलाओं एवं नारी समाज को शिक्षित करने एवं संस्था निर्माण के लिए सूर्य थे। वे मनसा-वाचा-कर्मणा एक थे। विरोधी भी उनके आगे नतमस्तक हुए।

मुनिदीक्षा और समाधि :

वृद्धावस्था में ८७ वर्ष की आयु, जुलाई सन् १९६१ से शारीरिक अस्वस्थता के कारण काया कृश हो गई, पर दैनिक चर्या में शिथिलता का आभास भी नहीं था। बीमारी लगभग दो माह रही। वे आहार में आधा पाव जल और अल्प मात्रा में अनार का रस ही ले पाते थे। ३ सितम्बर १९६१ को यम सल्लेखना ली और सभी प्रकार के आहार-पानी का त्याग कर दिया। १५ सितम्बर को प्रातः से ही विशेष उत्साह और चेहरे पर मुस्कान थी। इसी दिन त्यागियो और विद्वानों के समक्ष मुनिदीक्षा ग्रहण की और उनका शुभ नामकरण गणेशकीर्ति रखा गया। त्यागी, विद्वान्, सेठ-साहूकार आदि सभी उनकी सेवा/परिचर्या के लिए सदैव तत्पर रहे। १५ सितम्बर की रात्रि १.३० पर भौतिक शरीर को त्याग दिया। उनके अभाव में जैन समाज का सूर्य ही डूब गया।

पूज्य गणेशकीर्ति जी महाराज का भौतिक शरीर चिता की ज्वलन्त ज्वालाओं में विलीन हो गया, पर जैनधर्म और समाज के लिए समर्पित उनके तपःपूत जीवन से आज भी किरणें प्रस्फुटित होकर मार्गदर्शन कर रही हैं।

❑

क्षुल्लक मनोहरलाल वर्णी 'सहजानन्द'

अध्यात्मयोगी, जिनवाणी के सेवक, जैनधर्म के प्रचारक तथा गणेशप्रसाद वर्णी के शिष्य छोटे वर्णी के नाम से लब्धख्यात हैं क्षुल्लक मनोहरलाल जी वर्णी। इनका जन्मस्थल है झांसी जिले का दुमदुमा ग्राम और जन्मतिथि कार्तिक कृष्ण दशमी वि.सं. १९७२। इन्होने गोलालारे जाति में जन्म लिया और पिता श्री गुलाबराय तथा माता श्रीमती तुलसाबाई को धन्य किया। आपका जन्मतः मगनलाल के नाम से पुकारे जाते थे।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

समाधिमरण :

अध्यात्मविद्या के उन्नायक क्षुल्लक श्री [illegible] वर्णी ब्रह्मानन्द जी ने समतापूर्वक ३० मार्च सन् १९७८ को नश्वर पार्थिव शरीर का परित्याग कर भौतिक अस्तित्व को तो समाप्त कर दिया, परन्तु उनके द्वारा प्रज्वलित अध्यात्मचेतना की ज्योति आज भी मन्द नहीं हुई। वह सदैव उनका स्मरण करती रहेगी।

क्षुल्लक नेमिसागर वर्णी

दक्षिण भारत में बीसवीं सदी के श्रेष्ठतम रत्न रहे हैं स्वस्ति श्री नेमिसागर जी वर्णी। आपने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर धर्म, संस्कृति और शिक्षा का जो प्रचार-प्रसार किया है, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। ईस्वी सन् १८७६ दक्षिण कनारा जिलान्तर्गत मूडबिद्री से लगभग १० मील दूर एक्कण नामक ग्राम में आपका जन्म हुआ। आपके पिता दुग्गण अधिकारी के नाम से एक जमींदार थे और आपकी माता का नाम था जाकम्मा। ये दंपति दीनदुखियों के सच्चे सेवक और उपकारक होने से आज भी उस ग्राम के लोग उन्हें याद करते हैं। श्री नेमिसागर जी का चार भाईयों में तीसरा स्थान था।

शिक्षा :

सात वर्ष की आयु में श्री नेमिसागर जी ने कन्नड भाषा के माध्यम से अध्ययन आरम्भ किया और ग्यारह वर्ष की वय में पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण की। मंगलौर से प्रशिक्षण परीक्षा पासकर अन्य धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा, ब्रह्मचर्य व्रत लेने के बाद भ्रमण करते हुए देश के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों में जाकर प्राप्त की। एक बार सन् १९०४ में अपने ३ शिष्यों के साथ शिखरजी यात्रा से लौटते समय आरा ठहरे। यहां पर आपका परिचय श्री बाबू देवकुमार जी, श्री बच्चूलाल, श्री करोडीचन्द आदि से हुआ। उनके आग्रह से वहीं रहकर धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। बाद में संस्कृतभाषा की नगरी काशी में चार वर्ष तक स्याद्वाद महाविद्यालय में रहकर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की, जिससे आप प्रकाण्ड विद्वान् बन गये। अनन्तर मुरैना के विद्यालय में रह स्याद्वादवाचस्पति पं. गोपालदास जी से

गोम्मटसार, [illegible] आदि सिद्धान्तग्रन्थों का तथा अष्टसहस्री, [illegible] आदि न्यायशास्त्र के ग्रन्थों का गहन अध्ययनकर शीघ्र विद्वान् बन गये। अतः ये शीघ्र ही ईसरी के विद्यार्थी निलय में रहकर तर्कशास्त्र का अध्ययन किया।

कार्यकार्य :

श्री नेमिसागर जी ने अपने प्रथम अध्ययन केन्द्र पर ही अध्यापक के रूप में निशुल्क हो अपनी सेवायें ७ वर्ष तक प्रदान कीं। उनके सदाचार, विद्यानुरागिकता एवं ब्रह्मचर्यादि सद्गुणों से आकर्षित हो, कार्कल के पूर्व पट्टाचार्य ने उन्हें अपने मठ में कार्यदर्शी के रूप में नियुक्त किया। यहां पर चार वर्ष तक सेवा दे रहे।

ब्रह्मचर्यव्रत :

श्री नेमिसागर जी की कीर्ति उनकी सेवाओं से प्रसारित होने लगी। माता-पिता ने उनके विवाह हेतु उनसे सहमति मांगी। तब उन्होंने विवाह नहीं करने के निश्चय से अवगत कराया। माता-पिता पुनः आग्रह न कर सकें अतएव आपने कार्कल में श्री नेमिनाथ मन्दिर में ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर लिया। परिणामस्वरूप वे नेमिसागर वर्णी के नाम से ख्यात हुए।

नेमिसागर जी के ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने से कार्कलमठ स्वामी और उनके शिष्य समुदाय ने अतीव प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने आपसे मठ का उत्तराधिकारी बनने का आग्रह किया। पर आपने इस बन्धन को स्वीकार नहीं किया और स्वतन्त्र रूप से भारत में भ्रमण करते हुये जैनधर्म व समाज की सेवा के संकल्प से अवगत कराया। साथ ही विनम्रता पूर्वक क्षमायाचना की।

यायावरीवृत्ति :

ब्रह्मचारी बनने के बाद ७-८ माह में ही पांच शिष्यों के साथ गुडीबंडे पहुंचे। यहां मुनि श्री चन्द्रकीर्ति जी के दर्शन किये। तत्पश्चात् दक्षिण कनारा जिले में विहार व धर्मोपदेश पूर्वक धर्मप्रभावना करते हुये तीन शिष्यों के साथ सम्मेदशिखर जी की यात्रा की।

शिखरजी से आरा आने पर आपके ज्ञान की विशालता देखकर यहां आपको धर्मगुरु के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। वर्णी जी ने इनके साथ दक्षिणक्षेत्रों की यात्रा की।

शिक्षणकेन्द्रों की स्थापना :

वर्णी जी के प्रयास से मूडबिद्री में संस्कृत पाठशाला और बेंगलौर में विद्यार्थीनिलय की स्थापना हुई। जो आज भी श्रेष्ठ शिक्षा के केन्द्र के रूप में संचालित हैं।

मैसूर के प्रसिद्ध धार्मिक बन्धु एम. एल. वर्धमानैय्या के आग्रह/प्रार्थना पर विद्यार्थीनिलय में रहकर यहां के विद्यार्थियों को पढ़ाया और स्वयं भी तर्कशास्त्र का अध्ययन किया।

इस प्रकार श्री वर्णी जी ने निरन्तर अध्ययन तथा अध्यापन कार्य करते हुए जिन अनेक विद्वानों को तैयार किया, वे आज भी उत्तर, दक्षिण व तमिल के विभिन्न क्षेत्रों में पाठशाला आदि का संचालन कर समाज एवं धर्म की सेवा में तत्पर हैं।

सामाजिक सम्मान :

श्री नेमिसागर जी वर्णी ने दिसम्बर १९२३ में बेलगांव जिले के सेडवाल ग्राम में आयोजित भारतवर्षीय शास्त्रि परिषद् की अध्यक्षता की। सन् १९२४ में सम्पन्न अधिवेशन में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष पद को उन्होंने सुशोभित किया और श्रवणबेलगोला की कीर्ति को आचन्द्रार्क स्थायी बनाया।

बहुभाषाविद् श्री वर्णी जी में सुदृढ़संस्कृत, कन्नड, हिन्दी और तमिलभाषा में धाराप्रवाह प्रवचन करने की अद्भुत सामर्थ्य थी। उनके प्रवचनों तथा सम्मान पत्रों का संकलन कन्नडभाषा में प्रकाशित हुआ है। उनके स्मरणार्थ ही हुम्बज से गुरुदेव नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।

समाधि :

आपने २८ सितम्बर १९५६ में संसारादि मोह त्यागकर समतापूर्वक स्वर्गारोहण किया। ❑

क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी

जैनेन्द्रसिद्धान्त कोश, शान्तिपथप्रदर्शन एवं नयदर्पण आदि अमरकृतियों के रचनाकार के रूप में जैनजगत् में सुविख्यात हैं श्री जिनेन्द्र वर्णी जी। इनका जन्म पानीपत के सुप्रसिद्ध विधि-विद्वान् श्री जयभगवान् जैन एडवोकेट के यहां १४ मई १९२२ को हुआ। ये अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

लगन और विघन :

जिनेन्द्रकुमार ने पानीपत में ही सन् १९३७ में मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी जन्मभूमि में उच्च शिक्षा का उचित प्रबन्ध न होने से अध्ययन हेतु दिल्ली चले गये। किन्तु वहां की जलवायु अनुकूल न होने से क्षयरोग ने स्वागत कर दिया। सन् १९३९ में चिकित्सार्थ मिरज गये। यद्यपि रोग का प्रकोप तीव्र होने से बचने की आशा नहीं के बराबर ही थी, पर दृढ़संकल्पशक्ति से स्वयं को रोगमुक्त कर लिया। मात्र २० माह में ४ आपरेशन कराए और एक फेफड़ा निकाल दिया गया। इससे शरीर सदा के लिये क्षीण अवश्य हो गया। तब भी चिकित्सकों के आग्रह को ठुकराते हुए न तो मांस-अण्डे को सेवन किया और न ही सेनेटोरियम औषधि का। पूर्ण स्वस्थ न होने के कारण आपको घर पर ही रह कर आगे का अध्ययन करना पड़ा। अत: घर पर ही इलेक्ट्रिकल और रोडियो इंजीनियरिंग के पूरे कोर्स का गहन अध्ययन किया।

आजीविका :

स्वाध्यायी विद्यार्थी के रूप में अध्ययन के उपरान्त पानीपत को ही आज़ीविका का केन्द्र बनाया। कलकत्ता में एम. ई. एस. में इलेक्ट्रिक और रेडियो इंजीनियरिंग के बड़े जटिल कार्यों के ठेके लेकर वहां के इंजीनियरों को चकित कर दिया।

धार्मिकरुचि :

अगस्त सन् १९४९ के पर्युषण पर्व में अपने पिताश्री का प्रवचन सुना, तो आपकी रुचि धर्म की ओर मुड़ गयी। पानीपत के ही प्रसिद्ध विधि-वेत्ता एवं धर्मज्ञाता श्री रूपचन्द गार्गीय की प्रेरणा और सहयोग से स्वाध्याय आरम्भ किया। सन् १९५८ तक सकल जैन वाङ्मय तथा षड्दर्शन का गहन अध्ययन कर

आवश्यक सन्दर्भों को रजिस्टरों में लिखा। धार्मिक रुचि के कारण अध्ययनकाल में ही साधु समागम करते रहे। सन् १९५२ में चार माह तक सत्संगति के उपरान्त घर आये तो घर में न रहकर मन्दिर में रहने लगे। छोटे भाईयों का व्यापार डगमगाने लगा। अपने अनुजों के प्रति उत्तरदायित्व निर्वाह करने हेतु सन् १९५४ में पुनः कलकत्ता गये और निःस्वार्थभाव से सहयोग कर व्यापार में उनके विकसित होने कदमों को स्थायित्व प्रदान किया।

विरक्ति की ओर :

निरन्तर वृद्धिंगत धार्मिक रुचि तथा वैराग्य के परिणाम स्वरूप सन् १९५७ में ईसरी में रहते हुए पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी का ३ माह का सानिध्य पाया तभी ब्रह्मचर्यप्रतिमा ग्रहण कर ली।

आचार्य श्री विमलसागर जी से सन् १९६१ में ईसरी में ही क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार कर उत्कृष्ट श्रावक बन गये।

धर्मप्रभावना :

क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी जी बाल्यकाल से ही एकान्तप्रिय और अन्तर्मुखी थे। आत्मसाधना का एक लक्ष्य होने से वे अपनी योग्यताओं के प्रदर्शन को बाधक समझते थे। उनका विश्वास था कि गुप्त व गूढसाधना ही कल्याणमार्ग पर अग्रसर करती है। उनके पुण्य की सुगन्ध इतनी फैली कि भक्तभ्रमर उनके निकट मंडराने लगे। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह को वे ठुकरा न सके। फलस्वरूप आपने मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, ईसरी, इन्दौर, नसीराबाद, अजमेर, बनारस, रोहतक तथा अन्य अनेक नगरों पर रहकर धर्मोपदेश द्वारा जनता को सुसंस्कारित किया। कुछ समय उपरान्त उन्होंने बलपूर्वक अपनी इस भ्रमणवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाकर एकान्त साधना को ही अपना लक्ष्य बना लिया। अब वे पानीपत या रोहतक में रहते हुए भी अधिकतर ध्यान निमग्न रहने लगे।

साहित्य-साधना :

क्षुल्लकश्री जैनागम के गहन अध्येता, मौलिक चिन्तक और विचारक थे। उन्होंने साम्प्रदायिकता से परे अत्यन्त गूढ तात्त्विक रहस्यों को अत्यन्त सरल सुबोध शैली में आधुनिक युग के वैज्ञानिक दृष्टान्तों से उद्धरित किया। उनके द्वारा रचित/प्रकाशित ग्रन्थ हैं -

१. ~~शान्तिनाथदिग्दर्शन~~ – यह आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न स्थानों पर दिये गये उनके सिद्धान्तपूर्ण एवं रहस्यात्मक प्रवचनों का संकलन है।

२. ~~जयदर्शन~~ – यह स्याद्वाद या नय विषयक ग्रन्थ है। इसमें ७५० पृष्ठ हैं।

३. ~~पदार्थविज्ञान~~ – २८० पृष्ठीय जैनदर्शन का विशिष्ट ग्रन्थ।

४. ~~कर्मरहस्य~~ – कर्मों के रहस्य की विशद किन्तु सरल विवेचना।

५. ~~कर्मसिद्धान्त~~ – जैनदर्शन के अनुसार १५० पृष्ठों में परिसमाप्य कर्मसिद्धान्त का दिदर्शन।

६. कुन्दकुन्द दर्शन – इसमें अध्यात्म का उपदेश है।

७. सत्यदर्शन – वेदान्त का परिचयात्मक ग्रन्थ अथवा जैनदर्शन की वस्तुव्यवस्था की प्रतिकृति।

८. सर्वधर्मसमभाव – साम्प्रदायिक समभाव पर मौलिक चिन्तन पूर्ण आलेख।

९. प्रभुवाणी – जीवन विकास में महनीय योगदान करने वाली सूक्तियों का संग्रह।

१०. अध्यात्मलेखमाला – जैनधर्म विषयक लेखों का संग्रह।

११. महायात्रा – क्षणिकवाद की जैनदर्शन के अनुकूल व्याख्या।

१२. श्रद्धाबिन्दु – समाजशास्त्र पर आधारित यह कृति अप्रकाशित है।

१३. जैनसिद्धान्तशिक्षण – जैनतत्त्वज्ञान के लिए प्रवेशिका स्वरूप।

१४. उपासना – पूजाओं का संग्रह।

१५. वर्णीदर्शन – वर्णी जीवन गाथा का संक्षिप्त संस्करण।

१६. समणसुत्तं – आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से जैनधर्म की सर्वमान्य पुस्तक, जिसमें ७५६ गाथाओं में जैनधर्म का सार समाहित है।

१७. जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश – जैन वाङ्मय का वर्णानुक्रम से संयोजित अनुपम कोश। जिसे भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया। क्षीणकाया से ज्ञानाराधना और लगन का चामत्कारिक परिणाम।

असातार्कम के तीव्रोदय से इन्हें क्षुल्लक पद का परित्याग करना पड़ा,

तब आप सामान्य श्रावक के रूप में रहते हुए भी अपने व्रतों को परिपूर्ण रीत्या पालन करते रहे।

अन्त की साधना :

सन् १९८३ में आपके मन में पुनः वैराग्य भाव उदित हुआ। संयोग से उस समय आचार्य श्री विद्यासागर जी ससंघ ईसरी में विराजमान थे। तब आपने २१ अप्रेल १९८३ को आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा ली। अब आप क्षुल्लक सिद्धान्तसागर के नाम से अभिहित हुए। इन्हीं के सानिध्य में आप अन्तिम समय की साधना में रत रहे। जिससे क्रमिक सल्लेखना को करते हुए २४ मई १९८३ को आपने इस विनश्वर शरीर का विसर्जन जीर्णतृणवत् कर दिया।

तत्त्वज्ञानी, जिनवाणी के सपूत, आत्मसाधक एवं कोशकार वर्णी जी वर्तमान लोक में न रहकर भी सदैव अमर रहेंगे।

क्षुल्लकमणि शीतलसागर

प्रकृति की विविधता उसके सौन्दर्य को और अधिक वृद्धिंगत करती है। शौर्य, पराक्रम और साहस के प्रतीक पर्वतशिखरों, वेगवान नदियों; समुद्र की तूफानी लहरों व रेगिस्तानी रेत पर सूर्य की चमचमाती रोशनियों से उपजा उष्णसौन्दर्य हर स्थान पर विभिन्नता के साथ पग पसारे शोभायमान है। किन्तु उसके लालित्य में छिपे दर्शन को प्रकृतिमय हुये ऋषि-मुनियों ने पहचाना।

वि.सं. १९८९ की आषाढ शुक्ल षष्ठी को अवतरित हुई इस विभूति ने पिता गोपीलाल और श्रीमती तुलसादेवी अग्रवाल की आंखों को आनन्दित किया। आपकेआगमन से सरखेडिया की तप्त भूमि भी सजल हो गयी। आपका नामकरण हुआ बद्रीलाल।

विरक्ति :

पूर्वागत संस्कारों ने बद्रीलाल जी को सम्मेदाचल में विराजमान आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज का संयोग कराया। चूंकि वैराग्य के लिये उम्र का कोई बन्धन नहीं होता, इसलिये जन्म व दीक्षाकाल में बहुत कम फासला रखते हुये आपने सन् १९५५ की आश्विन शुक्ल अष्टमी को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर। अब आपका नाम क्षुल्लक शीतलसागर के रूप विख्यात हो गया।

सृजनात्मक गतिविधियाँ :

शिष्यों सहित अध्ययन एवं मनन द्वारा आपने रचनात्मक कार्यों में सक्रिय सेवा करते हुये सदुपदेशाख्यानसंग्रहात्मक तीन भागों में, षड्द्रव्यादिगत्रि, गौतमचरित्र तथा आचार्य महावीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थ का संग्रहण कर उन्हें प्रकाशित कराने में अत्यन्त परिश्रम किया। आपकी कतिपय रचनायें अभी भी अप्रकाशित हैं, जिनमें परीक्षा मुख की टीका आदि उल्लेखनीय हैं।

अवागढ़ में आचार्य महावीरकीर्ति स्तम्भ तथा धर्मप्रचारिणी संस्था की स्थापना के साथ ही अनेक स्थानों पर पाठशालाओं की स्थापना, शिक्षण शिविर आदि के द्वारा शिक्षा के प्रचार-प्रसार में अपनी रुचि दर्शायी।

आपने जैनभजनों का निर्माण कर तथा अन्य अनेक पुराने कवियों की रचनाओं को आडियो कैसिट में डब कराकर जैनश्रद्धालुओं को नवीन आध्यात्मिक पाठ से जोड़ने का कार्य भी किया।

सल्लेखना :

जीवन पर्यन्त साधनारत रहते हुए आपने यथाशक्य मां जिनवाणी की सेवा की और अन्त में अवागढ की ही पवित्र भूमि पर सल्लेखना धारण कर समाधिपूर्वक इस तन को त्यागते हुए महाप्रयाण किया। आपके अभाव से साधुजगत् के एक सच्चे साधक की क्षति हुई, जिसकी पूर्ति कर पाना दुःसाध्य है।

❑

क्षुल्लक सिद्धसागर

जहां के कण-कण में चिन्तन की कोई न कोई चमक छिपी हो, जहां के चरवाहे और हलवाहे भी मुख से मन्त्रों की सुमधुर ध्वनि करते हों, वह भारतवसुन्धरा है। यहां की सांस्कृतिक परम्परा समृद्ध एवं ऊर्ध्वमुखी उपलब्धियों का यशोगान है।

परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ी से शृंखलित है एक नाम श्री सिद्धसागर जी का। झाबुआ जिले में सेठ चम्पालाल जी जैन की गणना प्रतिष्ठित परिवारों में होती थी। जिनशासन की सेवा और साधु वैयावृत्ति की भावना यहां की कुलपरम्परा थी। इसे ही अपना धर्म समझ पत्नी श्रीमती ढोलीबाई के साथ समतापूर्ण जीवनयापन करते हुये वि.सं. १९६९ को भाद्रपद शुक्ला पंचमी की पूर्णा तिथि में पुत्र मथुरादास ने

जन्म लेकर दम्पतियुगल के दाम्पत्य जीवन को पूर्णता प्रदान की। उत्तमक्षमा के दिन जन्मे श्री मथुरादास जी क्षमा की प्रतिमूर्ति स्वरूप ही थे।

शिक्षा :

लौकिक शिक्षा हेतु आपने स्कूल में प्रवेश किया और मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। बाद में धर्ममय संस्कारों ने आपको वैराग्य की संज्ञिता की ओर अग्रसर कर तत्त्वज्ञान के लिये कदम बढ़ाने के लिये प्रेरित किया।

वैराग्य का अंकुरण :

सत्संगति की निर्मलधारा से मथुरादास जी के चित्तदर्पण में वैराग्य का प्रतिबिम्ब उभरने लगा। निरन्तर निर्ग्रन्थ साधुओं को आहारदान देते-देते स्वयं निर्ग्रन्थता की ओर बढ़ चले और इन्दौर में पूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले संसार की माया-मोह को तिलांजलि दे दी।

चारित्र के पथ पर अग्रसर होते हुए वि.सं. १९९५ में पौष शुक्ला पंचमी को क्षुल्लकदीक्षा का सुयोग आपके जीवन में आया। आचार्य श्री वीरसागर जी ने आपको इन्द्रियों पर विजय कर वीरता प्राप्त करने के प्रमाण स्वरूप अब मथुरादास से क्षुल्लक सिद्धसागर बना दिया।

इन्दौर, कचनेर, कन्नड, कारंजा, सज्जनगांव, झालरापाटन, रामगंजमण्डी, नैनवां, सवाईमाधोपुर, नागौर, सुजानगढ, नारायणा, दूदू, केकडी, टोडारायसिंह, मदनपुरा, जयपुर, मौजमाबाद आदि स्थानों पर वर्षायोग कर धर्मप्रभावना करने में आपने जीवन को सार्थक किया।

सृजन की गति :

सदैव अपने आवश्यकों में सजग रहने वाले श्री सिद्धसागर जी गंभीर प्रवृत्ति के साधक थे। चित्त और वाणी की सरलता ने साहित्य के सृजन की ओर प्रवृत्त किया। आपने सरल भाषा में अनुवाद कर ग्रन्थों के मर्म को इतना स्पष्ट व बोधग्राही बना दिया कि वह आबालगोपाल के योग्य हो गये। आपकी स्वतन्त्र रचनाओं में आचार्य श्री वीरसागर जी की पूजन, संस्कृति शान्तिनाथ स्तोत्र, जीवंधर की वैराग्यवीणा, चिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजन, सत शिक्षा, पराक्रमी वरांग, लघुसमाधिसाधन आदि प्रमुख हैं।

ACE Scanner
PDF Scanner

अनुवादित कृतियों में सन्मतिसूत्र, धर्मरत्नाकर, ध्यानकोष, आराधनासमुच्चय, कम्मपयडिचूर्णि, पांच द्वात्रिंशतिकाएं, द्रव्यसंग्रह, भक्तामरस्तोत्र, अभयदेवकृत श्रावकाचार, श्री योगदेवकृत सुखबोध तत्त्वार्थवृत्ति एवं भगवती आराधना के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपने चारित्र की साधना करते हुए अन्तिम समय सल्लेखना को धारण कर मानव जीवन के पवित्र महल पर कशलारोहण कर अपने आप को धन्य किया।

क्षुल्लक गुणभद्रसागर

मानवीय आत्मा की गहराइयों में एक ऐसी चेतना छिपी होती है, जिसे हम सत्य की खोज, न्याय की मांग या सत्याचरण की ललक के नाम से जानते हैं। और यह चेतना ही हमारे जीवन का अनिवार्य अंग होता है।

इसी की अभिव्यक्ति हेतु मानव जीवनभर प्रयास करता है। इसी प्रयास में रत रहने वाले जिला टीकमगढ के खिस्टोन में श्री प्यारेलाल जी और श्रीमती भगवन्तीबाई के दाम्पत्य सुख में वृद्धि करते हुये जन्मे सुखलाल जी ने इस पृथ्वीतल पर अवतरण किया। मात्र १३ वर्ष की अवस्था में मां के देहावसान के पश्चात् पिता की छाया में बचपन व्यतीत हुआ।

शैक्षणिक दक्षता :

अपने गांव में कक्षा ४ तक पढ़ते हुये प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण किया। पश्चात् पांच वर्ष तक कुण्डलपुर में ब्र. गजाधरप्रसाद जी, ब्र. अमरचन्द जी एवं ब्र. गोकुलप्रसाद जी के संरक्षण में धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। आपने ईसरी में पं. शोभालाल जी से द्रव्यसंग्रह को आत्मसात् किया और द्रोणगिरि में क्षुल्लकश्री चिदानन्द जी महाराज से तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन किया।

पारिवारिक जीवन :

धार्मिक शिक्षण से अपने जीवन को संवारते हुये २२ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह गौरारानी के साथ सम्पन्न हुआ। दो पुत्र एवं तीन पुत्रियों से समृद्ध आपका परिवार सुख व समृद्धि के साथ धर्ममय संस्कारों से सम्पन्न रहा।

अभिरुचि :

आपको नाटकों से बड़ा लगाव था, परिणामतः आप कुछेक बड़ौदा नाटक मण्डलियों में कार्य करते रहे। आप कविहृदय भी थे। आपने प्रतिक्रमण कविता के रूप में भजनमाला को संग्रहीत कर मेरठ से प्रकाशित होने की स्वीकृति प्रदान की।

संयमानुपालन की दिशा :

संत-संगति के बढ़ते प्रभाव ने आपको विरक्ति की ओर अग्रसर किया। फलतः आपने क्षुल्लक आदिसागर जी से दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी से चौथी प्रतिमा ली। धार्मिक शिक्षा के समय ब्र. गोकुलप्रसाद जी को दिये गये वचन के अनुसार आपने ५० वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्यप्रतिमा गुरु अनन्तकीर्ति महाराज से ग्रहण की।

मुनि श्री नेमिसागर जी महाराज से ८० वर्ष की जर्जर अवस्था में आपने पवा जी के वार्षिक मेले के अवसर पर क्षुल्लक दीक्षा धारण कर जीवन में चारित्रिक विकास के चरण को पूर्ण किया। अन्त में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सानिध्य में अतिशय क्षेत्र पपौरा जी, टीकमगढ़ में २७-८-८६ को समाधि के साथ मानवजीवन की दुर्लभतम अवस्था को प्राप्त कर मृत्यु से साक्षात्कार किया।

क्षुल्लक इन्द्रभूषण

आध्यात्मिक चेतना के रूपान्तरण की एक प्रक्रिया है, जहां साधक सन्तों के समागम से अपनी साधना में नित नये सूत्रों को समाहित कर संसार की वास्तविकता को अपनी विवेकमय आंखों से साक्षात्कार कर उसकी अन्तस्तह तक पहुंच जाता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया उसकी चेतना को प्रखरता प्रदान करने के साथ दया, मैत्री, सरलता व सहजता जैसे मानवीय गुणों से ओतप्रोत करने में सहभागिता करती है।

मद्रास प्रान्त के आरणी तालुकान्तर्गत तच्चूर नामक कस्बे के निवासी पुन्नूस्वामी नैनार एवं श्रीमती पट्टम्माल नामक दम्पत्ति ने २४ अक्टूम्बर १९१० को पुत्ररत्न की प्राप्ति का आनन्द मनाया। माणिक्य नैनार नामक इस पुत्र का चित्त मणि की तरह निर्मल एवं सद्विचारों से सम्पन्न था।

ज्ञानार्जन एवं संयम की ...

आपने प्राइमरी तक शिक्षा ग्रहण की और कर्त्तव्यपरायण जीवन व्यती... करने में तत्पर हो गये। लेकिन परिवार में संसार की असारता का ज्ञान होने पर इसमें मुक्त होने की प्रबल इच्छा होने लगी। गुरु दर्शन होने पर तो यह और भी अधिक ... गयी। आपने सम्मेदाचल के पादप्रान्त ईसरी में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। तदनन्तर २० मई १९७० को शमनेवाडी में पूज्य आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के संघ में वैराग्य का वर्धन करते हुये क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। अब आप इन्द्रभूषण के नाम से विभूषित किये गये। आपने अपने व्रतों को सदा आभूषण रूप मान संवारा।

साहित्याभिरुचि :

लौकिक शिक्षा अत्यल्प होने पर भी आपने ज्ञान के क्षयोपशम को विकसित करने का प्रयास किया। और इसमें सफलता भी प्राप्त की। जिसके परिणामस्वरूप आपने कन्नड एवं तमिल में मंदरमेरुपुराण व जीवसम्बोधना आदि का अनुवाद कर अपने ज्ञान को विकसित कर लेने का प्रमाण प्रस्तुत किया।

जीवन पर्यन्त धर्मप्रभावना द्वारा समाज एवं धर्म का संवर्धन करते हुये आपने अपने व्रतों का पालन तो किया ही, साथ ही भव्य जीवों को भी आगे बढ़ने में मार्गदर्शन दिया। और अन्त में सल्लेखना पूर्वक मानव देह का परित्याग कर आपने चिरशान्ति लाभ की दिशा में कदम बढ़ाया।

क्षुल्लक ज्ञानसागर

अपरिचित जीवन पथ पर चलते हुये चरणद्वय निरन्तर गतिशील हो कब अपने गन्तव्य तक पहुंच जाते है यह उस साधक के अतिरिक्त कौन जान सकता है, जिसने साधना की दुर्गम राहों को आत्मवश हो पार किया है।

संयम :

बालक सूरजमल ने अपने जन्म से ही जगत् को प्रकाशित करने और अपने कार्यों से लोगों को जागृत करने का कार्य किया। सत्संगति का लाभ उठाते हुए

सूरजमल ने संवत् २०२१ को कोल्हापुर में आचार्य श्री विमलसागर जी से आसोज सुदी दशमी के दिन क्षुल्लक दीक्षा स्वीकार की।

कर्मक्षेत्र :

गुजराती एवं हिन्दी भाषा पर अच्छा अधिकार रखने वाले क्षुल्लक ज्ञानसागर जी ने अनेक स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मप्रभावना करते हुये अपने गहन अध्ययन व रचनाधर्मिता से जैन साहित्य को समृद्ध करने का प्रयास किया। आपको लेख व कविताओं के संग्रह कर उन्हें प्रकाशित करने की अभिरुचि तीव्र थी। जिनेन्द्रभक्ति, श्रुतस्कन्धविधान, श्रीसम्मेदशिखरविधान, सामायिकपाठ आदि अनेक रचनाओं को आपने स्वयं लिख कर जैन साहित्य भण्डार को सौंपी।

शिक्षा जगत् के अन्य कार्यों के साथ आपने विभिन्न स्थानों पर पाठशालाओं का निर्माण कराते हुए अनेक जिनालयों के निर्माण में सहयोग कर जैनधर्म की महती प्रभावना की।

क्षुल्लिका विशालमति

दृढसंकल्प जीवन का वह सेतु है, जिससे मानव अपनी दुर्गम मंजिल को भी प्राप्त कर लेता है। संकल्पधर्मिता के गुणों से सम्पन्न दक्षिण महाराष्ट्र के जिला कोल्हापुर के ग्राम चोकांक में जन्मी कन्या से आज वसुधा गौरवान्वित है।

दैवदुर्भाग्य के कारण आपने मात्र चार वर्ष की आयु में होने वाले बालविवाह के अवसर पर बिना फेरे लिये मंडप से भाग न केवल साहस का प्रदर्शन किया वरन् रूढियों व कुरीतियों से ग्रस्त समाज के विरोध में अपना कदम बढ़ाया।

संयम की आराधना :

मात्र चौदह वर्ष की आयु में पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज से ब्रह्मचर्यव्रत को ग्रहण कर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने वाली इस विदुषी ने ट्रेनिंग पास कर अध्यापिका के रूप में सेवा कार्य आरम्भ किया। अन्त में पूर्ण स्वतन्त्रता एवं शान्तिलाभ हेतु आपने बोरगांव में आचार्यश्री पायसागर जी से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर अपने संकल्प को सफल किया।

प्रेरणादान :

साहित्य एवं समाज सेवा में रत हो आपने 'महिलावैभव' नाम की मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। साथ ही एक कन्या पाठशाला की स्थापना कर जिनका प्रचार-प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। आपके सेवाकार्यों को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

शृंखलिका चतुष्कमति

भारतीय संस्कृति, जिसकी गौरवगाथा अनेक विध्वंसकों के बीच भी गुंजायमान रही, जिसने विश्व के समस्त देशों को मानवता का सन्देश दिया, जिसके कण-कण में त्याग-तपस्या के बीज बोये गये हों, संस्कारों के रूप में अंकुरित हो मानवता शृंगार हेतु समर्पित है।

समर्पण का यह सन्देश ही भारतीय संस्कृति की अस्मिता है। जिसे आत्मसात करने वालीं में अन्यतम हैं कुमारी शकुन्तला। पिता श्री छगनलाल जी एवं श्रीमती सोनुबाई जी की इस लाडली का जन्म १७ अप्रैल १९४४ को बैजापुर हुआ। ३ बहिनों एवं ४ भाईयों से भरा-पूरा परिवार खुशियों के बीच जीवनयापन करता हुआ आपको खीरनमाला के नाम से सम्बोधित करता था।

शिक्षा :

विद्याध्ययन में प्रवीण आपने बी.ए. आनर्स (स्वर्णपदक) से उत्तीर्ण की बाद में एच.एम.डी.एस. की वैद्यकीय उपाधि को प्राप्तकर आपने अपनी योग्यता का सम्पूर्ण परिचय दिया।

पारिवारिकजीवन :

सन् १९६६ में आपने डॉ. चन्द्रकान्त गुलाबचन्द दोशी के साथ गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। विवाहोपरान्त आप सौ. अनघा नाम से पुकारी जाने लगीं। आपका सांसारिक जीवन अत्यन्त सुखपूर्ण रहा।

आध्यात्मिक की ओर :

धर्मनिष्ठ परिवार में धार्मिक अभिरुचि रखने वाले पति के साथ आपने

विशेष आध्यात्मिक अध्ययन किया। तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, द्रव्यसंग्रह, प्रवचनसार जैसे गूढ ग्रन्थों का अध्ययनकर आपने अपने धार्मिक ज्ञान में अभिवृद्धि की।

विरक्ति के क्षण :

सुसंस्कारों ने पति को वैराग्य की ओर उन्मुख किया और उन्होंने दिगम्बर दीक्षा धारण की। अपनी संस्कृति और संस्कारों के अनुरूप आप भी पति की अनुगामिनी बनी और क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की।

लेखनाभिरुचि :

आपने द्रव्यानुयोग का विशेष अध्ययन कर तत्सम्बन्धी विषयों को स्पष्ट करने वाले अनेक चार्ट एवं उन्हीं को स्पष्ट करने वाली लघु पुस्तकें लिख जनसाधारण में श्रद्धायुक्त स्थान बना लिया।

सरल भाषामय आपकी वाणी जन-जन को अनायास ही आकर्षित कर लेती थी। आपकी कठोर आत्मसाधना, समर्पण एवं निरपेक्षवृत्ति सदैव स्मरणीय रहेगी।

❑

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद

जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर आदि उपाधियों से विभूषित ब्र. शीतलप्रसाद जी स्वयं एक संस्था थे। वे आदर्श कार्यकर्त्ता, कुरीतियों के निवारक, समाज सुधारक, अनेक विद्यालयों तथा छात्राश्रयों के संस्थापक, स्थिति और वृद्धि करने वाले, कई पत्रिकाओं के कुशल सम्पादक, ग्रन्थों के भाषानुवादक आदि थे। उन्होंने विरोधों कटु-आलोचनाओं, वाक्प्रहारों व उपसर्गों को खुशी से सहन करते हुए सम्पूर्ण भारतवर्ष में भ्रमण किया।

जीवनवृत्त :

आपका जन्म सन् १८७८ संवत् १९३५ में लखनऊ शहर के मोहल्ला मराय भ-अलीखां के कालामहल नाम से विख्यात हवेली में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती नारायणीदेवी और पिता श्री मक्खनलाल था। आप चार भाई एवं एक छोटी बहिन थी।

विद्याभ्यास :

आध्यात्मिक ग्रन्थों के रसास्वादी इनके पितामह श्री मंगलसेन जी शीतलप्रसाद को ८ वर्ष की उम्र से अपने साथ कलकत्ता ले गये थे। यहीं पर अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त की। सन् १८९६ में मैट्रिक की परीक्षा प्रथमश्रेणी से उत्तीर्ण की और घर पर दादा जी से धार्मिक शिक्षा/संस्कार भी प्राप्त किये।

परिवार व पोषण :

सन् १८९३ में १५ वर्ष की उम्र में कलकत्ता निवासी छेदीलाल गुप्त की कन्या से विवाह हुआ। वैष्णव संस्कारों में पली अपनी सहधर्मिणी को शीतलप्रसाद जी ने जैन संस्कारों में ढालकर श्रद्धालु श्राविका बना दिया।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर आप लखनऊ लौट आये। यहीं पर गोप कम्पनी में एकाउन्टेंट की नौकरी की। वर्ष १९०१ में रुड़की सिविल इंजीनियरिंग कालेज से एकाउन्टेंटशिप का प्रमाणपत्र प्राप्त कर रूहेलखण्ड रेलवे में कार्य करने लगे। इस नौकरी से अतिरिक्त समय को स्वाध्याय और समाज सेवा में लगाते थे।

विरक्ति :

इनके पिताश्री मक्खनलाल जी का सन् १९०३ में देहावसान हो गया। अनन्तर सन् १९०४ में एक मार्च को माता श्रीमती नारायणीदेवी तथा १३ मार्च को ग्यारह वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद महामारी की बीमारी में पत्नि व १५ मार्च को १८ वर्षीय युवा भ्राता पन्नालाल के स्वर्ग सिधारने की घटना ने इन्हें संसार की असारता के प्रत्यक्ष दर्शन करा दिये। ज्ञानार्णव, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय का मन पर काफी गहन प्रभाव था फिर भी, उठने वाली क्षोभ की तरंगें कभी भी इतनी बलवती हो जाती कि आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती। इस घटना से वैराग्य भी इतना पुष्ट हुआ कि सारे सांसारिक प्रलोभनों को त्याग कर १९ अगस्त १९०५ में नौकरी से भी मुक्ति प्राप्त कर ली। इस समय तक आपने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य कर लिये थे। वे दिगम्बर जैन अवध प्रान्तीय सभा के उपमन्त्री, महासभा की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य आदि बनकर इनके अधिवेशनों में रचनात्मक एवं क्रियात्मक कार्य करने में सक्रिय रहे।

ब्रह्मचर्यव्रत :

सोलापुर में १३ सितम्बर १९०९ को ऐलक श्री पन्नालाल जी के केशलोंच की तिथि निश्चित हुई। उस अवसर पर श्री शीतलप्रसाद जी ने ऐलक जी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

जैन परिषद् की स्थापना :

सन् १९२३ में जैन महासभा दिल्ली के अधिवेशन में रूढ़िवादिता और प्रगतिशील विचारकों में मतभेद हो जाने से ब्रह्मचारी जी के नेतृत्व में प्रगतिवादियों ने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् की स्थापना की। इनमें प्रमुख थे बैरिस्टर चम्पतराय जी, श्री अजितप्रसाद जैन एवं बाबू कामताप्रसाद जी। इस परिषद् ने समाज सुधार हेतु विशेष प्रस्ताव पारित किये।

संयुक्त प्रान्तीय सभा :

ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से महासभा के कानपुर अधिवेशन के अवसर पर सन् १९२१ में संयुक्त प्रान्तीय सभा की स्थापना हुई, जिसने अत्यन्त सुचारु रीति से कार्य किया।

बंगीय सार्वधर्म परिषद् :

आरा निवासी देवेन्द्रप्रसाद जी और पं. पन्नालाल जी ने ब्रह्मचारी जी की सलाह से सन् १९२२ में बंगीय सार्वधर्म परिषद् की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य बंगाली भाषा में जैनधर्म के साहित्य का प्रकाशन और प्रचार करना था।

सामाजिक अवदान :

ब्रह्मचारी जी समाज में व्याप्त अन्धविश्वास एवं रूढिवादिताओं को मिटाकर स्वच्छ समाज देखना चाहते थे। अत एव उन्होंने अनेक सुधार कार्य किये।

१. समाज में बालविधवाओं की दयनीय स्थिति देखकर उन्हें पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिए बालविधवाविवाह का समर्थन कर उसे श्रेयस्कर समझा।

२. जैन समाज के अन्तर्जातीय विवाहों के प्रबल समर्थक रहे और इसका प्रचार किया।

३. समाज में व्याप्त दस्सा-बीसा विवाद, जिसमें इन्हें पूजापाठ से वंचित रखा जाता था, का खुलकर विरोध और उन्मूलन किया।

४. वरणाक्षोज की समाप्ति पर विशेष बल दिया।

५. वे जैन समाज के झगड़े पंचायत से सुलझाने के पक्ष में रहे। उससे दलों की बचत हो तथा आपसी प्रेम भी बना रहे।

६. महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु वे संकल्पित थे। मगवे महिलाश्रम बम्बई, दिल्ली एवं जैन बालाविश्राम आरा आदि विभिन्न महिला संस्थाओं की स्थापना की जिसमें बहिन मगनबाई एवं ब्र. चन्दाबाई का उल्लेखनीय योगदान रहा।

७. संशोधित प्रतिष्ठापाठ का सृजन कर बाहरी रूप मेले आदि के बहिष्कार एवं प्रतिष्ठा के समय में एक ही प्रतिमा के समर्थक थे।

८. सन् १९४० में तारण-तरण समाज के मूर्तिपूजा विरोधी विवाद को ब्रह्मचारी जी ने समाप्त किया।

आप सन् १९०५ में श्री माणिकचन्द्र सेठ के अनुरोध पर बम्बई चले गये। आपकी प्रेरणा से ही सेठ जी ने बम्बई, सांगली, आगरा, सोलापुर, कोल्हापुर, लाहौर आदि अनेक स्थानों पर धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की।

साहित्यसृजन के मेरु :

ब्रह्मचारी जी के प्रयासों से अप्रेल सन् १९०२ से जैन गजट आरा के स्थान पर लखनऊ से पाक्षिक के रूप में मुद्रित होने लगा। एक फरवरी १९०५ से यह साप्ताहिक कर दिया गया और सन् १९०८ में इसे ब्र. शीतलप्रसाद जी ने पं. श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार को सौंप दिया।

सन् १९०९ से १९२१ तक जैनमित्र का सम्पादन कार्य किया। समाज सुधारवादी आलेख तथा विभिन्न विषयों पर उपयोगी सामग्री पाठकों को प्रदान की।

सन् १९२३ से ही जैन परिषद् के मुखपत्र 'वीर' का सम्पादन कार्य भी सहसम्पादक बाबू कामताप्रसाद जी के साथ किया। सन् १९२६ में वे लखनऊ पधारे। वहां कुछ धर्म पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद हेतु श्री अजितप्रसाद जी को

प्रोत्साहित कर प्रकाशन किया। सन् १९२७ में विभिन्न संस्थाओं के सभी पदों से त्यागपत्र दे दिया।

ब्रह्मचारी जी की यशस्वी लेखनी ने ७६ ग्रन्थों को निर्मित किया। इनमें बड़े ग्रन्थ ३०, छोटी पुस्तकों २४ और २२ ग्रन्थों की हिन्दी टीकाएं हैं।

इस प्रकार ४० वर्षीय ब्रह्मचर्यकाल में समाज को विपुल साहित्य-सामग्री प्रदान की, जो उनके प्रतिदिन लगभग १२ घण्टे स्वाध्याय एवं ज्ञानार्जन का प्रतिफल है।

'जैनधर्म राष्ट्रधर्म बन सकता है, यदि उसका प्रचार किया जाये।' ऐसा उनका दृढविश्वास था। वे जैनधर्म का विदेशों में प्रचार-प्रसार करना चाहते थे, पर उनकी यह इच्छा अस्वस्थता के कारण पूर्ण न हो सकी। फिर भी आपने सप्तम प्रतिमाधारी श्रावक होने पर साधुसदृश विहार कर उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम, सभी ओर धर्मप्रचार किया।

वे रेलयात्रा के लिए सदैव तैयार रहते थे। यात्रा के दौरान उपवास तथा तीसरे दर्जे की यात्रा का उपयोग करते थे। चलती ट्रेन में बिना कोई कठिनाई के लेखनकार्य और सामायिकादि करते रहते थे। उनकी इस वृत्ति के कारण कुछ मनोविनोदी लोग उन्हें रेलकाय का जीव कहा करते थे।

उपाधियां :

२८ दिसम्बर सन् १९१३ को स्याद्वाद महोत्सव काशी में डॉ. जैकोबी की अध्यक्षता में, गुरुवर पण्डित श्री गोपालदास जी बरैया के अनुमोदन पूर्वक ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसाद जी को 'जैनधर्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

८ नवम्बर १९२४ को इटावा में सकल जैन पंचान ने जैन शिक्षा प्रचारक समिति तथा जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा की ओर से अभिनन्दन पत्र तथा धर्मदिवाकर की उपाधि समर्पित की गई। पर वे इनसे निर्लिप्त रहे।

व्याधि एवं अन्त :

अन्त के कुछ वर्षों से ब्रह्मचारी जी को वायुकंप का रोग हो गया, जिससे उनके हाथ कांपने लगे तथा अंगुलियां हिलती रहने केकारण लेखनकार्य प्रभावित हुआ। कुछ समय बाद तो पैर भी लडखडाने लगे। सन् १९३८ से अन्त तक बम्बई में चिकित्सा चलती रही। जुलाई १९४० में रुग्णावस्था में लखनऊ आये। यहां

अतिमाश्रम में भक्तों की सेवा/वैयावृत्ति से लाभ मिला। ६ जनवरी १९४२ की रात्रि में गिर जाने के कारण कूल्हे की हड्डी टूट गयी जिससे प्लास्टर बंधा। प्लास्टर के अन्दर घाव हो जाने पर बेहोशी की दवा का प्रयोग किये बिना ही आपरेशन कराया। रुग्णावस्था में भी दैनिकक्रियाओं को नियमित करते रहे। अन्तिम समय में श्रीयुत न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार जी, बनारस वालों से धर्मोपदेश का श्रवण किया। १० फरवरी सन् १९४२ को आत्मानुभवानन्दसागर में गोते लगाते हुए प्रातः ४ बजे उन्होंने अन्तिम श्वांस ली।

ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसाद जी निःस्वार्थ-हितचिंतक और सुधारवादी समाजसेवक के रूप में जन-जन के हृदय में विराजमान हैं।

ब्र. कस्तूरचन्द नायक

जबलपुर जैन समाज में अग्रणी स्थान रखने वाले ब्र. कस्तूरचन्द जी नायक एक विशिष्ट विद्वान्, कुशल प्रवचनकार, साहित्यसृजेता तथा धर्म और शिक्षा के प्रचारक थे। साहित्य सेवा, समाज सेवा के साथ जैनदर्शन के सिद्धान्तों की नींव को उन्होंने सुदृढ़ किया।

जन्म :

जबलपुर जैन समाज में 'नायकवंश' के प्रतिष्ठित घराने में माघ वदी त्रयोदशी सं. १९५३ को आपका जन्म पिताश्री स्व० किशोरीसिंह के घर हुआ था। पन्ना जिले में इनके पूर्वजों को ३०० वर्ष पूर्व राज्य कार्य में विशेष दक्षता रखने के कारण 'नायक' की पदवी प्रदान की गयी थी। ये बाद में किसी कारणवश जबलपुर में रहने लगे।

ज्ञानाराधना :

आपने सं. १९६८ में ५ वीं अंग्रेजी तक लौकिक शिक्षा ग्रहण की। माता-पिता के धार्मिक संस्कारों का प्रभाव तथा बुआ की प्रेरणा से सर्वप्रथम पद्मपुराण का स्वाध्याय किया। इनकी प्रखरबुद्धि तथा तीव्र लगन को देखकर स्व० पण्डित श्री पुसऊलाल जी ने इन्हें द्रव्यसंग्रह, छहढाला, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, आलापपद्धति, लघुसिद्धान्तकौमुदी, हितोपदेश आदि आगम शास्त्रों का अध्ययन कराया।

पारिवारिक जीवन :

यथावसर सुमतिबाई नायक कन्या से इनका विवाह हुआ। इनके ८ पुत्र और ५ पुत्रियां हुई, जिनमें ५ पुत्र और एक पुत्री जीवित रही। गृहस्थ जीवन के निर्वाह हेतु ये कपड़े का व्यापार करते थे। आप व्यापारकुशलता के लिए याद किये जाते थे।

तीस वर्ष की अवस्था से ही संग्रहणी रोग से पीड़ित होने पर भी कुशलता पूर्वक गृहस्थ धर्म का निर्वाह किया और अपने गुरु पूरनलाल जी के दाहिने हाथ बन गये। उनके साथ पाठशाला में अध्यापन कार्य में सहयोग किया। उनकी ही आज्ञा से शास्त्र प्रवचन का कार्य भी अत्यन्त मनोयोग से सन् १९४५ तक किया। बाद में यह कार्य अपने शिष्य हरिश्चन्द्र को सौंप दिया।

धार्मिक अभिरुचि के साथ सामाजिक गतिविधियों में भी नायक जी का सक्रिय योगदान रहा। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वि.सं. १९७८ में जबलपुर समाज में श्री सद्दूलाल बट्टीलाल जी तथा श्रीमती जमनाबाई धर्मपत्नी श्री भैयालाल जी दात्तजू ने युगल गजरथ चलाने का आयोजन किया। उस समय इसे सफल बनाने के लिए छह माह तक विशेष रूप से हाथ बटाया। आयोजन आरम्भ होने के १५ दिन पूर्व किसी कारण से कार्यकारिणी समिति भंग हो गई तब आपने सिंघई मुन्नालाल जी और सिंघई गरीबदास जी के सहयोग से इस महान् कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया।

जबलपुर शिक्षा मन्दिर की योजना में विशिष्ट योगदान किया। समय-समय पर कवलचन्द्रायण व्रत जैसे व्रतों का विशेष आयोजन किया। विभिन्न स्थानों की समाज के आमन्त्रण पर वहां जाकर अपने प्रवचनों की छाप छोड़ी।

वैराग्य :

द्वितीय महायुद्ध के समय दुकान पर किसी ग्राहक से भूल-चूक वश नायक जी ने एक पैसा अधिक ले लिया। यह भूल/घटना उनके लिए टीस का कारण बन गई। और पश्चात्ताप रूप में दुकान अपने ज्येष्ठ सुपुत्र को सौंपकर व्यापारादि से विराम ले लिया। तदुपरान्त आप सिवनी में मुनि श्री सुमतिसागर जी से द्वितीय प्रतिमा धारण कर उसका पालन करने लगे।

वर्णी जी का समागम और साहित्यसृजन की प्रेरणा :

मुनि श्री से प्रतिमा धारण करने के कुछ समय बाद सन् १९४५ में जबलपुर

[illegible] पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी का आगमन हुआ। उनके सत्समागम से नायक जी के परिणाम विशुद्ध होते चले गये। फलस्वरूप उन्होंने अनेक बार वर्णी जी से क्षुल्लक एवं मुनि दीक्षा प्रदान करने हेतु अनुरोध किया पर उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आजीवन ब्रह्मचर्यप्रतिमा पालन को ही श्रेयस्कर मार्ग बतलाया। वर्णी जी के ही समक्ष रहते पंचम और कालान्तर में षष्ठ और सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर उनका आजीवन दृढ़तापूर्वक पालन किया। इसके साथ ही मुनिसंघ की व्यवस्था करने व त्यागियों को अध्ययन कराने में विशेष सहयोग करते रहे। आपने पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के साथ आये श्री मनोहरलाल जी वर्णी, श्री चिदानन्द जी, श्री बालचन्द जी इत्यादि विद्वानों को भी अध्ययन कराया।

फिरोजाबाद में पंचकल्याणक के अवसर पर अनेक विद्वानों के मध्य पूज्य वर्णी जी से रामायण की रचना की प्रेरणा प्राप्त कर उसे लिखने का आश्वासन दे वर्णी जी को निराकुल किया। वर्णी जी ने उन्हें कार्य की सफलता का आशीर्वाद दिया।

पूज्य वर्णी जी की प्रेरणा और आशीर्वाद से आधुनिक युग की मांग के अनुरूप नायक जी ने 'सरल जैन रामायण' की रचना की। यह कृति न्याय, व्यवहार, राजनीति, संयम, शिष्टाचार आदि से परिपूर्ण तथा आबालवृद्ध के लिए उपयोगी है।

इसके साथ शारीरिक कष्टों को सहन करते हुए अनेक शास्त्रों की रचना आपने की। यथा - अध्यात्म की कुंजी, आध्यात्मिक आल्हा, परमात्मप्रकाश पद्यावली, सच्चे सुख का सरल उपाय, पद्मपुराण पद्यावली, ज्ञानामृत। आपने अनेक नाटकों का सृजन किया है, जो मंचित होकर अत्यन्त सफल रहे। उनमें शीलधर्म, स्वभाव की भूल, गुरु ही सच्चा मित्र, ज्ञानरहस्य, महावीरस्वामी का पवित्र उपदेश, आत्मज्योति, त्याग का महत्त्व, क्रोध दुःख का भण्डार, अपने स्वभाव की भूल, क्षमा सुख का भण्डार और झूठी माया आदि प्रसिद्ध हैं।

सम्मान :

आपकी विद्वत्ता, सरलता, विशिष्टप्रतिभा, विलक्षणता से प्रभावित हो आपको अनेक पदवियों से विभूषित किया गया। अमरावती में प्रतिमा प्रतिष्ठा के समय श्री विशालकीर्ति जी भट्टारक के सानिध्य में नायक जी को ससम्मान

'अध्यात्मभूषण' की उपाधि से सुशोभित किया गया। सिवनी समाज के आग्रहवश पर वहां चातुर्मास के लिए गये। वहां के निवासियों के समक्ष ने श्री राजेन्द्रसिंह की उपस्थिति में 'न्यायरत्नभूषण' की पदवी से विभूषित किये गये।

अपूर्व विद्वत्ता एवं समाधिमरण :

श्री मनोहरलाल जी वर्णी द्वारा लिखित जीवनधारा वर्णी का अध्ययन उस समय किया तब जीवन काल के दो माह शेष थे। अध्ययनोपरान्त उन्होंने श्री वर्णी जी तथा सभी त्यागीगण के समक्ष कहा मैं एक हमने में जीवनधारा का नक्शा बनाकर देता हूं। जिससे समझने में सुविधा होगी। 'अत्यन्त क्षीण अवस्था होने हुए भी दिन-रात एक करके बड़े-बड़े चार नक्शे तैयार कर वर्णी जी को सौंपे। नक्शों का अवलोकन कर वर्णी जी का हृदय फूल गया और नायक जी से कहा - 'आपका ज्ञान विशाल है।'

आयु का एक माह शेष रहने पर उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलवाकर उसके माथे पर तिलक लगाकर उसे उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इसी समय से भोजन तथा समस्त चिकित्सा/उपचारों का त्याग कर दिया। अनेक उपसर्गों को शान्ति से सहन करते हुए सल्लेखनाव्रत के साथ ब्रह्ममुहूर्त में ॐ ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए ५.१५ बजे रविवार, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया सं. २०१४ सन् ३.३.१९५७ को इस नश्वर देह से मुक्ति प्राप्त की।

❑

ब्र. दीपचन्द वर्णी

निर्भीक, कर्तव्यनिष्ठ, समाजसेवी, उत्कृष्टकोटि के लेखक तथा वक्ता के रूप में ख्यातिप्राप्त थे दीपचन्द जी वर्णी। आपका जन्म होशंगाबाद जिले के नरसिंहपुर में माघ शुक्ला पंचमी वि.सं. १९३६ को हुआ था। आपके पिता श्री नाथूराम बजाज परवार समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

ज्ञानार्जन एवं पारिवारिक जीवन :

श्री दीपचन्द जी ने अपने जन्म स्थान पर ही हिन्दी में नार्मल और अंग्रेजी में मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की थी। अनन्तर स्वयं ने ही अभ्यास कर चित्रकला और सिलाई आदि में विशेष दक्षता प्राप्त की।

शिक्षा प्राप्त [illegible]
बीच उनका विवाह हुआ। किन्तु [illegible] का भी
आपको दूसरा विवाह कराना पड़ा। पर वि.स. १९८० में दूसरी पत्नी का भी
वियोग सहना पड़ा।

उदासीनता :

दो पत्नियों के वियोग के फलस्वरूप संयोगों की क्षणभंगुरता का एहसास चित्त की गहराई तक पहुंच गया। वे सांसारिक प्रपंचों से परे आत्मसाधना की ओर बढ़ चले। पिताजी के व्यापार कार्य से विराम ले अध्यापन का कार्य किया। वि. सं. १९६३ में ऐलक श्री पन्नालाल जी के सानिध्य में श्री वर्णी जी ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अनन्तर कुछ समय पश्चात् पूज्य बाबा श्री भागीरथ जी के समीप ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। सागर विद्यालय तथा अन्य संस्थाओं की देखरेख तथा समाज सेवा ही उनकी दिनचर्या बन गयी थी। पूज्य वर्णी जी के सानिध्य में आपने अपना अधिकांश समय बिताया।

समाधिसुधापान :

ब्र. दीपचन्द जी समाजसेवा, प्रवचन आदि कार्यों में समय का सदुपयोग करते हुए आत्माभिमुख होते गए। अन्त में फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा वि.सं. १९९४ को समाधिपूर्वक तन त्याग किया।

❑

ब्र. प्रेमसागर

श्री प्रेमसागर जी बालब्रह्मचारी तो थे ही साथ में एक कवि और जैनधर्म तथा जिनवाणी के सच्चे सेवक थे। पन्ना जिले के रैपुरा ग्राम में इनका जन्म वि. सं. १९५० में हुआ था। ये गोलालारीय जाति के गोत्र पंचरत्न में पिता श्री रामलाल और माता धर्माबाई के परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनका प्रथम नाम गोरेलाल उर्फ प्रेमचन्द पंचरत्न था। इनकी एक बहिन थी, जिसका विवाह पवई (पन्ना) में हुआ था। इनके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी।

शिक्षा व व्यवसाय :

पिताजी ने श्री गोरेलाल को घर पर ही सामान्य हिन्दी का ज्ञान कराया।

घर की स्थिति कमजोर होने से ये ग्यारह वर्ष की आयु में ही पिताजी को व्यापार में सहयोग प्रदान करने लगे। इनका व्यापार सीखना ही नहीं हो सका कि पिताजी का देहावसान हो गया। इस समय आप १६ वर्ष के थे। छोटे होने के कारण व्यापार न संभाल सके। अत: कस्बा मड़ौली में पूजन का कार्य तीन वर्ष तक किया, फिर सिहोरा से कटंगी गये जहां श्री गोकुलप्रसाद जी के उपदेश से नवीन पाठशाला की स्थापना हुई थी, उसमें योग्यता न होने पर भी अध्यापन कार्य किया और साथ में चौधरी परमानन्द जी से पढ़ते भी रहे।

श्री प्रेमसागर जी की अध्ययन के प्रति रुचि थी और पं. तुलसीराम जी के बुलाने से अध्यापन कार्य छोड़कर अध्ययन हेतु बनारस चले गए। वे यहां एक वर्ष ही अध्ययन कर पाये कि उन्हें पुन: वापिस आना पड़ा। इससे उनकी साहित्य के अध्ययन की रुचि तीव्र हो गयी। एक बार बहिन के यहां गये और उसे भी पढ़ाया, फिर भिण्ड गए और एक वर्ष तक वहां के विद्यालय में अध्ययन किया। तत्पश्चात् परिषद् के प्रचारक बने।

काव्यसृजन एवं समाजसेवा :

कटंगी के समीप कैमोरी के सिंघई श्री मोहनचन्द जी कवि से भेंट हुई। उनसे कविता बनाने के लिए छन्द, मात्रा, यगण, मगण आदि सीखा और अपने भावों को छन्दोबद्ध करने लगे।

वैराग्यभाव :

एक बार इन्हें ललितपुर में मुनिदर्शन का अवसर मिला। मन में वैराग्य भावना उद्‌बुद्ध हुई। ये अपनी बहिन के साथ भिण्ड गए वहां विराजमान १०८ मुनिश्री शान्तिसागर जी से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लिया। तभी से बालब्रह्मचारी रहकर जीवनभर इस व्रत का पालन किया।

ब्र. प्रेमसागर जी ने अनेक कविताओं की रचना की तथा जैन साहित्य से समाज में विशेष स्थान प्राप्त किया।

❑

ब्र. पं. गौरीलाल सिद्धान्तशास्त्री

ऐसे महान् व्यक्तित्व अल्प ही हैं जिनके लौकिक जीवन के विषय में जानकारी न हो और उनका कार्य/सेवा ही यथार्थ परिचय हो। ब्र. पं. गौरीलाल जी शास्त्री की गणना इनके ही अन्तर्गत है। इनका आरम्भ से ही अध्ययन के प्रति लगाव था। तत्कालीन परिस्थितियां इनके अध्ययन में बाधक न बन सकीं। कारण कि इन्होंने छद्मवेश में रहकर ब्राह्मण विद्वानों से संस्कृत का अध्ययन किया। अनन्तर जैनबिद्री तथा मूडबिद्री में रहकर जयधवला आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया।

सेवाकार्य :

संस्कृत के अध्ययन के उपरान्त श्री गौरीलाल ने सर्वप्रथम मथुरा में दिगम्बर जैन महाविद्यालय की स्थापना कर उसे जैन शिक्षा का केन्द्र बनाया। पद्मावती परिषद् की स्थापना कर पद्मावती पुरवाल नामक पत्र निकाला। वे स्वयं इस पत्र के सम्पादक बने। कुछ समय पश्चात् 'शास्त्रि परिषद्' की स्थापना की। इनके सम्पादकत्व में 'जैनसिद्धान्त' पत्र का भी प्रकाशन आरम्भ हुआ।

योग्यता एवं व्रताचरण :

पंडित जी विद्वद्वर्य तो थे ही। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो उन्हें 'धर्मदिवाकर', 'जातिभूषण' आदि पदवियों से सम्मानित किया गया था।

आपने जीवन का सच्चे अर्थों में पोषण किया। अपने ज्ञान की सुगन्ध के साथ चारित्र भी जीवन में धारण किया। आपने सात प्रतिमा के व्रत लेकर इस मानव तन को चिर पवित्र बनाने का प्रयास किया।

अन्त में आत्मसाधना में तत्पर रहते हुए वि.सं. १९९७ में आपका स्वर्गवास समता परिणामों के साथ हुआ।

ब्र. श्रीलाल काव्यतीर्थ

गुरु जी के रूप में प्रसिद्ध श्रीलाल जी यथार्थ में श्री (लक्ष्मी) के लाल ही थे। इनका जन्म टेह (आगरा) में सन् १८९६ को हुआ था।

विद्यार्थी जीवन :

श्रीलाल जी जन्म से ही प्रखर बुद्धि के थे। आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अनन्तर अध्ययनार्थ बनारस चले गये। वहां १२ वर्ष की अल्पायु में ही व्याकरण प्रथमा उत्तीर्ण कर कलकत्ता विश्वविद्यालय से काव्यतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९१२ तक इनकी गणना प्रौढ विद्वानों में होने लगी।

गृहस्थजीवन एवं समाजसेवा :

समयानुसार श्रीलाल जी का विवाह हुआ पर आपको इस सुख का अल्पकाल ही अनुभव रहा। पुत्री को जन्म देने के बाद ही पत्नी का देहावसान हो गया। पुनर्विवाह होने पर द्वितीय पत्नी का भी पूर्व पत्नीवत् निधन हो गया। यह घटना इनके वैराग्य का विशेष कारण बन गई।

आपने राजेन्द्रकुमार कुंवर जी के साथ व्यावसायिक बुद्धि के कारण आशातीत सफलता प्राप्त की। आपके और पण्डित श्री गजाधर के सहयोग से पण्डित पन्नालाल जी बाकलीवाल ने जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था की स्थापना की। इस संस्था ने राजवार्तिक, समयप्राभृत, पत्रपरीक्षा, शब्दार्णवचन्द्रिका, जैनेन्द्रप्रक्रिया जैसे अनुपलब्ध ग्रन्थ तथा गोम्मटसार टीका (टोडरमल जी), मकरध्वजपराजय, आराधनासार, पद्मपुराण, विमलपुराण आदि ग्रन्थों का प्रकाशन किया। पं. पन्नालाल बाकलीबाल ने कलकत्ते में शुद्ध प्रेस खोला जिसमें सरेस के बेलन के स्थान पर कम्बलों के बेलन का प्रयोग किया गया था। छपे हुए ग्रन्थों के विरोधी वातावरण में भी श्री बाकलीबाल बढ़ते गये। इसी प्रेस में एक बौद्धभिक्षुक ने कातन्त्रव्याकरण और श्री जगरूपसहाय वकील ने ब्रह्मचारी जी की कृति सर्वार्थसिद्धि छपवाई। यह संस्था पं. श्री निवास जी शास्त्री और पं. मक्खनलाल जी न्यायालंकार के सहयोग से निरन्तर आगे बढ़ती रही। यहां से 'विनोद' मासिक पत्र भी निकला।

सेवाकार्य :

ब्रह्मचारी जी ने ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ साहित्य सृजन भी किया। उनके द्वारा लिखित संस्कृत व्याकरण के दो भाग अत्यधिक प्रशंसित व लोकप्रिय हुए। वे दोनों भाग संस्कृतभाषा समुद्र के संतरण को जलयान के सदृश हैं।

त्यागपथानुशीलन :

श्रीलाल जी गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी उससे विरत तो थे ही, साथ ही एक बार श्रीशिखरजी की यात्रा के समय वहां विराजमान आचार्य श्री वीरसागर जी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा अंगीकार की। अनन्तर तीर्थयात्रा पूर्ण कर पूर्ववत संस्था के कार्यों में संलग्न हो गये।

ब्रह्मचारी जी दृढनिश्चयी तथा अनुकूलता-प्रतिकूलता में अविचलित रहते थे। एक बार १५ अगस्त १९४७ को जी.टी. रोड हावडा में आपकी फर्म मुस्लिम व्यक्तियों द्वारा घेर ली गई तो भी समीचीनदृष्टि से वे विचलित नहीं हुए।

सेवाकार्य :

ब्रह्मचारी जी साहित्य एवं समाजसेवा के साथ संस्था की उन्नति में तन्मय रहे। सन् १९५६ में संस्था के श्री महावीर जी आने पर उन्हें नये सहयोगी मिले। इनमें संहितासूरि पं. सूरजमल जी भी थे जो इनके अनन्य मित्र रहे।

श्रीलाल जी ने संस्था सेवा के साथ अनेक जैन-अजैन विद्याविहीनों को विद्यादान दिया और आजीविका विहीनों को आजीविका के योग्य बनाया। उनकी ही प्रेरणा से टेहू ग्राम में एक ऐसा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय खोला गया, जिसमें नि:शुल्क शिक्षा की सुव्यवस्था थी। इस विद्यालय ने अनेक विद्वानों और श्रीमन्तों को जन्म दिया। व्रतियों के लिए आश्रम निर्माण तथा संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की उनकी भावना तीव्र रही।

एक धोतीकुर्ता से ही जीवनयापन करते हुए, सात्त्विकवृत्ति के धारी और सेवाकार्य में निरत ब्र. श्रीलाल जी काव्यतीर्थ अपने सुकार्यों से सदैव स्मृतिपथ पर आते रहेंगे।

PDF Scanner ACE Scanner

ब्र. मूलशंकर देसाई

जीवन-परिचय :

श्वेताम्बर परम्परा को त्यागकर दिगम्बर जैनधर्मानुयायी बनकर उसकी प्रभावना और प्रचार करने वाले ब्र. मूलशंकर जी देसाई की जीवन विषयक जानकारी आज भी अनुपलब्ध है। ये राजकोट (सौराष्ट्र) के निवासी थे। इनके पिताश्री कालीदास जी और माता श्रीमती उजमबाई थीं।

ब्रह्मचर्यदीक्षा :

'मोक्ष का यथार्थ साधन दिगम्बर धर्म है' यह निश्चय करके दिगम्बरधर्म को स्वीकार किया। तत्पश्चात् परम पूज्य १०८ आचार्यश्री सूर्यसागर जी महाराज से ब्रह्मचर्यप्रतिमा धारण कर विधिपूर्वक उसका निर्वाह किया।

प्रभावक कार्य :

श्री ब्रह्मचारी जी स्वाध्याय में रत रहते, जिससे उनके ज्ञान का पर्याप्त विकास हुआ। वे कुशल एवं प्रभावक वक्ता भी थे। देश में अनेक स्थानों पर भ्रमण करके और चातुर्मास करके प्रवचन/धर्मोपदेश द्वारा जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया और जनता को सन्मार्ग पर लगाया।

श्री पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी और श्री देसाई जी दोनों के गुरु आचार्य श्री सूर्यसागर जी ही थे। अत: इन दोनों में विशेष अनुराग था। अध्यात्म की विशेष रुचि होने से देसाई जी की वर्णी जी के प्रति अनन्यश्रद्धा थी और बहुत समय तक उनके सानिध्य में रहकर सत्संग का लाभ उठाया।

साहित्य सेवा :

जिनसिद्धान्त, निमित्त, भेदज्ञान, पंचलब्धि, तत्त्वार्थसूत्र सटीक, गुणस्थान, दृष्टिकोण, तत्त्वसार, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, पंचभाव, गुरु का स्वरूप, देव का स्वरूप तथा भक्ति, शास्त्र का स्वरूप, योगसार का पद्यानुवाद, तत्त्वसार का अंग्रेजी में अनुवाद, दृष्टिकोण का अंग्रेजी अनुवाद और पंचलब्धि का अंग्रेजी अनुवाद आदि कृतियों का सृजन कर ब्रह्मचारी जी ने जन-जन को उपकृत किया है।

PDF Scanner ACE Scanner

अन्त का पूर्वाभास :

श्री देसाई जी को आपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। अत: अन्तिम दिनों में भोजन व औषधि आदि सभी का त्याग कर दिया था। सल्लेखना की अविरत साधना करते हुए आपने १९७० के फरवरी माह में से प्रयाण कर भक्त व स्नेहीजनों को विषाद के सागर में डूबते छोड़ दिया। आप अपनी अमूल्य सेवाओं से सदैव स्मरणीय रहेंगे।

ब्र. पं. सरदारमल 'सच्चिदानन्द'

नि:स्वार्थ समाजसेवक, साहित्यसर्जक, कवि, लेखक, पण्डित प्रतिष्ठाचार्य, प्रदर्शन-आडम्बर व कुप्रथाओं के विरोधक, धर्म के प्रचारक, दार्श ब्र. सरदारमल जैन 'सच्चिदानन्द' आज भी अपने यशोगान से जीवित हैं। इनक जन्म मध्यप्रदेश के विदिशा जिले की सिरोंज तहसील में एक प्रतिष्ठित परिवार ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी, शनिवार संवत् १९६५ में हुआ। इनके पिता श्रीमा हुकमचन्द जी वैद्यरत्न और माता श्रीमती मूंगाबाई थीं। इन्होंने इस बालक क नाम सरदारमल रखा और उसका सुसंस्कारों से पालन-पोषण किया।

ज्ञानार्जन :

आपने आरम्भ से विशारद तक की शिक्षा सिरोंज के ही राजकीय विद्यालय में प्राप्त की। अनन्तर स्वाध्यायी रूप में वैद्यक, बायोकेमिक, होम्योपैथिक, नेचरोपैथिक, ज्योतिष, सामुद्रिकशास्त्र, शकुनशास्त्र तथा मन्त्र-तन्त्र आदि विषयक ग्रन्थों का अध्ययन किया। संगीत में विशारद तथा बेंजो, जलतरंग, प्यानो आदि वाद्य यन्त्रों में विशेषदक्षता प्राप्त की। सन् १९३० में आपने मजिस्ट्रे सिरोंज से वैद्यक का प्रमाणपत्र प्राप्त किया।

सेवाकार्य :

अध्ययनोपरान्त उन्होंने समाज सेवा को अपना ध्येय बनाया। वे सिरोंज की तीन विभिन्न संस्थाओं के संचालक, अध्यक्ष, मन्त्री एवं सदस्य रहे। और सन् १९४० में मेम्बर ऑफलेजिस्लेटिव कौंसल टोंक स्टेट के चुने गये। सन् १९४२ में म्यूनिसिपल बोर्ड सिरोंज के बाइस चेयरमेन तथा कोटा डिविजन साल्ट मर्चेन्ट

एसोसिएट के डायरेक्टर पद को सुशोभित किया। इसके अतिरिक्त आप प्रान्तीय जैन परवार सभा के अध्यक्ष तथा विभिन्न जैन परिषदों के सदस्य रहे।

समाज सेवा के साथ ही उन्होने स्टेट बैंक की कौंसिल से महावीर जयन्ती की सार्वजनिक छुट्टी स्वीकृत करायी और बाल-वृद्धविवाह निषेध बिल पास कराया।

म्यूनिसिपल बोर्ड से महावीर जयन्ती के दिन जीवहत्या बन्द करायी, जैन समाज में प्रचलित वेश्यानृत्य की कुप्रथा को बन्द कराया और अपने प्रवचन, उपदेश द्वारा परम्परा रूप में प्रचलित कुदेवादि की पूजा/मिथ्यात्व को बन्द कराया। स्टेट विद्यालयों में नैतिक शिक्षा के रूप में जैनधर्म की शिक्षा अनिवार्य करायी। मुनियों के निर्विघ्न विहार हेतु सक्रिय कदम अपनाये।

पं. सरदारमल जी प्रतिष्ठाचार्य भी थे। उन्होंने ६-७ सिद्धचक्र विधान सम्पन्न कराये। आपकी दानशील प्रवृत्ति जनकल्याण हेतु सदा दर्शनीय होती थी। इस हेतु आपने श्रीसमन्तभद्र जैन पारमार्थिक न्यास और श्री सच्चिदानन्द जैन न्यास, इन दो ट्रस्टों की स्थापना की। इनका उद्देश्य जैनधर्म तथा जैनधर्मावलम्बियों की उन्नति, संरक्षण एवं सच्ची सेवा करना था। ये न्यास आज भी सुचारु रूप से चल रहे हैं। इसके साथ वे समय-समय पर दान देकर अपनी धनराशि का सदुपयोग करते रहते थे।

साहित्य सृजन :

पण्डितजी विद्वान् होने के साथ कवि तथा लेखक व अनुवादक थे। उन्होने आठ पूजाएं, तीन कविताएं, भजन आदि का सृजन कर प्रकाशित भी करायी। उनकी मौलिक स्वतन्त्र रचनाएं हैं - जल में जीव, भगवान महावीर, जैन वाग्दानविधि, भगवान ऋषभदेव प्रश्नोत्तर चूडामणि, अध्यात्मसूत्रभाव और तत्त्वार्थसूत्र भाषा। संस्कृत सुबोध श्रावकाचार के हिन्दी में अनुवाद के साथ सामयिक लेख भी लिखे हैं। उनकी एक कृति 'ज्योतिषसंग्रह और विश्वधर्म' अप्रकाशित है। स्वर्गीय पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के सानिध्य में अनेक ग्रन्थों का संशोधन कर महती साहित्य सेवा भी आपने की। आपने संस्कृत में 'शुद्धात्मस्तवन' नामक एक अष्टक भी लिखा है।

PDF Scanner ACE Scanner

उपाधियां :

आपके पाण्डित्य, वाक्कुशलता एवं सत्पुरुषार्थ से प्रभावित हो दिगम्बर जैन समाज टोंक, सिरोंज, सनावद, करकबेल, आरोन, खातेगांव, अशोकनगर, दमोह आदि की समाज ने अभिनन्दन पत्र एवं धर्मदिवाकर जैसी विशिष्ट उपाधियों से सम्मानित किया।

साधनापथ के पथिक :

पण्डित श्री गृहस्थधर्म, समाज और धर्मसेवा के साथ निजकल्याण के पथ पर बढ़े। उन्होने सर्वप्रथम क्षुल्लक श्री नमिसागर जी से वि.सं. १९८३ में पाक्षिक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। संयम साधना के पथ पर अग्रसर होते हुए पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी से व्रत प्रतिमा सं. २०१० में तथा सं. २०१३ में ब्रह्मचर्यप्रतिमा ग्रहण की।

समाधिमरण :

वृद्धावस्था, शारीरिक शिथिलता और अस्वस्थता के कारण सिरोंज में ही समाधिव्रत लिया। लगभग दो माह की कठिन साधना के उपरान्त सन् १९८९ में आपका देहावसान हो गया।

❑

ब्र. लाडमल जी

जब विश्व में मानवीय संघर्षों की सत्ता प्रबल होती हुई अपनी ऊँचाईयों को स्पर्श करती है, तभी मनुष्य शान्ति की महत्ता को स्वीकार कर उसे दृढता से अंगीकार करने के लिये प्रवृत्त होता है। वह आनन्द के माधुर्य और सुख से साक्षात्कार कर सके, ऐसे रास्ते की तलाश कर लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

लक्ष्यप्राप्ति में सफल हुये ऐसे ही एक साधक का जन्म जयपुर के दक्षिण में स्थित चौरु नामक ग्राम में माघ शुक्ला दूज संवत् १९६२ को खण्डेलवाल जाति के गौरव श्री स्वरूपचन्द जी के यहां हुआ था।

कर्मक्षेत्र :

आपने ग्राम चौरु में मकान व जमीन-जायदाद आदि से सम्पन्न होने के

पश्चात् भी वि.सं. १९८० में जयपुर आकर निवास बना लिया। यहां कपड़े का व्यवसाय कर थोड़े ही समय में अधिक लाभ कमा लेने से अपने परिग्रहपरिमाणव्रत की सीमा के अनुरूप व्यापार को बन्द कर दिया।

समाजसेवा :

निस्पृहता के साथ परोपकार की भावना से आपने समाजसेवा की। जनकल्याणार्थ आपने ग्राम चौरु में एक औषधालय बनवाया तथा अनेक मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराते हुये पंचकल्याणक महोत्सवों को सम्पन्न कराने में योगदान किया। आपके ही सफल पुरुषार्थ से श्रीशान्तिवीर नगर महावीरजी की ग्रन्थमाला स्थापित व संचालित हो सकी। जिसने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित कर जिनवाणी की सच्ची व अमूल्य सेवा की।

संयमी जीवन :

बचपन से धार्मिक संस्कारों के कारण आपने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। वि.सं. १९९४ में आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा ले संघ की सेवा में तत्पर हो गये। यहीं पर धर्माराधन व ज्ञानार्जन करते हुए सातवीं प्रतिमा के व्रत संवत् २००० में स्वीकार कर जीवन सफल किया।

संवत् २००१ में आचार्य श्री चन्द्रसागर जी की वैयावृत्ति करते हुए उनके समाधिस्थ होने पर आप आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के संघ में सामिल हो गये। जहां आपने १० वीं प्रतिमा तक विकास कर आत्मशुद्धि के साधन चारित्र को निर्दोष रीत्या पालन कर सल्लेखनापूर्वक इस देह का त्याग किया।

ACE Scanner
PDF Scanner

ब्र. जयसागर

जीवनवृत्त :

सन् १९११ को दिनांक ९ नवम्बर को जन्म लेने वाले सन्त पुरुष का नाम था जयकुमार । आपने आरम्भिक शिक्षा श्री सत्तर्कसुधातरंगिणी जैन पाठशाला, सागर में ग्रहण की, जो बाद के दिनों में श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध हुआ । निरन्तर लगनपूर्वक अध्ययन करने के परिणाम स्वरूप आप न्याय, धर्मशास्त्र और समाजशास्त्र के गंभीर विद्वान् बन गये । आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला एवं गुरुमुखी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। इसके अलावा आपने धवला एवं जयधवला जैसे सिद्धान्तग्रन्थों का स्वाध्याय कर सिद्धान्तविषयक विद्वत्ता भी अर्जित की थी ।

साहित्यिककर्म :

माननीय पं. जयकुमार जी ने तारण साहित्य की ग्रन्थियों को उद्घाटित करने के लिए ''तारणशब्दकोश '' की रचना की, जो कि तीन भागों में प्रकाशित हुआ है । इसके अतिरिक्त आपने पंडितपूजा, मालारोहण और कमलबत्तीसी आदि ग्रन्थों का अनुवाद किया, जो कि 'तारणगीता' के नाम से प्रकाशित हुआ है। आपने आचार्य कुन्दकुन्द और सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र के अनेक ग्रन्थराजों के साथ लगभग ४५ ग्रन्थों का हिन्दी में पद्यानुवाद किया आपने आचार्य श्री अमितगति के सामायिक पाठ का पद्यानुवाद किया, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। पत्र सम्पादन के क्षेत्र में भी आपका योगदान उल्लेखनीय है। आपने अपने जीवन काल में 'वीरशासन' पाक्षिक का कुशल सम्पादन किया।

राष्ट्रसेवा :

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भी आपने एक सैनिक की भांति सहयोग दिया। वृद्धावस्था का ध्यान न रखते हुए भी आप राष्ट्र सेवा में तत्पर रहते थे।

सम्मान एवं उपाधियां :

आप कुशल वक्ता, पत्रकार, सम्पादक एवं टीकाकार होने के साथ कवि व वाग्मी थे। आपकी इन्हीं उपलब्धियों के कारण आपको समय-समय पर समाज द्वारा अनेक सम्मान एवं 'वाणीभूषण', 'व्याख्यानवाचस्पति' तथा 'समाजरत्न' जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया।

ब्र. पं. चन्दाबाई जी

बीसवीं सदी में नारी जागरण की प्रथम अग्रदूत के रूप में चन्दाबाई प्रख्यात हुई हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया तथा ज्ञानदीप प्रज्वलित कर नारी को कर्त्तव्यबोध कराया एवं शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ाया। आज हर क्षेत्र में नारी की जो अग्रणी भूमिका दिखाई देती है वह उनकी ही देन है। इनका जन्म वृन्दावन के वैष्णव परिवार में वि.सं. १९४६ आषाढ शुक्ल तृतीया को हुआ था। पिता श्री नारायणदास अग्रवाल सम्पन्न परिवार के जमींदार एवं प्रतिभाशाली ग्रेज्युएट विद्वान् थे और माता थी श्रीमती राधिकादेवी। अपनी पुत्री के सौम्य मुख और गंभीरप्रकृति को देखकर उसका नाम चन्दाबाई रखा। इनके दो भ्राता थे - श्री जमनाप्रसाद एवं श्री जशेन्द्रप्रसाद और दो अनुजा थीं - केशरदेवी और ब्रजवालादेवी।

शिक्षा :

पांच वर्ष की अवस्था में गणेश पूजन के साथ अ, आ, इ, ई, क, ख, ग, के उच्चारणपूर्वक चंदाबाई का विद्यासंस्कार संपन्न हुआ। विद्यालय में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। विशेष प्रतिभाशाली होने के कारण गुरुजन उन्हें सरस्वती का अवतार मानते थे। आरम्भिक शिक्षा के साथ गीता एवं रामायण भी पढ़ी और गृहोपयोगी कार्यों में भी निपुणता हासिल की।

वैवाहिक जीवन :

लगभग ग्यारह वर्ष की आयु में चन्दाबाई का आरा निवासी सम्भ्रान्त एवं प्रसिद्ध जमींदार जैनधर्मानुयायी पं. श्री प्रभुदास जी के पौत्र श्री बाबू चन्द्रकुमार जी के पुत्र बाबू धर्मकुमार जी से विवाह सम्पन्न हुआ। किन्तु दुर्दैव से विवाह के एक वर्ष बाद ही चन्दाबाई जी के जीवन में एक वज्रपात हुआ, जब शिखरजी यात्रा से लौटते समय धर्मकुमार जी गिरिडीह में प्लेग से आक्रान्त हो गये और कुछ समय में ही मृत्यु ने उनका आलिंगन कर लिया।

जीवन में नया मोड :

असमय में पति के निधन की घटना से बारह वर्षीया चन्दाबाई को संयोगों की क्षणभंगुरता व जीवन के सत्य पहलू का बोध हो गया। उन्होंने मोहशृंखला को

तोड़ दिया। पितृतुल्य ज्येष्ठ श्री देवकुमार जी ने अपनी अनुजवधू चन्दाबाई को आरा बुलवा लिया। यहां पर वे पूज्य वर्णी जी एवं मुनि श्री नमिसागर जी के धर्मोपदेश से पुनः ज्ञानार्जन करने से प्रवृत्त हो गयी। उन्होंने जैन संस्कृत साहित्य एवं धर्मशास्त्रों - रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, चन्द्रप्रभचरित आदि का अध्ययन पूज्य वर्णी जी के सानिध्य में किया। काशी के समान संस्कृत शिक्षा केन्द्र वृन्दावन में कुछ समय रहकर लघुसिद्धान्त कौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन किया। राजकीय संस्कृत कालेज काशी की परीक्षा उत्तीर्ण की जो आज की शास्त्री परीक्षा के समकक्ष है। उनके जैनधर्म, दर्शन, न्याय के प्रखर पाण्डित्य और विलक्षण ज्ञान के आगे बड़े-बड़े विद्वान भी मूक हो जाते थे।

प्रतिज्ञा :

गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप चन्दाबाई के हृदय में ज्ञानदीप प्रज्वलित हो गया। उन्होंने निश्चय कर लिया 'अब मैं सेवा के क्षेत्र में पदार्पण कर अपने एवं विधवा नारी जाति को सान्त्वना देते हुए उन की हर संभव मदद करती रहूंगी'

सेवाकार्य :

प्रतिज्ञा को कार्यरूप देने के लिये आपने श्री देवकुमार जी की प्रेरणा से अपने ही नगर में सन् १९०७ को कन्या पाठशाला की स्थापना करायी। वे स्वयं देख-रेख और अध्यापन कार्य करती। वेदनासंतप्त नारी जगत् के अज्ञानतमस को दूर करने के लिए उन्होंने सेवा के विभिन्न मार्गों को अपनाया, समस्त आर्यावर्त को कार्यक्षेत्र बनाया। नारी जाति को शिक्षित एवं ज्ञानसम्पन्न बनाया। अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में सम्मिलित होकर तथा अनेक यात्राओं के दौरान भाषण एवं प्रवचन देकर महिलाओं को उनके कर्त्तव्य का बोध करा उन्हें संगठित किया।

देशसेवा :

स्वतन्त्रता आन्दोलन में चन्दाबाई जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वे स्वयं जेल नहीं गयी, परन्तु अनेक भाईयों को स्वतन्त्रता आन्दोलन हेतु प्रेरित किया। अहिंसा और सत्य के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए निबन्ध/लेख लिखकर वितरित किये और जन-जन के हृदय में देशभक्ति/सेवा की भावना जागृत की। कांग्रेस तथा देश के विभिन्न कार्यों के लिये चन्दा एकत्रित किया। सन् १९२० से निरन्तर

चरखा चलाती रहीं। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा आजीवन खादी ही धारण की।

धार्मिकक्षेत्र में योगदान :

जन्म से ही धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न चन्दाबाई जी की धार्मिक कार्यों - पूजनपाठ, प्रतिष्ठा महोत्सव आदि में रुचि रही। उन्होंने श्री देवकुमार जी व परिवार के सदस्यों के साथ दक्षिणभारत के तीर्थों की यात्रा की। इस यात्रा के दौरान होने वाले आपके भाषणों का अनुवाद कन्नड में श्री नेमिसागर जी वर्णी किया करते थे।

'निष्काम जिनभक्ति से बढ़कर अन्य कोई पुण्य का कार्य नहीं है' इसका अनुभव कर उन्होंने जिनमन्दिर का निर्माण एवं जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा करायी। इनमें प्रमुख हैं - राजगृह में द्वितीय पर्वत पर जमीन खरीद कर भव्य मन्दिर का निर्माण और सन् १९३६ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी। आरा में ४० शिखरयुक्त जिनालय होते हुए भी मानस्तम्भ की कमी थी अतएव मां श्री ने सन् १९३९ में संगमरमर का भव्य रमणीय मानस्तम्भ तैयार कराया। उनकी ही प्रेरणा से उनकी ननद श्रीमती नेमिसुन्दर जी ने जैन बालाविश्राम के विद्यालय भवन के ऊपर भव्य जिनमन्दिर का निर्माण कराया। आरा के अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी उनकी ही प्रेरणा से हुआ।

साहित्य साधना :

मां श्री चन्दाबाई जी विदुषी, प्रभावी प्रवचनकार एवं वक्ता होने के साथ श्रेष्ठ लेखिका, कहानीकार, कवियत्री, सम्पादिका एवं पत्रकार भी रहीं। उन्होंने महिलोपयोगी साहित्य के सृजन में अग्रणी भूमिका अदा की। उनके द्वारा लिखित प्रमुख निबन्ध संग्रह/कृतियां निम्न हैं -

१. उपदेशरत्नमाला - इनमें दो भागों में ३० निबन्धों का संकलन है।
२. सौभाग्य रत्नमाला - यह नौ निबन्धों का संग्रह है।
३. निबन्धरत्नमाला - यह १८ निबन्धों का संकलन है।
४. आदर्श निबन्ध - इसमें निबन्धों की संख्या ३० है।
५. निबन्धदर्पण - इसमें लगभग २५ से ३५ निबन्ध हैं।
६. आदर्शकहानियां - इसमें अनेक कहानियों का संकलन है।

लेखन के साथ भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला परिषद् द्वारा संचालित "जैन महिलादर्श" मासिक पत्र का संपादन सन् १९२१ से आजीवन किया। जैन व जैनेतर पर्वों व अभिनन्दन ग्रन्थों में भी आपके साहित्यिक, आचरणात्मक, दार्शनिक व उपदेशात्मक आलेख प्रकाशित हुए हैं।

मां श्री में बचपन से ही कवित्व गुण था। उन्होंने संस्कृत व हिन्दी में अनेक कविताओं का सृजन किया। किन्तु इनमें काव्य की अपेक्षा उपदेश अधिक मुखरित होता है।

कलाप्रियता :

सर्वगुण सम्पन्न चन्दाबाई जी कलाविद् भी थीं। जैनआगम के अनुसार रत्नगिरि पर्वत पर जिनालय में कलश, मेहराब, जालियां, झरोखे आदि का निर्माण आपने कराया। ध्रुव-धान्य, जय-नन्द आदि १६ प्रकार के प्रासादों की जानकारी होना, बारह दोषों से रहित तीर्थंकरों की दिव्यमूर्तियों को स्थापित कराना, मानस्तम्भ में उत्कीर्ण ८ मूर्तियों तथा ऊपर की गुमटी में स्थित मनोज्ञमूर्तियों का निदर्शन उनकी कलामर्मज्ञता का प्रमाण है। चित्रकला में मां श्री का अद्वितीय स्थान है। वे यद्यपि तूलिका लेकर चित्रों में रंग नहीं भरती तथापि पूजन, विधान, विशेष पूजापाठों के अवसर पर सुन्दर मांडना पूरना, उसमें यथोचित रंग भरना, उनकी चित्रकलाप्रियता का द्योतक है। सन् १९५० में धर्मामृत के चित्र बनाने पधारे प्रसिद्ध चित्रकार श्री दिनेश बक्शी को मां श्री ने चित्रकला के सम्बन्ध में विशेष परामर्श दिये थे। संगीत कला को तो मां श्री क्रियाविशालपूर्व के अन्तर्गत मानती थी। उनके भावविभोर होकर पूजन पढ़ने पर हृदय के तार झंकृत हो जाते थे। वे बालाविश्राम की छात्राओं को गरवानृत्य, संथाली नृत्य, शंकरनृत्य व लोकनृत्य हेतु प्रोत्साहित करती रहती थीं। काव्यकलाविद् तो आप थीं ही।

महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय कार्य :

जब हरिजन मन्दिर प्रवेशबिल को लेकर समाज में हलचल मची तो आचार्य श्री शान्तिसागर जी ने अन्न त्याग कर दिया। उनकी ही शिष्या चन्दाबाई जी ने लेखन द्वारा तथा अन्य विद्वानों के साथ अनेक बार दिल्ली जाकर राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद और प्रधानमन्त्री श्री पं. जवाहरलाल नेहरू से भेंट की। उन्हें धर्म की वस्तुस्थिति से अवगत कराया। जिससे प्रभावित हो हरिजन मन्दिर प्रवेशबिल से जैन मन्दिर पृथक् कर दिये गये।

जैनबालाविश्राम :

सन् १९२१ में श्री सम्मेद शिखर की यात्रा चन्दाबाई ने सपरिवार की। समग्र पर्वत की वन्दना के उपरान्त श्री पार्श्वप्रभु की टोंक पर श्री बाबू निर्मलकुमार जी की प्रेरणा से एक वर्ष में जैन महिलाश्रम की स्थापना का नियम लिया। स्व. बाबू धर्मकुमार जी की स्मृति स्वरूप आरा नगर में दो मील दूर धर्मकुंज के भव्य भवन में जैन बालाविश्राम की स्थापना की और परिजनों के सहयोग से विद्यालय भवन और चैत्यालय का निर्माण कराया। यह लौकिक व धार्मिक शिक्षा का केन्द्र तथा भारतवर्ष में नारी जागरण का अद्वितीय प्रतीक बना।

सम्मान :

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला परिषद् ने ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कराकर इस स्वतन्त्र देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी के द्वारा आपको समर्पित कराया।

संयमानुराग :

सन् १९०६ से ही चन्दाबाई जी दैमिक षट्कर्मों का पालन कर रहीं थीं। सन् १९३४ में आचार्य श्री शान्तिसागर जी से उदयपुर में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को प्रातः ९ बजे सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आचार्यश्री शान्तिसागर जी और पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी इनके प्रेरणास्रोत थे। मुख पर साधना की घनी गंभीरता, आंखों में सब कुछ भूलकर सेवा करने की निश्छलता, जीवन का कर्ममय फैलाव और वस्त्र में सादगी, माथे में आगम-पुराण, ज्ञानविज्ञान और हृदय में वात्सल्य का लहराता सागर, प्रेरणाओं का हिमालय, एकान्त की गायिका और बिहार की महान् नारी श्री चन्दाबाई जी ने इस सदी के आठवें दशक के अन्त में संसार से सदा के लिए विदा ले ली।

नारी अभ्युत्थान के लिये वे आश्रम की संस्थापिका, संचालिका, अध्यापिका, व्याख्याता, कुशलसेविका, लेखिका, कवयित्री और सफल सम्पादिका के रूप में सदैव आदर के साथ याद की जाती रहेंगी।

❑

पं. अजितकुमार शास्त्री

स्वार्थ की संकीर्णता से मुक्त होकर जब मानवचेतना अखिल विश्व के स्तर पर मांगलिक विधान करती है तब वह मानवीयता का प्रतिनिधि होती है। उसी से करुणा, दया, परोपकार जैसे जर्जर होते मूल्यों को संबल मिलता है।

पण्डितप्रवर अजितकुमार जी शास्त्री का जन्म चाबली (आगरा) उत्तर प्रदेश में विक्रम संवत् १९७७ में माघ शुक्ला अष्टमी को उस समय हुआ जब देश प्लेग रोग से संघर्षरत था। ढाई वर्ष की अवस्था में माता-पिता के साथ सम्मेदशिखर जी की यात्रा ने आपके धार्मिक संस्कारों को संयोजित किया और पर्वत जैसी अडिगता व अटलता आपके अन्दर स्थापित हो गयी। शैशवकाल में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो बड़े भाई इन्द्रप्रसाद जी के संरक्षण और दादी सीताबाई की गोद में क्रमशः बढ़े और खड़े हुए।

शिक्षा :

सात वर्ष की आयु में आपने विद्याध्ययन आरम्भ किया। सन् १९१९ से आप दिगम्बर जैन महाविद्यालय चौरासी मथुरा में चार वर्ष तक पढ़े। पण्डित श्री राजेन्द्रकुमार जी और पण्डित कैलाशचन्द्र जी जैसे मेधावी साथियों के साथ कुछ समय तक बनारस में भी रहने का अवसर मिला। बाद में माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन परीक्षालय बम्बई से शास्त्री की परीक्षा पास की। इसके साथ ही आपने राजकीय परीक्षा में न्यायमध्यमा उत्तीर्ण की। न्यायतीर्थ परीक्षा की तैयारी तो की पर देशव्यापी असहयोग आन्दोलन के कारण परीक्षा नहीं दी। सन् १९४४ में पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर परीक्षा के साथ प्रवेशिका (मैट्रिक) परीक्षा भी उत्तीर्ण की। इस प्रकार शिक्षा को प्राप्त कर आपने अपने जीवन को योग्य एवं गतिशील बनाया।

कर्मक्षेत्र :

सन् १९२० से ही आप कर्मक्षेत्र में आगे आ गये। आजीविकोपार्जन हेतु सन् १९२४ में मुलतान आकर बसे और अध्यापक बन गये। १९२५ में दुकान का शुभारम्भ किया और १९३४ में अकलंक नाम से प्रेस की नींव डाली। १६ जुलाई १९४७ को जब देश के विभाजन की योजना बनी, तब आपको भी मुलतान छोड़कर सहारनपुर आना पड़ा। यहां लाला हुलासराय जी ने आपको और मुद्रणालय दोनों को समुचित स्थान दिया। १० माह तक यहां रहे, प्रेस के व्यवसाय के योग्य क्षेत्र न होने से आपको दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली में अभय प्रेस सदर बाजार में खोला और अपनी एक

दुकानदारी भूल से सन् १९५० में प्रेस से स्वत्व खो बैठे। सन् १९५६ में आपने पुनः उसे सुदृढ स्थिति में पहुंचाया। सन् १९६६ से श्री महावीर जी को आपने अपना आवास स्थान बनाया।

सम्पादनकार्य :

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ के मुखपत्र जैनदर्शन का आपने ९ वर्ष तक सम्पादन किया। बाद में १ वर्ष तक सिद्धान्तसंरक्षिणी सभा के जैनदर्शन के सम्पादन व प्रकाशन में हाथ बंटाया। सन् १९५० से १९६८ तक जैनगजट के सम्पादन का श्रेय आपको है। सन् १९६६ से शान्तिवीरनगर महावीर जी के श्रेयोमार्ग का सम्पादन भी आपके ही करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

साहित्यसेवा :

सन् १९१८ में ब्र. ज्ञानानन्द जी की प्रेरणा से आपने अपनी लेखनी को साहित्य के क्षेत्र प्रवेश कराया। सर्वप्रथम 'मानव जीवन की सफलता' नामक निबन्ध को लिखकर पर्याप्त यश प्राप्त किया। छात्र जीवन में भी आपने कभी एक-दो लेख लिखे थे, जो पद्मावती पुरवाल नामक पत्रिका में कलकत्ता से प्रकाशित भी हुये थे। आपकी प्रमुख रचनाओं में सत्यार्थदर्पण, सत्यपथदर्शन, जैनधर्मपरिचय, अनेकान्तपरिचय, दैनिकजीवनचर्या, स्वास्थ्यविज्ञान, आर्य समाज की गप्पाष्टक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने कुछ ऐसे भी ग्रन्थ लिखे हैं, जिन पर नाम नहीं दिया, किन्तु शैली व भाषा की विशेषताओं से वह आपकी ही रचनायें सिद्ध होती हैं। आपने पत्रों के माध्यम से भी करीब चार-पांच हजार पृष्ठों की सामग्री समाज को प्रदान की।

सामाजिक अवदान :

आप परोपकार एवं आदर्शसिद्धान्तवादी होने के साथ ईमानदार व सेवाभाव में किसी से कम नहीं थे। आपके जीवन में अनेक ऐसी घटनायें घटित हुईं, जिनसे आपके इन गुणों की मिशाल स्पष्ट होती है। इसी तरह समाजसेवा के कार्यों में भी आप कभी पीछे नहीं रहे। शास्त्रि परिषद् के मन्त्री पद पर आपने जो सेवाएं प्रदान की उनका उल्लेख होना अनिवार्य है। सच्चे अर्थों में मानवता के इस पुजारी ने श्री महावीरजी के शान्त व स्वच्छ वातावरण में २० मई सन् १९६६ को अन्तिम सांस लेकर चिरविश्राम हेतु प्रयाण किया।

आपका सेवाकार्य एवं जुझारूपन युवापीढी के लिये सदैव उत्साहित करने वाला तथा समाज व देश के लिए गौरवपूर्ण रहेगा। ☐

मिर्जी अण्णाराय

साहित्यिककर्म :

श्री मिर्जी अण्णाराय की साहित्य रचनायें ही उनका सही परिचय हैं । वे जैनधर्म और साहित्य सेवा के लिये सदैव समर्पित रहे । प्रखर प्रतिभाशाली श्री अण्णाराय जी ने 'महापुराणसार', रत्नकरण्डश्रावकाचार', 'देशभक्ति', 'भगवान महावीर', 'रविषेण रामायण' और 'भारतीय संस्कृति के जैन धर्मपकोडुमें' आदि कृतियों के सृजन द्वारा स्वयं को जैनधर्म का सेवक सिद्ध किया । १००० पृष्ठीय जैनधर्म की प्रमाणित एवं परिपूर्ण जानकारी देने वाले अधिकृत ग्रन्थ की रचना भी आपने ही की है ।

सृजनात्मक लेखों में आपकी सर्वप्रथम रचना 'निसर्ग' थी । इसके माध्यम से कादम्बरीकारों के मध्य आपने विशेष स्थान आरक्षित कर लिया था । अनन्तर 'राष्ट्रपुरुष', 'मास्टर', 'अशोकचक्र', 'प्रतिसंस्कार', 'भस्मासुर', 'यरद्रुहेज्ज', 'हृदयट्टहळ्ळी' और 'सिद्धचक्र' आदि उनकी रचनायें पाठकों को सदा आकर्षित एवं आल्हादित करती रहीं हैं ।

'गडीनाडीन' जन-जीवन विशेष रूप में ग्रामीण जैन समाज के गुण-दोषों का यथावत् चित्रण प्रस्तुत करने वाली आपकी अन्यतम कृति है ।

आपने स्व. मंजैय्या हेगडे के दिव्य जीवन चरित्र को 'महापुरुष' कृति में रूपायित किया है । साहित्य विमर्श, शिक्षण तथा बालोपयोगी साहित्य का निर्माण भी आपके द्वारा किया गया ।

समाजसेवा :

आपने शिक्षक के रूप में पाठ्यपुस्तक समिति के अध्यक्ष, साहित्य परिषद् कार्यकारिणी मण्डल के सदस्य और बेलगांव जिला साहित्य समिति के अध्यक्ष पद पर रहकर अनुपम समाजसेवा तथा साहित्य सेवा की है । शान्तिसेवा सदन मुद्रणालय व चन्द्रगंगा ज्ञानपीठ साहित्य संस्कृति प्रसार योजना में आपका सराहनीय योगदान रहा ।

ACE Scanner
PDF Scanner

सम्मान :

श्री अण्णाराय जी की प्रथम कृति 'निसर्ग' देवराज बहादुर प्रशस्ति से सम्मानित हुई। राज्य और केन्द्र सरकार की ओर से उन्हें 'आदर्श शिक्षक' का सम्मान भी प्राप्त हुआ था। सन् १९७० में राज्य साहित्य अकादमी की ओर से प्रशस्ति प्रदान कर आपका सम्मान किया गया।

धर्म, समाज और साहित्य के लिये आपका अनुपम अवदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

अण्णासाहेब बाबासाहेब लट्ठे

दक्षिण भारत में यह नाम ऐसा है, जिससे शायद ही कोई अपरिचित हो। साहित्यजगत् हो या अर्थशिक्षा जगत् दोनों में समान रूप से ख्याति अर्जित करने वाले श्री अण्णासाहेब का जन्म कुरुन्दवाड जिला कोल्हापुर निवासी पिता श्री बाबा जी एवं मां आऊबाई के धार्मिक परिवार में संस्कारों के साथ ९ दिसम्बर १८७८ को हुआ था। जन्म से होनहार इस बालक को पाकर परिवार धन्य हो उठा था। आपके पिता लगभग ६०-७० एकड़ जमीन के मालिक के साथ गांव के ख्यात साहूकार भी थे।

शिक्षा :

पिता के खेतीहर होने के कारण आपकी प्राथमिक शिक्षा जन्मग्राम कुरुन्दवाड में ही संपन्न हुई। बाद में तीसरी तक अध्ययन आपने मिरज में किया और चौथी से मेट्रिक तक का शिक्षण सांगली में प्राप्त किया। स्कूली शिक्षा प्राप्त करते समय आपके एक अन्य भाई भी साथ रहते थे, जिससे आप दोनों को घर से बाहर रहते हुए भी लगभग कोई कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। साथ ही आपके आवागमन के लिए आपको एक घोड़ा भी दिया गया था। जिससे सुविधापूर्ण ढंग से आप गांव तक पहुंच सकते थे।

कालेज की पढ़ाई का आरम्भ राजाराम कालेज कोल्हापुर से हुआ, बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए आपको डेक्कन कालेज पुणे जाना पड़ा, जहां आपने

सन् १९०३ में बी. ए. पास की। मुम्बई के हीरालाल गुमानमल जैन बोर्डिंग में रहते हुए बाम्बे से एम. ए. की परीक्षा विशेषयोग्यता से उत्तीर्ण की और स्वर्णपदक पाने का गौरव हासिल किया। उस समय आप प्रान्तभर में प्रथम जैन छात्र थे, जिसने एम.ए. तक अध्ययन किया था। इस उपलक्ष्य में आपको मुम्बई प्रान्तिक जैन समाज द्वारा भरपूर सम्मान एवं गौरव प्रदान किया गया। बाद में सन् १९१६ में बेलगाम से एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त की।

समाजसेवा :

आपने विद्यार्थी जीवन से ही समाज सेवा के कार्यों में रुचि लेना आरम्भ कर दिया था। जब आप मात्र २१ वर्ष के थे तब दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा की स्थापना की थी, जो बाद में विस्तृत होती हुई दक्षिण भारत जैन सभा के रूप में परिवर्तित हो गई। शिक्षोपरान्त तो आपने सन् १९०७ से राजाराम कालेज में प्राध्यापक के रूप में सेवा आरम्भ की जो प्राचार्य के रूप में पदोन्नति तक रही। इसके बाद आप छत्रपति शाहू महाराज के निमन्त्रण पर कोल्हापुर चले गये। जहां १९११ से १९१४ तक कार्यरत रहे। यहां आपने एक घटना के कारण मतभेद हो जाने पर त्यागपत्र दे दिया, जो भूल सुधार होने पर पुनः नियुक्ति में बदल गया। आप ऑनरेरी सिटी मजिस्ट्रेट होने पर जिलान्तर्गत गांवों की देखरेख भी करते रहे। आपने सन् १९१६ से १९२० तक वकालात का अभ्यास भी किया और सन् १९२५ में शहर के मुख्य दीवान बन गये। जहां पद पर रहते हुए आपने अनेक एक्टस् को प्रभावी बनाया और उनको सुधार कर सामयिक बनाया।

आपने इसी दौरान पंचायत शासन की स्थापना कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया था। इसके साथ ही आप अनेक संस्थाओं के संस्थापक रहे, जिनमें दी रत्नाकर बैंक, कोल्हापुर बैंक, महावीर बैंक, शाहूपुरी मर्चेंट एसोसियशन, साईक्सला कालेज, टीचर ट्रेनिंग कालेज, स्त्री शिक्षण परिषद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

समाज में फैली अनेक कुरीतियों का उन्मूलन भी आपका लक्ष्य रहा। इसके अन्तर्गत आपने साक्षरता, स्त्री शिक्षण एवं अन्तर्जातीय विवाह जैसे कार्यों को यथेष्ट एवं उपयोगी रूप में निर्धारित करते हुए इनके मूल्यों को सामाजिक जीवन में स्थापित कराने में योगदान दिया। आपने समाजसेवा हित अपनी नौकरी को भी तिलांजलि दे दी थी।

राजनैतिक क्षेत्र :

आपने जहां समाज सेवा के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये वहीं राजनैतिक कार्यों के कारण भी पर्याप्त लोकप्रियता हासिल की। आप नगर की अनेक संस्थाओं से तो संबद्ध रहे, साथ ही महाराष्ट्र प्रान्त के अर्थमंत्री भी नियुक्त हुए, और अपनी सेवाओं से नागरिकों के साथ राज्य की सेवा करने का अवसर पाया।

साहित्यसेवा :

आपने अपने विद्यार्थी जीवन में ही साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेना आरम्भ कर दिया था, और उनसे अन्यों को लाभान्वित करने के लिए आपने सर्वप्रथम 'जिनविजय' मासिक एवं बाद में डेक्कन ख्यात की शुरुआत कर अनेक वर्षों तक उनका सम्पादन कार्यकुशलता के साथ सम्पन्न किया। कुशल सम्पादक के साथ आप एक अच्छे लेखक भी थे। इसके प्रमाणस्वरूप आपके द्वारा लिखित छत्रपति शाहू महाराज चरित्र (अंग्रेजी व मराठी), जैनधर्म की रूपरेखा (अंग्रेजी), हिन्दुस्तानातील ब्रिटिश साम्राज्याचा उदय, प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन स्टेटस्, फेडरल कान्स्टीट्यूशन ऑफ दा वर्ल्ड के नाम लिये जा सकते हैं।

गौरवार्पण :

आपके द्वारा की गई समाज एवं राज्य सेवाओं के लिए अनेक अवसरों पर सम्मान प्रदान किया गया। जिनमें बाम्बे म्युनिसपल कार्पोरेशन, प्रेसिडेट बेलगाम म्युनिसपल व सेन्ट्रल कोआपरेटिव्ह बैंक बेलगाम द्वारा प्रदत्त मान पत्र व गौरव विशेष उल्लेखनीय हैं।

और चलने की बेला :

समाज, साहित्य एवं देश की सेवा के एक सजग प्रहरी के रूप में अपनी सेवाओं से लोक को नई किरण दिखाने वाला साधक बेलगांव की वसुंधरा पर १६ मई १९५० को अन्तिम श्वांस ले सदा के लिए विदा हो गया। ऐसे साधक अपनी साधना से जगत् में सदैव अमर रहते हैं।

❑

वी. के. अनन्तराम शास्त्री

दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं प्रवचनकार थे अनन्तराज शास्त्री। विश्वविख्यात तीर्थस्थल श्रवणबेलगोल में जन्म लेकर आपने अपने आपको धन्य किया। आपके पिता श्री कब्बिनय्या यहां के पुरोहितवर्ग के सुविख्यात व्यक्ति थे। आप स्वस्तिश्री नेमिसागर वर्णी जी के समकालीन थे। श्री शास्त्री जी ने महान् कार्य करते हुए भी स्वयं को प्रसिद्धि व प्रदर्शन से दूर रखा। अतः आपके जीवनवृत्त की अधिक जानकारी आज भी अप्राप्त है।

विद्याभ्यास :

श्रवणबेलगोल तथा उत्तरभारत के प्रसिद्ध विद्या संस्थानों द्वारा संस्कृत और प्राकृत भाषा के साथ आगम का भी विधिवत् अध्ययन कर आपने विद्वत्ता अर्जित की थी। आपने ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त कर उसमें भी मर्मज्ञता हासिल की थी।

कार्यक्षेत्र :

बहुभाषाविद् बनने के बाद श्री शास्त्री जी ने बैंगलोर में श्री नेमिसागर जी वर्णी द्वारा स्थापित दिगम्बर जैन वेद महापाठशाला में अध्यापन का कार्य कर ज्ञानदान आरम्भ किया। इसके साथ ही आपने प्रतिष्ठातिलक का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किया और उसके व्याख्यान में महारत हासिल की। पंचकल्याणक के आयोजन में आप विशेष रूप से इस विषय पर व्याख्यान करते थे। आपका सक्रिय सहयोग सतत् ऐसे ही कार्यों में मिलता रहता था।

शान्तभाव से धर्म के प्रचार में तत्पर श्री शास्त्री जी की कीर्ति इस सदी के उत्तरार्ध में स्वस्ति श्री नेमिसागर जी वर्णी एवं भट्टाकलंक कवि के समान फैली, जिससे आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

❑

ACE Scanner
PDF Scanner

डॉ. एस. वी. अनंतराज शास्त्री

कर्नाटक क्षेत्र में संस्कृत भाषा के प्रचारक, श्रेष्ठ प्राध्यापक, श्रेष्ठ लेखक के रूप में लोकप्रिय हैं श्री वी. एस. वी. अनंतराज शास्त्री। अनंतराज शास्त्री के पिताजी श्री वी. एस. वी. वेंकटैया आपके पिता एवं श्रीमती [illegible] नाम था।

शिक्षण :

प्रखर बुद्धिमत्ता श्री एस. वी. अनंतराज शास्त्री ने [illegible] बेल मल्लसंद्रा और राजेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय बेंगलोर में [illegible] सिद्धांत विद्वत्, संस्कृत साहित्यशिरोमणि, जैनसिद्धान्त विशारद, साहित्यविशारद आदि उपाधियां प्राप्त कीं। आपके प्रमुख गुरु श्री [illegible] श्री एस. पी. पट्टाभिराम शास्त्री थे।

शिक्षण प्राप्ति के पश्चात कर्नाटक सरकार के विद्या क्षेत्र में :

[illegible] उपाधि लेने के पश्चात वे [illegible] वर्ष तक प्रदान की। इसके साथ [illegible] सामाजिक सेवा में संलग्न रहे।

संस्कृत भाषा के प्रचारक :

[illegible] संस्कृत भाषा का अध्ययन एवं प्रचार किया। [illegible] पूर्व मुख्यमन्त्री द्वारा आयोजित संस्कृत साहित्यिक प्रचार कार्यक्रम में [illegible] विधिवत् रीति से अध्यक्ष के रूप में [illegible] का मार्गदर्शन किया।

अखिल कर्नाटक सरकार की अनेक सलाहकार समितियों के अध्यक्ष एवं [illegible] संस्कृत पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष पद और [illegible] के मार्गदर्शक का सक्रिय योगदान दिया।

श्री शास्त्री जी की सम्पत्ति :

जिनमें कुछ नाम हैं - मुक्तिलावण्य चंपूनमस्कार, जैनदर्शन एवं [illegible] पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके लेख प्रकाशित होते रहते थे।

देश .....

सम्मान :

सन् १९८२ में कर्नाटकशासन की ओर से संस्कृत क्षेत्र में आपके अमूल्य योगदान के लिये ५००/- रूपये ससम्मान प्रदान कर अभिनन्दन किया गया। सन् १९८३ में संस्कृत वाङ्मय को प्रदत्त आपकी सेवाओं से प्रभावित होकर कर्नाटक सरकार द्वारा १०००/- रूपये, पुष्पमाला एवं शाल भेंट कर सम्मान किया गया था। सन् १९८१ में श्रवणबेलगोल में भी वे सम्मानित किये गये थे। धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े ने भी इनका सम्मान किया था।

श्री शास्त्री जी ने सेवा निवृत्ति के उपरान्त बैंगलोर में ही अपना जीवन बिताया। अपनी बहुमूल्य सेवा-साधना से दक्षिणभारत तथा देश को गौरवान्वित किया है।

❑

एस. अय्यन नैनार

जीवनवृत्त :

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान् रहे हैं, जिन्होंने लेखन द्वारा साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि की है। आपका जन्म ३० अक्टूबर १९०३ को तच्चमवाडी ग्राम में हुआ था।

लौकिक तथा जैनधर्म-दर्शन की शिक्षा प्राप्तकर श्री नैनार विद्यालय में अध्यापक पद पर कार्य करने लगे। आप जैन धर्म के ज्ञाता तो थे ही, साथ ही कवि और लेखक भी थे। श्रीपुराण पर आपने तमिल में ख्यातिप्राप्त व्याख्यान किये हैं।

साहित्यिककर्म :

जैन साहित्य में तेरह कृतियों का सृजन किया, जिनमें कुछ पाण्डुलिपियां प्रकाशित भी हैं, शेष अप्रकाशित हैं -

१. भजनमाला (१९४३), २. अष्टांगसरिता, ३. गीतमाला नेमिनाथ सरिता, ४. गीतमाला श्री अप्पण्डनाथै तिरूवरूनकुन्दरम हिल पंचरत्न, ५. चन्दना गीतमाला, ६. श्री पार्श्वनाथ चरित्र गीतमाला, ७. मेरूमन्दरपुराण, ८. कौमुदीकथा, ९. दिवालीव्रत और १०. रात्रिभोजनत्याग।

कहानियों में - पूजाफल, श्रुत उपयोगफल, पंचनमस्कार फल, दान, आहारदान, औषधिदान, शास्त्रदान आदि ४५ कहानियां।

जो अप्रकाशित हैं उनमें, - नित्यसुखव्रतकथा, अपक्कम आदि भद्रदायक, इष्टोपदेश निर्ग्रन्थ आदि।

इस प्रकार श्री नैनार ने साहित्य व समाज सेवा करते हुए ४ दिसम्बर सन् १९९१ को संसार से सदा के लिए विदा ली, किन्तु उनकी स्मृतियां आज भी चेतनता प्रदान करती हैं।

बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय

उषा अपनी अरूणाभा को पृथ्वीतल पर बिखेर कर सौन्दर्योपासकों के हृदय में हल्की-हल्की गुदगुदी उत्पन्न करती है। बदली भूखण्डों को जीवन का मुक्तदान कर ग्रीष्म से निर्जीव होती सृष्टि को चेतना प्रदान करती है। इस प्रकार निःस्वार्थ रूप से की जाने वाली सेवा-भावना ही मानव को देवता की श्रेणी में ले जाने वाली होती है। इसी के परिणाम स्वरूप कई लोग अन्यों से अलग-थलग एवं नश्वर शरीर के न रहने पर भी सदैव जीवन्त बने रहते हैं।

मझला कद, कसरती देह, गेहुंआ रंग, गठे हुये अवयव, भरी हुई और सजग मुखाकृति, विरलश्मश्रु, वाणी में ओज, शैली में गम्भीरता, निराली और आकर्षक शिष्टता वाले श्री गोयलीय जी का व्यक्तित्व ही ऐसा था, जो उनके सम्पर्क में आने के बाद उनके सामीप्य का सदैव अनुभव करता था।

ऐसे व्यक्तित्व चाहे जहां जन्में हों, किन्तु अपनी मौजूदगी का अहसास वह अपनी लेखनी, वक्तृता और विचारों से कराते हैं। उनकी महानता जन्म से नहीं वरन् जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाले कार्यों से होती है।

शिक्षा :

आपने अपनी कुशाग्र बुद्धि से नैसर्गिक अध्यवसाय और अनुशीलन कर जीवन के विद्यालय में शिक्षण प्राप्त किया। यह शिक्षा यथार्थता का बोध तो कराती ही है, साथ ही मानवजगत् में जागृति का शंखनाद फूंकने में भी समर्थ होती है।

साहित्य सेवा :

बचपन से ही आपने लेखन के क्षेत्र में पदार्पण कर लिया था। कथा, निबन्ध, कविता, नाटक आदि विविध विधाओं में 'दास' उपनाम से लिखी गई आपकी रचनायें आपकी प्रतिभा को प्रकट करती थीं। आपने हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं में अपने लेखनी को प्रवाहित किया। मौर्यकालीन इतिहास के तो आप विशिष्ट एवं मर्मज्ञ विद्वान् थे। यूरोपीय युद्ध के दिनों में 'राजपूताने के जैन वीर', 'मौर्यसाम्राज्य के जैन वीर' और 'हमारा उत्थान और पतन' आदि पुस्तकें लिखकर आपने युवा चेतना को झकझोरने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसके अलावा अनेक कृतियां आपकी लेखनी से प्रसूत हुईं। जिनमें कथा व संस्मरण, दास कुसुमांजलि, विश्वप्रेम व सेवाधर्म, अहिंसा और कारयता, उजले पोश बदमाश आदि कुछ उल्लेखनीय हैं। आपकी कुछ प्रौढ और पठनीय पुस्तकें भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित हुई हैं। जिनमें जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ, शेरो शायरी, शेरो सुखन पांच भाग, जैन जागरण के अग्रदूत आदि मुख्य हैं।

आपने वर्षों तक 'वीर' और 'अनेकान्त' जैसे प्रतिष्ठित पत्रों का सफलता पूर्वक सम्पादन करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक पद को जिस गौरव और अनुकरणीय योग्यता से सम्हाला वह सदैव आदर्श रहेगा।

आपके प्रेरणादायी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से समाज आपने आपको गौरवान्वित अनुभूत करता है।

❑

अर्जुनलाल सेठी

राष्ट्रीयचेतना और समाजसुधार के अग्रदूत थे श्री अर्जुनलाल जी सेठी। जीवन के युद्धस्थल में सदैव संघर्ष को हाथ बढ़ाकर थाम लेना आपकी नियति बन चुका था। क्योंकि साहस और दृढता के तो आप प्रतीक ही थे। आपका जन्म ९ सितम्बर सन् १८८० को जयपुर में हुआ। आपके पिता का नाम लाला जवाहरलाल जी सेठी था, जिन्हें महाराजा जयपुर नरेश ने ठाकुर गोविन्दसिंह जागीदार का अभिभावक और शिक्षक नियुक्त किया था। आपने अन्त तक इसी रूप में सेवायें प्रदान की। आपकी मां श्रीमती पांचोदेवी जयपुर राज्य के प्रतिष्ठित और सम्मानित

व्यक्ति श्री मोहनलाल जी नाजिम की पुत्री थी। माता-पिता दोनों के राजघराने से सम्बन्ध होने के कारण आप राजनीति के खेलों को संस्कार के रूप में देखते-सीखते रहे।

शिक्षा व दाम्पत्यजीवन :

आपने १८९८ में मैट्रिक और १९०२ में जयपुर कालेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। आपको हिन्दी की अभिरुचि आपके बाल्यसखा श्री जवाहरलाल वैद्य के माध्यम से पैदा हुई। कालेज की शिक्षा के दौरान आप निजी तौर पर जैन ग्रन्थों का अध्ययन भी करते रहते थे। जिसमें पं. चिमनलाल जी जैन की सहायता आपको उपलब्ध होती रहती थी। बी.ए. पास करते ही आप रावलपिंडी की जैन समाज के आमन्त्रण पर सन् १९०४ में वहां गये, जहां जैन समाज के समक्ष पहले-पहल अंग्रेजी में भाषण दिया।

आपने सुश्री गुलाबदेवी के साथ दाम्पत्य जीवन आरम्भ किया। सन् १९०४ में आपको प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इसके बाद तीन पुत्रियों के सुयोग का अवसर आपको मिला। किन्तु १९२४ में केवल २० वर्ष की अवस्था में आपके बेटे प्रकाशचन्द के वियोग ने आपको झकझोर दिया।

कर्मक्षेत्र :

आपकी जयपुर राज्य में निजामत (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट) के पद पर नियुक्ति होने वाली थी कि १९०२ में पिता जी की मृत्यु हो जाने पर आपको कामदारी का ही पद संभालना पड़ा। होश संभालते ही आप देशप्रेम के दीवाने हो गये थे। राजनीति में सक्रिय भागीदारी से जेल के सींकचों में बहुत समय व्यतीत करने वाले सेठी जी समाजसुधारक, अद्भुत विद्वान् तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे। सन् १९२० में ६ वर्ष की नजरबन्दी से आप छूटने भी न पाये थे कि असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। ९ सितम्बर १९३४ को आप राजपूताना एवं मध्यभारत प्रान्तीय कांग्रेस के प्रान्तपति चुने गये, किन्तु प्रतिपक्षी दल ने इस चुनाव को रद्द करा दिया। राष्ट्रीयता से सराबोर सेठी जी व्यक्तिगत स्वार्थों से सदा दूर रहे।

प्रखरबुद्धि और वाक्पटुता के कारण आप बाल्यावस्था से ही सभाओं में व्याख्यान देने और नाटकों में भाग लेने लगे थे। स्वयं अबोध विद्यार्थी होते हुए भी मात्र १३ वर्ष की अवस्था में आपने एक पाठशाला खोली। 'जैनप्रदीप' पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया और 'विद्याप्रचारिणी सभा' की स्थापना भी आपने विद्यार्थी

जीवन में ही कर डाली।

सन् १९०७ में आपने 'वर्धमान विद्यालय' एवं 'जैन शिक्षा प्रचारक समिति' की स्थापना की। जयपुर से लौटने के बाद चौरासी मथुरा में महासभा द्वारा संचालित विद्यालय में मैनेजर के पद पर रहकर अनेक सृजनात्मक कार्यों को अपने व्यक्तित्व द्वारा सम्पादित किया।

दृढनिश्चयी :

राजनीति के दूषित वातावरण के बीच भी सेठी जी ने जैनत्व के संस्कारों को जीवित रखा। जेल में जिनदर्शन की सुविधा न होने के कारण आपने भोजन का त्याग कर दिया और उस पर इतने दृढ रहे कि ७० दिन तक निराहार रहे। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा और महात्मा भगवानदीन ने जेल में जिनबिम्ब विराजमान कराकर आपके उपवास को पूर्ण कराया। भारत के राजनीतिक बन्दियों में सेठी जी का यह प्रथम उदाहरण था, इसलिये भारतीय नेताओं ने 'भारत का जिन्दा मेक्स्वनी' कहकर आपका अभिनन्दन किया।

सर्वधर्मसमभावी :

जैनत्व के प्रति विशेष लगाव होने के कारण आपने अनेकान्त को यथार्थ रूप से अपनाया। यही कारण है कि आप सर्वधर्म समभावी थे। जैनधर्म के उद्भट विद्वान होने साथ आप हिन्दूधर्मग्रन्थों में विशेषकर गीता के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। इस्लाम धर्म के विषय में भी आपकी जानकारी इतनी पर्याप्त थी कि आपके पास मुसलमान भी कुरान पढ़ने आते थे। राजनीति में तो पारंगत थे ही, जिसके कारण अच्छे-अच्छे राजनीतिज्ञ आपसे मन्त्रणा के बिना अधूरापन महसूस किया करते थे। आपका रोम-रोम अनेकान्त की सुधा से भींगा हुआ था। आपकी अनेकान्तदृष्टि में राम, रहीम, बुद्ध और महावीर आदि सभी के गुणों का सम्मान था।

साहित्य सुश्रुषा :

साहित्यसृजन के क्षेत्र में आपने महेन्द्रकुमार नाटक, मदनपराजय नाटक और पारसयक्षपूजा लिखीं। इसके अतिरिक्त आपने लेख लिखकर अपनी कलम को सार्थक किया। विशालता को अपने हृदय में सहेजने वाले इस विराट् व्यक्तित्व का निधन २२ दिसम्बर १९४१ को हो गया। आपके निधन के साथ ही जैन समाज ने एक सच्चे सपूत एवं श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता के साथ दृढनिश्चयी व्यक्तित्व को सदा के लिए खो दिया, जिसके अभाव को कभी पूरा नहीं जा सकता।

पं. इन्द्रकुमार शास्त्री

यश:कामना से परे रहने वाले विद्वानों में श्री इन्द्रकुमार जी शास्त्री का नाम गणनीय है। किन्तु खेद है कि इनकी इस वृत्ति के कारण आपके लौकिक जीवन की जानकारी अनुपलब्ध ही रह गयी। वे बीसवीं सदी के आरम्भ में गरिमामण्डित विद्वान् थे। श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री की ज्येष्ठ पुत्री के साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ था।

विद्यार्जन :

अपने मामाश्री एवं पिता से शिक्षा प्राप्त कर जैनधर्म के पाण्डित्य को प्राप्त किया। आपने निरन्तर पुरुषार्थ के द्वारा अनेक भाषाओं पर अधिकार कर लिया था, जैसे संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, तमिल आदि।

अभिरुचि :

अध्ययन, प्रवचन एवं धर्मप्रभावना के साथ प्रतिष्ठातिलक के अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी। इस कार्य को उन्होंने अधिक महत्त्व के साथ किया। निरन्तर स्वाध्याय तो आपका व्यसन ही बन गया था। आपके द्वारा अनेक प्रतिष्ठा के कार्य सम्पन्न भी किये गये।

प्रभावककार्य :

पंचकल्याणक महोत्सव कार्यों में उनकी प्रधान रूप से सहभागिता एवं सक्रिय योगदान रहता था। उनकी प्रवचन शैली से प्रभावित हो जन-समुदाय सहज ही आकर्षित हो खिंचा चला आता था। वे इस गुण के कारण जनप्रिय थे।

श्री इन्द्रकुमार शास्त्री जी ने तमिल भाषा में साहित्य सृजन किया था। किन्तु उनके नाम आदि के विषय में कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिल सका। आप श्रवणबेलगोला के इन्द्रवर्ग मण्डली के भूषण थे। आपके अगाध पाण्डित्य से समस्त दक्षिणभारत गौरवान्वित होता था।

❑

पं. इन्द्रलाल शास्त्री

बिखरे हुये पाषाणखण्ड पददलित होते हैं, किन्तु वही जब संयोजित हो मन्दिर के आकार को ग्रहण कर लेते हैं तो पूजता को प्राप्त कर लेते हैं। उसमें व्यक्ति की आस्था, निष्ठा व श्रद्धा साकार रूप में प्रतिपादित होने लग जाती है। इसी तरह जब व्यक्ति अपने अन्तर्निहित संकल्पों, साहस और कर्मठता को समन्वित कर कर्मक्षेत्र में पदार्पण करता है तो सृजन के नये आयामों को जन्म देता हुआ रचनाधर्मिता के कारण उपाधि/सम्मान से विभूषित होता है।

पं. इन्द्रलाल शास्त्री ऐसे ही एक युगपुरुष थे। आपका जन्म वास्तुकला व गुलाबी नगरी के नाम से प्रसिद्ध शहर जयपुर में २१ सितम्बर सन् १८९७ में हुआ था। आपके पितामह नगरकोतवाल तथा पिता श्री मालीलाल जी रेवेन्यु विभाग तहसील में क्लर्क थे। माता श्रीमती हीरादेवी उदारहृदया तथा धार्मिक महिला थी। जब आप मात्र दो वर्ष के थे तभी पिताजी के देहावसान से प्रकृति ने आपको वियोग के दु:ख से अवगत कराया। ९ वर्ष की अवस्था में बड़े भाई के स्वर्गारोहण तथा १२ वर्ष की आयु में माताश्री के वियोग ने आपको जीवनपथ पर स्वालम्बन से चलने की रीति सिखा दी।

शिक्षा एवं पारिवारिकदायित्व :

वियोगों की शृंखला ने आपको दायित्वों की कोठरी में कैद किया। पिता जी एवं बड़े भाई के दिवगंत हो जाने से अध्ययन क्रम जारी रखने हेतु आपने ट्यूशन का सहारा लिया और इसी सहारे से शास्त्री एवं साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने शिक्षण के साथ-साथ व्यवसाय तथा अन्य कार्यों को भी अपनाया। सर सेठ भागचन्द सोनी के जयपुर फर्म में भी कार्य किया। बुद्धि व अनुभव की प्रगाढता के कारण जयपुर राज्य में देवस्थान विभाग के अधिकारी के रूप में भी कुछ वर्षों तक कार्य किया। पश्चात् मथुरा, केकडी, लाडनूं तथा जयपुर आदि महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य भी किया।

साहित्यसृजन :

दु:खों के गहन अन्धकार ने विचारों की तरंगों को दोलित किया और सृजन के रत्नों को खोजकर अनुभूतियों की लेखनी से अंकित करने के लिये बाध्य किया। धर्मसोपान, अहिंसातत्त्व, विवेकमंजूषा, दिगम्बर जैन साधु की चर्या, जैनधर्म सर्वथा

स्वतन्त्र धर्म है, जैन मन्दिर और हरिजन, श्रेयोमार्ग, वर्णीविज्ञान, जैनधर्म और जाति, तत्त्वानोक, आत्मवैभव, महावीर देशना, पुण्यधर्ममीमांसा, भावलिंग मुनि का स्वरूप, साम्यवाद से मोर्चा, भारतीय संस्कृति का मूलरूप, पशुवध सबसे बड़ा देशद्रोह, मन्दिरप्रवेशमीमांसा, रात्रिभोजन, शान्ति पीयूषधारा, भक्ति कुसुमसंचय आदि आपकी प्रमुख रचनायें हैं।

आपने पंचस्तोत्र, आत्मानुशासन एवं स्वयंभूस्तोत्र के साथ सामायिक पाठ का पद्यानुवाद भी किया। जो आपके कविहृदय का परिचायक है। भंवरीलाल बाकलीवाल स्मारिका का सम्पादन भी आपके द्वारा सम्पन्न हुआ। आपने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के साहित्य की यथेष्ठ सेवा करते हुए धर्मोपदेश/प्रवचनों से धर्मप्रभावना भी की।

सन् १९७० को आपने अपने वियोग की अन्तिम घड़ी में भी पूर्ण समता के साथ इस शरीर का त्याग कर अपनी प्रतिभा एवं सेवा को जैन समाज में सदैव के लिये देदीप्यमान बना दिया।

❑

डॉ. ए. एन. उपाध्ये

डॉ. उपाध्ये द्वारा रचित प्रातःस्मरणीय कुन्दकुन्दाचार्य के प्रवचनसार की प्रस्तावना और सम्पादन के सम्बन्ध में रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका (जुलाई १९३६) में निम्नलिखित अभिमत दिया गया है –

'प्रो. उपाध्ये न केवल कुन्दकुन्द एवं उनकी रचनाओं का सामान्य एवं प्रवचनसार का मुख्य रूप से सुविचारित एवं श्रमसाध्य विवरण प्रस्तुत करते हैं, अपितु कुछ अति दुरूह जैन तत्त्वमीमांसा और आध्यात्मिक सिद्धान्तों को भी उजागर करते चलते हैं जो अत्यन्त मूल्यवान् है।'

उनके इस विशाल लेखन समूह में से मात्र एक ग्रन्थ पर उपर्युक्त अभिमत इस तथ्य की पुष्टि के लिये पर्याप्त है कि डॉ. श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये जैन वाङ्मय के अधिकारी मनीषी विद्वान् थे, जिनकी शोधवृत्ति और तथ्यपरक दृष्टि ने समाज को इतने अनुपम उपहार भेंट किये, जिन्हें संभवतः कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल में कदाचित् ही आत्मसात् कर सके।

जीवनवृत्त :

सदलगा (बेलगांव) की वह पुनीत धरती धन्य है, जिसमें एक ओर डॉ. उपाध्ये जैसा अध्येता मीमांसक विद्वान् तो दूसरी ओर आचार्य विद्यासागर जैसा दूरदर्शी तपस्वी तत्त्वज्ञ साधु पैदा हुआ। सरस्वती के वरदपुत्र डॉ. उपाध्ये का जन्म इसी सदलगा गांव में ६ फरवरी सन् १९०६ को हुआ था।

शिक्षाक्षेत्र :

प्राथमिक शिक्षा अपने गांव में और बेलगांव के जी. ए. हाईस्कूल में माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की। महाविद्यालयीन स्तर की शिक्षा के लिए उन्होंने राजाराम कालेज कोल्हापुर और विल्लिंग्टन कालेज सांगली में प्रवेश लेकर गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया। सन् १९२८ में उन्होंने संस्कृत और अर्धमागधी (प्राकृत) विषयों के साथ बी.ए. आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी प्रकार वे सन् १९३० में प्राकृत और संस्कृत विषयों में स्नातकोत्तर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उन्हें स्नातकोत्तर अध्ययन काल में भण्डारकर प्राच्य एवं शोध संस्थान पूना में स्नातकोत्तर व्याख्यानों का लाभ मिला। बम्बई विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् १९३४ में डी.लिट्. की उपाधि से विभूषित किया। इसी समय उन्हें बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा तीन वर्षों के लिये (१९३९-४२) शोधवृत्ति भी दी गई।

बहुभाषाविद् :

डॉ. उपाध्ये प्राकृत, पाली, संस्कृत और अपभ्रंश के अधिकारी विद्वान् होने के साथ आंग्लभाषा के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। कन्नड, मराठी और हिन्दी में उनकी समान गति थी। उन्होने मराठी और कन्नड भाषा के लेखकों के ग्रन्थों के आमुख और समीक्षाएं लिखी हैं।

सेवायें :

राजाराम कालेज, कोल्हापुर में आपने ३२ वर्षों तक लगातार अर्धमागधी के प्राध्यापक के रूप में काम किया। कनिष्ठ होते हुये भी आप सन् १९४१ की अखिल भारतवर्षीय ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस हैदराबाद के पाली-प्राकृत, बौद्ध और जैनमत के विभागीय अध्यक्ष निर्वाचित हुये। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने आपको सन् १९६२ से १९७१ तक अवकाश प्राप्त सम्मानीय प्राध्यापक (Prf. Emeritus.) का पद प्रदान किया। शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के आप

कता संकाय के अधिष्ठाता रहे। सन् १९६६ में आप अखिल भारतवर्षीय ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स, अलीगढ के सामान्य अध्यक्ष बनाये गये। सन् १९६७ में उन्हें ४६ वें कन्नड साहित्य सम्मेलन, श्रवणबोलगोल के सभापति पद से नवाजा गया। सन् १९७० से १९७५ तक उन्हें मैसूर विश्वविद्यालय में जैनदर्शन और प्राकृत के संस्थापक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष के रूप में सम्मानित किया गया।

विदेशों में प्रतिनिधित्व :

सन् १९७१ में केनया (आस्ट्रेलिया) और १९७३ में पेरिस में आयोजित प्राच्यविद् विद्वानों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने हेतु आपको भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में चुना गया। इसी प्रकार सन् १९७४ में लैवीन (बेल्जियम) में आयोजित धर्म और शान्ति के द्वितीय विश्व सम्मेलन में आपने भारत सरकार का प्रतिनिधित्व किया। इन सम्मेलनों में आपके द्वारा प्रस्तुत शोधपत्रों की सर्वत्र सराहना की गयी।

पुरस्कार :

सन् १९७५ में उन्हें मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा 'सिद्धसेन का न्यायावतार' तथा अन्य लेखन हेतु गोल्डन जुबली पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। सन् १९७५ में ही भारत के राष्ट्रपति द्वारा उन्हें स्वतन्त्रता दिवस पर 'राष्ट्रीय संस्कृत पण्डित' की उपाधि से विभूषित किया गया।

सन् १९७३ में उन्हें श्रमण जैन भजन प्रसारक मण्डल, दिल्ली द्वारा उनकी पुस्तक 'गीतवीतराग' हेतु स्वर्णपदक प्रदान किया गया।

संस्थाओं से संबद्धता एवं सम्पादकीयदायित्व :

१. भारतीय ज्ञानपीठ ट्रस्ट, एवं उसकी संचालक समिति की सदस्यता।
२. दक्षिण भारत जैन सभा के सभापति (१९७२-७३)।
३. जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर के सह प्रधानसम्पादक।
४. ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला, बनारस के सह प्रधानसम्पादक।
५. जैन सिद्धान्त भास्कर और जैन एन्टीक्वयरी तथा ओरियण्टल लिटरेरी डायनेस्ट के सहयोगी सम्पादक।
६. षट्खण्डागम(धवला सहित) के डॉ. हीरालाल जैन के सहयोगी सम्पादक।

७. एस. एस. सी. इ. बोर्ड महाराष्ट्र की पाठ्य पुस्तक समिति की सदस्यता।

८. गया, बम्बई, पूना, नागपुर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित संस्कृत, प्राकृत अध्ययन मण्डलों के सम्माननीय सदस्य रहे।

रचनाएं :

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के ३० ग्रन्थों का समालोचनात्मक सम्पादन और उनकी विस्तृत प्रस्तावनाएं, उनमें से अनेक तो उनके द्वारा प्रथम बार प्रकाश में लायी गयीं। महत्त्वपूर्ण लम्बी प्रस्तावना सहित सम्पादित ग्रन्थ निम्नानुसार हैं, जिनमें ग्रन्थ के परिचय के साथ-साथ उनके लेखकों के जीवनवृत्त, रचनाकाल, अन्य उपलब्ध रचनाओं आदि की विस्तृत शोधपरक विवेचनाएं हैं। दुर्लभ ग्रन्थ जो उनके द्वारा पहली बार प्रकाश में लाये गये -

१. जटासिंहनन्दि का वरांगचरित्र (१९५५) - इससे पूर्व इस महान् संस्कृत महाकाव्य को लुप्तप्रायः माना जाता था। इसके रचयिता का भी अता-पता नहीं था। अनुमानतः रविषेणाचार्य को इसका कर्त्ता माना जाता था। डॉ. उपाध्ये ने पहली बार इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां खोजकर भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना की पत्रिका में इस सम्बन्ध में शोधलेख लिखा। बाद में सन् १९३८ में समाज/विद्वानों के आग्रह से यह उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ, लम्बी प्रस्तावना सहित प्रस्तुत किया गया। इसे उपलब्ध पुरालेख, शिलालेख एवं अन्य आचार्यों के ग्रन्थों के आधार पर आचार्य जटासिंहनन्दि का सिद्ध किया गया।

२. रामपानीवाद का कंसवहो - यह प्राकृत काव्य शास्त्रीय शैली में रचितहै।

३. उषानिरुद्धम - रामपानीवाद पर आरोपित यह भी प्राकृत काव्य रचनाहै।

४. यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ती, भाग १,२ - सृष्टि रचना पर जैनधर्म सिद्धान्त की व्याख्या करने वाला प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है। यह भी डॉ. हीरालाल जैन के सह सम्पादकत्व में पहली बार आधिकारिक रूप से सम्पादित ग्रन्थ है।

५. हरिषेण का वृहत्कथाकोष - यह ९३२ ए. डी. में लिखी गयी १५७ संस्कृत कथाओं का कोश है जो भगवती आराधना से सम्बन्धित है।

६. रुद्रदास का चन्द्रलेखा - यह प्राकृत नाटक है। जो अनेक प्रकार से कर्पूर मंजरी से समानता रखता है।

७. कुतूहल का लीलावहो - ४०० ए. डी. में प्राकृत भाषा में रचित दुर्लभ रोमानी काव्य ग्रन्थ है। किसी अज्ञात लेखक द्वारा इसकी संस्कृत टीका का भी सम्पादन किया गया है।

८. घनश्याम की आनन्द सुन्दरी - यह भी एक प्राकृत नाटक है। इस पर भट्टनाथ की संस्कृत टीका का सम्पादन भी समाविष्ट है।

९. प्रद्योतनसूरि की कुवलयमाला - एक रोमानी प्राकृत चम्पूकाव्य है। इस ग्रन्थ के सम्पादन, प्रस्तावना आदि में लेखक को ६ वर्ष से भी अधिक समय लगा है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी यह प्राकृत की महत्त्वपूर्ण रचना है।

१०. पद्मनन्दि की जम्बूद्वीपपण्णत्ती - डॉ. हीरालाल जैन के सह सम्पादकत्व में यह जैन सृष्टि रचना प्ररूपक प्राकृत ग्रन्थ है। जिसका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इसमें डॉ. लखमीचन्द जैन द्वारा तिलोयपण्णत्ती के जैन गणित पर भी चर्चा है।

उपर्युक्त पहली बार प्रकाश में लाये गये ग्रन्थों के अतिरिक्त पंचसुत्तग, प्रवचनसार, परमात्मप्रकाश, धूर्ताख्यान, नियमसार, धर्मपरीक्षा आदि अनेक ऐसे जैन ग्रन्थ हैं, जिन पर डॉ. उपाध्ये ने विस्तृत प्रस्तावनाओं के माध्यम से सम्पादित रचना, लेखक, रचनाकाल का निर्धारण और अन्य आगम ग्रन्थों एवं अन्य धर्मावलम्बियों के दार्शनिक सिद्धान्तों से तुलना कर नवीन भाषा शैली में सुलभ कराये हैं।

उनकी सम्पादित रचनाओं के अतिरिक्त अनेकान्त, एनल्स वाइस आफ अहिंसा, कर्नाटक हिस्टोरिकल क्वार्टरली, अनेक विश्वविद्यालय के शोध जर्नल्स, जैन सिद्धान्त भास्कर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि शोध पत्रिकाओं में उनके प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश साहित्य, भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन आदि अनेक विषयों पर १६५ से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुये।

इसके अतिरिक्त आपने अन्य विद्वानों की ७० से अधिक रचनाओं पर समीक्षात्मक लेख लिखकर उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसी प्रकार पं. नाथूराम जी प्रेमी, जुगलकिशोर जी मुख्तार, फूलचन्द जी शास्त्री, पन्नालाल जी साहित्याचार्य, हीरालाल जैन, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन, डॉ. प्रफुल्लकुमार मोदी, सुमेरचन्द दिवाकर आदि जैन वाङ्मय के अधिकारी विद्वानों के अनेक ग्रन्थों के आमुख लिखकर अध्येता होने का परिचय दिया।

स्वभाव से अत्यन्त सरल, सहयोग के लिये सदा उपलब्ध, सदाशयता और उदारता की साक्षात् मूर्ति, अपूर्व अद्वितीय प्रकृति प्रदत्त विद्वत्ता के साथ-साथ विनम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। **कर्मण्येवाधिकारस्ते** ही उनका प्रेरणा सूत्र वाक्य था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय प्राच्य विद्या के प्राध्यापक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने ठीक ही लिखा है कि वे 'स्वान्तःसुखाय और निष्काम धर्म के जीते जागते उदाहरण थे।' ८ अक्टूबर सन् १९७५ को हृदयाघात के माध्यम से काल की क्रूर नियति ने इस महान् कर्मयोगी को हमसे सदा-सदा के लिये विलग कर दिया।

❑

प्रो. एस. ए. जैन

जैनधर्म और संस्कृति को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाले, विद्वान्, शिक्षाविद्, सफल अनुवादक एवं साहित्यकार थे प्रो. एस.ए. जैन। उनकी गणना भारत के अधिकृत छह विद्वानों में होती है, जो शेक्सपियर-साहित्य का गहन अध्ययन, मनन और सटीक व्याख्यान करते थे।

जीवनारम्भ :

तिरुपन्मूर (चेंगलपेट) में ९ अक्टूबर सन् १९०५ को आपका जन्म हुआ, श्री कूंरासंपतराव नैनार के परिवार में। आप तीन भाई थे, जिनमें एक भाई ने श्री मुनि गजपतिसागर होकर आत्मसाधना की।

विद्याध्ययन :

कांजीपुरम् में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उच्च शिक्षा हेतु आप मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास गये। जहां आपने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्रावीण्य सूची के साथ प्राप्त की। धार्मिक शिक्षा के लिए किसी विशेष संयोग का सुअवसर नहीं मिला। निरन्तर स्वाध्याय से ही आपने अपने धार्मिक ज्ञान को इतना अधिक समृद्ध कर लिया था, जितना कि किसी विद्वान् के लिए आवश्यक होता है।

सेवावृत्ति :

अध्ययनोपरान्त शीघ्र ही पच्चपास कालेज, मद्रास में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त होकर सन् १९३७-५० तक अपनी सेवायें प्रदान की। तत्पश्चात् त्यागराज

कालेज, मदुरै में अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में सेवारत रहे। वे उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए प्राचार्य के पद पर पहुंचे। व्यवस्थापक समिति के आग्रह पर प्राध्यापक प्रशिक्षण संस्थान (कालेज) में भी प्राचार्य के पद पर कार्य किया। १९६३ में सेवानिवृत्त हो कांजीपुरम् आ गये। यहां पर निजी स्वाध्याय एवं मनन में संलग्न हुए।

सहयोगवृत्ति :

प्रो. एस. ए. जैन विद्यार्थियों को तन-मन-धन से सहयोग करते थे। कांजीपुरम् आने पर उन्होंने ग्रामवासी जैन छात्रों को शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हें माध्यमिक शिक्षा तथा उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु अपने निजी भवन में आवास, संरक्षण तथा आर्थिक सहयोग प्रदान कर उनके उत्तम भविष्य का निर्माण करने की प्रेरणा दी। विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के निर्माण तथा संपोषण के तो आप आधारस्तम्भ ही थे।

साहित्यसर्जन :

श्री जैन द्वारा रचित 'शेक्सपियर आकन्सेप्शन ऑफ आइडियल वुमेनहुड' कृति आदर्श महिला के लक्षणों की प्ररूपणा में बेमिशाल है। 'व्हाट जैनिज्म हेज इन फार द वर्ल्ड' उनकी सर्वोत्तम पुस्तक है, जो जैनदर्शन की महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करती है। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा विरचित सर्वार्थसिद्धि का 'रियल्टी' नाम से अंग्रेजी अनुवाद भी आपने किया है। इसके अनुवाद के समय आप स्वयं संस्कृतविद् होते हुए भी पं. श्री सुब्बैया शास्त्री के पास कार्कल जाकर उनसे गहन परामर्श करते रहे और १५ वर्ष में आत्मिक संतुष्टि के साथ इसे पूर्ण किया। इसका इतना अधिक प्रभाव हुआ कि इसके प्रकाशन से पूर्व ही पाण्डुलिपि पर डॉ. हीरालाल जी जैन, डॉ. ए.एन.उपाध्ये और पं. श्री सुमेरुचन्द दिवाकर ने इसका सूक्ष्मता से अवलोकन कर अपनी संस्तुति/सम्मति प्रेषित की।

महाप्रयाण :

२३ जून सन् १९७६ में कांजीपुरम् में ही जैन तथा अंग्रेजी साहित्याराधक ने अन्तिम सांस ली। उनके अभाव से पैदा हुई शून्यता की पूर्ति असंभव ही है।

डॉ. कन्छेदीलाल, साहित्याचार्य

दृढसंकल्पशक्ति और श्रम के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने वालों में एक थे श्री डॉ. कन्छेदीलाल जी। आपका जन्म बुन्देलखण्ड के ग्राम विलानी (पथरिया) जिला दमोह में पौष कृष्णा अमावस्या वि.सं. १९८६ को हुआ था। आपके पिता श्री चतुर्भुज एवं माता श्री राजरानी ने सामान्य परिवार के होते हुए अपने पुत्र को सर्वश्रेष्ठ धन मानकर यथोचित रीति से पालन-पोषण किया।

शिक्षा :

श्री कन्छेदीलाल जी ने आरम्भिक शिक्षा श्री दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर में प्राप्त की। अनन्तर स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में धर्मशास्त्री और आचार्य की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुये। स्वाध्यायी विद्यार्थी के रूप में हिन्दी और संस्कृत में एम. ए. तथा साहित्याचार्य का अध्ययन कर अच्छे अंकों से सफलता प्राप्त की। 'रूपककार हस्तिमल्ल और उनके रूपकों का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर पी-एच. डी. की उपाधि से सम्मानित हुये।

कार्यक्षेत्र :

जीविकोपार्जन हेतु जैन विद्यालय मुरैना और चौरासी मथुरा में धर्म शिक्षक व व्यवस्थापक के रूप में कार्य किया। अनन्तर गुर्जर इण्टरकालेज दादरी बुलन्दशहर में व्याख्याता, जैन डिग्री कालेज सिवनी में संस्कृत व हिन्दी के व्याख्याता अनन्तर शासकीय महाविद्यालय रायपुर में व्याख्याता के पद पर अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् शासकीय संस्कृत महाविद्यालय कल्याणपुर, शहढोल में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में कार्यरत रहे। आप स्पष्टवक्ता एवं श्रेष्ठ प्रवचनकार थे।

साहित्यसेवा :

शासकीय सेवा में रत रहते हुए भी आपने जैन सन्देश का सफल सम्पादन तथा मौलिक चिन्तन प्रस्तुत कर अपनी अमूल्य सेवायें समर्पित की। आपके अनेक शोधालेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

५ जुलाई सन् १९८९ को असामाजिक तत्त्वों द्वारा आपकी हत्या कर स्वतन्त्र एवं निर्भीक पत्रकारिता का गला घोंटने जैसा कलंकपूर्ण कृत्य किया गया। किन्तु उनके इन प्रयासों के बाबजूद भी श्री कन्छेदीलाल जी जैसे निर्भीक एवं बेवाकपत्रकारों का अभाव इस धरा से कभी संभव नहीं हो सकता। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद'

साहित्यमनीषी, श्रेष्ठकवि, गद्यकार एवं मन्त्र-तन्त्र अनुष्ठान के साधक आचार्य के रूप में लब्धख्यात रहे हैं पं. श्री कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद'। आपका जन्म ३ दिसम्बर सन् १९०५ को खुरई में हुआ था।

शिक्षा :

आपकी लौकिक शिक्षा हिन्दी मिडिल तक ही हुई पर मौलिक चिन्तन-मनन के कारण लौकिक शिक्षण पीछे रह गया। वे पहले ही शास्त्री, पण्डित या विद्वान के रूप में पहचाने गये बाद में जैनदर्शन के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत धर्म, न्याय और शास्त्री की उपाधियां प्राप्त की।

गृहस्थजीवन का आरम्भ :

सन् १९२५ में शास्त्री जी ने वैवाहिक जीवन में कदम रखा। कुछ कदम ही साथ चले कि सन् १९३१ में वे एकाकी रह गये। पुनर्विवाह होने पर भी आपकी द्वितीय धर्मपत्नि ने भी आपको अकेला छोड़ सन् १९४२ में परलोक गमन कर दिया।

सेवाकार्य :

श्री शास्त्री जी अपनी महाजनी नौकरी की व्यस्तता और क्षीण आर्थिक परिस्थितियों से समझौता करते हुये सतत् प्रज्वलित दीप की तरह प्रकाश लुटाने का कार्य करते रहे। उन्होंने रचनाधर्मिता के माध्यम से समाज में श्रेष्ठसंस्कारों का प्रस्फुटन किया साथ ही विद्यार्थियों का पथ-प्रदर्शन भी। उनके द्वारा लिखित सम्पादित तथा प्रकाशित साहित्य निम्न है -

१. सचित्र भक्तामर रहस्य, २. भक्तामर मंगलगीता, ३. भक्तामर महाकाव्य, ४. भक्तामर महामंडल पूजा, ५. गोम्मटसारपूजा, ६. दशलक्षणधर्मपूजा, ७. चन्द्रप्रभपूजा, ८. जिनसहस्रनामपूजा, ९. नित्यनियमित अर्चना, १०. सिद्धपरमेष्ठीपूजा संग्रह, ११. अभिनव सोलहकारणविधान, १२. सम्यक् रत्नत्रय पूजाविधान, १३. कल्याणमन्दिरस्तोत्र पद्यानुवाद, १४. एकीभावस्तोत्र पद्यानुवाद, १५. विषापहारस्तोत्र पद्यानुवाद, १६. जिनचतुर्विंशतिका स्तोत्र पद्यानुवाद, १७. महावीराष्टक स्तोत्र पद्यानुवाद, १८. जिनेन्द्र गीतांजलि, १९. पारस गीतांजलि, २०. वज्रांगबली हनुमान. २१. तीर्थवन्दना, २२. जाप्यहवन विधि, २३. अपनी

आलोचना, २४. भक्तिमंजूषा, २५. वीरांगनामृगावती, २६. पूजनप्रश्नोत्तरी, २७. ज्योतिर्मय काव्य, २८. अहिंसा गायन, २९. आर्यनन्दी अर्चना, ३०. भगवान् महावीर और उनका सन्देश, ३१. भैरव पद्मावती स्तोत्र, ३२. सरल जैन विवाह विधि, ३३. दीपावली महोत्सव, ३४. जैन समाज दर्पण, ३५. ईमानदार, ३६. पतिव्रता वेश्या, ३७. मन्त्रोद्गम, ३८. वीरवन्दना, ३९. होली, ४०. अक्षयतृतीया, ४१. विश्व के दशधर्म, ४२. सामलिया पारसनाथ, ४३. एलोरा अर्चना, ४४. गोम्मटेशस्तुति, ४५. प्रतिभास, ४६. भावनाप्रसून, ४७. अन्थऊ, ४८. महावीर जयन्ती, ४९. सरदारप्राणसिंह, ५०. प्राणप्रिय काव्य, ५१. समयसार अमृतकलश, ५२. भगवान् महावीर चित्रशतक, ५३. भक्तामर भारती।

अप्रकाशित साहित्य में - जैन त्योहारों का इतिहास, वीरसुधन्वा नाटक, जमाना-हाल नाटक, मृत्युंजयी, भक्तामर महामंडल पूजा, अधम धर्मात्मा, बेईमान लघुकथा, भगवती उन्यास, अध्यात्म की कुंजी और हमारे चौबीस तीर्थंकर।

सम्बद्धता :

खुरई नगर की मुख्य साहित्यिक संस्था, प्रतिभा संगम, कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, अखिल विश्व जैन मिशन, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, वीतराग जैन पाठशाला आदि संस्थाओं के विशिष्ट पदों पर रह कर आपने सामाजिक व धार्मिक चेतना को जाग्रत किया।

सम्मान/अभिनन्दन :

८४ वर्ष की आयु में आपका नागरिक अभिनन्दन किया गया। प्रभात मण्डल द्वारा आयोजित समारोह में शास्त्री जी सम्मानित हुए। श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जी ने राशि द्वारा तथा दानवीर तीर्थभक्त सवाई सिंघई जिनेन्द्रकुमार जी गुरहा ने शिरोपाव तथा अभिनन्दन पत्र भेंटकर उन्हें सम्मानित किया। लगभग सात बार उनका सम्मान किया गया था। अनेक सम्मानों, पदकों एवं पुरस्कारों से विभूषित होने पर भी वे उनमें निर्लिप्त रहे। उनकी नम्रता और सृजनधर्मिता सदैव गतिमान रही।

भक्तामर से सम्बन्धित आपकी रचनाओं ने आपको सदा के लिए जन-जन का श्रद्धाभाजन बना दिया। आपसे आपके लेखन के बारे पूछने पर उत्तर था - 'बीज को वृक्ष तक विस्तृत करने की आकांक्षा'। सचमुच ही उनका साहित्य बीज को वटवृक्ष की भांति विस्तृत कर सका है।

PDF Scanner ACE Scanner

इस प्रकार सन् १९०५ से १९९९ तक जीवन यात्रा कर साहित्यसाधना को जीवन का संबल मानकर चलने वाले शास्त्री जी चिरनिद्रा में सो गये। आप जैसे समाज सुधारक, क्रान्तिकारी लेखक, कवि एवं शिल्पी के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

पं. कमलकुमार जैन

समाजसेवी, श्रेष्ठ सम्पादक एवं पाण्डुलिपियों के अन्वेषक श्री कमलकुमार जी बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् रहे हैं। द्रोणागिरि तीर्थक्षेत्र में १५ जनवरी सन् १९४२ को आपका जन्म हुआ था। आपके पिता स्व. गोरेलाल जी शास्त्री थे। आपका अन्तिम समय में निवास छतरपुर में था।

विद्यार्जन एवं अभिरुचि :

शास्त्री, साहित्यरत्न, एम.ए. तथा बी.एड. तक शिक्षा प्राप्त की। बाल्यकाल से सामाजिक कार्यों तथा लेखन के प्रति उनकी अभिरुचि रही। वे भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्यांचल इन्दौर तथा दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो, जैन समाज छतरपुर के १५ वर्ष तक मन्त्री रहे। आपने सामाजिक एकता के लिये दिगम्बर जैन महासमिति छतरपुर एवं द्रोणप्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ द्रोणागिरि का गठन किया। शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त प्रधानाध्यापक पद पर आपकी नियुक्ति हुई।

साहित्यिकसेवा :

१. जिनमूर्ति प्रशस्ति लेख, २. सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, ३. प्रज्ञाश्रमण विरागसागर आदि आपकी प्रमुख कृतियां हैं। क्षुल्लक चिदानन्द स्मृतिग्रन्थ के प्रबन्ध सम्पादक, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक मण्डल के सदस्य रहे। शिक्षि स्मारिका, धर्मस्थ, स्वर्णजयन्ती आदि के विद्वत्तापूर्ण सम्पादनकार्य भी आपने किये। इसके साथ ही गोष्ठियों में शोध आलेख वाचन के सुअवसर भी आपको प्राप्त हुए थे। पाण्डुलिपियों के संग्रहण, संरक्षण में आपकी विशेष रुचि होने से इसी कार्य में संलग्न रहकर जिनवाणी की सच्ची सेवा की।

सम्मान :

भगवान् महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव के अवसर पर शासन द्वारा स्वर्णपदक से आप सम्मानित किये गये।१२.१२.१९९९ को आपका लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया।

कविवर कल्याणकुमार 'शशि'

महान् व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के कारण तो स्मरण किये ही जाते हैं, पर उनकी अजस्र एवं अमरकीर्ति का आधार उनका महान् कृतित्व हुआ करता है। सरस्वती के वरदपुत्र, जिन्हें कवित्वशक्ति नैसर्गिकदेन के रूप में प्राप्त हुई थी, ने प्रत्युपन्नमति द्वारा कवित्व को वेग के साथ अपने जीवन में बढ़ाया।

श्री शशि जी का जन्म उ.प्र. के रामपुर नगर में सन् १९०८ के मार्च माह में हुआ था। पिता श्री बी.एल. जैन संन्तोषी एवं सद्गृहस्थ व्यक्ति थे। आपको ४ वर्ष की अवस्था में ही पिता के वियोग के कारण आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा।

अर्जन :

किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में अध्ययन न करने के कारण आप कोई डिग्री या उपाधिधारी तो नहीं थे, किन्तु अनुभवों की कसौटियों से कसकर स्वयं को स्वर्णवत् निखार लिया था। आपने वैद्यक की शिक्षा अवश्य प्राप्त की थी, जो कि आजीविकोपार्जन में सहायक सिद्ध हुई। सन् १९३२ से स्वयं की जैन फार्मेसी में चिकित्सा कार्य करके दवाओं का निर्माण और विक्रय ही आपका व्यवसाय हो गया था।

साहित्यिकगतिविधि :

पितृवियोग और आर्थिक संकट से उत्पन्न संघर्षों ने आपको विचलित नहीं किया वरन् आपकी कवित्व शक्ति को और भी स्वर तथा प्राण प्रदान किये। अनुभवों के सिंचन ने आपको कोमल-कान्त, निर्मल व सजीव बना दिया। यही वजह थी कि मात्र १९ वर्ष की अवस्था से ही आपने कविताओं के सृजन की शुरूआत की और वह निरन्तर चार दशक तक चलती रही। कविता मात्र कल्पना की वस्तु न हो, आपको स्फूर्ति व मार्गदर्शन का केन्द्रबिन्दु बनी।

आपके प्रसिद्ध काव्यसंग्रहों में - १. देवगढदर्शन, हृदय की आग, पंखरिया, जैन समाज दर्पण, मेरी आराधना, कविताकुंज, कवितासंग्रह दो भागों में तथा पार्श्वनाथ व शौरीपुर बटेश्वर पूजन आदि प्रमुख हैं। संस्कृत से अनूदित 'सरल जैन विवाह' आपकी अन्यतम पद्यमय रचना है।

आपकी उपस्थिति देश के बड़े-बड़े कवि सम्मेलनों को गरिमा प्रदान करती

थी। इसके अलावा आपकी कविताओं का पाठक-संसार अति विस्तृत था, जो ज्ञानोदय, नवभारत टाइम्स, पराग, नन्दन और प्रदीप जैसी सैकड़ों पत्रिकाओं के माध्यम से आपसे जुड़ा था।

सन् १९५०-५१ में 'सन्देश' दैनिक, सन् १९५५-६६ तक 'प्रदीप' साप्ताहिक तथा 'आदर्श जैन चरितमाला' मासिक का १९४० में सम्पादन आपके द्वारा सम्पन्न हुआ।

सेवा :

शिक्षा प्राप्त न कर पाने की कमी आपको शिक्षा प्रसार के लिये प्रेरित करती रही। इसी उद्देश्य से आपने रामपुर में जैन इन्टर कालेज की स्थापना में अथक सहयोग दिया। हिन्दी के प्रचारार्थ जैन लाइब्रेरी तथा रामपुर में हिन्दी साहित्य गोष्ठी की स्थापना की। उक्त इन्टर कालेज एवं पुस्तकालय के आप अध्यक्ष तथा उच्च माध्यमिक कन्या विद्यालय के ऑनरेरी मैनेजर जैसे पदों पर रह सेवा कार्य में लगे रहे।

१९२८ से १९३० तक कांग्रेस का कार्य मुरादाबाद में किया, जहां आप सत्याग्रह आश्रम के अध्यक्ष रहे। १९३० में एक अंग्रेज एस.पी. के ऊपर बम फेंकने के अपराध में १ वर्ष की रावलपिण्डी में कैद भी मिली। सन् १९३० में चन्द्रशेखर आजाद और स्व. मुन्शी प्रेमचन्द्र कहानीकार से आपकी भेंट गतिविधियों को उत्साहित करने में बड़ी महत्त्वपूर्ण साबित हुई।

रामपुर में ही एक स्कूटर से दुर्घटनाग्रस्त हो मस्तिष्क में चोट होने से आप दो दिनों तक बेहोश रहे और अन्त में ९ सितम्बर १९८८ को इहलीला समाप्त करते हुए इस साहित्य व कला साधक ने साहित्य व शिक्षा जगत् की अपूर्व सेवा कर अपने यश को शाश्वत् बना लिया।

❑

पं. कल्लप्पा भरमप्पा निटवे

यशलाभ से कोसों दूर रहने वाले, किन्तु कर्त्तव्य में पूर्ण निष्ठा रखने वाले थे महाराष्ट्र के श्री कल्लप्पा भरमप्पा निटवे। जिनके लौकिक जीवन के विषय में कहीं कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है। केवल उनके द्वारा की गई साहित्य एवं समाज सेवाएं ही उनकी अत्यल्प जानकारी देती हैं।

सेठ श्री हिराचन्द दोशी द्वारा संस्थापित दिगम्बर जैन पाठशाला के लगनशील, प्रखरमेधा के धारक एवं उत्साही विद्यार्थी श्री निटवे ने गहन अध्ययन कर अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा पाण्डित्य प्राप्त किया था।

साहित्यसेवा :

साहित्य सेवा द्वारा पण्डित जी ने अपने ज्ञान का यथार्थ उपयोग किया। उन्होने जैन बोधक का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन अनेक वर्षों तक किया। जिसमें आपने निरन्तर प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग आदि के अनेक ग्रन्थों से परिचय कराया। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के उपायों को समझाते हुए स्वाध्याय की श्रेष्ठता स्थापित करते हुए प्रचार-प्रसार किया।

श्री निटवे ने आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का पहली बार मराठी में अनुवाद कर मराठी भाषा-भाषियों को उनकी मातृभाषा में अध्यात्म और तत्त्वज्ञान हृदयंगम करने का अवसर प्रदान किया। व्यवहार-निश्चय, द्रव्य-गुण-पर्याय, अस्ति-नास्ति आदि का स्पष्टीकरण करने हेतु आपने अनेक वैचारिक लेख भी लिखे।

इस तरह से पण्डित जी ने १६-१७ वर्षों तक निरन्तर ग्रन्थों का लेखन, संशोधन, अनुवाद और सम्पादन कार्य किया।

सामाजिक सेवायें :

राजकीय और सामाजिक क्षेत्र में भी श्री निटवे का सक्रिय योगदान रहा। प्रसिद्ध संस्थान, कोल्हापुर की प्रगति में आपने यथाशक्ति सहयोग किया। आप अत्यन्त प्रखरबुद्धिसम्पन्न, स्वाभिमानी, कर्त्तव्यनिष्ठ, देश के लिए समर्पित एवं राजा राजर्षि साहू महाराज के परम मित्र थे। राजा के साथ बैठकर समाज की शैक्षणिक उन्नति, मानव सेवा आदि विषयों पर चर्चा करते और मार्गदर्शन प्रस्तुत करते। इतना होने के बाद भी आपने कभी अपनी मित्रता का व्यक्तिगत एवं अनुचित लाभ नहीं लिया, यह आपकी विशिष्ट उल्लेखनीय प्रवृत्ति थी।

श्री निटवे की अमूल्य सेवाओं का मूल्य उनके समय में नहीं, वरन् बाद में अधिक आंका गया। ऐसे मूक साहित्योपासक को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

वर्षा की पहली फुहार ने प्रकृति के रोम-रोम को पुलकित कर दिया। कलियां जहां एक-दूसरे से गले मिलती हुईं खुशियों का इजहार कर रही थीं, तो फूलों ने अपनी मधुर मुस्कान से प्राणियों को आकर्षित किया। हरयाली की चादर ओढे सारी पृथ्वी सुखनिद्रा में लीन थी। कालचक्र का नियंता सूर्य बार-बार बादलों को अपने रास्ते से हटाता हुआ प्रकृति की इस सुन्दरता को देखने के लिये लालायित था। अपने कदमों की आहट को कम करने के लिए उसने अपने ताप को भी कम किया और अपनी किरणों से इन्द्रधनुषी रूप बनाकर प्रकृति को निहार रहा था।

ज्ञानप्रकाश रूपी सूर्य की भांति ओजस्वी एवं हृदय में प्रकृति की सुन्दरता, सरलता एवं शीतलता संजोने वाले डॉ. कासलीवाल का जन्म ८ अगस्त सन् १९२० को जयपुर से ६४ कि.मी. दूर सैथल ग्राम के एक सम्पन्न घराने में हुआ था। आपके पिताश्री स्व. गैदीलाल कपड़े की व्यापारी थे। ४ वर्ष की अल्पायु में मां ने अपने इस बालक को प्रकृति को गोद में छोड़ देवलोकवास किया। आपके अग्रज श्री चिरंजीलाल जी समाज के माने हुये कार्यकर्त्ता तथा लघुभ्राता श्री प्रभुदयाल जी चिकित्सक के रूप में समाज में योगदान करने वाले रहे।

विद्यार्जन :

प्राथमिक शिक्षा गांव में ही प्रारम्भ की। उच्च शिक्षा हेतु आपने जयपुर में पं. चैनसुखदास जी की छत्रच्छाया में जैन संस्कृत कालेज में प्रवेश लिया। सन् १९३९ में शास्त्री परीक्षा, सन् १९४० में मेट्रिक एवं सन् १९४६ में एम.ए. (संस्कृत) किया। सन् १९५६ में राजस्थान विश्वविद्यालय में शोध स्नातक होकर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों पर शोध प्रबन्ध लिखकर इतिहास विषय में १९६१ में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

गृहस्थजीवन एवं आजीविका :

आपने तारादेवी के साथ गृहस्थ जीवन आरम्भ किया, जो समाजसेवी विदुषी महिला थी। आपकी तीन पुत्रियां निर्मला, शशि एवं सरोज तथा दो पुत्र निर्मल एवं नरेन्द्र ने आपकी गृहस्थी को पूर्णता प्रदान की। आजीविका हेतु आपने शासकीय कार्यालय में एकाउन्टस् का कार्य किया।

सम्पादन कार्य :

सर्वप्रथम जयपुर के विख्यात संगीतज्ञ स्व. नानूलाल जी के पदों का संकलन

कर 'नानू भजन संग्रह' के रूप में आपने साहित्यजगत् में प्रवेश किया। जिसमें आपके सम्पादकीय ज्ञान के दर्शन होते हैं। इसके बाद बनारसीविलास, चम्पाशतक, हिन्दी पद संग्रह, प्रद्युम्नचरित्र और जिनदत्तचरित्र आदि का सम्पादन कर सफलता प्राप्त की। बाबू छोटेलाल जी स्मृति ग्रन्थ का भी सम्पादन करने का गौरव आपको है। इसके अतिरिक्त वीरवाणी पाक्षिक के प्रायः सभी विशेषांकों में आपका सहयोग उल्लेखनीय माना जाना चाहिए।

लोकोपकारी डॉ. कासलीवाल जी ने श्री महावीर जी के जयपुर स्थित प्रधान कार्यालय में साहित्य शोध संस्थान की स्थापना कर साहित्यिक कार्य आरम्भ किया। आपके सहयोगी के रूप में पं. अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ की सेवायें भी स्मरणीय रही। आपने इसके अन्तर्गत १०० से अधिक ग्रन्थभण्डारों की छानबीन और सुव्यवस्था की। इन ग्रन्थों की सूची तैयार कर इनके प्रकाशन की व्यवस्था भी की। हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन और वांछित जानकारी का संचयन बड़े ही श्रमसाध्य रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'मानडर्स इन राजस्थान' अंग्रेजी में शोध प्रबन्ध एवं 'राजस्थान के जैन संत' जैसे ग्रन्थों के प्रकाशन में आपका सहयोग अहंरूपेण प्रकट हुआ। इसके अतिरिक्त कलकत्ता में आयोजित होने वाली प्राचीन ग्रन्थों की एक प्रदर्शनी में २९ दुर्लभ ग्रन्थों को ले जाकर पुरातन साहित्य के प्रति अपनी अटूट आस्था का परिचय दिया।

मौलिक कृतियां :

साहित्य सेवा के क्षेत्र में आपने विचारों के मंथन से जो नवनीत उद्भूत किया उसे अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत भी किया, जो लगभग ५०० से अधिक प्राचीन साहित्य पर परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक लेखों के रूप में पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित होता रहा। आपने लगभग २० ग्रन्थों का लेखन व सम्पादन भी किया। इनमें महाकवि दौलतराम कृतित्व और व्यक्तित्व, राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व, बुधजन आदि अनेक महाकवियों पर आपकी अनुपम रचनायें साहित्य जगत् में विशिष्ट स्थान रखतीं हैं।

सामाजिक सेवायें :

निःस्वार्थ वृत्ति की प्रतीक आपकी सामाजिक सेवाओं ने लोकहित की भावना को चरितार्थ किया। आपकी विशेष सेवाओं का क्षेत्र राजस्थान जैन साहित्य परिषद् रहा, जिसके आप अध्यक्ष थे। विश्व जैन मिशन जयपुर शाखा के उपाध्यक्ष पद को

भी आपने सुशोभित किया। इसके अलावा भी अनेक राष्ट्रीय एवं स्थानीय संस्थाओं से आप सम्बद्ध रहे।

पुरस्कार एवं सम्मान :

आपको महाकवि दौलतराम कृतित्व और व्यक्तित्व पर शास्त्रिपरिषद् द्वारा 'पाण्डुया पुरस्कार' प्रदान किया गया। राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतवर्षीय विद्वत्परिषद् द्वारा पुरस्कार दिया गया। अक्टूबर सन् १९७४ में वीर निर्वाण भारती द्वारा एक विशेष सम्मान समारोह में आपको सम्मानित कर 'इतिहासरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया गया। आपको अलीगंज में अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोध विद्यापीठ के वार्षिक समारोह में दिसम्बर १९६७ को 'विद्यावारिधि' की पदवी से अलंकृत किया गया।

अन्त बेला :

इतिहास जगत् एवं प्राचीन पाण्डुलिपियों के क्षेत्र के एकमेव साधक श्री कासलीवाल ने साहित्यभण्डार को अमूल्य निधियां प्रदान करते हुए संयमित जीवन के साथ सन् १९९८ में इस मर्त्यलोक से प्रयाण कर आपनी सेवाओं को सदैव के लिए अमर बना दिया।

❑

पं. कस्तूरचन्द्र शास्त्री

सराकों के प्रथम सेवक, शिक्षा मन्दिर के संस्थापक एवं लाल पगड़ी वाले थे श्री कस्तूरचन्द जी शास्त्री। आप पहले कोडरमा वाले, ईसरी वाले, बड़नगर वाले और जीवन के अन्तिम दिनों में सतना वाले पण्डित जी के नाम से पुकारे गये।

पण्डित जी ने भोपाल रियासत के रायसेन जिले के नूरबरखेड़ा ग्राम में सन् १९०० में जन्म लिया। आपके पिता सोहनलाल जी ग्राम के मुखिया और श्रीमती बेटीबाई धार्मिक संस्कार सम्पन्न सद्गृहस्थ महिला थीं। कुल तीन भाई और तीन बहिने थीं।

बाल्यावस्था में ही इनके सिर पर पिता की छत्रच्छाया नहीं रही। विपत्तिग्रस्त माता ने सात बच्चों के पारिवारिक दायित्व के निर्वाह हेतु बीना (इटावा) में अपने फूफा के यहां आश्रय लिया।

शिक्षा :

विद्यार्थी कस्तूरचन्द जी की आरम्भिक शिक्षा बीना में हुई। सर सेठ हुकमचन्द जैन विद्यालय इन्दौर के तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री पं. जीवंधर जी शास्त्री एक बार बीना आये। उनकी दृष्टि होनहार बालक कस्तूरचन्द पर पड़ी और वे उसे इन्दौर ले गये। यहां पर ३ वर्ष तक रहकर उन्होने धर्म और न्याय की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् दो वर्ष तक मुरैना में रहकर शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके गुरु थे पं. श्री जीवंधर जी, पं. श्री माणिकचन्द जी शास्त्री कौन्देय एवं पं. श्री मक्खनलाल जी न्यायालंकार।

गृहस्थाश्रम :

पण्डितजी का पाणिग्रहण संस्कार सन् १९२५ में सीहोर निवासी श्री मूलचन्द की पुत्री सरलादेवी से हुआ। गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए इनके चार पुत्र हुए।

कार्यक्षेत्र :

उदासीन आश्रम ईसरी के अधिष्ठाता श्री प्यारेलाल भगत, कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी श्री जोखीराम बैजनाथ और दिगम्बर जैन समाज कोडरमा के सहयोग से श्रुतपंचमी पर्व सन् १९३४ में बिहार प्रान्त की अभ्रक नगरी कोडरमा में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य सराक बालकों के साथ सम्पूर्ण भारत वर्ष से आने वाले जैन बालकों को नि:शुल्क भोजन एवं छात्रावास सहित जैनधर्म की शिक्षा और लौकिक शिक्षा देना था। बाद में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के आग्रह पर यह शिक्षा मन्दिर सन् १९३९ में कोडरमा से ईसरी बाजार में स्थानान्तरित किया गया।

सन् १९३४ से १९४२ तक बिहार और बंगाल प्रान्त के गांव-गांव में घूमकर सराकों का सर्वेक्षण किया और सराक जैनों को पुन: जैनधर्म में दीक्षित किया। सन् १९३९-४० उनके द्वारा पुन: जैनधर्म में दीक्षित जैनों की संख्या २३४१ थी।

सन् १९५० में जैन विद्यालय ईसरी से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् आजीवन मालवा प्रान्तीय सभा इन्दौर के उपदेशक विभाग का कार्य किया साथ ही अनेक नगरों में वेदी प्रतिष्ठा, सिद्धचक्र विधान एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें करायीं वे प्रसिद्ध गृहस्थाचार्य भी थे। सतना जैन समाज के विशेष आग्रह पर आप सन् १९५५ से १९६० तक धर्माध्यापक के पद पर आसीन रहे।

ACE Scanner
PDF Scanner

लोकप्रियता एवं सम्मान :

श्री पं. कस्तूरचन्द जी शास्त्री सहायक-प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठाचार्य के रूप में विख्यात हुए। उनकी वक्तृत्व कला से प्रभावित होकर समाज ने उन्हें महोपदेशक की उपाधि से विभूषित किया था। उन्हें समय-समय पर अभिनन्दन पत्र जैन सभाओं और सम्मेलनों में ससम्मान प्रदान किये गये।

सन् १९६६ में जलोदररोग हो जाने के कारण उनका देहावसान हो गया। पर सराकोद्धार का प्रथम बीजारोपण कर उसे अंकुरित एवं विकसित करने वाले लाल पगड़ी वाले पण्डित श्री कस्तूरचन्द जी शास्त्री अपनी यशोगाथा से आज भी जीवित हैं और रहेंगे।

बाबू कामताप्रसाद

दूरदर्शी किन्तु जो मात्र दहाड़ने वाले वीर नहीं थे, अपितु एकान्त में जीवनसाधना कर विश्व को चमत्कृत करने वाले साधक थे। आप आन्तरिक संतुलन एवं समता के प्रतीक, अनन्तगाम्भीर्य, संजीदगीपूर्ण व्यक्तित्व के धनी और जीवन पर्यन्त साहित्य, पुरातत्त्व एवं समाजसेवा में तत्पर रहे।

सन् १९०१ में कैम्पबेलपुर ग्राम में जन्मे कामताप्रसाद जी के पिता बैंकिंग का कार्य करते थे। बढ़ेवाल दिगम्बर जैन कुल में खिला यह पुष्प सिन्ध के हैदराबाद में मुस्कराता हुआ बचपन व्यतीत कर तरुणाई को प्राप्त हुआ।

बौद्धिक विकास :

पल-प्रतिपल विकसित होती बुद्धि ने आपको शिक्षण के लिये प्रेरित किया और सिक्ख शिक्षण संस्था नवलराम हीराचन्द एकाडमी में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। यहीं ब्र. शीतलप्रसाद जी का समागम व प्रेरणा प्राप्त कर साहित्यिक क्षेत्र की ओर गतिशील हुए।

धार्मिकवृत्ति :

मां के द्वारा आरोपित संस्कारों ने धर्मनिष्ठा का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया। स्कूल में गुरु नानक के बोल में धार्मिक परीक्षा देते समय आप जैन स्तोत्रों और

सामायिक पाठ सुनाया करते थे। एक बार आपने कहा कि मैं जन्म से जैनी अवश्य हूं किन्तु जैन कुल में जन्म लेने से ही कोई जैनी नहीं हो जाता। इसीलिये मैं कहता हूं कि मैं जैनी बनने की कोशिश में हूं। आप मात्र शब्दजाल में नहीं, अपितु कर्त्तव्यनिष्ठा में विश्वास करते थे।

कर्मठता :

शिक्षण के पश्चात् पिता के अलीगंज आ जाने के कारण आपने अलीगंज में रहते हुये ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और असिस्ट्रेंट कलेक्टर जैसे उत्तरदायी पदों पर कार्य किया और न्यायप्रियता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा से लोगों के हृदय जीत लिये।

साहित्यसेवा :

आपकी साहित्य सेवा अतुलनीय एवं शोध-खोजपूर्ण होती थी। आपका पहला लेख 'जैनधर्म क्या है ?' ट्रेक्ट के रूप में और पहली रचना 'भगवान् महावीर' जैन पुस्तकालय सूरत से प्रकाशित हुई थी। स्व. बैरिस्टर चम्पतराय जी आपकी रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए और आपके लेखन के लिए प्रेरक बने।

आपकी ऐतिहासिक शोधों एवं अन्वेषण युक्त साहित्य ने आपको एक प्रमाणिक स्कॉलर बना दिया। श्री प्रभाकर जी ने आपके विषय में एकदा लिखा था 'जैन साहित्य उनका विषय है, जैन इतिहास उनकी विचारधारा है और उनका मिशन है समय के प्रभाव से जैनधर्म के दिव्य दिवाकर पर छाए हुए बादलों को हटाकर विश्व को उसके प्रकाश से आलोकित करना।' आपकी शोधपूर्ण निबन्धावलियां इस कथन को चरितार्थ करती हैं। भगवान् महावीर और बुद्ध के पारस्परिक सम्बन्धों को मौलिक रूप से स्थापित किया। सम्राट अशोक के जैनत्व पर नया प्रकाश डाला। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति पर आपने शिलालेखीय एवं साहित्यिक साक्षों के आधार गवेषणात्मक निर्णय प्रस्तुत किये। हिन्दी भाषा लिपि से मुड़िया के प्रादुर्भाव पर शोधपूर्ण आलेख लिखा। दिगम्बरत्व की धार्मिकता और महत्ता पर मौलिक विचार प्रस्तुत किये। अंग्रेजी और हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्य निर्माण में गहरा सहयोग एवं विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहे।

सम्पादित एवं अनूदित कार्य :

आपने न केवल साहित्य का सृजन किया अपितु उससे अधिक प्रचार-प्रसार भी किया। आपके द्वारा सम्पादित एवं लिखित पुस्तकों की संख्या लगभग १०१ है।

ACE Scanner
PDF Scanner

जिनमें अंग्रेजी भाषा की १२ पुस्तकें, अंग्रेजी में अनुवादित सात, एवं अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित नौ पुस्तकें हैं। आपने हिन्दी भाषा में लगभग ७१ कृतियां सृजित की तथा उनके अलावा पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन भी किया।

आपने सन् १९२४ से १९६४ तक लगातार ४० वर्ष तक साहित्यसेवा कर जो निर्मल प्रवाह प्रवाहित किया उसने संतप्त प्राणियों को तृप्त किया। कई खण्डों में 'संक्षिप्त जैन इतिहास' नामक पुस्तक की रचना कर जैन इतिहास निर्माण में उल्लेखनीय योगदान किया।

प्रमुख ग्रन्थ शृंखला :

ज्ञान की परिधि में जिनधर्म को केन्द्रित कर आपके द्वारा लिखित कुछ कृतियां लोकप्रियता को प्राप्त हुई। इन ग्रन्थों को मुख्य रूप से निम्न भागों में बांटा जा सकता है -

१. **धर्मशास्त्र :** सत्यमार्ग, आत्मिक मनोविज्ञान, भगवान् महावीर, भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध, संक्षिप्त जैन इतिहास तीन भागों में, जैन वीरों का इतिहास, सम्राट अशोक और जैनधर्म, भगवान् महावीर की अहिंसा आदि।

२. **पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थ :** दिगम्बर जैन मूर्ति लेख और प्रशस्ति संग्रह (वर्धा एवं आरा पृथक्-पृथक्), प्रवचनपुष्प, जैन उपजातियों की उत्पत्ति का इतिहास।

३. **कथा साहित्य :** पंचरत्न, नवरत्न, महारानी चेलना, बालचरितावली।

४. **अंग्रेजी साहित्य :** महावीर और बुद्ध, सॅम हिस्ट्रीकल्स जैन्स किंग एण्ड हीयर, लार्ड महावीर एण्ड सम अदर टीचर्स ई.टी.सी.।

५. **अन्य कृतियां :** पतितोद्धारक जैनधर्म, जैन जाति का ह्रास और उन्नति का उपाय, विशाल जैन संघ, जैनतीर्थ और उनकी यात्रा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र का पद्यानुवाद आदि रचनायें उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त कई पठनीय ट्रेक्ट भी आपने लिखें हैं।

विश्व जैन मिशन के संस्थापक :

कथनी और करनी को एकार्थ करने हेतु आपने अनेक संस्थाओं को स्थापित किया और अनेक से संबद्ध भी रहे। विश्व जैन मिशन के रूप में आपने जो यश:कीर्ति अर्जित की वह अन्यतम है। देश-विदेश में अहिंसा और शाकाहार के प्रचार के लिए

PDF Scanner ACE Scanner

आपने अखिल विश्व जैन मिशन की स्थापना कर उसके उद्देश्य पूर्ति हेतु पूरी लगन से जीवन-पर्यन्त काम किया। आपने कितने ही विदेशियों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें मिशन के उद्देश्यों से अवगत कराया और विभिन्न प्रकार का साहित्य भेजकर अहिंसा की ओर आकृष्ट किया।

आपके सद्प्रयासों ने अनेक विदेशियों को पूर्ण शाकाहारी बना अहिंसा पथ के लिए प्रेरित किया। जिनमें डॉ. अर्नेस्ट विल्हम मेयर (जर्मनी), मि. बुडलैण्ड बाल्टर (पेरिस), प्रो. काउन्ट आरनमेंड, केसरलिंग, प्रो. लोथर, बेंडल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि को आमन्त्रित कर समन्वयता का सन्देश दे आपने इस मिशन का आजीवन संचालन किया। मिशन से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका हिन्दी में 'अहिंसा वाणी' और अंग्रेजी में 'द वाइस ऑफ अहिंसा' आपके निरन्तर अध्यवसाय के सुपरिणाम हैं। सर्व प्रथम १९२३ में आपने 'वीर' नामक पत्रिका का सम्पादन कर उसे अनवरत प्रकाशित होने वाली बनाया।

व्यक्तित्व के अनेक गुणों व रूपों में इतिहासकार व पुरातत्त्ववेत्ता के रूप में आपकी छवि साहित्यिक गतिविधियों को भी आलोकित करती है और अनेक नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करती है।

जनहित सेवी एवं उपलब्धियां :

अनेक रूपों में साहित्य की सेवा करने के साथ ही आपने कुछ क्षण जनहितार्थ भी बिताये। अलीगंज में आप सन् १९३१ से १९४९ तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट रहे। सन् १९४३ से १९४८ तक असिस्टेण्ड कलेक्टर के पद को संभाला। सन् १९४४ के एस.डी.एम. अलीगंज श्री इकरामुद्दीन, श्री के.वी. फैयाजअली ने भी आपकी कार्यकुशलता की प्रशंसा की। मद्यनिषेध तहसील कमेटी तथा महात्मा गांधी निधि तहसील कमेटी के मंत्री पद पर रहकर सेवा की तथा स्वयं आर्थिक सहयोग दिया व लोगों से दिलाया। पंचवर्षीय योजनान्तर्गत अलीगंज सामान्य विकास योजना क्षेत्र की शिलान्यास क्रिया समारोह का स्वागत भाषण आपने दिया और उसके सदस्य भी रहे। प्रोजेक्ट अधिकारी ने आपको अलीगंज के विशिष्ट सम्भ्रान्त नागरिक के रूप में अपनी प्रत्येक गोष्ठी में आमन्त्रित किया। कवि सम्मेलन आदि आयोजन आपके सभापतित्व में ही सम्पन्न होते थे।

सन् १९५५ में अहमदाबाद में हुई ओरियण्टल कांफ्रेंस में जैनधर्म और प्राकृत विभाग के आप अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुए।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान :

धार्मिक एवं साहित्यिक सेवा के परिणाम स्वरूप 'यशोविजय जैन ग्रन्थमाला' की ओर से आपको भगवान् महावीर विषयक निबन्ध पर स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया। बम्बई के भारतीय विद्या भवन द्वारा संयोजित अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता में आपको 'हिन्दी जैन साहित्य' निबन्ध पर रजत पदक द्वारा अभिनन्दन किया गया। इन्दौर की निबन्ध जांच कमेटी ने 'जैन संख्या के ह्रास से बचने के उपाय' सम्बन्धी निबन्धों में आपकी रचना सर्वश्रेष्ठ घोषित हुई। वाराणसी की संस्कृत परिषद् ने आपको सिद्धान्ताचार्य की मानद उपाधि से सम्मानित कर अलंकरण किया था। रायल एशियाटिक सोसायटी लन्दन ने जहां आपको सदस्य चुनकर सम्मानित किया वहीं बैरिस्टर श्री चम्पतराय द्वारा संस्थापित जैन एकेडेमी ने अपने सन् १९४२ के करांची अधिवेशन में आपको डी.एल. की उपाधि से विभूषित किया।

कनाडा की ईसाई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था इक्युमिनिकल चर्च ने आपको 'सर्वधर्मों के तुलनात्मक अध्ययन' पर पी-एच. डी. की उपाधि से विभूषित कर आपके ज्ञान को सम्मानित किया। मध्य अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय धर्मसंघ ने अपना सर्वोच्च सम्मान प्रदान कर आपको गौरवान्वित किया था।

अन्तर्राष्ट्रीय सेवायें :

जर्मनी की कीसरलिंग सोसायटी के सदस्य बन आपने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का जो परिचय दिया वह प्रशंसनीय रहा। १५ वें विश्व शाकाहार सम्मेलन में उत्तर भारत के देहली अधिवेशन की कार्यकारिणी समिति के सेक्रेटरी पद का उत्तरदायित्व निभाना आपकी योग्यता का श्रेष्ठतम सम्मान था।

इस प्रकार सेवार्थ आपने अपने जीवन को समर्पित किया, जिससे कि आपको डॉ. राजेन्द्रप्रसाद तथा डॉ. राधाकृष्णन् के भी नजदीक आने के अवसर मिल सका।

मृत्युशय्या पर :

इस अथक श्रम से भी पराजित न होने वाले साधक ने जो जीवन पर्यन्त समाज एवं साहित्य सेवा का कार्य किया, उसमें रत रहते हुए आपकी सन् १९६४ में इस लोक को विदा देने की अन्तिम घड़ी थी। और आपने उसे निस्पृहभाव से ही छोड़कर स्वर्गलोक को प्रयाण किया। आपके निधन से जैन समाज ने ही नहीं अपितु भारत ने भी एक सच्चे सपूत को खो दिया।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य

गहन अध्ययन, लेखन, सम्पादन, प्रवचन, मार्गदर्शन, अध्यापन शोधकार्य, दानवृत्ति और सहयोग भाव के कारण पं. श्री कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य का जैन समाज एवं अखिल भारतीय विद्वद्वर्ग में अद्वितीय स्थान रहा। आपका जन्म बिजनौर जिले के नहटौर कस्बे में वि. सं. १९६० को कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में द्वादशी को हुआ था। श्री मुसद्दीलाल अग्रवाल, जो आपके पिता थे, पंसारी के नाम से विख्यात थे। श्री पंसारी व्यवसाय में तो पंसारी की दुकान एवं साहूकारी करते तथा स्वभाव से स्वाध्यायप्रेमी होने के कारण गोम्मटसार जैसे ग्रन्थों का मनन भी करते रहते थे। श्री कैलाशचन्द्र जी कनिष्ठ पुत्र थे, जबकि ज्येष्ठ थे शिखरचन्द जी।

विद्यार्जन :

नहटौर (बिजनौर) में उर्दू का प्रचलन होने पर भी पिताजी ने इन्हें हिन्दी में ही प्रायमरी तक शिक्षा दिलायी। आपने जैन पाठशाला में धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। नित्य शास्त्र सभा में पुराण आदि का श्रवण करते। मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस अध्ययन हेतु चले आये। ६ वर्ष तक अध्ययन किया। राष्ट्रीयता के प्रभाव में आकर विद्यालय के अन्य छात्रों के साथ पं. जी ने भी सरकारी परीक्षा का बहिष्कार कर दिया। तत्पश्चात् मुरैना से न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। पं. माणिकचन्द जी न्यायाचार्य, पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, पं. देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री आदि आपके अध्यापक रहे। जिनसे गोम्मटसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, त्रिलोकसार, पंचाध्यायी आदि का अध्ययन किया। पं. जगन्मोहनलाल और पं. फूलचन्द जी आपके सहाध्यायी थे। यहां से आपने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कार्यक्षेत्र :

अध्ययन के बाद सन् १९२३ में स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में धर्माध्यापक के पद पर एक वर्ष तक कार्य किया। अस्वस्थ हो जाने के कारण पुनः नहटौर आ गये। तीन वर्ष तक बनारस में आपका पद रिक्त रहा। वहां से सूचना मिलने पर सन् १९२७ में पुनः बनारस आकर अपना पदभार संभाला। श्रद्धेय श्री गणेशप्रसाद वर्णी द्वारा बनारस में आरोपित विद्या के पौधे को पं. जी ने माली बनकर सींचा, उसकी रक्षा की और उसे वटवृक्ष का रूप प्रदान किया।

ACE Scanner
PDF Scanner

साहित्यसेवा :

पं. जी ने अनेक मौलिक कृतियों का सृजन, ग्रन्थों के सम्पादन एवं अनुवाद तथा शोधालेखों द्वारा साहित्य की अनुपम सेवा की है। उन्होने मौलिक ग्रन्थों के रूप में लगभग ३७०० पृष्ठों कर साहित्यसृजन किया। इन कृतियों के नाम हैं - जैनधर्म : यह ४३६ पृष्ठों की सर्वोत्तम तथा पुरस्कृत कृति है, जो कि बनारस और सागर विश्वविद्यालय में पाठ्यपुस्तक के रूप में मान्य है। २. जैनन्याय, ३. जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पीठिका, ४. जैन साहित्य का इतिहास भाग १-२, नमस्कार मन्त्र, ७. भगवान् ऋषभदेव, ८. करणानुयोग प्रवेशिका, ९. चरणानुयोग प्रवेशिका, १०. तत्त्वार्थसूत्र हिन्दी टीका, ११. दक्षिणभारत में जैनधर्म, १२. प्रमाणनयनिक्षेप, १३. भगवान् महावीर का अचेलक धर्म, १४. जैन सिद्धान्त और १५. समीचीन जैनधर्म आदि।

सम्पादित एवं अनुवादित कृतियों में - १. जयधवला भाग १-१३, २. सत्प्ररूपणासूत्र, ३. नयचक्र, ४. धर्मामृत : सागार एवं अनगार, ५. गोम्मटसार : जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड, ६. उपासकाध्ययन, ७. समणसुत्तं का हिन्दी गद्यानुवाद, ८. न्यायकुमुदचन्द्र का पं. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य के साथ सह संपादन एवं विस्तृत भूमिका लेखन, ९. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, १०. भगवती आराधना भाग १-२, ११. कुन्दकुन्द प्राभृतसंग्रह, १२. भगवान् महावीर का जीवन चरित्र तथा १२. कल्याणमन्दिरस्तोत्र आदि।

आलेखों के लेखन में लगभग प्रत्येक विधा पर पं. जी ने विचारपूर्ण लेखनी चलायी है। उनके आलेखों को कुछ इस प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है - शिक्षा, शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षण संस्थाएं, परीक्षा एवं परीक्षापद्धति विषयक २८ लेख , सामाजिक समस्याएं और संस्थाओं के सन्दर्भ में २३३ आलेख, शास्त्रीय और धार्मिक १०६ लेख, राष्ट्रीय और अन्ताराष्ट्रीय ६१ लेख, व्यक्तिविशेष पर २५ लेख, लोकप्रिय शोधलेख एवं पर्वों पर लिखे गये आलेखों की संख्या भी मिला लेने पर लगभग यह ८५९ तक हो जाती है। जैनदर्शन और जैनसन्देश पत्र के आप अनेक वर्षों तक सम्पादक रहे।

विद्वत्परिषद् के प्रकाशस्तम्भ :

सन् १९४४ में वीर शासन महोत्सव के अवसर पर कलकत्ते में विद्वत्परिषद् की स्थापना आपकी प्रेरणा से ही हुई। श्री पं. नेमिचन्द जी ज्योतिषाचार्य ने वाराणसी

में जैन साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। जो बाद में इसी विद्वत्परिषद् में विलीन हो गई। पं. जी इस संस्था के संरक्षक रहे।

भारतीय ज्ञानपीठ की परामर्श समिति के सदस्य, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला एवं जीवराज जैन ग्रन्थमाला सोलापुर के आप ग्रन्थमाला सम्पादक थे।

पुरस्कार/सम्मान :

अनेक सार्वजनिक अवसरों पर जैन समाज ने पं. जी का सम्मान किया। सन् १९४६ में सिवनी की जैन समाज ने उन्हें 'सिद्धान्तरत्न' की उपाधि से तथा सन् १९६३ में जैन सिद्धान्त भवन आरा के हीरक जयन्ती महोत्सव पर 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्री शास्त्री जी की प्रभावी वक्तृत्व शैली ने उनके व्यक्तित्व सौन्दर्य में चार चांद लगा दिये थे। आप संघर्षमय जीवन में भी सदैव अध्ययन, अध्यापन, मौलिक लेखन ग्रन्थों के अनुवाद एवं सम्पादन, पत्रसम्पादन, प्रशासन एवं मार्गदर्शन, भ्रमण और धर्मप्रचार शोधप्रवृत्ति में रत रहकर धर्म, समाज एवं राष्ट्र के लिये समर्पित रहे। सन् १९७२ में आप अध्यापन के कार्य से निवृत्ति ले अपने पुत्र के समीप रांची चले गये। शारीरिक अस्वस्थता एवं कमजोरी के साथ अन्य कुछ रोगों के वेगवश आपका वहां ही इस लोक से महाप्रयाण हो गया। उनका बहुविध क्षेत्र में समर्पित जीवन सदियों तक अविस्मरणीय रहेगा।

❑

पं. कैलाशचन्द्र जैन 'पंचरत्न'

सम्पादक, कथा, नाटक, कविताओं की रचना एवं विद्वान् के रूप में ख्याति प्राप्त हैं पं. श्री कैलाशचन्द्र जी जैन पंचरत्न। रोहतक (पंजाब) में १४ अप्रेल सन् १९२१ को इनका जन्म हुआ था। इनके पिता श्री रामलाल जी जैन ज्योतिषरत्न, वाणीभूषण एवं सम्मानप्राप्त भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। आप हस्तरेखा, वर्षफल आदि ज्योतिष विषयक पुस्तकों के लेखक तथा अनेक धार्मिक कृतियों के अनुवादक थे। श्रीमती जैन उनकी माता थीं। ये जन्म से ही प्रतिभा सम्पन्न थे।

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी), साहित्यरत्न, हिन्दीभूषण, आयुर्वेद रत्न, बी. ए., बी. टी. (हिन्दी), साहित्यरत्न, हिन्दीभूषण, आयुर्वेद रत्न, बी. ए., बी. एड., तथा धर्म में एम. जी. पी. एच. डी. की परीक्षा हेतु शोधप्रबंध प्रस्तुत किये।

शैक्षणिक एवं प्रशासनिक प्रगति : उदयपुर में प्रोफेसर, प्रधानाचार्य, प्रशासनिक अधिकारी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

भांति अपने ही अस्तित्व को खोजने के लिये संघर्ष आरम्भ करना होता है। तथा सुख के जीतने पर भी कदाचित् अहंवृत्ति या स्वार्थपरकता का जन्म होता है, जिससे पुनः दुःखों का गर्त सामने होता है। अन्यथा खुशियों के विशाल महल में शान्तिलाभ का अवसर मिलता है।

क्रान्ति के बाद शान्ति की तलाश करता हुआ गोरावाला का जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। श्रीमान् चिन्तामणि शाह, जिन्हें गोरा ग्राम की जागीर छोड़कर मडावरा बुलाकर वही रहने के आग्रह ने आपको 'गोरावाला' इस विरुद से स्थापित कर दिया। श्री चिन्तामणि शाह के वंशधर श्री उमरावशाह जी १८५८ में ब्रिट्रिश बर्बरता के कारण जागीरदार से साधारण साहूकार ही रह गये थे। इसी वंश परम्परा में १९१७ को श्री खुशालचन्द जी का जन्म हुआ। कनिष्ठ होने के कारण सारी सुख-सुविधाओं का लाभ आपको मिला।

ज्ञानार्जन :

गांव में ही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद संस्कृत के शिक्षण हेतु सांस्कृतिक नगरी वाराणसी भेजा गया। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् १९३९ में एम.ए. तथा संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य की परीक्षायें उभय रूप से उत्तीर्ण कीं।

सेवा का शुभारम्भ :

उभय योग्यता और प्रतिभा के कारण श्री राम वि. कालेज फिरोजाबाद में आपकी नियुक्ति हो गई। वहां आपने गणित का अध्यापन कराया। किन्तु बीच में राजनैतिक हवा ने आपको इस कर्म से विलग कर दिया। हवा के शान्त होने पर आपको पुनः उसी पद पर कार्य करने का सौभाग्य मिल गया।

पैतृक विरासत में मिली राष्ट्रसेवा एवं भक्ति ने वाराणसी में अध्ययन के समय ही जनपदीय लोकख्याति के अनुसार प्रच्छन्न तात्या टोपे की खोज करते-करते क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में ला दिया। मार्च सन् १९३० में गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में स्वयंसेवक बन सामिल हुए, किन्तु उम्र ने आपको वानर सेना का सेनानी बनाया।

सन् १९३२ में विलिंग्डन शाही के दमन के समय वाराणसी टाउनहाल में एल. ओवेन द्वारा किये गये गोलीकाण्ड के समय पास में ही खड़े श्री योगेश्वरप्रसाद

पाठक को गोली लगी, इसलिये आपको भी मृत समझा गया, किन्तु अन्य लोगों
घिरे होने के कारण आप सुरक्षित रह गये।

विद्यापीठ के निकटतम सम्पर्क से ब्रिट्रिशविद्रोह के खिलाफ जंग छेड़
और उसका परिणाम यह हुआ कि तीसरे सत्याग्रह के समय उत्तरप्रदेश प्रादेशि
कांग्रेस का संघटन मन्त्री और प्रमुख मन्त्री के पद पर रहते हुये ढाई माह तक हिटलरशा
से जूझते हुये २५ जुलाई १९४१ को नजरबन्द कर दिया गया। जेल जाने पर भी
छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने से ३ सितम्बर १९४२ को फिर नजरब
कर दिया गया और ३१ दिसम्बर १९४४ तक कारावास की सजा मिली।

जेल के कष्टों ने आपकी राष्ट्रभक्ति व सेवाभावना को वृद्धिंगत ही किया
जेल से छूटने पर प्रान्तीय तथा अन्तरप्रान्तीय स्तर पर कांग्रेस दल में कार्य करने
सुअवसर प्राप्त हुआ। सन् १९५० में पश्चिम बंगाल कांग्रेस के स्थानीय निर्वाचि
अधिकारी का पदभार संभाला। सन् १९५२ में स्व. रफी अहमद किदवई के सा
कांग्रेस छोड़कर किसान मजदूर प्रजादल में सम्मिलित हो गये। प्रथम आम चुनाव
समय दल की पराजय के कारण जब यह दल प्रजासमाजवादी दल में विलय को प्र
हुआ तो विलय की प्रक्रिया से सहमत न होने के कारण आपने राजनीति से ही सन्य
ले लिया।

इस प्रकार राजनीति के विभिन्न उतार-चढ़ाव को पार करते हुये स्वतन्त्र
क्रान्ति में सहभागी हुये श्री गोरावाला ने अपना जीवन ही राष्ट्रसेवा केलिए अर्पण क
दिया था।

समाजसेवा :

फिरोजाबाद में नियुक्ति होने के बाद स्व. पं. काशीपति त्रिपाठी, राष्ट्रप
शिवप्रसाद गुप्त, श्रीप्रकाश जी तथा संस्थापक और देशभक्त विद्वानों के आग्रह
आप विद्यापीठ की आर्थिकस्थिति सुधारने हेतु संलग्न हुए। स्वराज्य के पश्चा
हिमालय प्रयाण के आदर्श को निभाते हुये आपने समाज सेवा का आदर्श उपस्थि
किया।

साहित्यसृजन :

लौकिक व धार्मिक दोनों ही शिक्षण करने के कारण आप संस्कृत, प्राकृ

साहित्य, दर्शन तथा इतिहास के विशेषज्ञ थे। काशी विश्वविद्यालय, नागरी प्रचारिणी सभा, स्याद्वाद महाविद्यालय, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ आदि अनेक साहित्यिक व शैक्षणिक संस्थाओं में आपकी सक्रिय सेवायें रहीं।

पठन-पाठन की विशेष रुचि होने के कारण आप काय से स्थिर हो जाने पर भी उच्च कक्षाओं को अनवरत रूप से लेते रहे। आपने वरांगचरित्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत आदि का अनुवाद तथा विद्यापीठ रजत जयन्ती ग्रन्थ, वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ और द्विसन्धान महाकाव्य आदि का सम्पादन करते हुए अनेक पत्रिकाओं के सम्पादन में भी हाथ बंटाया।

प्रसिद्धि से दूर आपने गुमनाम ही अनेक प्रकार के साहित्य को सृजित कर अपनी सहजता का उद्योतन किया। इस क्रान्तिकारी, प्राध्यापक और साहित्यसेवी ने सन् १९९८ को अपने आदर्श एवं प्रेरक जीवन को दुनियां के सामने सन्देश के रूप में छोड़ते हुये इस जगत् से महाप्रयाण किया।

❑

पं. गुणभद्र जी

बुन्देलखण्ड भूमि के एक बहुमूल्य रत्न थे पं. गुणभद्र जी। आपका जन्म मऊ रानीपुर (झांसी) के सिंघई धनीराम एवं श्रीमती जगरानी जैन के परिवार में हुआ था। जब आप चार वर्ष के थे तभी आपको माता-पिता का वियोगकृत दुःख सहन करना पड़ा। परिस्थितियों के कारण आपका परिवार छिन्दवाडा में आकर बस गया।

विद्याभ्यास :

आपने हस्तिनापुर के श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल में रहकर शिक्षा आरम्भ की। अनन्तर इन्दौर और वाराणसी के विद्यालयों में अध्ययन कर शास्त्री की उपाधि प्राप्त की।

आप प्रतिभासम्पन्न एवं व्युत्पन्नमति थे। अध्ययन काल से ही आप कविताओं एवं लेख के लिखने में संलग्न हो गये थे।

PDF Scanner ACE Scanner

साहित्यसेवा :

विद्यार्थी जीवन से ही श्री गुणभद्र जी की यशस्वी लेखनी ने साहित्यसृजन आरम्भ कर दिया था। उस समय आपकी कविताएं परवारबन्धु, जैनमित्र आदि पत्रों में प्रकाशित होती थी। शिक्षणकार्य से अवकाश के समय आपने साहित्यसृजन विशेष किया।

आपके कतिपय काव्यों के नाम हैं - १. जैनभारती, २. प्रद्युम्नचरित्र, ३. साध्वी आदि। इनका प्रकाशन जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता से हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी किया है जो समय-समय पर जैनमित्र, जैनगजट आदि पत्रों में प्रकाशित होता रहा है।

आजीविकोपार्जन हेतु आप श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास में ३० वर्ष तक अध्यापन के कार्य में रहे। वहीं आपका सन् १९७४ में देहावसान हो गया।

❑

डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी

परिश्रमी तथा उत्साही व्यक्ति की उन्नति में बाधाएं कभी भी बाधक नहीं बन सकती। इस कथ्य के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं श्री गुलाबचन्द्र जी चौधरी के जीवन में। जबलपुर जिले के सिगौडी ग्राम में २ अक्टूबर सन् १९१५ को धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ। बचपन में ही आपका एक पैर खराब होने पर भी आप अपनी लगन व परिश्रम के कारण अपने लक्ष्य को निरन्तर पाते रहे।

आरम्भिक शिक्षा :

श्री दिगम्बर जैन शिक्षा संस्था कटनी में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। यहीं से न्यायतीर्थ तथा व्याकरणतीर्थ की परीक्षाएं उत्तीर्ण कर, अनन्तर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न तथा मेट्रिकेलुशन से एम. ए. तक की शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से प्राप्त की। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में शोधकार्य कर सन् १९५४ में पी-एच.डी. की उपाधि अर्जित की।

सेवाकार्य :

छात्रावस्था में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर देश को स्वतन्त्र कराने में आपका योगदान सराहनीय रहा।

सन् १९५२-१९६० तक बिहार शिक्षा विभाग के अधीन नवनालंदा महाविहार नालंदा (पटना) में पालि, प्राकृत व संस्कृत के पाठ्यग्रन्थों, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का अध्यापन कार्य किया। साथ ही अनेक शोधार्थियों को पथप्रदर्शन कर उन्हें योग्य बनाया। इसी अवधि में यहां पर २५००० पुस्तकों के विशाल पुस्तकालय का निर्माण कर उसे आधुनिक रीति से व्यवस्थित कराया। मुजफ्फरनगर में प्राध्यापक पद पर जैनदर्शन एवं विविध प्राकृत भाषाओं का अध्यापन कार्य किया, साथ ही अनेक शोधार्थियों का पथप्रदर्शन भी किया। सन् १९६५ से मिथला संस्कृत शोध संस्थान दरभंगा में तथा सन् १९६७ से पुनः पूर्व संस्था नालंदा में वरिष्ठ प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हो अध्यापन कार्य किया। अन्त में आप प्राकृत शोध संस्थान वैशाली के निर्देशक के रूप में सेवारत हुए।

साहित्यसपर्या :

आपके द्वारा रचित रचनाएं हैं - १. पालिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, २. जैनकाव्य साहित्य का इतिहास अर्थात् जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, ३. पुराणसारसंग्रह : दो भाग, ४. जैन शिलालेख संग्रह भाग २-३, ५. कन्नड भाषा के ५३ जैन शिलालेखों का देवनागरी रूपान्तरण एवं अनुवाद, ६. जैन साहित्य एवं संस्कृति पर अनेक लेखों का प्रणयन, जो अनेक मासिक पत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों में प्रकाशित हुए।

इस प्रकार आपने जैन संस्कृति का समुचित प्रचार-प्रसार कर स्मरणीय योगदान किया।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. गुलाबचन्द दर्शनाचार्य

जयपुर जिला के गोनेर ग्राम में ९ नवम्बर १९२१ को भूरामल जी छाबड़ा की बगिया में पुष्पित पं. गुलाबचन्द जी अपने सौन्दर्य व सादगीमय जीवन से सुवासित थे।

शैक्षणिक योग्यता :

मेधासम्पन्न गुलाबचन्द जी ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करते ही अपनी योग्यता का परिचय दे सबको आश्चर्यान्वित किया। आपने जैनदर्शन में आचार्य तथा एम.ए. हिन्दी व संस्कृत भाषा से उत्तीर्ण की।

सृजनसाधना :

उत्कृष्ट विद्वान् होने के साथ ही आप हिन्दी गद्य व पद्य के अच्छे लेखक थे। गद्य सृजक के रूप में आपके एकांकी नेमिराजुल संवाद आदि प्रकाशित हुए हैं। सुगन्ध दशमी आदि पूजायें तथा प्रियप्रवास की शैली में अंजनाकाव्य, जिसके कुछ अंश वीरवाणी में प्रकाशित हुए थे, आपकी पद्य रचना के श्रेष्ठतम नमूने हैं।

कार्यक्षेत्र :

विभिन्न क्षेत्रों में विविध रूप में अपनी सेवायें देते हुये आप सन् १९६९ से दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, जयपुर में प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये।

उपाधियां :

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित हो जन समुदाय ने न केवल आपको पंडित के रूप में स्वीकार किया वरन् 'साहित्यरत्न', 'प्रभाकर' और 'दर्शनाचार्य' की उपाधियों से विभूषित भी किया।

❑

पं. गोरेलाल शास्त्री

साधनों और अनुकूलताओं के अभाव में अपना पथप्रशस्त करने वाले विरल साधकों में पं. श्री गोरेलाल जी की गणना होती है। आपने अन्त:प्रेरणा और परिश्रम से जहां अपने लक्ष्य को पाया, वहीं शिक्षा, धर्म, समाज और साहित्य की समृद्धि करते हुए संयम की साधना कर जीवन को सार्थक बनाया।

जीवनवृत्त :

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा वि.सं. १९६२ को सेंधपा अर्थात् द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता श्री भूरेलाल एवं माता श्रीमती रूपाबाई अत्यन्त सरल प्रकृति, परिश्रमी एवं सादा जीवन व्यतीत करने वाले दम्पत्ति थे। आपके दो अग्रज श्री बिहारीलाल एवं बल्देवप्रसाद तथा एक अनुजा मथुराबाई थी। बचपन में ही माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के कारण ज्येष्ठ भ्राता ने ही परिवार की सारी जिम्मेदारी का निर्वाह किया।

शिक्षा :

ग्राम में अध्ययन की कोई सुविधा न होने पर भी आपने श्री नन्हेंलाल माली से पाटी पर अक्षराभ्यास तो सीख ही लिया। तदनन्तर साढूमल धार्मिक पाठशाला के संस्थापक एवं तीर्थक्षेत्र समिति के सभापति श्रेष्ठि श्री चन्द्रभान जी बमराना वालों के साथ द्रोणागिरि आ गये। इनकी प्रेरणा एवं स्वयं की अभिलाषा होने पर अग्रज की स्वीकृति लेने के लिए घर चले गये। किन्तु वहां से स्वीकृत नहीं मिलने पर घर से प्रस्थान कर उन्हीं श्रेष्ठि जी के साथ वैशाख वदी नवमी वि.सं. १९७७ को जैन पाठशाला साढूमल में प्रवेश पा लिया। प्रथम गुरु के रूप में आपको श्री घनश्यामदास जी मिले। यहां पर दो वर्ष तक अध्ययन कर अनन्तर दिगम्बर जैन विद्यालय क्षेत्रपाल ललितपुर और श्री हुकमचन्द दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में अध्ययन कर शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपकी स्मरणशक्ति तीव्र होने से अध्ययन में रुचि एवं परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण गुरुजनों की कृपा सदैव बनी रही। और इसी के चलते आपको कभी खर्च की व्यवस्था की चिन्ता नहीं रही, जिससे कि आपका अध्ययन बाधित होता।

गृहस्थाश्रम की ओर :

सिमरिया निवासी पूनाबाई से आपका विवाह हुआ। इनके परिवार में चार पुत्र और एक पुत्री ने जन्म लिया। आपके तृतीय पुत्र श्री कमलकुमार जी शास्त्री एम.ए. ने शासकीय सेवा के साथ समाजसेवा में अपना जीवन समर्पित किया।

कार्यक्षेत्र :

पूज्य श्री गणेशप्रसाद वर्णी ने जब वैशाख शुक्ला सप्तमी संवत् १९८५ को

द्रोणागिरि में जैन पाठशाला की स्थापना की तो उनकी प्रेरणा से आपने इसका संचालन किया। आपके प्रयासों का ही सुफल था कि वह पाठशाला कुछ समय में एक अच्छे संस्कृत विद्यालय के रूप में संचालित होने लगी। इससे विद्यालय एवं क्षेत्र का समुचित विकास हुआ। आप सन् १९६४ तक यहां रहे।

समाज सेवा :

समाज की उन्नति में बाधक बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेजप्रथा, मरणभोज और दाजनीप्रथा को समाप्त करने के लिये श्री शास्त्री जी ने संघर्ष किया और उसमें सफल भी हुये। छोटे-छोटे अपराध पर जाति से बहिष्कृत करने, जिनेन्द्रदेव के दर्शन-पूजन आदि से वंचित करने आदि की प्रथा भी बन्द कराने का आपको श्रेय है। बहिष्कृत लोगों को समाज में मिलाकर उनकी सम्मानजनक स्थिति निर्मित करने में अथक परिश्रम किया।

आपके ही प्रयासों से प्रयाग महिला विद्यापीठ का परीक्षा केन्द्र द्रोणगिरि में बन सका, जिससे कि अनेक जैन-जैनेतर महिलाएं इसके माध्यम से विद्याविनोदिनी की परीक्षा उत्तीर्ण कर शासकीय सेवा में आ सकीं।

आप द्रोणप्रान्तीय सेवा संघ के संस्थापक तथा ग्राम पंचायत सेंधपा के निर्विरोध सरपंच १५ वर्षों तक रहे। जहां आपने विद्यालय, पंचायत सामुदायिक भवन, कुआं आदि का निर्माण कराकर जनकल्याण की भावनाओं को सकार रूप प्रदान किया। सन् १९५५ में द्रोणागिरि में पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव को निर्विघ्न संपन्न कराने में शास्त्री जी की अहंभूमिका रही।

साहित्यसृजन :

आपने स्वान्तःसुखाय अनेक कृतियों का सृजन किया। जिनमें - १. बारहभावना, २. जैन गारी संग्रह भाग १-२, ३. द्रोणागिरिपूजन, ४. नाममाला, ५. रामविलास आदि प्रमुख हैं। क्षुल्लक चिदानन्द जी स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन भी आपके द्वारा हुआ।

आत्मसाधना :

सन् १९६४ में सेवानिवृत्ति के उपरान्त आप संयमसाधना की ओर प्रवृत्त हो गये। श्रमणों की संगति में रह प्रवचन का लाभ लेते रहे। पूज्य क्षुल्लक चिदानन्द जी

PDF Scanner ACE Scanner

की प्रेरणा से सन् १९७० से पूर्णरूपेण गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणागिरि में रहने लगे। यहां व्रतियों को भी अध्ययन कराया। आपके समय में ब्र. राजाराम जी भोपाल, पं. श्री मुन्नालाल जी रांधेलीय सागर, पं. श्री धन्नालाल जी ग्वालियर, पं. ताराचन्द जी सागर. ब्र. बाबूलाल जी बेटिया जबलपुर आदि सिद्धान्तग्रन्थों के स्वाध्याय एवं मनन-चिन्तन हेतु आपके साथ द्रोणागिरि में रहते थे। इस प्रकार आत्मसाधना में रत रहते हुये २९ मार्च १९९१ में पूर्ण समता की साधना करते हुए आपने अन्तिम सांस ली।

आपका प्रेरणास्पद जीवन एवं सेवा सदैव स्मरणीय बने रहेंगे।

❑

पं. गोविन्दराय शास्त्री

आदर्श सिद्धान्तों का दुरूहपथ तथा कर्त्तव्यपरायणता के साथ अपने गन्तव्य को तय करने वाले पं. गोविन्दराय शास्त्री का जन्म महरौनी जिला झांसी में हुआ था। छोटा कद, दोहरी देह और गेहुआ रंग पर बड़ी-बड़ी आंखें व भरा चेहरा उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक प्रभावशाली बनाता था।

शिक्षा :

संस्कारों व विद्वत्ता की नगरी काशी को आपने शिक्षा केन्द्र रूप में चुना और वहां के स्याद्वाद महाविद्यालय में कई वर्षों तक अध्ययन-अध्यापन से आपने अपनी विद्वत्ता को निखारा।

आजीविकोपार्जन :

आजीविका हेतु आपने धार राज्य में १२ वर्ष तक धर्म और नीति के व्याख्याता के साथ सहायक इन्स्पेक्टर के पद पर शिक्षा विभाग में गौरव के साथ कार्य किया।

साहित्य सेवा :

विद्वत्ता की एक और मिशाल स्थापित करने हेतु आपने लेखन के क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९४० में नेत्र पीड़ा के कारण पद से विश्रान्ति लेकर मां जिनवाणी की सेवा में अहर्निश लगे रहे। निजी पुस्तकालय के ५०० ग्रन्थों के बीच नित्य सोते-जागते आपने अपने अर्जन को पृष्ठों पर अंकित कर साहित्य सेवा में अपूर्व योगदान

PDF Scanner ACE Scanner

किया। आपकी कृतियों में विविधता के दर्शन होते हैं, - 'जैनधर्म की सनातनता' जहां ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित है तो 'वर्तमान विश्व की समस्या और जैनधर्म' विशुद्ध सामाजिक विचारधारा से प्रसूत है। 'गृहिणीचर्या' और 'बुन्देलखण्ड गौरव' जैसे खण्डकाव्य संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं। यशस्तिलकचम्पू, बारहभावनाओं का हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद तथा भक्तामरस्तोत्र का हिन्दी में पद्यानुवाद आपकी रोचक शैली व विशिष्टता का प्रदर्शन करते हैं। इसके अलावा 'आचारसूत्र' यह हिन्दी में लिखी गयी सूत्रबद्ध रचना भी निराली है।

प्राचीन जैन राजनीति का अद्भुतशास्त्र 'नीतिवाक्यामृत' जिसका आपने अनुवाद के साथ चातुर्यपूर्ण सम्पादन किया है। आपके द्वारा 'कुरलकाव्य' जिसे आपने तमिल से संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में अनुवादित किया, देश के गौरव को बढ़ने वाला है। तमिलभाषा के इस ग्रन्थ का देश-विदेश की अनेक भाषाओं में अब तक अनुवाद सम्पन्न हो चुका है। सम्राट जीवंधर नामक काव्य आपकी अपूर्ण रचना है। आपके अनेक लेख सरस्वती, वीणा, एजुकेशनल गजट, जैन सिद्धान्त भास्कर, जैनमित्र और दिगम्बर जैन आदि में प्रकाशित होते रहे हैं।

भाषा का माधुर्य और ओज आपकी रचनाओं को लोकप्रिय बनाता है। आपकी रचनाएं भारत के महामहिम डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी, माननीय राजगोपालाचार्य, आचार्य बिनोवा भावे, क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी तथा काका कालेलकर आदि जैसे गणमान्य विद्वानों से सम्मान पा चुकी हैं।

राष्ट्रसेवा :

साहित्य सेवा करते हुए भी आपसे राष्ट्रीयता का क्षेत्र अछूता नहीं रहा। गांधी जी के सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन के समय महरौनी तहसील की कांग्रेस कमेटी के मन्त्री पद का उत्तरदायित्व पूर्ण योग्यता तथा लगन के साथ निर्वाहित किया।

□

पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ

जीवन आकाश में उड़ती हुई पतंग की भांति होता है। जो कि मृत्यु रूपी डोर से बंधा जरूर होता है परन्तु व्यक्ति इसे जिस दिशा में चाहे और जितनी ऊँचाई तक चाहे ले जाने में समर्थ होता है। प्रतिकूलताओं व अनुकूलताओं रूपी हवाओं का

रूख उसे संचालित करता है, किन्तु संघर्षशील मानव उससे भी संघर्ष कर अपनी विजयपताका को गगन में स्थापित करने से नहीं चूकते।

ऐसे ही महामानव थे पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ, जिन्होंने वि.सं. १९४५ में महरौनी को अपनी जन्मस्थली बनाकर गौरवप्रदान किया। बचपन में ही पिता के स्वर्गवासी हो जाने से पारिवारिक एवं आर्थिक दायित्वों ने आपको जीवननिर्वहन हेतु साढूमल में ला खड़ा किया।

शिक्षा :

पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी के आगमन ने पंडित जी के जीवन में एक नया ही मोड़ ला दिया। वर्णी जी के कहने पर अपने परिवार की जिम्मेदारी सेठ लक्ष्मीचन्द जी के हाथों में छोड़ संस्कृत सीखने सागर आ गये। सागर में विशारद और न्यायमध्यमा पासकर सिद्धान्तग्रन्थों के अध्ययनार्थ मुरैना गये। जहां आपने न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण कर 'न्यायतीर्थ' की उपाधि से विभूषित होने का सुयोग पाया।

कार्यक्षेत्र :

अध्ययन के बाद सर स्वरूपचन्द हुकुमचन्द दिगम्बर जैन विद्यालय इन्दौर के प्रधानाध्यापक बनकर इन्दौर पहुंचे। जहां से एक आकस्मिक घटना के कारण आपको वापिस सेठ लक्ष्मीचन्द जी के साथ ही साढूमल पाठशाला आना पड़ा। कुछ समय तक कार्य करने के बाद आपने स्वतन्त्र व्यवसाय हेतु खुरई को निवास स्थान बनाया।

साहित्यसेवा :

अध्ययन और अध्यापन के बीच आपने साहित्यसेवा के रूप में कुछ कृतियों को अनुवादित किया। जिनमें प्रमुखतया पाण्डवपुराण, परीक्षामुख, नाममाला, प्रभंजनचरित और पद्मपुराण हैं।

पं. जी मनस्वी और स्पष्टवादी निर्भीक व्यक्तित्व के धनी थे। अपनी निर्भीकता और सत्यवादिता से आपको अनेक जगहों पर कष्टों का सामना करना पड़ा। किन्तु आप साहस के साथ सदैव उनका सामना करते हुए विकास पथ पर आगे बढ़ते रहे।

सन् १९२४ को खुरई में ही आपने अन्तिम सांस ले स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। आपके पदचिन्ह आज भी अनेक जिज्ञासुओं को मार्गदर्शन प्रदान करने में समर्थ हैं। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

प्रो. ए. चक्रवर्ती

उन विरले पुरुषों में प्रो. ए. चक्रवर्ती का नाम सामिल है, जो स्वयं जलकर प्रकाश देते हैं। साहित्य-साधकों में प्रथमपंक्ति में गण्य होने के कारण यद्यपि आपको सभी जानते हैं किन्तु आपके जीवन के विषय में विस्तृत एवं प्रमाणिक सामग्री सहजतया उपलब्ध नहीं होती।

परिवार :

तामिलनाडु के प्रसिद्ध एवं गणमान्य परिवार के रूप में जाने जाने वाले श्री के. अप्पास्वामी नैनार एवं श्रीमती अचम्माय्या की संतान के रूप में आपने इस धरा को दिनांक १७ मई १८८० सोमवार के प्रातः १० बजकर १५ मिनिट पर अपने कर्म के योग्य चुना। परिवार की सम्पूर्ण सुविधाओं का उपभोग करने का अधिकार होने से आपने उनका उचित और पर्याप्त प्रयोग किया।

शिक्षा :

जन्मतः ही प्रतिभावान् होने के कारण आपने अच्छे विद्यालयों में प्रवेश पाने में सफलता प्राप्त की और शिक्षा भी अच्छी प्राप्त की। मद्रास के विसले कालेज में हाई स्कूल से एफ. ए. तक का अध्ययन किया। तदनन्तर १९०२ में बी. ए. एवं सन् १९०५ में एम. ए. की परीक्षाएं मद्रास के मद्रास क्रिशचियन कालेज से विशेष योग्यता के साथ पास कीं।

सेवाकर्म :

अध्ययन समाप्त होते ही आपने आजीविकार्थ विभिन्न स्कूल एवं कालेज में विभिन्न पदों पर कार्य किया। आरम्भ में विल्से गर्ल्स हाई स्कूल मद्रास में ही शिक्षक के रूप में कार्य किया। तदनन्तर प्रेसिडेन्सी कालेज, शासकीय कालेज कुम्भकोनम्, राजहमुन्द्री आदि स्थानों में आपने कार्य किया। समय-समय पर आपने अनेक विश्वविद्यालय एवं कालेजों में परीक्षक एवं अन्य अनेक रूपों में वहां की कार्यप्रणाली और व्यवस्था के विषय में मार्गदर्शन किया।

साहित्यसर्जन :

आपने आंग्ल भाषा में जितनी अधिक और मननपूर्ण सामग्री प्रदान की है

PDF Scanner ACE Scanner

शायद और किसी ने नहीं की। आपने पंचास्तिकाय, समयसार, त्रिक्कुरल, इंडियन हुमनिज्म प्रिंसिपल, जैनिज्म, मेरुमन्दिरपुराण, नीलकेशी, रिलीजन ऑफ अहिंसा, भक्तामरस्तोत्र, जैन लिटलेचर इन तमिल, यशटर्डे एण्ड टूडे, जैन आईडिया इन द माडर्न वर्ल्ड-आर्यन् पथ, अहिंसा धर्म, जैना कान्सेप्शन ऑफ मुक्ति, तमिल एकेडमी - एनसाइक्लोपीडिया, ह्युमनिज्म एण्ड इण्डियन थॉट आदि पुस्तकें एवं समाज में प्रचलित जैनगजट, आर्यन् पथ एवं तमिल एकेडमी आदि पत्रिकाओं में निरन्तर छपने वाले आपके शोध प्रबन्ध समाज एवं साहित्य जगत् को आपकी अपूर्व देन है।

अहिंसा और जैनधर्म के विषय में आप प्रामाणिक लेखक माने जाते थे। आपकी पंचास्तिकाय एवं समयसार की प्रस्तावना तो आज भी सामयिक है। इतना ही नहीं आपने इनसे वर्तमान अध्येताओं को जो सामग्री और सोच समर्पित की है वह अनुपम है, साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द यश:पताका देश से देशान्तरों तक विस्तृत हुई है। आपने मातृभाषा तमिल और अंग्रेजी में साहित्य प्रदान कर तमिल पाठकों का ही उपकार किया हो, ऐसा नहीं अपितु समस्त आर्यावर्त को लाभान्वित किया है। आपकी प्रसिद्धि होने कारण अनेक प्रसंगों पर रेडियो वाले आमन्त्रित कर आपकी वार्ताएं प्रसारित करते थे। जिन्हें गौरव के साथ सुना जाता था।

सामाजिक सेवा :

आपको विद्यार्थी काल से ही समाज में सेवा करने में अवसर मिलते रहे। उनमें रुचि होने से आप अपने स्कूल के साथ समाज के विभिन्न संगठनों एवं क्लब आदि संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण पद व गौरव प्राप्त किया। इसके साथ आपने जैनसमाज के लिए **तत्त्वचूडामणि** के नाम से पत्रिका भी प्रदान की।

गौरवार्जन :

आपकी उत्कृष्ट एवं प्रभावी सेवा के कारण आपको अनेक संस्थाओं के द्वारा सम्मानित किया गया। सन् १९३८ में आपको रायबहादुर की उपाधि से सम्मानित किया गया। इसी वर्ष इंडियन एज्युकेशनल सर्विस का सम्मान भी हासिल हुआ।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

बैरिस्टर चम्पतराय जैन

बैरिस्टर चम्पतराय जी मात्र व्यक्ति ही नहीं थे, अपितु वे राष्ट्रीय चेतना के जागरण एवं उत्थान के प्रतीक भी थे। ऐसा व्यक्तित्व परिचय का मुहताज नहीं होता, दुनियां उसे उसके कार्यकलापों से स्वत: ही पहचानती है। किन्तु खेद है कि यह सब होते हुए भी उनके व्यक्तिगत जीवन से आज भी हम सब अनभिज्ञ ही हैं।

देहली के कूंचा परमानन्द में लाला चैनसुखदास जी की हवेली में माता पार्वतीदेवी के उदर से आपका जन्म हुआ। मात्र छह वर्ष की अवस्था में मां का वियोग भी हो गया। एकमात्र संतान के रूप में पिता लाला चन्द्रामल जी ने आपका लालन-पालन किया। आपके ही वंशज सोहनलाल बांकेलाल ने आपको दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। सुसंस्कारित परिवार में संस्कारों के बीच आपका जीवन पथ धीरे-धीरे सुव्यवस्थित होता रहा।

शिक्षा :

बौद्धिक योग्यता से चम्पतराय जी ने अपनी आरम्भिक शिक्षा कालामहल के स्कूल में शुरू की। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षण होने पर भी आपको हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों पर समान रूप से अधिकार था। आगे की शिक्षा सेण्ट स्टीफन कालेज में प्राप्त करके आप इग्लैंड चले गये और वहां सन् १८९७ में बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की।

गृहस्थजीवन :

देहली के प्रसिद्ध वकील एवं कौंसल के सदस्य लाला प्यारेलाल जी की सुपुत्री के साथ पाणिग्रहण संस्कार से संस्कारित हो आपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। वकील बनकर ही आपने अदालत की दहलीज पर चरण रखे। मृदुभाषी और मिलनसार स्वभाव के कारण आप शीघ्र ही कानूनी जगत् व सामान्य व्यक्तियों के बीच भी लोकप्रिय हो गये। आपने अनेक फ ांसी के अभियुक्तों को कुशलता पूर्वक बचाया। आप प्रतिस्पर्धा करते हुए भी प्रतिद्वन्द्विता से सदा दूर रहे। यही कारण है कि जब हरदोई जज ने एक वकील का अपमान कर दिया तो आपने ११ माह तक कोर्ट का बहिष्कार किया। और अन्त में भूल सुधार होने पर आपने कोर्ट जाना आरम्भ किया। इस दृढनिष्ठा ने आपको 'अंकल जैन' के नाम से सुप्रसिद्ध कर दिया।

सामाजिक सेवा :

सामाजिक धार्मिक सेवा हेतु श्री चम्पतराय जी द्वारा किये गये प्रयत्नों को

भुलाया नहीं जा सकता। सन् १९२२ में आप दिगम्बर जैन महासभा के लखनऊ अधिवेशन में सभापति बने। महासभा के मुखपत्र जैनगजट को सुव्यवस्थित करने में आपका श्रम अमिट रूप से सहयोगी हुआ। जनवरी १९२३ में दिगम्बर जैन परिषद् को जन्म दिया। विदेशों में जैनधर्म के प्रचार करने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सम्मेदशिखर जी तीर्थराज की रक्षा के लिये आपने लंदन जाकर पैरवी की। लंदन में ही 'ऋषभ जैन लायब्रेरी' की स्थापना की। जैन लां का निर्माणकर जैन मुनियों के विहार पर प्रतिबन्ध हटवाया। जैन सेन्टर की स्थापना भी आपने लंदन में की। आपके द्वारा की गई सेवाओं के कारण बाबू कामताप्रसाद जी आपको 'ग्रेट मैन ऑफ लैटर्स' कहा करते थे।

सृजन के क्षण :

अपने मित्र रंगीलाल बैरिस्टर के अनायास स्वर्गवासी होने के कारण आप उद्विग्न व विरक्त हुये। दुःख मूलतः एकाकीपन लिये आता है, किन्तु समर्थ व्यक्तित्व उसे भी सृजनात्मक और रचनात्मक क्षणों में परिवर्तित कर सृजन के पथ पर अग्रसर होता है। चम्पतराय जी ने उदीसनता से भरे इन क्षणों को स्वामी रामतीर्थ के धर्मग्रन्थों को पढ़ने में लगाया, जो कि वेदान्त पर आधारित हैं। उनसे जिन शंकाओं ने जन्म लिया वे समाधानित नहीं हुईं। इसी बीच १९१३ में देवेन्द्रकुमार जी ने न केवल आपकी शंकाओं का निवारण किया, अपितु जैनधर्म का अध्ययन करने हेतु प्रेरित भी किया। बचपन के संस्कार इस प्रेरणा की खाद-पानी पा वृक्ष के रूप में विकसित होने लगे।

बैरिस्टर साहब वस्तुतः जैन पुरातत्त्ववेत्ता थे। तुलनात्मक धर्म और विज्ञान को अधिक महत्त्व प्रदान करते थे। आपकी प्रमुख कृतियों में - की ऑफ नालेज, असहमत संगम, जैन लॉजिक आदि इसी साधना के परिणाम हैं। इष्टोपदेश, जैन पूजा अभिषेक, व्यावहारिक जैनधर्म, संन्यासधर्म, आत्मिक मनोविज्ञान, फेथ-नालेज-कंडक्ट, व्हाट इज जैनधर्म, ह्रास-परिवर्तन, जैनतपश्चरण, जैनसंस्कृति, जैन मुनियों की दिगम्बरता आदि कृतियां विशिष्ट उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त वेदान्त में आत्मरामायण, राजनीति में जूता कहां काटता है, इतिहास में ऋषभदेव, इस्लाम में जवाहराते इस्लाम (इस्लाम के अनुसार जैनसिद्धान्तों की सिद्धि), ईसाई मत के शास्त्रों में जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि भी उल्लेखनीय

PDF Scanner ACE Scanner

हैं। आपने मूलत: अपनी रचनाओं में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैनधर्म प्राचीन एवं विश्वधर्म है।

उपाधियां :

'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को अपनाने वाले बैरिस्टर साहब को 'विद्यावारिधि', 'जैनधर्मदिवाकर' जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया था। किन्तु आपकी सादगी ने भविष्य में कोई उपाधि न स्वीकार करने की प्रतिज्ञा कर ली।

चारित्रमूर्ति श्रावक :

बैरिस्टर साहब केवल धर्मतत्त्व के दार्शनिकवेत्ता या श्रद्धालु नहीं थे, वरन् उन्होंने धर्म को अपने जीवन में यथासम्भव मूर्तिमान् बनाने का उद्यम किया। पंचाणुव्रतों का पालन करने वाले बैरिस्टर साहब ने विलायत में रहते हुये भी संयमी जीवन व्यतीत किया।

अन्तिम झांकी :

करांची में सन् १९७२ को यह लोकहितकर्त्ता सदा-सदा के लिए पंचभूतों में विलीन हो गया। किन्तु आपकी दृढश्रद्धानात्मक साहित्य सेवा एवं निस्पृही व्यक्तित्व आज भी प्रेरणा प्रदान करता है।

❑

पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ

पं. चैनसुखदास जी, जिनका पुण्यस्मरण आते ही उन्नत ललाट, आध्यात्मिक सन्त की आभा से युक्त तेजस्वी मुखमण्डल, कृशदेह, आजानुबाहु और सदा भद्रवेश से मण्डित एक वन्दनीय व्यक्तित्व आंखों के आगे तैरने लगता है। आप उन विरल विभूतियों में से एक थे, जिन्होंने आजीवन अनेक विषम परिस्थितियों से लोहा लेते हुए स्वयं एक युग का निर्माण किया। आपका बाह्य व्यक्तित्व जितना सूक्ष्म, कोमल एवं दुर्बल था, अन्तरंग व्यक्तित्व उतना ही दृढ, सबल एवं गम्भीर था।

जीवनारम्भ :

जैनदर्शन के इस कर्मठ मनीषी का जन्म राजस्थान प्रान्त के जयपुर जिलान्तर्गत भादवा ग्राम के श्री जवाहरलाल जी रांवका एवं श्रीमती धापूबाई के परिवार में माघ

कृष्णा अमावस्या, २२ जनवरी १९०० को सूर्यग्रहण के समय हुआ था। सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेने के कारण आपका लालन-पोषण बहुत ही लाड-प्यार से हुआ, किन्तु सुख के क्षण एक झोंके के समान व्यतीत हो जाते हैं।

जीवन के तीन सुनहले वर्ष व्यतीत हुए थे कि पक्षाघात के विषम रोग ने आपको आ घेरा। आपके साहस एवं आत्मविश्वास की परीक्षायें यहीं से आरम्भ हो गयीं। पक्षाघात ने एक पैर को अत्यधिक रूप से प्रभावित किया, किन्तु उसके असहयोग होने के बावजूद भी आपने यात्राओं को जीवनपर्यन्त भी विराम नहीं दिया। दस वर्ष की अवस्था में आपके पिता के देहावसान ने आपके परिवार की आर्थिक स्थिति को अत्यन्त नाजुक बना दिया। जिसके कारण आपको मां को सहयोग करते हुए सूत भी कातना पड़ा। इस प्रकार सुख सम्पन्नता के बाद शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक संकटों के दौर से संघर्ष करते हुए आप जीवनपथ पर अग्रसर हुए।

शिक्षा :

प्रारम्भिक शिक्षा जन्मस्थल भादवा एवं जोबनेर में प्राप्त की। संस्कृत का अध्ययन भी यहीं आरम्भ हो गया था। व्युत्पन्नमति एवं वाक्पटुता के कारण आप शीघ्र ही मेधावी छात्रों में परिगणित होने लगे। उच्च अध्ययन हेतु आपने ज्ञान नगरी वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश ले साढे पांच वर्ष तक संस्कृत साहित्य और जैनदर्शन का अध्ययन किया। तार्किक बुद्धि होने के कारण आप अपने साथियों के बीच तर्कचन्द्र के नाम से जाने जाते थे। आपके सहपाठियों में पं. भूरामल (मुनि ज्ञानसागर), पं. कैलाशचन्द जैसे मर्मज्ञ मनीषी सामिल थे। बंगाल संस्कृत एसोसिएशन की न्यायतीर्थ की परीक्षा भी यहीं से पास की, जो उस समय की उच्चतम परीक्षा के रूप में मानी जाती थी। आप विद्वत्ता, विचारशीलता और सैद्धान्तिकज्ञान से संस्था के अधिकारियों एवं अध्यापकवर्ग के अतिस्नेह के भाजन बन गये थे।

कर्मक्षेत्र :

पैर से लाचार होने पर भी आपकी योग्यता एवं कुशलता के कारण आपको अनेक बार वैवाहिक सम्बन्धों के लिए प्रस्ताव मिले, किन्तु आपने आजीवन अविवाहित रहकर मां जिनवाणी व समाज की सेवा का दृढ संकल्प ले लिया। सर्वप्रथम आप अपनी जन्मनगरी में ही विद्वत्ता के कारण अध्यापन के कार्य के लिए नियुक्त किये गये। तदनन्तर कुचामन शहर की जैन समाज ने आपकी विद्वत्ता से

लाभान्वित होने हेतु दिगम्बर जैन विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप आपको नियुक्त किया। जहां पर आप १२ वर्ष तक अविरत सेवाएं प्रदान करते रहे। सन् १९३१ में आपने जयपुर की दिगम्बर जैन महापाठशाला के प्रधानाचार्य का पद सुशोभित किया। अपने चालीस वर्ष के अध्यापनकाल में अपने शिष्यवर्ग को शास्त्री, आचार्य के साथ सुयोग्य नागरिक बनाकर उन्हें देश-विदेश के विभिन्न पदों पर कार्य करने में योग्य एवं राष्ट्रसेवा में सक्षम बना दिया। इतना ही नहीं आपने शिक्षा के बहुआयामी विकास के लिए अपनी संस्था की उन्नति भी की, जिससे वह महापाठशाला के स्थान पर महाविद्यालय का स्वरूप धारण कर राष्ट्र की गौरवशाली संस्था बन सकी। इस तरह आपकी सूझ-बूझ और कार्यकुशलता की ख्याति देशभर में व्याप्त हो गयी।

साहित्य सेवा :

पं. जी का व्यक्तित्व महान् था और कृतित्व बहुआयामी। आप श्रेष्ठ अध्यापक, लेखक, पत्रकार, कवि, प्रवचनकार व समाज सुधारक थे। प्राचीन साहित्य के प्रकाशन और अनुसन्धान की रुचि आपमें जन्मत: थी। आपने हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में लिखा। आपकी मौलिक रचनाओं में - जैनदर्शनसार, भावनाविवेक, प्रवचन-प्रकाश, सर्वार्थसिद्धिसार, पावन-प्रवाह और निक्षेपचक्र जैसी उत्कृष्ट कृतियां उल्लेखनीय हैं।

आप कविहृदय व्यक्ति थे। दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक कविताओं को लिखना आपका शौक था। आपकी सैकड़ों कवितायें जैन पत्रों के अतिरिक्त सुधा, माधुरी, अर्जुन, रत्नाकर, विश्ववाणी जैसे अनेक हिन्दी के शिखरस्थ पत्रों में प्रकाशित होती थी। आपका एक कविता संग्रह 'दार्शनिक के गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ है। विश्वामित्र, कल्याण, अनेकान्त, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रों में विचारपरक लेखों के द्वारा आप जन-जागरण का शंखनाद भी करते रहते थे।

आपने लगभग ४५ वर्ष तक सम्पादन कार्य किया। जैनदर्शन, जैनबन्धु एवं वीरवाणी के सम्पादन से आपने एक ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं शिथिलाचारों का निवारण करने के लिये जन चेतना को जागृत किया तो दूसरी ओर युवा लेखकों का वर्ग तैयार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आपने विभिन्न प्राकृत ग्रन्थों से जीवन को स्पर्श करने वाली एवं जनोपयोगी ५०० से अधिक गाथाओं का संकलन कर

'अर्हत्प्रवचन' के नाम से एक कृति का संकलन/सम्पादन किया। अन्य सम्पादित कृतियों में 'प्रद्युम्नचरित्र' विशेष ख्यात है, जिसकी सराहना महापण्डित्य राहुल सांस्कृत्यायन एवं डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल प्रभृति विद्वानों ने की थी।

समाजसेवा :

आपने कुचामन में प्रधानाध्यापक के पद पर रहते हुए अनमेल विवाह, दहेजप्रथा, कन्याविक्रय एवं छुआछूत जैसी कुरीतियों को दूर करने का बीडा उठाया। राजस्थान जैन साहित्य परिषद् का गठनकर आपने विद्वानों को एक मंच प्रदान किया। इस परिषद् के आप प्रथम अध्यक्ष एवं बाद में संरक्षक बन विद्वानों को जैन साहित्य के अध्ययन, अन्वेषण एवं लेखन की ओर प्रवृत्त करते रहे।

सम्मान :

शिक्षा के क्षेत्र में की गयी आपकी विशिष्ट सेवाओं के फलस्वरूप आपको भारत सरकार द्वारा सन् १९६७ में 'राष्ट्रीय शिक्षक' के गौरव के साथ श्रेष्ठ शिक्षक का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। जैन समाज ने तो अनेक बार आपका अभिनन्दन कर आपने आपको गौरवान्वित किया ही है।

चिरविश्रान्ति :

जैनदर्शन के विश्रुत विद्वान् पं. जी साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक कार्यों में कभी न थकते हुए सम्पूर्ण जीवनभर सेवारत रहे, किन्तु अन्तिम मृत्यु के आगे २६ जनवरी १९६९ को आपको चिरविश्रान्ति लेने के लिए विवश होना पड़ा। आपके सर्वांगीण अवदान से समाज सदैव कृतज्ञ रहेगा।

❑

बाबू छोटेलाल

बाबू छोटेलाल जी नाम से चाहे जितने छोटे रहे हों, पर कामों से इतने बड़े थे कि विरले ही उन जैसे बड़े होंगे। आप इतने अधिक लोकप्रिय व मूकसेवक थे कि बाबू जी, जैन साहब या सरावगी जी कहने मात्र से उनका बोध हो जाता था।

बाबू जी का जन्म १९ फरवरी १८९६ को कलकत्ता में हुआ था। आपके पिता श्री रामजीवनदास जी एक आदर्श सात्त्विक धर्म व समाजसेवी पुरुष थे। परिवार के दस भाई-बहिनों के बीच आप भी एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो कि पिता के विद्वानों

PDF Scanner ACE Scanner

एवं व्यापारियों के सम्पर्क के कारण सहज ही विद्याव्यासंग [illegible]
थे। आपके पिता अग्रवाल जाति के भूषण थे।

विद्याभ्यास :

आपकी आरम्भिक शिक्षा दिगम्बर जैन पाठशाला में हुई। पं. [illegible] आपके प्रथम गुरु थे और पं. जयदेव जी आपके सहपाठी। विशुद्धानन्द [illegible] विद्यालय से मेट्रिक पास कर कालेज में प्रवेश किया। कुछ समय में ही [illegible] पढ़ाई छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।

पारिवारिक दायित्व :

विद्याभ्यास को बीच में छोड़ आप व्यापार की ओर अग्रसर हो गये। [illegible] साथ ही आपका विवाह खेतसीदास जी की सुपुत्री मूंगाबाई के साथ सन् १९[illegible] अवस्था में कर दिया गया था। दो दशक तक साथ देने वाली सहधर्मिणी [illegible] विचारों एवं प्रकृति के अनुरूप ही थी। उन्होंने १९ अगस्त १९४० को इस संसार से विदा ले आपको अकेला छोड़ दिया।लेकिन आपने अपने मन को बिना विचलित किये ही व्यापार तथा समाज सेवा में संयुक्त रखा।

सेवाकार्य :

समाजसेवा के कार्यों में बिना किसी सूचना व सन्दर्भ के तैयार रहने वाले कार्यकर्त्ता के अनुरूप आपका जीवन व्यतीत हुआ। आपने आरा के देवेन्द्रकुमार रईस व सखीचन्द्र जी की जो सेवायें की वे लोगों को चकित तक करने वाली थीं। सन् १९१७ में कलकत्ते में फैले इन्फ्लुंजा में गरीबों व मरीजों की खोज-खोज कर सेवा की। सन् १९२२ में बाढ़पीडितों के लिए चन्दा एकत्रित करना हो या फिर किसी सभा-सोसायटी का महोत्सव सम्बन्धी रूपरेखा या प्रेरणा हो, बाबू जी को कहीं भी अग्रगण्य रूप में देखा जा सकता था। साधनहीन विद्यार्थियों के लिये अनपेक्षित व अप्रचारित सहयोग देना आपका अन्यतम शौक ही बन गया था।

साहित्यानुराग :

श्री पद्मराज जी रानी वाले तथा करोड़ीचन्द जी के सम्पर्क के कारण बाबू जी धर्म और पुरातत्त्व के प्रेमी बन गये। इसी के परिणाम स्वरूप आप साहित्यान्वेषी नाथूराम जी प्रेमी व पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार के कार्यों के समर्थक एवं उन जैसी ही

सूक्ष्म परीक्षा प्रधानी दृष्टि वाले बन गये। आपने सन १९२३ में जैन ग्रन्थों के सूचीकरण के लिए समाज को प्रेरणा देकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बाबू जी के विषय में पं. वंशीधर जी एम. ए. के ये विचार कितने सटीक हैं - 'आप जैन-अजैन विद्वानों को साहित्य व संस्कृति सम्बन्धी सामग्री देकर प्रकाश में लाने के लिए सदैव प्रेरित करते रहते थे।' आप बिना किसी डिग्री के पुरातत्त्व के कुशलवेत्ता एवं योग्य शिक्षक बन गये थे। आपका साहित्यानुराग इससे भी स्पष्ट होता है कि जब आप रुग्णावस्था में शैय्या पर विश्रामरत थे तब भी अगरचन्द नाहटा जैसे मनीषी के निबन्धसंग्रह की योजना तैयार कर रहे थे।

आप अनेक वर्षों तक 'जैनविजय' नामक पत्र के सहायक सम्पादक एवं अनेकान्त जैसी शोधपत्रिका से जुड़े रहे। आपके आलेख विद्वद्भोग्य एवं अनुसंधानपूर्ण सामग्री से भरपूर होते थे। आपने अपने जीवन में जैन बिब्लोग्राफी तैयार कर विद्वानों की अग्र पंक्ति में सुरक्षित स्थान पा लिया।

समाजसेवा :

देश की अनेक जैन संस्थाओं से आपका सम्बन्ध रहा। आपके प्रयासों से अनेक संस्थाओं को जीवन व कार्यक्षेत्र को पहचान पाने का अवसर उपलब्ध हो सका। भारतीय ज्ञानपीठ, वीर सेवा मन्दिर, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई, दिगम्बर जैन परिषद्, आल इण्डिया कान्फ्रें स कलकत्ता जैसी अनेक संस्थाएं आपकेपरामर्श की सतत् मुखापेक्षी रहीं।

संक्षिप्त में कहा जाये तो बाबू जी व्यक्ति नहीं अपितु स्वयं एक संस्था थे। आप लाखों रूपये का दान देकर भी उसके विज्ञापन से बचकर सतत् सेवाकार्यों में संलग्न रहते थे। इसी कारण आपके साथ अनेक संस्थाओं का सम्पर्क स्वयमेव होता गया।

अन्तिमसमय:

साहित्य एवं समाजसेवा के अनुपम व विलक्षण सेवी ने अपने जीवन को ही अनुसन्धानकक्ष, पुस्तकालय एवं प्रयोगशाला बनाकर सेवा का जो और जैसा आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सदैव अनुकरणीय रहेगा। आपने २६ जनवरी १९६६ में इस संसार से विदा ले सम्पूर्ण विद्वत्समाज को शोकाकुल कर दिया।

पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री

बीसवीं सदी के तीन विद्वानों की रत्नत्रयी के एक विद्वान् थे पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, जिन्होंने ज्ञान के साथ चारित्र को जीवन में धारण कर विद्वत्ता को गरिमा कराया। आप सिद्धान्त और अध्यात्म के गहन व सूक्ष्म चिन्तक, ओजस्वी प्रवचनकार, सफल अध्यापक एवं सामाजिक कार्यों में असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। यथार्थतया आप चलती-फिरती संस्था के रूप में स्वयं स्थापित थे।

परवार जाति में श्रावणशुक्ला द्वादशी वि.सं. १९५८ को शहडोल में श्री गोकुलप्रसाद के परिवार में जन्म हुआ, जो कि असाधारण व्यक्तित्व एवं धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न व्यक्ति थे। आपके पिताजी मझौली से आकर यहां बस गए थे।

शिक्षा :

कक्षा २ तक की शिक्षा मझौली में, कक्षा ४ तक पिण्डरई में, अनन्तर जैन पाठशाला कटनी, जैन महाविद्यालय मथुरा, जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मुरैना और स्याद्वाद महाविद्यालय काशी में रहकर धर्म, न्याय तथा व्याकरण की विशेष रूप से शिक्षा अर्जित की।

प्रेरक घटनायें :

१. श्री जगन्मोहनलाल जी को उनके पिताजी ने १३-१४ वर्ष की आयु में परिग्रहपरिमाणव्रत दिलाया था, जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया। इसके कारण ही आप सिवनी के पूरन साव, श्रीमन्त सेठ मोहनलाल खुरई एवं स.सिं. कन्हैयालाल कटनी के दत्तक पुत्र होने की संभावना का निवारण कर सके।

२. अल्पवय से ही उनका देवदर्शन-पूजन करने तथा रात्रिभोजन-जल के त्याग का नियम था। अध्ययन काल में एक बार वे बनारस से कटनी आ रहे थे। मार्ग में इलाहाबाद स्टेशन आया। वहां ट्रेन बदलना थी, अतः वे उतरे। सूर्य अस्ताचल की ओर था। अतएव उन्होंने कुली को बुलाकर सामान दिया, जलपान हेतु कुएं की जानकारी की। कुली उन्हें प्लेटफार्म के समीप कुएं पर ले गया, उन्होंने पानी खींचकर पिया। कुछ ही देर बाद ट्रेन आयी। कुली ने पुनः ट्रेन में सामान रखा। उसे देने के लिये जैसे ही पैसे निकाले, कुली अदृश्य हो गया। ट्रेन छूटने के भय से वे उस समय कुली को न खोज सके। दुबारा बनारस जाते समय इलाहाबाद स्टेशन पर उतरे और कुली

व कुएं की तलाश की पर न तो वह कुली ही मिला और न प्लेटफार्म के समीप कुआं। अनेक लोगों से कुएं की जानकारी की तो सभी ने उनकी हंसी उड़ायी, कि स्टेशन पर और कुआं। पंडित जी भी उस कुएं व अमृतरूप पानी के स्वाद को जीवनभर न भूल सके। उनके अनुसार वह देवकृत सहयोग था।

३. इसी प्रकार एक बार वे भ्रमण करते हुये पन्ना के समीप एक ग्राम में पहुंचे। गांव छोटा था और जिनालय न होने से उन्होंने उपवास का विचार भी किया। वे कुछ समय एक वृक्ष के नीचे बैठे रहे। वहां पत्थरों का ढेर था। वहां उलटने-पलटने लगे तो एक भगवान् आदिनाथ की तथा एक भगवान् शान्तिनाथ की, ऐसी दो प्रतिमायें मिलीं। यह देखकर उनका मन-मयूर नाच उठा। इन प्रतिमाओं का अभिषेककर पूजन की और खिचड़ी बनाकर भोजन किया। चोरी के भय से प्रतिमाओं को वहीं छोड़ दिया। उन्होंने यह निश्चय किया कि लौटकर ग्रामवासियों से पूछकर ले जायेंगे। वापिस आने पर ग्रामवासियों से पूछा पर उन्हें वे प्रतिमायें न मिलीं। ऐसी अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं आपके जीवन में घटीं जो व्रत-नियम के प्रत्यक्ष प्रभाव की सूचक व प्रेरणाप्रद हैं।

गृहस्थजीवन में प्रवेश :

सन् १९२२ में कस्तूरीबाई से उनका विवाह हुआ। कुछ समय बाद पत्नी के देहावसान के उपरान्त सन् १९३४ में द्वितीय विवाह फूलमती बाई से हुआ। दोनों पत्नियों से कुल सात पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया।

कार्यक्षेत्र :

सन् १९२३ में शिक्षा पूर्णकर जीवनपर्यन्त श्री शान्ति निकेतन जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में ही प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया। शिक्षा के क्षेत्र में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनके कतिपय शिष्य हैं - पं. नाथूराम डोंगरीय, पं. गुलाबचन्द जी, पं. बाबूलाल जी, पं. रामरतन जी. पं. नाथूलाल जी आदि। इनके कोई न्यायतीर्थ, कोई सिद्धान्तशास्त्री, कोई काव्यतीर्थ और कोई व्याकरणतीर्थ हुये।

राष्ट्रसेवा :

सन् १९२५ में आप दूसरे जिला कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर कानपुर कांग्रेस में सम्मिलित हुये। सन् १९३० में आपने कांग्रेस के कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग

लिया। जंगल सत्याग्रह के जेल यात्रियों के परिवारों की सहायता की। कुछ समय तक कांग्रेस की ओर से बुलेटिन भी निकाला।

समाजसेवा :

पं. जी सदैव समाज सेवा के लिये समर्पित रहे। वे अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से जुड़े रहे। दिगम्बर जैन शिक्षा संस्था कटनी के तो प्रधानाध्यापक, अधिष्ठाता तथा सदस्य थे ही, साथ ही श्री कन्हैयालाल गिरधारीलाल ट्रस्ट कटनी के मन्त्री व सदस्य, टोडरमल कन्हैयालाल ट्रस्ट कटनी के संस्थापक ट्रस्टी, रामजानकी मन्दिर ट्रस्ट कटनी के अध्यक्ष, श्री मुरलीधर कन्हैयालाल ट्रस्ट कटनी के ट्रस्टी, श्री दिगम्बर जैन गुरुकुल खुरई के उपाधिष्ठाता, श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल जबलपुर के अधिष्ठाता, श्री दिगम्बर जैन गुरुकुल ऐलोरा के संस्थापक सदस्य, श्री दिगम्बर जैन गुरुकुल मथुरा के सदस्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के सदस्य, श्री वर्णी जैन विद्यालय सागर के ट्रस्टी एवं सदस्य, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर के अध्यक्ष तथा सदस्य, श्री महावीर जैन उदासीन आश्रम कुण्डलपुर के अधिष्ठाता एवं सदस्य, श्री दिगम्बर जैन परवार सभा जबलपुर के मन्त्री व सदस्य, श्री दिगम्बर जैन संघ मथुरा के प्रधानमन्त्री तथा सदस्य, श्री दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् दिल्ली के संस्थापक सदस्य, श्री वर्णी शोध संस्थान काशी के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्य, श्री दिगम्बर जैन महासमिति दिल्ली के सदस्य, श्री भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से भी आप सम्बद्ध रहे। इसके अलावा भी अनेक स्थानों पर आपकी सेवाएं ख्यात हुई हैं। संक्षेप में यदि कहा जाये तो आप स्वयं एक सजीव संस्था थे।

साहित्यसेवा :

पं. जी का यह क्षेत्र भी विस्तृत है। उनकी प्रमुख कृतियां हैं - १. श्रावकधर्मप्रदीप : संस्कृत एवं हिन्दी टीका, २. अध्यात्मअमृतकलश : भाषा टीका, ३. श्रावकाचारोद्धार भाषा टीका, ४. आत्मप्रबोध (कुमारकवि) भाषा, ५. कर्मबन्ध की प्रक्रिया।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके लेखों की संख्या इस प्रकार है- सामाजिक समस्याओं पर ४५, सैद्धान्तिक लेख ५५, व्यक्तिगत लेख २३, विविधविषयों पर ४२।

आपने अपने जीवनकाल में 'परवारबन्धु' मासिक, 'वीरसन्देश',

'जैनसन्देश', तथा 'कांग्रेस बुलेटिन' पत्रों का सम्पादन कर अपनी अमूल्य साहित्यसेवा से जन-जन को लाभान्वित किया।

श्रेष्ठ प्रवचनकार :

पं. जी श्रेष्ठतम प्रवचनकार थे। उन्होंने भारत के दशाधिक प्रान्तों के शताधिक नगरों की यात्रायें की और अपने प्रवचनों के द्वारा जन-जागृति के साथ धार्मिक, सामाजिक तथा शास्त्रीय ज्ञान के संवर्धन के उद्देश्य की पूर्णता की।

अभिनन्दन :

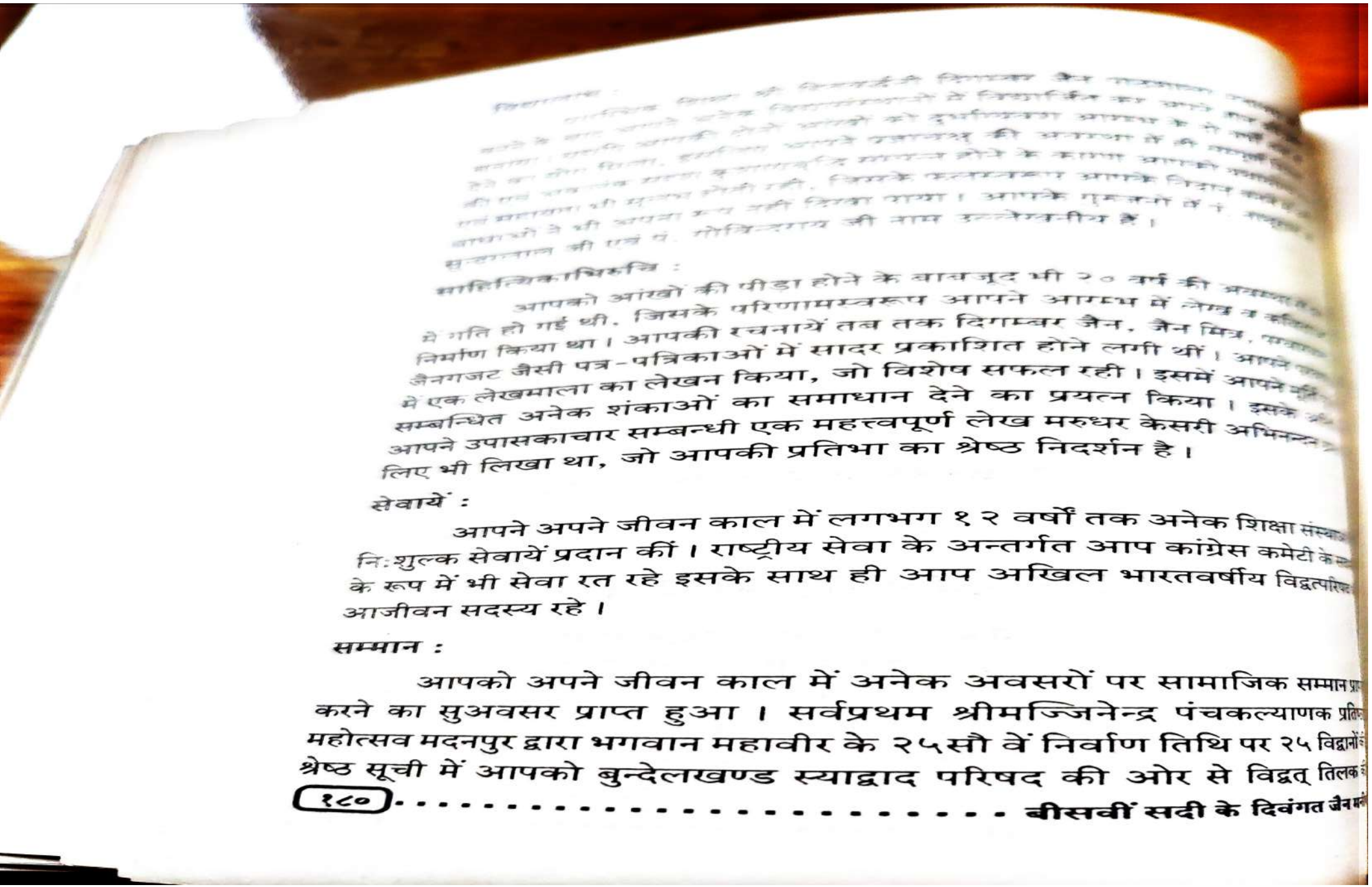
जैन समाज अमरपाटन, जैन समाज अजमेर, दिगम्बर जैन गजरथ महोत्सव समिति कुण्डलपुर, कुन्दकुन्द भारती दिल्ली, जैन समाज गुना, पं. जगन्मोहनलाल साधुवाद समिति रींवा, दमोह, जबलपुर तथा विभिन्न नगरों की समाज द्वारा पण्डित जी का अभिनन्दन किया गया। सन् १९८९ में पं. जी को साधुवाद ग्रन्थ समर्पित कर सतना समाज ने स्वयं को गौरवान्वित महसूस किया।

समाधिमरण :

पं. जी ने गृहस्थ होते हुये भी गृहत्यागीवत् जीवनयापन किया। उन्होंने ज्ञानार्जन के साथ व्रतपालन करते हुये आत्मसाधन भी की। २४ जून सन् १९९५ को वे कुण्डलपुर आ गये और आचार्य श्री विद्यासागर जी के सानिध्य में सल्लेखना का नियम ले काय-कषायों को क्षीण करने लगे। ७ अक्टूबर शनिवार क्वांर शुक्ला चतुर्दशी को सायंकाल सात बजे पूर्ण समताभाव से इस संसार से महाप्रयाण किया। तब से आपकी कीर्ति ही इस लोक में शेष है।

पं. जम्बूप्रसाद शास्त्री

आपका जन्म ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी वि.सं. १९७२ को मडावरा जिला झांसी में हुआ था। आपके पिता श्री हरिसिंह एवं माता श्रीमती सौ. सीतादेवी समाज के गणमान्य, सुशिक्षित एवं सम्पन्न परिवारों में गण्य होते थे। आपके परिवार में लोग शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र से जुडे थे। आपके चाचा श्री मौजीलाल जी एक सुयोग्य विद्वान् एवं वैद्य थे, तो पं. सुन्दरलाल जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही साहित्यसेवा को अर्पित किया हुआ था।



साहित्यिकाभिरुचि :

आपको आंखों की पीड़ा होने के बावजूद भी २० वर्ष की अवस्था से ही गति हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप आपने आरम्भ में लेख व कविता निर्माण किया था। आपकी रचनायें तब तक दिगम्बर जैन, जैन मित्र, जैनगजट जैसी पत्र-पत्रिकाओं में सादर प्रकाशित होने लगी थीं। आपने में एक लेखमाला का लेखन किया, जो विशेष सफल रही। इसमें आपने सम्बन्धित अनेक शंकाओं का समाधान देने का प्रयत्न किया। इसके आपने उपासकाचार सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण लेख मरुधर केसरी अभिनन्दन लिए भी लिखा था, जो आपकी प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन है।

सेवायें :

आपने अपने जीवन काल में लगभग १२ वर्षों तक अनेक शिक्षा संस्थाओं नि:शुल्क सेवायें प्रदान कीं। राष्ट्रीय सेवा के अन्तर्गत आप कांग्रेस कमेटी के सदस्य के रूप में भी सेवा रत रहे इसके साथ ही आप अखिल भारतवर्षीय विद्वत्परिषद आजीवन सदस्य रहे।

सम्मान :

आपको अपने जीवन काल में अनेक अवसरों पर सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मदनपुर द्वारा भगवान महावीर के २५सौ वें निर्वाण तिथि पर २५ विद्वानों की श्रेष्ठ सूची में आपको बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद की ओर से विद्वत् तिलक की

उपाधि से विभूषित करते हुए सम्मान प्रदान किया गया। इसके अलावा आंचलिक निर्वाण समिति की ओर से १९७३ में भी आपको सम्मानित करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपकी विद्वत्ता एवं कार्यों का मूल्यांकन करते हुए सकल दिगम्बर जैन समाज महावरा ने पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी के श्रीहस्तों से अभिनन्दन पत्र भेंट करते हुए गौरव का अनुभव प्राप्त किया।

समाधिमरण :

जीवनभर जिनवाणी मां की संगति एवं साधना की परिणति ने आपको अन्तिम समय में समता के साथ महामंत्र णमोकार का स्मरण करने की क्षमता प्रदान की। आपने दिनांक १८ मार्च २००१ भगवान ऋषभदेव की पावन जन्मजयन्ती के दिन प्रात:काल में १० बजे इहलोक से प्रयाण करते हुए सम्पूर्ण समाज के साथ परिजनों को शोकाकुल कर दिया।

❑

एस.वी. जिनचन्द्र शास्त्री

दक्षिणभारत की पावनभूमि एवं तीर्थस्थल श्रवणबेलगोला में १७ दिसम्बर सन् १९१३ को पुरोहितसमूह के जावगळ ब्रह्मसूरिय्या के परिवार में आपका जन्म हुआ था।श्री नेमिसागर जी वर्णी और कर्मयोगी भट्टाकलंक महास्वामी साथ शताब्दी में जन्म ले उनके मार्गदर्शन, सत्संगति और शिष्यत्व प्राप्त करने वाले तथा अपने सुकार्यों, सेवा और समर्पण द्वारा जीवन को पवित्र और निर्मल बनाने वाले थे, जिनचन्द्र शास्त्री।

शिक्षा :

पूज्य श्री नेमिसागर जी वर्णी को अपना प्रथम गुरु बनाकर श्री एस. वी. जिनचन्द्र ने उनसे विशेष अध्ययन किया। कर्मयोगी उनकी ही प्रेरणा और आशीर्वाद से वे उत्तरभारत में गये वहां अध्ययन कर न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़भाषा में अगाध पाण्डित्य प्राप्त था। वे आगमशास्त्र के मर्मज्ञ थे।

कर्मक्षेत्र :

अध्ययन पूर्ण होने पर आपने प्रौढशाला में भाषाध्यापक के पद पर नियुक्त होकर दीर्घकाल तक अपनी सेवायें प्रदान कीं।

साहित्यिक जगत् के नक्षत्र :

श्री शास्त्री जी ने दशलक्षणधर्म और भगवती आराधना ग्रन्थ का भाषान्तरण किया। इसके साथ ही अनेक काव्यों की रचना करके की।

सम्मान एवं उपाधियां :

आपके अगाध पाण्डित्य से प्रभावित होकर मैसूर के महाराजा ने विद्वान की पदवी से सम्मानित किया। आपकी अमूल्य सेवाओं के लिये से भी विभूषित किया गया।

श्री शास्त्री जी श्रवणबेलगोल में ३१ अक्टूबर सन् १९७२ में गए। उनकी बहुमूल्य सेवायें सदैव अविस्मरणीय रहेंगी।

पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले

आपके पूर्वज तत्कालीन हैदराबाद राज्य के गुलबर्गा जिलान्तर्गत के रहने वाले थे। आपके पडदादा का नाम गोविन्दराव फडकुले तथा दादा गोपालराव था। आपके दादा जी ही सोलापुर आकर रहने लगे थे। उस वक्त जी के पिता पार्श्वनाथ शास्त्री मात्र ८-१० वर्ष के थे। दादा जी के ही समय से परिवार में शास्त्र लिखने एवं पढ़ने का संस्कार चला आ रहा था। उनके पास के हस्तलिखित ग्रन्थ थे, जो कुछ समय पहले तक सोलापुर के आदिनाथ मं संग्रहीत रहे। उनमें कतिपय ग्रन्थ तो आपके पिता जी द्वारा भी लि थे।

जन्म एवं शिक्षा :

पं. जिनदास शास्त्री का जन्म सं. १८९४ को माता श्रीमती प्रयागबाई एवं गोपालराव के परिवार में हुआ था। बचपन में शिक्षा का कार्य पिताजी के मार्गदर्शन में पाठशाला में ही हुआ। अंग्रेजी से ५ तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद जैनधर्म के बहुत से ग्रन्थ पढ़कर प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके बाद न्याय, व्याकरण और साहित्य आदि विषयों का सूक्ष्म और गहराई से अध्ययन पं. वंशीधर शास्त्री के पास किया। आपने मुरैना में गुरूणां गुरु पं. गोपालदास बरैया के पास न्यायतीर्थ का अध्ययन कर विद्वत्ता हासिल की। १९१९ में सोलापुर वापिस आये और कुछ दिन बाद ही आप ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन पाठशाला में धर्माध्यापक के रूप में कार्यरत हो गये। आपकी विशेष रुचि न्याय एवं व्याकरण के साथ ही काव्यसृजन में रहती थी।

साहित्यकर्म :

आपने जीवनपर्यन्त साहित्य की आराधना करते हुए अपने समय एवं श्रम को सार्थक बनाने में महनीय श्लाघा प्राप्त की। उस समय धर्माशर्माभ्युदय जैसे विशालकाय एवं जटिल ग्रन्थ पर कोई टीका उपलब्ध न होने के कारण उसका अर्थ बताने से ही संस्कृत भाषा का पाण्डित्य प्राप्त हो गया था। सन् १९१९ से १९५० तक आप मराठी जैनबोधक के अवैतनिक सम्पादक के रूप में नियुक्त हुए। अमोघवर्ष कृत प्रश्नोत्तर रत्नमाला का मराठी में पद्यानुवाद आर्यावृत्त में किया। इसके अलावा सुभाषितावलि, सारसमुच्चय, सावयधम्मदोहा और भगवती आराधना जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता एवं जिनवाणी आराधना का निदर्शन कराने के लिये पर्याप्त हैं।

आपने अनेक चरित्र ग्रन्थों का हिन्दी से मराठी में अनुवाद भी किया था। जिनमें सुदर्शनचरित्र, सुकुमारचरित्र, वरांगचरित्र, प्रीतिंकरचरित्र, नागकुमारचरित्र, वर्धमानचरित्र, शान्तिनाथपुराण इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों के अनुवाद के कारण ही मराठी भाषाभाषाई लोगों को जैन वाङ्मय का विशाल द्वार ही उद्घाटित हो गया था। इस तरह आपने अपने जीवन में लगभग ४० ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी कविताओं की संख्या लगभग पन्द्रह हजार तक है, जिनमें से कुछ प्रकाशित एवं कुछ अप्रकाशित भी हैं।

आपका अनुवाद मूलानुगामी होकर भी भावों के स्पष्टीकरण को ध्यान में रखकर किया गया होता था। आपने गोम्मटसार जीवकाण्ड जैसे गहन एवं विशाल ग्रन्थ का २७०० मराठी आर्या छन्दों में अनुवाद किया था।

पं. जीवन्धर जी न्यायतीर्थ

समय के सलिलप्रवाह में परिवर्तन आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य प्रक्रिया है। इस परिवर्तन का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में पड़ता है, चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक या फिर सांस्कृतिक। किन्तु प्रक्रिया में अपने जीवन को जीवन्त रूप प्रदान करने वाले विरले व्यक्तित्व होते हैं। जीवन को निर्वाह के सोपानों से आगे निर्माण के भवन तक ले जाने वाले व्यक्तित्व ही युगों-युगों तक स्मृतिपटल पर अंकित होते हैं।

पण्डित प्रवर जीवन्धर जी न्यायतीर्थ एक ऐसे ही व्यक्तित्व का नाम है, जो प्रथम श्रेणी के विद्वानों में गण्य थे। आपके द्वारा अध्यापित किये गये सैकड़ों विद्वान् आपको अपना गुरु कह पाने में गौरव का अनुभव करते थे। इस गौरवशाली व्यक्तित्व का जन्म सागर जिला के शाहगढ कस्बा में हुआ। देवी अहिल्याबाई होलकर की नगरी इन्दौर को आपने अपनी कर्मभूमि के रूप में चुना ।

शिक्षा :

बीसवीं शताब्दी में नव्य-न्याय और प्राचीन न्याय का आप जैसा प्रकाण्ड विद्वान् अन्य कोई नहीं हो सका। आपने न्यायतीर्थ की परीक्षा देकर इस उपाधि से अपने आप को विभूषित किया था।

दाम्पत्यजीवन :

ग्राम मडावरा, ललितपुर के श्रीमान् सिंघई मथुराप्रसाद की सुपुत्री रजनबाई के साथ आपका विवाह हुआ, जो अत्यन्त विदुषी नारीरत्न एवं धर्मिष्ठा महिला थीं। उन्होंने आपके जीवन को संगिनी के रूप में बखूबी निभाया। आपने चार पुत्रों को जन्म दिया।

आजीविकोपार्जन हेतु आप सर सेठ हुकमचन्द जैन विद्यालय इन्दौर में कई वर्ष तक प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत रहे, पश्चात् स्वतन्त्र व्यापार में संलग्न हो गये।

मां जिनवाणी के लाल :

आपने धर्मोपदेश, शिक्षण एवं साहित्य के द्वारा न केवल अपने जीवन को संस्कृत किया अपितु समाज, धर्म तथा जिनवाणी की अपूर्व सेवा की। आपके

तर्कपूर्ण एवं उत्प्रेरक प्रवचनों को सुनने के लिए आम आदमी से अधिक विद्वद्वर्ग लालायित रहता था। जिनमें उसे जिनवाणी के उन रहस्यों से परिचय होता था, जिन्हें वह कठिन अभ्यास से भी प्राप्त नहीं कर सकता था।

आपने 'जैन तत्त्वविवेक' जैसी रचनायें कर एकान्तमत के आग्रह का निरसन करने का प्रयास किया।

चिरस्मृति :

पं. जी ने न्याय को जीवन में धारण कर वस्तुस्थिति को पहचाना, तभी सरल स्वभावी, शान्त व सहृदयी हो जीवन की अनेकविध विषमताओं को आपने सहजता से स्वीकार्य करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। सन् १९७४ में असमय काल के गाल में समा जाने वाले इस व्यक्तित्व को आज भी उनका शिष्यसमुदाय जीवित और जीवन्त बनाये रखे है। आपका पुण्य स्मरण एवं नाम स्मरण ही जीवन में उत्प्रेरक होने में सहकारी होता है। वैज्ञानिक युग की विषमता में इस विद्वत्ता का प्रकाश आज भी अनेक लोगों के भ्रम को दूर कर सत्यपथ पर अग्रसर कर सकने में पूर्ण समर्थ होता, काश वे हमारे बीच आज भी होते।

❑

जुगमन्दरलाल जैनी

जैन शासन के उत्कर्ष के लिए समर्पित एवं कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व का नाम था जुगमन्दर लाल, जो कि जैनी के नाम से ख्यात थे। आप संस्कारित परिवार के ऐसे लाल थे जो सतत् अपराजेय एवं निस्पृह सेवारत रहता हो।

शिक्षा :

आप जन्मत: बुद्धिमान् एवं प्रखर तार्किक थे। मैट्रिक्यूलेशन और इण्टरमीडियेट जैसी परीक्षाओं में आपने शासन की ओर से छात्रवृत्ति प्राप्त की। एम.ए.प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णकर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी के अध्यापक बनने का अवसर मिला। तीन साल बाद एकजेटर कालेज आक्सफोर्ड में दाखिला लिया और बैरिस्टर होकर स्वदेश लौटे।

साहित्य सेवा :

आपने सर्वप्रथम बैरिस्टरी के अध्ययन काल में ही रोमन लॉ और जैनधर्म की

रूपरेखा को लंदन से प्रकाशित कराया। ब्र. शीलतप्रसाद जी के सानिध्य का लाभ प्राप्त कर आपने उनसे विचारविमर्श करते हुये तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, आत्मानुशासन, पंचास्तिकाय, समयसार, गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड आदि का मौलिक प्रस्तावना के साथ अंग्रेजी में अनुवाद किया। आपने जैन पारिभाषिक शब्दों का एक कोश भी तैयार किया था। इन प्रकाशनों की विशिष्टता यह थी कि इन्हें आपने अपने स्वोपार्जित द्रव्य द्वारा प्रकाशित कराया था। सम्पादन के कुशल चितेरे ने सन् १९०४ से अंग्रेजी के जैनगजट का सम्पादन अपनी देखरेख में किया।

समाजसेवा :

आपने अपने सेवा के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता पायी। सन् १९१३ में एक प्रीवी काउन्सिल के मुकदमें में लंदन भी भेजा गया। आप १९१३ से १९२०.तक और १९२२ से १९२७ तक इन्दौर राज्य के न्यायाधीश और व्यवस्थाविधिविधायिनी सभा के अध्यक्ष रहे। इसी सेवा के दौरान ऑनरेरी असिस्टेण्ट कलेक्टर और अमन सभा के संस्थापक व मन्त्री के रूप में कार्य करते रहे।

देहावसान से एक वर्ष पूर्व अपनी सम्पत्ति का वसीयतनामा लिखकर उस द्रव्य का उपयोग जनहितार्थ किया। इसी के द्वारा ऋषभ जैन लाइब्रेरी लंदन, सेण्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाऊस लखनऊ, जैन गजट, जैन साहित्य मंडल लंदन आदि को सहायता करते रहे, जिससे अंग्रेजी के साथ धार्मिक अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति एवं साहित्य का प्रकाशन सुचारु रीति से होता रहा।

सम्मान :

आपको सम्मान ने कदम दर क़दम स्वागत किया। अनेक संस्थाओं से जुड़े एवं सेवाभावी होने के कारण शासन ने भी आपको रायबहादुर की उपाधि प्रदान कर अलंकरण किया था। आपके हृदय से जैनजाति के उद्धार तथा जैनधर्म के प्रचार के लिए वात्सल्य भाव छलका पड़ता था। जिसके कारण आप समाज के हृदयसम्राट् बन बैठे थे।

विदाई की बेला :

जीवन पर्यन्त कर्मठ कर्मयोगी बन समाज एवं धर्म की सेवा करते हुए, इस महामना ने १३ जुलाई १९२७ को इस असार संसार की इस पर्याय से नाता तोड़कर सारी समाज को शोकसागर में निमज्जित करा दिया। आपकी सेवा एवं भावनाएं आज भी उदाहरण हैं।

पं. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

उस दिन भी प्रकाश के अनन्तर सन्ध्या का आगमन हुआ था और तब निशा रानी ने अपना काला आंचल पसार सबको अपनी गोद में ले लिया था, पर इसमें कोई खास बात नहीं थी। बात है उस युगचेता की जिसने स्थान सरसावा जिला सहारनपुर में श्री चौधरी नत्थूमल जी के घर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी वि.सं. १९३४ को 'युगवीर' के रूप में जन्म लिया और न केवल मां भोईदेवी इस नैनिहाल को प्राप्तकर धन्य हुई वरन् सम्पूर्ण भारत, जैन इतिहास वाङ्मय और पुरातत्त्व के इस अन्वेषक को पाकर कृतार्थ हुआ।

ज्ञानार्जन :

साहित्य के भीष्मपितामह के नाम से विश्रुत, सरस्वती के वरदपुत्र, निर्भीक, निराले व्यक्तित्व के धनी, निबन्धकार, सुप्रसिद्ध इतिहासकार, कुशलवक्ता, निपुण पत्रकार एवं सम्पादक-समीक्षक पं. जी शैशवकाल से ही आकर्षित व्यक्तित्व के धनी थे। आपके चुम्बकीय आकर्षण से कोई भी व्यक्ति अनुरंजित हुये बिना नहीं रहता था। यही कारण है कि आप शिक्षकों के अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। आपने पांच वर्ष की अवस्था में उर्दू-फारसी की शिक्षा प्रारम्भ की। दूसरे विद्यासागर के रूप में आपकी विलक्षण प्रतिभा दैवीशक्तिसम्पन्न लगती थी। तर्कणाशक्ति के विशेष गुण के साथ आप अध्ययन के अलावा खेलकूद में भी किसी से पीछे नहीं थे।

सरसावा में हकीम उग्रसेन द्वारा स्थापित पाठशाला में आपने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया तथा संस्कृत में बढ़ती अभिरुचि ने आपको जैनशास्त्रों के स्वाध्याय के लिये प्रेरित किया। अंग्रेजी स्कूल खुल जाने से आपने नौवीं कक्षा तक इसका विधिवत् अध्ययन कर स्वाध्यायी रूप से इंट्रेन्स की परीक्षा पास की।

कार्यक्षेत्र :

मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सन् १८९९ में आपने प्रान्तीकसभा की ओर से उपदेशक का कार्य प्रारम्भ किया। स्वाभिमान की स्वाभाविक वृत्ति एवं स्वतन्त्र रोजगार की दृष्टि से सन् १९०२ में आपने मुख्तारी की परीक्षा पास की और सहारनपुर में प्रैक्टिस करते रहे। १९०५ में आप देवबन्द चले गये और वहीं प्रैक्टिस करते रहे। आपने इस पेशे में सजग न्याय और सत्य का आधार लिया। लगभग १०

वर्ष तक मुख्तारी करके आपने धन और यश दोनों ही अर्जित किये। किन्तु जैन वाङ्मय के स्वाध्याय में जब मुख्तारी बाधक होने लगी तब आप उसे छोड़कर एकमात्र ज्ञानसाधना में संलग्न हो गये।

वैवाहिक जीवन में दृढता :

यद्यपि आपका विवाह बालावस्था में ही हो गया था, किन्तु उससे ज्ञान साधना अवरुद्ध नहीं हुई, वरन् जीवनसंगिनी ने उसमें सहयोग दे उसे वृद्धिंगत किया। सन् १८९९ में एक सुयोग्य, निर्भीक कन्या के जन्म ने आपके दाम्पत्य जीवन को खुशियों से भर दिया। कन्या की कुशाग्र बौद्धिकता को देख उसका नाम 'सन्मतिकुमारी' रखा। यह सुख मात्र १९०७ तक ही मिल सका और क्षणभंगुर संसार से उस कन्या ने विदा ले ली। १९१७ को दूसरी बेटी का सौभाग्य मिला, किन्तु ठीक सवा तीन माह पश्चात् पत्नी की मृत्यु से अनभ्रवज्रपात हो गया। इस वियोग को आपने अपने स्वाध्याय से अर्जित आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा सहनीय बना लिया। सन् १९२० में मोतीझरा के तीव्र ज्वर से आपके नीड का अन्तिम पक्षी एकमात्र कन्यारत्न के रूप में भी उड़ गया। संघर्ष की एक लम्बी शृंखला भोगते हुये भी आप अडिग बने रहे।

व्यक्तित्व :

मुख्तार सा. का व्यक्तित्व नारिकेल-सा था। नवनीत सी स्वाभाविक कोमलता और दायित्वों के प्रति कड़ापन, महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसी निर्भीकता और निराला जैसी अक्खडता आदि विरोधों का सामंजस्य आपके व्यक्तित्व का आईना था। राष्ट्रीयता की भावना इतनी कि प्रतिदिन सूत कातकर ही भोजन ग्रहण करते थे।

सुधारवादी रुख :

तर्कणाशक्ति के तहत सदैव सत्य-असत्य की पहचानकर वास्तविकता को आत्मसात् कर रूढियों, कुरीतियों, अनाचार-अत्याचार आदि के प्रति आप स्पष्ट वक्ता थे। भट्टारकों के द्वारा साहित्य एवं कार्यक्षेत्र में फैले अनाचार को आपने ही पहचाना। भट्टारक लोग अपनी यशोगाथा फैलाने की भावना से कवित्व का माध्यम ले विविध प्राचीन ग्रन्थों के अंश चुराकर अपना प्रसार-प्रचार कर रहे थे। इस साहित्यिक चोरी को आपने प्रकाशित करने हेतु निरन्तर ग्रन्थों की परीक्षा करते हुये शोध एवं खोजपूर्ण लेखों से लोगों को वास्तविकता का ज्ञान कराया।

साधना के विविध रूप :

साहित्यसाधना की तन्मयता ने आपको एक उच्चकोटि के साहित्यकार

का रूप प्रदान किया। नित्यप्रति सुबह गुंजायमान होने वाली 'मेरी भावना' की पंक्तियां, जो मानवीय मूल्यों की उच्चता की द्योतक हैं, जिसका अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी, कन्नड आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। आपकी मूल्यप्रियता व मानवीयता का सजग प्रमाण है। एक साहित्यकार के रूप में आपके विविध कार्य आपके अनेक रूपों को प्रकट करते हैं।

साहित्य साधना का आरम्भ :

अध्ययन काल से ही भावों की अभिव्यक्ति करने के लिये आप लेखन की ओर प्रवृत्त हुये और आपकी प्रथम रचना सन् १८ मई १८९६ में जैनगजट में प्रकाशित हुई। जिससे आपकी देशोत्थान की भावना एवं उसके प्रति कृतसंकल्पित होने का आभास मिला। आप जब लिखने बैठते तो आपके मानस का प्रवाह सरिताप्रवाह के समान अतिवेग से फूट पड़ता था।

जैन साहित्य के कितने ही ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका दूसरे ग्रन्थों में उल्लेख तो है पर वे मूल रूप में आज भी अप्राप्य हैं। मुख्तार सा. ने विशाल जैन साहित्य में मिले उल्लेखों के आधार पर ऐसे बहुत से अप्राप्य ग्रन्थों की सूची तैयार की और उनकी खोज के लिये पुरस्कारों की घोषणा करते हुए उनकी खोज की चेतना समाज में जाग्रत कर सफलता प्राप्त की।

कुशल निबन्धकार :

आपके निबन्धों में सामाजिक, राष्ट्रीय, आचारमूलक, भक्तिपरक, दार्शनिक एवं जीवन शोधक गुण प्रमुख रूप से जीवन्त हो उठते थे, जिनके कारण से पाठक निरन्तर उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे। आपके निबन्धों का संग्रह 'युगवीर निबन्धावली' के नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ है, जिसमें समाज सुधारक एवं गवेषणात्मक निबन्ध ही आ सके हैं। इसके अलावा आपने 'जैन साहित्य और इतिहास का विशद प्रकाश' में ३२ निबन्धों का संग्रह कर उसे सरल एवं सहज रीत्या उपलब्ध कराने में कौशल दिखाया है, अन्यथा वे आज भी पत्र-पत्रिकाओं में ही ढंके रह गये होते।

भाष्यकार :

आप केवल मौलिक लेखक ही नहीं, एक मेधावी भाष्यकार भी थे। आपने आचार्य समन्तभद्र स्वामी की प्राय: समस्त कृतियों पर भाष्य लिख उनको विस्तृत एवं तुलनात्मक प्रस्तावना से सुसज्जित कर सजीव ही बना दिया है। इन ग्रन्थों की

PDF Scanner ACE Scanner

लम्बी शृंखला में कतिपय हैं - स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, देवागमस्तोत्र, अध्यात्मरहस्य, तत्त्वानुशासन, समाधितन्त्र, पुरातन जैन वाक्यसूची, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग), समन्तभद्र भारती प्रभृति ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन अध्येताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धन के साथ सम्यग्दिशादर्शन का कार्य करती हैं।

श्रेष्ठ इतिहासकार :

जैन साहित्य और पुरातत्त्व सम्बन्धित इतिहास को आपने नये मूल्यों के अन्तर्गत अन्वेषण करते हुये मान्यता दिलाने का प्रयास तो किया ही, साथ ही उसके अव्यवस्थित एवं अधूरेपन में एक अनिवार्य पूर्णता की ओर गति देने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर साहित्य और इतिहास जगत् को आश्चर्यचकित कर दिया।

पत्रकार एवं सम्पादक :

मुख्तार सा. यथार्थतया युगद्रष्टा बन प्रथम श्रेणी के पत्रकार और सम्पादक रहे। जैनगजट के साप्ताहिक मुखपत्र के सम्पादन से आपने पत्रकारिता का जीवन आरम्भ किया। ९ वर्ष तक इसका सफल सम्पादन करने के बाद 'प्रेमी जी' ने 'जैनहितैषी' के सम्पादन का उत्तरदायित्व आपको सौंपा। जिसे आप १९३१ तक कुशलता के साथ निर्वाह करते रहे। समन्तभद्राश्रम की स्थापना के पश्चात् 'अनेकान्त' नाम शोध पत्रिका आरम्भ की, जो प्रारम्भ से ही प्रतिष्ठा और विश्रुति को प्राप्त हो गयी। यही आश्रम बाद में वीर सेवा मन्दिर के रूप में परिवर्तित हो दिल्ली से सरसावा स्थानान्तरित हुआ और एक शोध प्रतिष्ठान के रूप में जैन वाङ्मय की विभिन्न शोध प्रवृत्तियों का संचालक बना। भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना के पूर्व दिगम्बर जैन समाज की यह एकमात्र संस्था थी, जो जैन साहित्य की अपूर्व सेवा में रत थी। मुख्तार साहब ने अपनी समस्त सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाकर इसकी बहुमुखी प्रवृत्तियों को गति प्रदान की।

समाज सेवा :

आप एक सामाजिक क्रान्तद्रष्टा व्यक्तित्व के धनी थे। आपने विवाह के लिए वर्ण, जाति एवं गोत्र आदि का बन्धन स्वीकार न कर समाज में उसके अनुसार जीवन रीति आरम्भ करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। इसी प्रकार की अनेक गतिविधियों को आपने समाज में गतिशील कर समाज के उत्थान को लक्षित किया।

आपके द्वारा की गई लोकसेवा और साहित्यसेवा तथा स्थापित संस्थाओं का युग-युगान्तकारी प्रभाव दिगम्बर जैन परम्परा को सदैव गौरवान्वित करता रहेगा।

उपाधि एवं सम्मान :

आपके गुणों एवं कार्यों ने आपको जनता के बीच चर्चित व अर्चित बना दिया। पूज्यपाद श्री गणेशप्रसाद वर्णी, पं. नाथूराम प्रेमी, बाबू छोटेलाल जी, बाबू सूरजभान वकील, साहू शान्तिप्रसाद जी तथा ब्र. चन्दाबाई आरा आदि ने मुख्तार सा. के अगाध पाण्डित्य और ज्ञानसाधना की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। बाबू छोटेलाल जी रईस कलकत्ता ने आप जैसी विभूति का मूल्यांकन कर वीर शासन महोत्सव पर आपको 'वाङ्मयाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया। सामाजिक अन्य सम्मानों की लम्बी शृंखला का यहां उल्लेख कर पाना तो संभव ही नहीं है।

आप सदैव एक तपस्वी के रूप में रहे। आपका जीवन निष्काम दीपशिखा के समान तिल-तिलकर ज्ञान प्राप्ति के लिये जला आप ज्ञानी, समाजसुधारक, दृढ अध्यवसायी ही नहीं अपितु आंगन की तुलसी के वह चौरा थे जिसकी सुरभि सभी दिशाओं को हर्षविभोर कर देती है। आपने युग की नांडी को परखा था। अत: परम्परा के मिथ्याव्यामोह से पृथक् हो एक नयी दिशा और नया आलोक प्रशस्त किया। आपने सन् १९६८ में इस लोक से प्रयाण कर समस्त जैन समाज को गहन शोक से पूरित कर दिया।

❑

जैनेन्द्रकुमार जैन

साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार जी का नाम हिन्दी साहित्य जगत् में एक चिर-परिचित नाम है। युगबोध से पूर्ण आपकी लेखनी से पूरा जैन समाज गौरवान्वित है। आपका मूल नाम था आनन्दीलाल। आपका जन्म तालों के लिये प्रसिद्ध नगर अलीगढ जिला के कोडियागंज में सन् १९०५ में हुआ। पिता श्री लाला प्यारेलाल जी आपके शैशवकाल में ही स्वर्गस्थ हो गये। मां रामदेई के आंचल की छांव में पोषित तथा मामा महात्मा भगवानदीन जी की छत्रच्छाया में आपने अपने जीवन को संवारा।

शिक्षा :

आपके मामा महात्मा भगवानदीन जब ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर में

अधिष्ठाता थे, तब आपने अपनी शिक्षा का शुभारम्भ उनके ही निर्देशन में [illegible] आश्रम के पवित्र एवं स्वतन्त्र निष्ठामय वातावरण में संस्कारित हो आप प्रखर [illegible] छात्र के रूप में जाने जाते थे। सन् १९१९ में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर आगे [illegible] शिक्षण हेतु आपने बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया।

राष्ट्रसेवा :

स्वतन्त्रता संग्राम ने जैनेन्द्रकुमार के मन में राष्ट्रीयता की भावना को [illegible] कर दिया और आप असहयोग आन्दोलन में सहभागी बने। असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको जेल के असहनीय कष्टों से भी साक्षात्कार करना पड़ा।

जीवननिर्वाह :

आर्थिक संकटों से संघर्ष करते हुये आजीविका निर्वाह हेतु मां और मामा की प्रेरणा से साहित्य लेखन में प्रवेश किया। स्व. बाबू गुलाबराय के शब्दों में 'दुधारू गाय' बनी आपकी लेखनी ने लगभग साढे चार दशकों तक अपनी साहित्यसाधना से साहित्य जगत् को समृद्ध करते हुए आपको आजीविका भी प्रदान की।

साहित्यसृजन :

प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में आपकी प्रतिभा और आत्मशोधित विचार जब लेखनी के माध्यम से प्रकट हुए तो रचनाओं की विस्तृत शृंखला ही निर्मित हो गयी। आपकी पहली रचना 'खेल' जो सन् १९२८ में विशाल भारत में छपी। इसके बाद वातायन, नीलमदेश की राजकन्या, दो चिडियां, स्पर्द्धा, ध्रुवयात्रा, एक दिन एक रात, फॉसी, जय सिन्धु आदि कहानी संग्रह आपके मनोवैज्ञानिक स्तर की प्रांजल एवं लाक्षणिक अभिव्यक्ति स्वरूप हैं।

'परख' उपन्यास, जिसे सर्वप्रथम नाथूराम प्रेमी ने प्रकाशित किया था, पर आपको साहित्य अकादमी ने ५०० रूपये का पुरस्कार दिया। हिन्दी जगत् में धूम मचाने वाला सन् १९३६ में निबद्ध प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र', जिससे स्व. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इतने अधिक प्रभावित हुये कि आपको रवि व शरद बाबू के समकक्ष मानने लगे। आपके इस उपन्यास का तमिल, तेलगू, मराठी, बंगला आदि भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। इस उपन्यास के २० वर्षों में २० से अधिक संस्करण निकले। आपके अन्य उपन्यासों में कल्याणी, विवर्त, सुखदा आदि भी उल्लेखनीय हैं।

कहानी और उपन्यास की भांति निबन्ध लिखने में भी जैनेन्द्रकुमार जी की

PDF Scanner ACE Scanner

लेखनी अनूठी थी। आपके अनेक निबन्ध भारत की सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन :

गांधी दर्शन को आपने अपने दर्शन-चिन्तन के माध्यम से परखा और जीवन में प्रयोग किया। आपकी भारतीय वेशभूषा आपके सादगीपूर्ण जीवन का प्रतीक थी। आर्थिक संकटों के बीच भी निरन्तर साहित्य एवं समाज सेवा से जुड़े रहे। आपके व्यक्तित्व का निर्माण उलझन-सुलझन, सरलता-जटिलता, अहंता-विनम्रता, आस्तिक-नास्तिक आदि जैसे विविध एवं द्वन्द्वितापूर्ण भावों से हुआ प्रतीत होता है।

सेवायें :

जीवननिर्वाह हेतु अपनायी गई लेखनी ने न केवल देश भर को अपनी अभिव्यक्ति से प्रभावित किया वरन् पूरा विश्व उस लेखनी से चमत्कृत हुआ। यही कारण था कि जैनेन्द्र जी वर्षों एशियाई लेखक संघ के सदस्य रहे। यूनेस्को साहित्य अकादमी जैसी साहित्यिक संस्थाओं से आप सम्बद्ध रहे। चीन के प्रसिद्ध लेखक लहुसून के जन्म दिवस पर (जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया था) आप भारत के प्रतिनिधि के रूप में पीकिंग गये। टाल्सटाय की ५० वीं पुण्यतिथि पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय लेखक समिति में भाग लेने हेतु आप भारत की ओर से बेनिस गये।

सर्वोदयी विचारधारा के समर्थक होने के कारण उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी आपको भारत का 'मैक्जिम गोर्की' मानते थे। प्रेमचन्द जी के 'मानसपुत्रहंस' का सम्पादन आपके ही करकमलों से सम्पन्न हुआ था।

साहित्य के क्षेत्र में आपकी अनर्घ सेवायें आपकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये हुये हैं। जीवन के विविध अंगों को छूने वाला सरल, शान्तिमय, सत्यनिष्ठ व तपोनिष्ठ व्यवहार आपकी लोकप्रियता का एक अन्यतम कारण था। सिद्धान्तवादी जैनेन्द्र जी मुमुक्षु की भांति अनन्तविश्व की दीर्घ शृंखलाओं को खोलते हैं। इसलिये बीसवीं सदी के शीर्षस्थ प्रतिभाशाली साहित्यिक विद्वानों में आपका नाम चन्द्रमा की भांति देदीप्यमान है।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

जैनविद्या के विशेषज्ञ, इतिहासास्त्र, बहुभाषाविद्, अन्वेषक, साहित्यकार एवं धर्म-संस्कृति के लिए समर्पित डॉ. ज्योतिप्रसाद के नाम से भारतभर में कौन परिचित नहीं है ? अपितु आपकी ख्याति विश्व के अध्येताओं में गणनीय है। आपका जन्म सन् १९१२ में मेरठ शहर में श्री पारसदास जैन एवं माता श्रीमती गायत्रीदेवी के सुपुत्र के रूप में हुआ था। जन्मत: विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। आपके अनुज श्री अजितप्रसाद जी भी धार्मिक एवं साहित्यसेवा के क्षेत्र के सुप्रसिद्ध नक्षत्र हैं।

शिक्षा :

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय दिगम्बर जैन पाठशाला एवं मुरारीलाल पाण्डेय छात्रशाला में हुई। सन् १९२८ में हाई स्कूल मेरठ से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३३ में साहित्य विशारद, सन् १९३५ में एल.एल.बी., सन् १९३६ में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। क्रमश: इतिहास, राजनीतिशास्त्र और अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। शोधप्रबन्ध प्रस्तुतकर पी-एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की। आप ८-९ देशी-विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे।

वैवाहिक जीवन :

सन १९२९ में आप कुमारी अनन्तमाला का पाणिग्रहण कर परिणयसूत्र में बंधे और वैवाहिक जीवन का आरम्भ किया। आपके दो सुपुत्र डॉ. शशिकान्त जैन एवं डॉ. रमाकान्त जैन, जो कि सुयोग्य विद्वान् एवं समाजसेवी हैं, हुए।

कार्यक्षेत्र :

अध्ययनकाल से ही आप राष्ट्रसेवा के कार्य से जुड़ गये थे। सन् १९२९ में कांग्रेस सेवादल में सामिल हो असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। आपने सक्रिय राजनीति से दूर रहकर सामाजिक पुनर्निर्माण पर विशेष रूप से ध्यान दिया।

अध्ययनोपरान्त मेरठ शहर में वकालात प्रारम्भ की। शिमला, हापुड तथा मेरठ शहर में अध्यापन कार्य भी किया। अन्य अनेक व्यापारिक कार्यों के साथ शोध, लेखन, प्रवचन तथा सांस्कृतिक व सामाजिक सेवा के कार्यों में भी अपनी उपस्थिति सदैव बनाये रखी।

PDF Scanner ACE Scanner

साहित्यसेवा :

आपके द्वारा रचित धर्म और इतिहास विषयक प्रमुख कृतियों में १. जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, २. हस्तिनापुर, ३. प्रकाशित जैन साहित्य, ४. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, ५. दी जैन सोर्सेज आफ दी हिस्ट्री आफ एन्शेन्ट इण्डिया, ६. रूहेलखण्ड कुमायूं जैन डायरेक्टरी, ७. तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग, ८. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष एवं महिलाएं, ९. रिलीजन एण्ड कल्चर आफदी जैन्स, १०. भगवान् महावीर स्मृति ग्रन्थ, ११. उत्तरप्रदेश और जैनधर्म।

इनके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश के इतिहास से सम्बन्धित लगभग २० पुस्तकें लिखकर उत्तरप्रदेश शासन में महनीय योगदान किया। जैन सिद्धान्त भास्कर व एन्टीक्वेरी (सन् १९५२ से), वायस आफ अहिंसा (सन् १९५३ से) एवं जैनसन्देश शोधांक (सन् १९५८ से) जैसी प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं के सम्पादक रह इनको गौरव प्रदान करने का सुअवसर दिया।

लगभग एक हजार पुस्तकों की समीक्षाएं, अन्य विद्वानों द्वारा लिखित अनेक पुस्तकों की प्रस्तावनाएं, प्राक्कथन व हिन्दी और अंग्रेजी में विविधविषयक लेख लिखे। अनेक विद्यार्थियों ने आपके निर्देशन में शोधकार्य कर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

सामाजिकसेवा :

डॉ. सा. राष्ट्रीयस्तर की अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर समाज की सेवा में सतत् तत्पर रहे। आप अखिल जैन विश्व मिशन के प्रधान संचालक, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् केकार्यकारिणी सदस्य, उत्तरप्रदेश शासकीय महानगर संभागीय समिति के कार्याध्यक्ष तथा स्थानीय समिति के अध्यक्ष, जैन मिलन लखनऊ के संरक्षक, अनन्तज्योति विद्यापीठ के अध्यक्ष, ज्ञानदीप प्रकाशन के निर्देशक इत्यादि स्थानीय, प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय संस्थाओं से भी आपकी अभिन्नता रही।

उपाधियां/सम्मान :

अनुपम सेवाकार्यों के लिये लखनऊ, भोपाल, कोटा, मेरठ आदि अनेक स्थानों पर आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। 'विद्यावारिधि', 'इतिहासरत्न' व अन्य प्रशस्तियों से आपको विभूषित किया गया। सन् १९७२ में राजकीय सेवा से निवृत्त होने पर आप धर्म व समाज के कार्यों के लिए पूरी तौर से समर्पित हो गये।

PDF Scanner ACE Scanner

पं. झम्मनलाल

समाज या देश उस व्यक्ति के नेतृत्व को मान्य करता है, जिसने अपनी सामर्थ्य से उन मंजिलों को प्राप्त किया, जिसके सोपानों को उन्होंने स्वयं निर्मित किया। जैन समाज के न्याय, व्याकरण, ज्योतिष और प्रतिष्ठाशास्त्र के अद्वितीय पण्डित श्री झम्मनलाल जी का नाम एवं स्थान इस रूप में अग्रणी है।

लम्बकंचुकान्वय (लमेचू) जाति में जन्में पं. झम्मनलाल जी बचपन से कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न, श्रद्धालु, सदाचारी और निर्भीक थे।

सेवाक्षेत्र :

आपने अपनी जाति का इतिहास सप्रमाण रूप से लिखकर प्रकाशित कराया। ओजस्वी वक्ता व लेखक के रूप में आपने जहां साहित्य की श्रीवृद्धि की, वहीं प्रतिष्ठाचार्य के रूप में अनेक प्रतिष्ठायें सम्पन्न करायीं।

तत्कालीन परिस्थितियों में बहुधा प्रचलित शास्त्रार्थों में आपने अपने तर्कपूर्ण व्याख्यानों से प्रतिपक्षियों को परास्त किया और कलकत्ता में स्याद्वाद प्रचारिणी सभा की स्थापना की, जिससे कि अनेक समीचीन युक्तियों से सहित लघु पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया गया और समाज को अपेक्षित मार्गदर्शन प्रस्तुत किया गया।

शोक की घड़ी :

निःस्वार्थ सेवी एवं स्पष्ट प्रवक्ता के रूप में ख्यात पं. जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही प्रेरणादायी एवं समाज को दिशाबोध कराने वाला था। आपके निधन से समाज की होने वाली क्षति को आजतक पूरा नहीं जा सका।

❑

पं. ठाकुरदास शास्त्री

बुद्धि के साथ अनुभूति और संवेदनाओं के अनूठे सामंजस्य वाले व्यक्तित्व का नाम था पं. ठाकुरदास शास्त्री। शास्त्री जी समाज के उन विद्वानों में से एक हैं जो एक ओर लौकिक शिक्षा में अग्रसर हों और दूसरी ओर धार्मिक शिक्षा में समुन्नत। पंडित जी का जन्म रानी लक्ष्मीबाई की कर्मनगरी झांसी के पास तालबेहट नगर में हुआ था।

शिक्षा एवं कर्मक्षेत्र :

धार्मिक और लौकिक शिक्षा के संगम रूप आपने क्रमश: शास्त्री और बी.ए. की शिक्षा अर्जित की थी।

बुद्धि की प्रगाढता के कारण आप कभी समाज व परिवार पर आश्रित नहीं रहे। आरम्भ से ही शासकीय सेवा में अध्यापक के रूप में कार्य करने लगे। वस्तुस्थिति का अवलोकन करना आपके चातुर्य की निशानी थी। इसलिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आपके कदम सफलता के साथ अग्रसर रहे। वस्तुत: टीकमगढ आपकी कर्मस्थली रही।

आदर्श व्यक्तित्व :

सरस्वती के उपासक शास्त्री जी मानो विद्याव्यसनी ही थे। बहुत बड़ी मात्रा में आपको श्लोक कण्ठस्थ थे। जैनधर्म और दर्शन के मर्मज्ञ होने के साथ ही हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी व गणित पर आपका असाधारण अधिकार था। यही कारण था कि महाराजा वीरसिंहजू देव, पत्रकार बनारसीदास, यशपाल जी आदि आपसे अत्यधिक प्रभावित थे। जब गणेशप्रसाद जी वर्णी के मन में समयसार का एक प्रमाणिक संस्करण निकालने की बात आई तो अनुभवी विद्वानों के बीच आपको प्रमुखता से चुना गया।

साहित्यसेवा :

महाराज वीरसिंहजू देव द्वारा संस्थापित साहित्य परिषद् के आप एक प्रमुख सहयोगी थे। साहित्यकार के रूप में जहां 'श्रीमद्वर्णी गणेशाष्टकम्' के द्वारा आपने पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के प्रति भक्ति प्रकट की, वहीं 'पपौराष्टकम्' के माध्यम से आपकी तीर्थक्षेत्र के प्रति रहने वाली श्रद्धा की अभिव्यक्ति होती है। समयसार के

प्रशासनिक संस्करण को तैयार करने में आपका परिश्रम सर्वश्रेष्ठ रूप में सराह है।

समाजसेवा :

अपनी उत्कृष्ट विद्वत्ता और आदर्श साहित्यिक अभिरुचि के कारण ही दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री वीर विद्यालय, पपौरा की आपने अठारह वर्षों तक मन्त्री के रूप में सेवा की। स्व. राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद जी २१ मार्च सन् १९५३ को आपके ही प्रयासों से पपौरा पधारे थे। आपने धर्म, समाज, तीर्थ, साहित्य एवं देश सेवा में असाधारण रूप से तत्पर रहकर जिस निःस्वार्थ त्यागवृत्ति का परिचय कराया उससे आपकी विद्वत्ता गौरवान्वित हुई।

आध्यात्मिक ज्ञान और तदनुकूल प्रवृत्ति से आपने अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाकर एक आदर्श उपस्थित किया। भयंकर बीमारियों एवं कठोरतम कठिनाईयों में भी आपने संयम की पूर्ण रक्षा करते हुए अन्यों को भी प्रेरणा दी। लोकोपकारी इस अद्वितीय विद्वान् का ९ जून सन् १९६५ को स्वर्गवास हो गया। उनके निधन से समाज की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असंभव ही है।

तात्यासाहेब केशवराव चौपडे

साहित्य के क्षेत्र में ऐसे अनेक साधकों ने जन्म पाया है, जिन्हें समाज ने पहचानने का कभी भी पुरुषार्थ नहीं किया। अपितु विडम्बना तो यह है कि उसका उपयोग भी सम-सामायिक परिस्थितियों में कर पाने का मौका भी वह नहीं उठा पाता। बाद में अवश्य उसके यशोगान में कमी नहीं करता।

ऐसे ही अल्पपरिचित साहित्यसेवी का नाम था तात्यासाहेब। आपका जन्म भिलवडी जिला सांगली में २३ जून सन् १८७५ को पिता श्री केशवराव और मां बालाबाई के परिवार में समस्त आनन्द और खुशियों के साथ हुआ था। यह परिवार एक कुशल एवं निपुण कृषक परिवार था। स्वभाव से सरल और धार्मिक होने का प्रभाव बालक के जीवन पर पड़ा। जिसके फलस्वरूप यह बालक बचपन से ही ईश्वर भक्ति में अपने समय का सदुपयोग करने लगा।

विद्यालाभ :

जो स्वभाव से निपुण होते हैं उन्हें विधिवत शिक्षा ग्रहण करने का आग्रह कोई मानी नहीं होता। ऐसे पुरुष तो स्वयं अपना रास्ता तय करते हैं। आपने अपने गांव में ही प्राथमिक शिक्षा अर्जित की। आगे की शिक्षा का कोई उल्लेख हम एकत्रित कर पाने में सक्षम नहीं हो सके।

पारिवारिक दायित्व :

आपका विवाह एक सम्पन्न परिवार की लड़की से हुआ था। जिसके सद्शील सम्पन्न व्यवहार और गृहकार्य चातुर्य ने आपको पारिवारिक दायित्वों से काफी कुछ मुक्त रखा। फिर भी आप खेती व व्यवसाय में पर्याप्त ध्यान देते थे।

साहित्य सेवा :

चूंकि आप कीर्तन करने में अपने समय के अधिकांश भाग का उपयोग करते थे। अत: आपको कीर्तन महाराज के नाम से भी जाना जाता था। आपकी अनेक रचनाएं उस कीर्तन के आधार पर ही निर्मित हुई।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में जैन भजनामृत पद्यावली, पूजा व सद्य:स्थिति, भगवान् ऋषभदेवांचे चरित्र, आर्यमताचे खण्डन, पंढरपुरचा विठोवा, कुलभूषण देशभूषण चरित्र, जगदुद्धारक जैन धर्म, आचार्य शान्तिसागर चरित्र आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें पंढरपुरचा विठोवा ने तो समाज में धूम ही मचा दी थी। जिसमें यह सप्रमाण कहा गया था कि पंढरपुर का वर्तमान ख्यात मन्दिर जैनधर्मावलम्बियों का है।

अप्रकाशित रचनाओं में बुद्ध आणि जैन, जैनधर्माचे प्राचीनत्व, वाग्भट जैन की बौद्ध, अहिंसा आणि जैनरक्षक, चक्रवर्ती भरत, जैनांचा प्राचीन इतिहास, कोल्हापुरची अम्बाबाई, जैनमय जगत्, सम्राट चन्द्रगुप्त व सम्राट अशोक, जैन भारतचा प्राचीन इतिहास, अद्वितीय जैन जगत्, एक हजार वर्षापूर्वी हेच हिन्दू जैन होते और कीर्तनातील निवडकगोष्ठी आदि। इनके लाभ से समाज आज भी वंचित है।

गौरवार्जन :

आपकी ईशभक्ति एवं ज्ञानसम्पदा से प्रभावित हो अनेक स्थानों की समाज ने आपको सम्मानित करने का अवसर पाया। आपको आळंद जिल्हा हैद्राबाद की

समाज ने सन् १९२१ में [illegible]
प्रकाम कुंथलगिरि पर 'जैनधर्मभूषण' की पदवी प्रदान कर समाज ने आपका गौरव [illegible]
किया था। सन् १९१३ में धुले में स्वर्णपदक से सम्मानित होने का अवसर आपको
भिला तथा भिलवडी की समाज ने आपको 'कीर्तन सम्राट' के यशोपट्ट से अलंकृत
करने का मौका पाया था। इसके अलावा भी आपको अनेक सम्मान व पदवी समर्पित
हुए थे, जिनका कि उल्लेख कर पाना संभव नहीं।

और अन्त :

संगीत एवं साहित्यजगत् के इस अद्वितीय साधक ने जीवन पर्यन्त साधना से मेरु-सी उच्चता हासिल कर ९ दिसम्बर सन् १९५० को भिलवडी में ही अन्तिम श्वांस ले आपने वियोग से समाज को शोकाकुल कर दिया। ऐसे साधकों का उल्लेख इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होता है।

❑

पं. तेजपाल काला

कालचक्र अपनी उदासीनता रूप से गतिमान है। इसके आधार पर ही व्यक्ति अपने सुख और दुःखों को आरोपित करता रहता है। इनका विभाजन मात्र समय का न होकर जीवनगत भी हो जाता है। कारण, संयोग के इन क्षणों को ही जीवन कहा जाता है। दुःख में सुख की तलाश व्यक्ति के व्यक्तित्व की अपनी विशेषता है। पं. तेजपाल काला उन व्यक्तियों में से एक हैं, जिनका जीवनप्रवाह सुख व दुःख के तटों से वाहित होता हुआ अध्यात्म के सागर में मिला।

महाराष्ट्र के अमरावती जिले के नांदगांव में आषाढ शुक्ल अष्टमी वि.सं. १९६१ को पितामह श्री मोहनलाल जी एवं पिता श्री मूलचन्द जी की धर्मपत्नी श्रीमती रमकाबाई की कूख से आपका जन्म हुआ। यह मध्यमवर्गीय परिवार आर्थिक अस्थिरता के होते ही नांदगांव छोड़ अमरावती में अपने बड़े भाई श्री चन्द्रभान के आश्रय से स्थापित हो गया था। आपके ताऊजी श्री चन्द्रभान जी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे उच्चकोटि के विद्वान् थे। समयसार के ज्ञाता होने से अध्यात्म में उनकी अत्यधिक रुचि थी।

शिक्षा :

जब आपकी अवस्था ७-८ वर्ष की हुई, तब से २० वर्ष तक आपने अमरावती

विवाहित जीवन :

औरंगाबाद जिले में दानवीर सेठ गुलाबचन्द जी की सुपुत्री जानकीदेवी के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। जानकीदेवी ने यद्यपि सातवीं तक शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु वे गुणवान एवं धार्मिक अधिक थीं।

जीवन निर्वाह हेतु आपने बम्बई में ही कॉटन मार्केट में कपड़े का व्यापार किया। दो वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् प्रगति की संभावना न दिखने के कारण आपने उसका परित्याग कर दिया और घर में ही छोटे भाई के साथ किराना और अनाज का व्यापार आरम्भ किया। माता-पिता के वृद्ध हो जाने से परिवार का सारा दायित्व आप पर ही था। न्यायनीति के साथ व्यापार करने की आपकी दृढ़प्रतिज्ञा ने आपके जीवननिर्वाह में कोई बाधा नहीं आने दी।

साहित्य सेवा :

साहित्य के क्षेत्र में आपका पदार्पण लगभग बीस वर्ष की अवस्था में हुआ। आपने सामाजिक विकास एवं सामयिक समस्याओं के सन्दर्भ में लेख लिखने से अपनी लेखनी में जीवन्तता पैदा की। निबन्ध के अलावा आपने 'सरल जैन विवाह पद्धति और लोकाचार' तथा 'सुगम जैन विवाह संस्कारविधि' नामक दो पुस्तकें लिखी जो प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

समाजसेवा :

आर्थिक संकट से संघर्ष करने के बाद भी आप अपने सेवाधर्म के कार्यों से विचलित नहीं हुए। सन् १९५४ में जैनदर्शन के सहसम्पादक, सन् १९६४ में दिगम्बर

जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के महामन्त्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की प्रबन्धकारिणी के प्रतिनिधि, भारतीय शान्तिवीर दिगम्बर जैन सिद्धान्तकेवली की प्रबन्धकारिणी के सभासद एवं सांदगांव की खण्डेलवाल दिगम्बर जैन पंचायत के अध्यक्ष के रूप में आपकी सेवायें विशेष स्मरणीय हैं। मल्लिसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के २२ वर्ष से अधिक समय तक मन्त्री के रूप में सेवायें करने के साथ चन्द्रसागर दिगम्बर जैन औषधालय के मन्त्री व ट्रस्टी, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र गजपंथा की प्रबन्धकारिणी के प्रतिनिधि बन क्षेत्र की उन्नति व विकास में सहयोग किया।

नैतिकता तथा सदाचार को अपनाकर अपने व्यक्तित्व का परिमार्जन करते हुए आपने वस्तुतः आत्मसुधार की भावना की ओर लक्ष्य रखा। जिसके परिणामस्वरूप आपने अपने अन्त समय में उसी निष्ठा के साथ इस नश्वर देह का साधुवत् विसर्जन कर महाप्रयाण किया।

दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे

व्यक्तित्व :

साहित्य के एकनिष्ठ साधक श्री दत्तात्रय भिमाणी का जन्म अहमदनगर जिला के मिरज गांव में ६ जुलाई १८८० को मां सुन्दराबाई की कूख से हुआ था। आपके परिवार में किराना का व्यवसाय होता था। जैन समाज में आपका परिवार एक प्रतिष्ठित परिवार के रूप में मान्य व गण्य था।

शिक्षा :

प्रारम्भिक पांचवीं तक की शिक्षा आपके ही गांव मिरजगांव में हुई। आपने एक अच्छे विद्यार्थी के रूप में शिक्षा प्राप्त की। किन्तु आपकी व्युत्पन्नमति उत्तर देने में विशेष सक्षम थी। दूसरों को आश्चर्य एवं कौतुक पैदा करने वाली आपकी बुद्धि व आपके भविष्य में तत्त्वज्ञानी होने की सूचना स्वप्न में ही मिल गयी थी। बाद में अहमदनगर में उच्च शिक्षा प्राप्त की। वहां आपने बी. ए. और एम. ए. जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त कर विशेष योग्यता से परीक्षाएं पास कीं।

पारिवारिक जीवन :

पन्द्रह वर्ष की अवस्था होते ही आपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए

उस्मानाबाद निवासिनी शेतवाल समाज की जमनाबाई का हाथ थाम लिया था। उस समय आपकी पत्नि की उम्र मात्र नौ वर्ष की थी।

सामाजिक अवदान :

आप एक सुधारवादी लेखक और क्रान्तिकारी कवि के रूप में पहचाने जाते थे। आपने समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों एवं मिथ्या परम्पराओं के विरोध में मात्र आवाज ही नहीं उठाई, अपितु इन बुराईयों को समाप्त करने के लिए बिगुल भी बजाया। जिसका प्रभाव आपके साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

साहित्यसपर्या :

आपने विद्यार्थी अवस्था में ही काव्य रचना आरम्भ कर दी थी, जो जीवन पर्यन्त निरन्तर विकसित हो आगे चलती रही। आपने जितना अधिक लिखा, उससे भी अधिक सम्पादन कर साहित्य भण्डार की वृद्धि एवं नवीन साहित्यकारों को प्रोत्साहन दिया।

सम्पूर्ण जीवन जिन्होने साहित्यकर्म को होम दिया था ऐसे दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे मराठी समाज में स्पष्ट स्थान न बना पाने वाले व्यक्ति ही कहे जा सकते हैं। किन्तु उनका साहित्यिक स्थान अत्यन्त सुरक्षित एवं अन्यजन दुर्लभ है। ऐसे प्रतिभासम्पन्न लेखकों को समाज एवं परम्परागत विधि-विधानों की न तो अपेक्षा होती है और न परवाह।

साहित्यसुधा :

आपके साहित्यिक अवदान की एक लम्बी सूची विद्यमान है, जिनमें नाटक, उपन्यास, काव्य, खण्डकाव्य, लघुकथाएं आदि सभी प्रकार की रचनायें सामिल हैं। जो निम्न हैं -

अंजनासुन्दरी, खरी आर्यकन्या, कुमुदिनीसुधांशु, शैशवसहचरी, राष्ट्रीय जीवन, नयनतारा, नगरतारका, अजब कारस्तान, प्रबालद्वीप, महात्मा गांधीच्या कारावास, साठ वर्षापूर्वी, ऐक्यातच मौज, मोहिनी, व्यापारीसृष्टि, कुमुदचन्द्र, मयूख, चन्द्रकान्ता, प्रेमाश्रय, विजयी, प्रतिभा, जगाचा बाजार, वनव्यातील फु ल, गौर देवदूत, जटाशंकर, जग हे असे आहे, मनोरमा, तेजस्वी तारका, मृगेन्द्र लीला और चन्द्रिका आदि उपन्यास आपने लिखे हैं।

महावीरस्तवन, प्रभु जन्मोत्सव गीत, दोगा जैनांचा संवाद, साध्वी निली,

कुलभूषण देशभूषण चरित्रसुधा, राजकुमार चरित्रसुधा, जयकुमार सुलोचना
दु:खाश्रुहार, अश्रु कुसुमांजलि, बाईकांचे बोल, पाटील निवडले, वर्णाश्रम
शिखरजी विलाप, महामण्डलेश्वर श्रेणिक चरित्र आदि काव्य रचनाएं हैं।

डाक्टरचा कांदा और पुनर्जन्म, आपके नाटक हैं और केवल तात्याचा
फल, ओबियन नाईट्स मधून चुकून राहिलेली गोष्ट जैसी लघुकथायें हैं। आपकी
स्फुट रचनाओं में सीता की शील परीक्षा, आर्यरत्नकरण्डक, जैनवाङ्मय विलास
जिनगुणालाप, रूपिणी आदि उल्लेखनीय हैं। इसके साथ आपने सुबोध
सहस्रकर, संजीवन, विजयी और मराठा जैसी पत्रिकाओं का संपादन तो किया ही
और अन्य अनेक पत्रिकाओं में लेख भी प्रेषित करते रहे।

गौरवार्जन :

आपको डेक्कन व्हर्नाक्युलर सोसायटी द्वारा 'मनोरमा' पर पुरस्कार प्रदान किया गया था। इसके बाद आपको जो सबसे महत्त्वपूर्ण पुरस्कार मिला वह था, महाराष्ट्र शासन द्वारा दिया गया था मरणोपरान्त। इसके अतिरिक्त सामाजिक स्तर के अनेक सम्मान प्राप्त करने का अवसर भी आपको मिला था। आपकी कविता-कामिनी ने आपकी ख्याति विकसित करने में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

विदाई की बेला :

मां सरस्वती एवं एकान्तसाधना के कर्मठ साधक ने अन्तिम समय तक जिनवाणी तथा जैनेन्द्रोपदेशों के प्रचार-प्रसार हेतु अपने जीवन को होम दिया। सन् १९२९ की वह दु:खद बेला असहनीय हो उठी थी, जब आपने इहलीला को समेट कर यहां से प्रयाण किया। ऐसे साधकों को अपने गर्भ रखने के कारण ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा होती है और समाज गौरव का अनुभव करता है। ❑

बाबू दयाचन्द गोयलीय

भारत अहिंसा और करूणा की जन्मभूमि है, जहां करूणा कभी महावीर बनकर जन्म लेती है, तो कभी राम के रूप में, तो कभी कृष्ण और बुद्ध के रूप में। इस बार करूणा ने अपना भेष बदला और जन्म लिया एक साहित्यकार के रूप में। सृजन की अभिव्यक्ति में वेदना, करूणा निश्चित रूप से विद्यमान होती है।

करुणा से अभिभूत ऐसे ही एक अकिंचन को [illegible] जिला मुजफ्फरनगर के एक [illegible] में मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा संवत् १९४० को हुआ। किसी दुर्दिन [illegible] जानती थी।

शिक्षण :

लौकिक शिक्षा के रूप में आपने देहरादून से १९०३ में [illegible] क्विन्स कॉलेज बनारस से एफ.ए. और महाराजा कालेज जयपुर से बी.ए. की परीक्षायें उत्तीर्ण की थीं।

जैनत्व की ओर :

चूंकि वातावरण या क्षेत्र का मानव जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय के छात्रावास में तथा जयपुर के वर्द्धमान बोर्डिंग हाऊस में रहने के कारण आपके हृदय में जैनधर्म के अध्ययन की रुचि उत्पन्न हो गई।

अर्थोपार्जन :

जीवननिर्वाह हेतु आपने ललितपुर में बतौर सेकिण्ड मास्टर के रूप में कार्य किया। किन्तु योग्य अर्थ पूर्ति न होने के कारण आप लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल में आ गये और आपके अर्थसंकट के दिन दूर हो गये।

समाजसेवा :

विद्यार्थी जीवन में ही देहरादून की सभा-सोसायटियों को देखकर आप में समाज सेवा की भावना जागृत हो गयी और आपने भी स्कूली छात्रों की एक जैनसभा स्थापित की। समाजसेवा की वृद्धिगत होती भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु आपने ललितपुर में वहां की अभिनन्दन जैन पाठशाला के मन्त्री पद को ग्रहण कर उसकी उन्नति की ओर ध्यान दिया। आप ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर की प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य रहे और भारत जैन महामण्डल के जीवदया विभाग के मन्त्री पद की सेवायें तो सदैव स्मरणीय रहेंगी। क्योंकि आपने बहुत से जीवदया उपयोगी ट्रेक्ट लिखे और प्रकाशित किये, जिनकी स्मृति मनोमस्तिष्क से दूर नहीं हो सकती। जोश और उत्साह से भरपूर 'जाति प्रबोधक' मासिक पत्र ने समाज मेंअपूर्व सजगता का संचार किया।

आपने जयपुर में श्री अर्जुनलाल सेठी की जैन शिक्षा प्रचारक [illegible]
करते हुये धर्मज्ञान को वृद्धिंगत किया और कुछ ही दिनों में आप वहां [illegible]
मेम्बर तथा रजिस्ट्रार नियुक्त हुये।

गृहस्थजीवन :

रूढ़ियों, कुरीतियों के विरोधी बाबू जी ने ललितपुर में ही एक [illegible]
लड़की से गृहस्थ जीवन की शुरूआत की। जिससे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति की [illegible]
जीवन को पूर्णता प्रदान की।

साहित्यिकगतिविधियां :

मानवता के प्रति करूणा और उत्साह की बलवती भावना ने अन्त [illegible]
आपके हृदय में एक सृजक को जन्म दिया। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में [illegible]
आपने 'मितव्ययिता' नाम पुस्तक को जन्म दिया। जैनधर्म की तीन छोटी पुस्तकें [illegible]
इसी समय तक प्रसूत हो चुकी थीं। इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य ग्रन्थों की [illegible]
विशाल शृंखला आपकी लेखनी से निर्मित हुई। जिनमें बालबोध जैनधर्म (
भाग), विजयीजीवन, शान्तिमार्ग, आत्मरहस्य, जैसे चाहो वैसे बन जाओ (
मुक्तिमार्ग, तन, मन और स्थिति के प्रेषता मनुष्य, प्रात:काल और सायंकाल के
विचार, सुख की प्राप्ति का मार्ग, सन्तान पालन, अब्रह्मि लिंकन, पिता के उपदेश,
चरित्र गठन, स्त्री चरित्र गठन व मनोबल, भारतीय शासनपद्धति, सदाचारी बालक,
विद्यार्थी जीवन का उपदेश, युवकों को उपदेश, शान्ति वैभव, अच्छी आदत डालने
की शिक्षा आदि।

सम्पूर्ण कृतियां जहां एक ओर साहित्य जगत् को विस्तृत करती हैं तो दूसरी ओर रचनाकार की यश:कीर्ति को अमरत्व प्रदान करती हैं। आपके यश:शरीर से प्राणी युगों-युगों जीवन्त हो सकता है, क्योंकि पंचभूत तत्त्वों से निर्मित यह देह स्थायी नहीं, जो परिणामत: अक्टूबर १९१९ में मात्र ३० वर्ष की अल्प आयु में साहित्याकाश से विलीन हो गयी थी।

पं. दयाचन्द सिद्धान्तशास्त्री

कर्म सिद्धान्त एवं जैनधर्म के विशिष्ट मनीषियों में परिगणित होने वाले एक श्रेष्ठ विचारक थे पं. दयाचन्द सिद्धान्तशास्त्री, जो सदैव अपने अध्यापन कार्य से समाज की सेवा एवं स्वयं का धर्मसाधन करने में तत्पर रहे। जीवन पर्यन्त की गई जिनवाणी की आराधना आपके जीवन से प्रदर्शित होती थी।

जिला के मुख्यालय सागर से करीब २५ किलोमीटर दूर का एक गांव, जो बांदरी के नाम से जाना जाता है , को आपके जन्मस्थल होने का गौरव है। यहां श्रावण कृष्ण चौथ संवत् १९५६ को पिताश्री कुंजीलाल जी के परिवार में जन्म लिया।

शिक्षा :

जन्म ग्राम में ही प्राथमिक शिक्षा ली। आगे की शिक्षा का कोई साधन नहीं होने से आपने अपने पिता को व्यवसाय में सहयोग देने का कार्य आरम्भ किया। किन्तु व्यवसाय के दौरान आप पर सिंघई कुन्दनलाल जी सागर का दृष्टिपात् होने के कारण आपको उन्होंने प्रेरणा एवं मदद, दोनों देकर श्री गणेश वर्णी संस्कृत महाविद्यालय, सागर में भर्ती करा दिया। यहां से आपने छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र एवं उससे आगे के ग्रन्थों का अध्ययन निर्बाध रूप से किया। उच्च अध्ययन हेतु आप भी बनारस रहे, किन्तु यहां जैन विद्यार्थियों के साथ होने वाले भेदभाव के कारण आप दयाचन्द गुप्ता के नाम से अध्ययनरत रहे। इस प्रकार धर्म ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण किया। आपके साथ अध्ययन करने वालें में पं. जीवंधरजी शास्त्री, पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त' और पं. फूलचन्द जी जैसे अध्येता रहे।

दायित्वनिर्वहन एवं सेवा :

अध्ययनोपरान्त सागर में ही सुप्रिटेण्डेण्ट के पद पर कार्य आरम्भ किया। जब जैन गजट में सिवनी के लिये धर्माध्यापक की आवश्यकता निकली, तो पंडित जी ने वहां पत्र व्यवहार किया और ७५ रूपये मासिक पर उन्हें नियुक्ति मिलने पर एक माह में ही आपने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। जिससे कार्यकारिणी में खलबली मच गई। उस समय वर्णी जी ललितपुर में थे, उन्हें समाचार भेजा गया। वर्णी जी सागर आये। वर्णी के आदेश से आपने पुन: सागर में ही अपनी सेवायें प्रदान करने का

संयमसौरभ :

पं. जी मात्र वाक्पटु ही नहीं थे, अपितु आप संयम से अनुराग रखते तथा नाम के अनुरूप दयानिष्ठ चरित्र वाले सिद्धान्त मर्मज्ञ थे। आपकी गणना विद्वानों की श्रेणी होती थी। इसके अलावा आपके आत्मानुशासित कर्त्तव्यपरायण व्यवहार एवं समय की पाबंदी जैसे गुण यश:कीर्तन करने में पूर्ण थे।

आपकी दयालुता या अक्रोध परिणामिता तो इतनी अधिक प्रसिद्ध आश्चर्यकारी थी कि सहसा कोई विश्वास नहीं कर सकता था। आप छात्रों को देते समय जितने वेग से बैत को ऊपर उठाते थे, उतने कड़े रूप से प्रहार आप कर पाते थे, अपितु वह बैत विद्यार्थियों के हस्ततल को मात्र स्पर्श करने वाला होता था। और इसका परिणाम होता कि विद्यार्थी पुन: गल्ती न करने की लगभग प्रतिज्ञा ही ले लेते।

साहित्यसेवा :

यद्यपि आपने जीवनपर्यन्त आचार्यप्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय करना ही अपना लक्ष्य बना रखा था। आप कहते थे कि वर्तमान में ही जिनवाणी काफी है, उसी का मनन, चिन्तन एवं धारण ही उपादेय है। किन्तु समय के साथ आपने एक पुस्तक 'षट्खण्डागम रहस्य' का प्रणयन किया। यह पुस्तक भी षट्खण्डागम के प्रकाशन के समय 'संजद' पद पर होने वाले विवाद के समय लिखी गयी थी। इसके साथ ही इसी सन्दर्भ में आपने कतिपय लेख भी लिखे।

गौरवार्जन :

समाज के आग्रह पर पर्युषण पर्व के दिनों में आप अनेक स्थानों पर प्रवचनके

लिये गये। जहां आपको गौरव के साथ यश अर्जन करने का सौभाग्य मिला। इसके साथ आपकी अन्यतम एक विशेषता थी कि आप संस्था की ओर से जाने पर अपने जाने का बिल न्यूनतम ही देते थे। जिसे देखकर आपके सहयोगी एवं कमेटी के अन्य सदस्य उसे उदाहरण स्वरूप मानते थे।

अन्तिम की आराधना :

पं. जी, अन्तिम समय में समाधि अच्छी हो, इस हेतु सावधान रहते थे। हमेशा उठते-बैठते प्रत्येक कार्य के आरम्भ और समाप्ति में नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते थे। जीवनभर की इसी भावना के अनुरूप आप अन्तिम समय में भी रात्रि को सामायिक कर शयन करने के लिए गये। सुबह साढे चार बजे अलार्म बजने पर जब न उठे तो आपके छोटे पुत्र एवं पत्नि ने आपको उठाया। किन्तु वे आपको देख स्तब्ध रह गये। आपने पूर्ण साम्यभाव के साथ २४ जून १९७४ को इस पार्थिव देह का परित्याग कर इस संसार से महाप्रयाण किया।

❑

पं. दरबारीलाल कोठिया

अगाधज्ञान, पाण्डित्य के साथ आत्मसाधना और समाधिमरण द्वारा महायात्रा करने वाले विरले व्यक्तियों में डॉ. दरबारीलाल कोठिया की गणना है। आपकी जन्मभूमि थी भगवान् पार्श्वनाथ की समवसरण स्थली सिद्धक्षेत्र नैनागिरि जी। प्रतिष्ठाचार्य पितामह पण्डित मकुन्दीलाल जैन के द्वितीय पुत्र श्री हजारीलाल कोठिया की धर्मपत्नि श्रीमती चिंरोजाबाई की कुक्षि से आषाढ कृष्णा द्वितीया वि.सं. १९६८, ११ जून १९११ को द्वितीय पुत्र के रूप में आपका जन्म हुआ था। आपकी एक अनुजा भी थी। मात्र ६ वर्ष की अवस्था में ही पितृच्छाया से विहीन हो माता ने कठिनाई से बच्चों का पालन-पोषण किया।

विद्याध्ययन :

आपने सौंरई के विद्यालय में अपने दादा जी के पास रहकर कक्षा ४ तक की शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर श्री महावीर दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सादूमल में प्रवेशिका, विशारद प्रथम खण्ड तक धार्मिक तथा संस्कृत शिक्षा ग्रहण की। अनन्तर स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस से सिद्धान्तशास्त्री, शासकीय संस्कृत कालेज बनारस

से न्यायाचार्य तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से शास्त्राचार्य, एम.ए. तथा पी.
डी. की उपाधि प्राप्त की।

गृहस्थाश्रम :

छिन्दवाडा निवासी श्री खुशालचन्द पटोरिया की सुपुत्री चमेलीदेवी के
पाणिग्रहण कर कोठिया जी ने सन् १९३६ से गृहस्थ जीवन आरम्भ किया।

अध्यापनकार्य :

सन् १९३१ में सर्वप्रथम भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ अम्बाला के
तत्त्वोपदेशक के रूप में कार्य किया। फिर पं. कैलाशचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री की
प्रेरणा से बनारस आकर पुनः अध्ययन किया। सन् १९३७-४० तक वीरविद्यालय
पपौरा में धर्माध्यापक के पद पर रहे। सन् १९४०-४२ तक ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम
में प्राचार्य पद को सुशोभित किया। सन् १९४२-५० तक पं. श्री जुगलकिशोर
मुख्तार के साथ रहकर वीरसेवामन्दिर में सेवायें प्रदान की। कोठिया जी की ही
से संस्थापित समन्तभद्र संस्कृत महाविद्यालय, दिल्ली में सन् १९५० से १९५७
सात वर्ष वहां पर प्राचार्य के दायित्व को निर्वाह करते हुये संस्था का विकास किया।
अनन्तर सन् १९५७ से १९६० तक दिगम्बर जैन कालेज बडौत में संस्कृत के प्राध्यापक
रहे। १९६० से १९७४ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग के प्राध्यापक
एवं रीडर पद पर रहकर सेवायें प्रदान की। सन् १९७४ में रीडर के पद से सेवानिवृत्त हो
आत्मचिन्तन में मग्न हो गये।

धर्मपुत्र :

आपकी प्रतिभा का मूल्यांकन कर पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने मुनि श्री
समन्तभद्र महाराज के सानिध्य में कुम्भोज बाहुबली में कोठिया जी को अपने
साहित्यिक कार्य हेतु अपना उत्तराधिकारी बनाया एवं दिल्ली जाकर एक समारोह
आयोजित कर उनको स्वयं का पुत्र (धर्मपुत्र) घोषित किया।

सेवायें :

श्री कोठिया जी अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष,
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी के मन्त्री व अध्यक्ष, स्याद्वाद
महाविद्यालय बनारस के उपाधिष्ठाता, श्री दिगम्बर जैन तीर्थ कमेटी अयोध्या के

उपाध्यक्ष, बिहार प्रादेशिक दिगम्बर तीर्थक्षेत्र कमेटी राजगिरि एवं प्राकृत शोध संस्थान वैशाली से भी आप निरन्तर जुड़े रहे।

साहित्यसृजन :

समय-समय पर जैनधर्म, दर्शन की विभिन्न विधाओं पर अपनी मेधा का उपयोग कर संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी के ग्रन्थों का आलेखन किया। उनके द्वारा रचित संस्कृत कृतियां हैं - जैनदर्शन प्रमाणचिन्तनम्, जैनप्रमाणमीमांसास्वरूपम्, जैनदर्शने करुणायाः स्वरूपम्, श्रुतपंचमी, जम्बूजिनाष्टक, आत्मा अस्ति न वा, द्रव्यसंग्रह टीका, न्यायदीपिकायाः प्रकाशाख्यं टिप्पणम्, न्यायदीपिकाः प्रश्नोत्तरावलिः आदि।

प्राकृत भाषा में आपने 'जिणणियाया विज्जाविगासो' लिखा है, जो अद्यावधि अप्रकाशित है। इसके साथ ही द्रव्यसंग्रह का सम्पादन एवं भाष्य लेखन भी आपने किया है।

हिन्दी में 'जैनतर्कशास्त्र में अनुमान विचार' नामक शोध प्रबन्ध है। जैनतत्त्वमीमांसा आपके मौलिक निबन्धों के संग्रह के रूप में है। जैन दर्शन और न्याय उद्भव और विकास, जैनदर्शन और न्यायशास्त्र परिशीलन, महावीर का सन्देश तथा जैन न्याय की भूमिका आदि।

सम्पादित कृतियों में सन् १९४४ से १९९३ तक अनवरत साहित्य साधना द्वारा कोठिया जी की सम्पादित कृतियां हैं - अध्यात्मकमल मार्तण्ड, न्यायदीपिका, आत्मपरीक्षा, श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र, शासनचतुस्त्रिंशिका, स्याद्वादसिद्धि, प्राकृत पद्यानुक्रम, प्रमाणप्रमेयकलिका, समाधिमरणोत्साह दीपक, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, देवागमस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, अष्टसहस्री एवं जैनपुराण कोष आदि।

आपने अपने जीवन के अनेक वर्षों तक जैनसन्देश, अनेकान्त एवं जैन प्रचारक जैसी पत्रिकाओं और अनेक अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थ एवं शोध पत्रिकाओं का सम्पादन करते हुए उनमें लगभग २०० से अधिक लेखों का प्रणयन भी किया।

उपाधियां/पुरस्कार

जैन समाज के विभिन्न आयोजनों में आपकी प्रखर मेधा का सम्मान किया गया और कई मानद उपाधियां भी दी गई, जिनमें कुछ हैं - न्यायालंकार (वीरनिर्वाणभारती), न्यायरत्नाकर (मूडबिद्री), न्यायवचस्पति (दिगम्बर जैन

(भगवान् महावीर बालसंस्कार केन्द्र टीकमगढ़)।

पुरस्कार : १. प्रमाणपरीक्षा कृति पर उ.प्र. शासन द्वारा एक [illegible] प्रादेशिक सम्मान, २. सन् १९५५ में वीर निर्वाण भारती नई दिल्ली की [illegible] के अवसर पर राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ विद्वान के रूप में २५०० रूपये का पुरस्कार न्यायालंकार उपाधि से अलंकृत, ३. भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली की [illegible] के अवसर पर राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ विद्वान के रूप में ११०००/- रूपये का पुरस्कार वाग्देवता प्रतिमा, शाल, श्रीफल से विभूषित, ४. जैन पुराण कोश के सम्पादन पर जैन समाज गुना द्वारा परम पूज्य १०८ मुनि श्री क्षमासागर जी के सानिध्य एवं के मुख्यमन्त्री श्री दिग्विजयसिंह की अध्यक्षता में ५०००/- रूपये की सम्मान राशि ५. इसी कोश पर दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी श्री महावीरजी द्वारा ११०००/- पुरस्कार से सम्मानित, ६. गणेशप्रसाद वर्णी जन्मजयन्ती के अवसर पर स्थापित महाविद्यालय वाराणसी द्वारा वर्णी पुरस्कार, ७. दिल्ली में आचार्यश्री विद्यानन्द के सानिध्य में कुन्दकुन्द पुरस्कार, ८. गांधी नाथारंग जी दिगम्बर जैन मंगल प्रतिष्ठा सोलापुर द्वारा ५१०००/- रूपये एवं न्यायसिन्धु अलंकरण, ९. श्री गोम्मटेश विद्यापीठ प्रशस्ति एवं अखिल भारतीय पुरस्कार श्रवणबेलगोल संस्थान, १० [illegible] क्लब परिसंघ सतना द्वारा जगदीशराम जैन प्रतिभा सम्मान, ११. भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री के. आर. नारायणन् द्वारा आपकी सेवा को लक्ष्य कर १५ अगस्त १९९७ को श्रेष्ठ संस्कृत विद्वान हेतु २०००/- रूपये से सम्मानित किया और इसे प्रतिवर्ष देने की घोषणा की गई। इनके अतिरिक्त मदनगंज, कानपुर, हटा, खुरई आदि अन्य अनेक स्थानों से भी आप सम्मानित किये गये थे।

सन् १९८२ में आपको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया। आपने अपने जीवन काल में सीमित आय होते हुए भी विभिन्न विद्या संस्थानों, निर्धन छात्रों एवं महिलाओं को सतत् सहायता प्रदान की।

जीवन में संयम का सौरभ :

आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज से सोलापुर में द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर वर्षों पूर्व से संयमित जीवन जिया। और अन्त में श्री कोठिया जी ३२ दिसम्बर १९९९ को बीना से सिद्धक्षेत्र सिद्धोदय नेमावर पहुंचे। जहां आचार्य श्री विद्यासागर जी एवं उनके विशाल संघ के सानिध्य में सल्लेखना का अभ्यास आरम्भ किया। २१

दिसम्बर से अन्न का पूर्ण त्यागकर २ जनवरी २००० को स्वेच्छा से किशमिश, शक्कर, बादाम आदि का त्याग करते हुए ३ जनवरी को प्रातः ८.०० बजे नवमी प्रतिमा के व्रत धारण किये। ३ जनवरी सोमवार पौष कृष्ण द्वादशी वि.सं. २०५६ को अपराह्न ३.५० पर जीवन की अन्तिम सांस लेकर संसार से विलग हो गये। उन्होंने परिणामों की विशुद्धता पूर्वक संयम रूपी शिखर पर समाधिमरण द्वारा कलशारोहण कर जीवन को सार्थक किया।

❑

पं. दामोदरदास जी

पं. श्री दामोदरदास जी असाधारण व्यक्तित्व के धनी, जैन समाज के अनमोल हीरे थे, जिनका मूल्य पारखी-जौहरियों ने आंका था।

गोलालारीय दिगम्बर जैन समाज के भूषण श्री गुचैलाल जी जैन आपके पिता थे, जो कि बुढवार जिला झांसी के निवासी थे। इस परिवार में वि.सं. १९६१ में ज्येष्ठ मास में दामोदरदास जी ने जन्म लिया। आपका गोत्र बिलैया था तथा सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. परमानन्द जी न्यायतीर्थ आपके भ्राता थे।

शिक्षा :

श्री दामोदरदास ने आरम्भिक शिक्षा बुढवार में ही प्राप्त की। आगे विद्यालय न होने के कारण दिगम्बर जैन पाठशाला ललितपुर चले गये। वहां धर्म शिक्षक श्री निद्धामल जी से धर्मशिक्षा प्राप्त की। इनके पिताजी भी उन्हें लौकिक शिक्षा की अपेक्षा धार्मिक शिक्षा अधिक देने के पक्ष में रहे। अतः उन्होंने स्वयं अनेक धार्मिक पाठ अपने पुत्र को कण्ठस्थ करा दिये थे।

अभिरुचि :

जैनधर्म दर्शन के अध्ययन, सम्पादन व जिनेन्द्रभक्ति में पण्डित जी की पण्डित जी की विशेष रुचि थी। वे सत्संगति व धार्मिक-सामाजिक सेवा में सदैव तत्पर रहते। एक बार जैन मित्र के सम्पादक श्री कापडिया जी कानपुर से लौटते समय क्षेत्रपाल जी ललितपुर में ठहरे तो आपने पं. जी से भेंट की। अपने गुरु से आज्ञा लेकर कापडिया जी के साथ चंदेरी भी गये। वहां की भारतप्रसिद्ध चौबीसी के दर्शनकर आह्लादित हुये। दोनों का यह क्षणिक मिलन लाभदायक सिद्ध हुआ।

सम्पादन कार्य :

श्री निद्धामल जी ने श्री वादीभसिंहकृत क्षत्रचूडामणि पर टीका लिखी
इस टीका की पाण्डुलिपि पं. श्री दामोदरदास जी ने तैयार की। यह सूरत से
सन् १९२१ में ग्रीष्मावकाश में कार्य सीखने के लिए श्री कापडिया जी के
गये। वहां गुजराती भाषा सीख ली। जैन मित्र के सहायक सम्पादक के
पांच वर्ष तक अपनी सेवायें प्रदान की।

आपने श्री नाथूराम लमेंचू की रक्षाबन्धन कथा का अनुवाद किया,
कई संस्करण प्रकाशित हुये।

सागर निवासी और सेवाकार्य :

पण्डित श्री दामोदरदास जी ने सन् १९२७ से सागर को अपना निवास
बना लिया, यहां पर पूज्य श्री गणेशप्रसाद वर्णी के सत्सानिध्य में नवजीवन
किया। संस्कृत शिक्षा समिति के मन्त्री और दिगम्बर जैन शान्ति निकुंज के मन्त्री
तथा गणेश संस्कृत महाविद्यालय के सदस्य रहे। दो-दो युगों तक संस्थानों
अवैतनिक सेवा की। आप निश्छल व शुद्ध मनोवृत्ति के थे।

दिगम्बरदास जैन एडवोकेट

पानी के बुलबुले ने जीवन की नश्वरता का सन्देश तो दिया ही, साथ
अविरल प्रवहमानधारा में गतिशील बने रहने की प्रेरणा भी उसकी देन है।

६ जुलाई १९०६ में सहारनपुर जिला के सरसावा ग्राम में जन्म लेने वाले
दिगम्बरदास जी ने अपनी एक मुस्कराहट से पिता श्री हेमचन्द एवं मां श्रीमती झूमीदेवी
को आनन्दित कर दिया था। किन्तु आपके छह वर्ष के होते ही आपके पिता ने अपना
साया आपसे विलग कर लिया। किन्तु पिता के दानवीर, धर्मनिष्ठ और समाजसेवा
जैसे गुणों को आपने विरासत से अधिक विकसित करने में सफलता हासिल की।

ज्ञानार्जन :

पिता के स्वर्गवासी हो जाने से आप शिक्षा ग्रहण करने हेतु अपनी जन्मभूमि
को छोड़कर अपने फूफा के पास पंजाब में अम्बाला के कुडिया ग्राम में आ गये।११

वर्ष में आपने पंजाब यूनिवर्सिटी से मिडिल परीक्षा पास कर प्रथम स्थान प्राप्त किया। १९२५ में बी.डी. हाईस्कूल अम्बाला से हाईस्कूल की परीक्षा पास की। हमेशा शीर्षस्थान पर बने रहना आपकी कुशाग्र एवं प्रखर बुद्धि का प्रतिफल था। यही कारण था कि सन् १९२६ में हाईकोर्ट इलाहाबाद से मुख्तारी की परीक्षा में १० हजार सहपाठियों के साथ बैठे, जिसमें मात्र एक हजार पास हुए और उनमें भी आपका प्रथम स्थान था। १९५८ में हाईकोर्ट बार कौन्सिल से एडवोकेट की परीक्षा पास कर आपने वकील के पद को सुशोभित किया।

गृहस्थजीवन :

मैट्रिक परीक्षा के साथ ही आपने एक नये जीवन में प्रवेश किया। श्री रघुवीरसिंह जैन की सुपुत्री अंगूरीमाला जी के साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नी अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी, किन्तु नैसर्गिक एवं दैवीय प्रतिभा के कारण उन्होने सफल लेखिका व वक्ता के रूप में अपका सहयोग किया व योग्य जीवनसंगिनी का धर्म निभाया।

अद्वितीय साहित्यकार :

सूर्य की तरह प्रकाशवान् प्रतिभा के धनी श्री दिगम्बरदास जी ने अपनी लेखनी से जगत् को आलोकित करने का कार्य किया। हिस्ट्रीकल्स ऑफ ऋषभदेव, लोकधर्म के अनमोलरत्न पं. टोडरमल, सम्मेदशिखर आदि की यात्रा, कालेज और स्कूलों में धर्मशिक्षा, श्रद्धा के फूल, श्रीकृष्ण की गीता और जैनधर्म, भगवान महावीर, वीर का निर्वाण, अजैन दृष्टि से जैनधर्म, हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा आवे, भगवान महावीर और दीपावली, दिव्यध्वनि, महात्मा गांधी और अहिंसा, अयोध्या जी, पैसे के चमत्कार, ॐ के चमत्कार, णमोकार के चमत्कार, संभवनाथ और सिन्धुघाटी, रघुवंश और जैनधर्म, ऐतिहासिक महापुरुष शान्तिनाथ, देवदर्शन, शान्तिनाथ तीर्थंकर की ऐतिहासिकता और दूसरा चक्रवर्ती सम्राट सगर आदि आपकी प्रकाशित कृतियां हैं।

आपके द्वारा उद्भूत कुछ ऐसी भी किरणें हैं जिनके प्रकाश से आज भी समाज व पाठक वंचित हैं। जिनमें अशोक जैनधर्मी था, तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता, पुरातत्त्व का महत्त्व, विदेशों में जैनधर्म, विदेशों में जैनमूर्तियां, उत्तरप्रदेश में जैनधर्म, मैसूर प्रान्त में जैनधर्म, बिहारप्रान्त में जैनधर्म, बंगालप्रान्त में जैनधर्म, राजस्थानप्रान्त

में जैनधर्म, मध्यप्रदेश में जैनधर्म, पंजाब में जैनधर्म, गुजरात में जैनधर्म,
जैनधर्म, देहली में जैनधर्म, भरत और भारतवर्ष, अकबर और जैनधर्म,
जैनधर्म आदि प्रमुख कृतियां हैं, जो प्रकाशन की अपेक्षा रखती हैं।

सेवा :

परोपकार की भावना को साकार करते हुये आपने अनेक कार्यों को
दिया। असहयोग आन्दोलन में सहारनपुर निवासी एवं कांग्रेसी कार्यकर्ता
पहले गिरफ्तार हुए तब आपने इन्हें मुक्त कराने की कोशिश की। किन्तु जब
ने उनकी आवाज को कमेटी तक पहुंचने ही न दिया, तो आपने वाइस चेयरमैन
त्यागपत्र दे दिया और स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि जब यहां मुझे जनता की
अफसरों तक पहुंचाने का भी अवसर नहीं मिल सकता तो इस कुर्सी से चिपके
का क्या अधिकार। इस प्रकार स्पष्टवक्ता और साहस आपके व्यक्तित्व के

द्वितीय विश्वयुद्ध में आंग्लदेश पर जर्मनी ने जब बमपात किया, तब आ
एक दोस्त रूडामल शामियाने वालों के दामाद वहां रहते थे, वर्षों से
मिलने से घर के सभी लोग चिन्तित थे। आपने वाइसराय को पत्र लिखा, वाइस
ने बजीर हिन्द लन्दन को लिखा और हुआ यह कि प्रत्युत्तर के रूप में लन्दन
हाईकमिश्नर का पत्र आया कि हमने श्रीपालचन्द को अपने दफ्तर में बुलाया था,
बिलकुल राजीखुशी हैं। परोपकार के लिये आपके द्वारा किया गया श्रम श्लाघ्य
रहा।

आपने सहारनपुर जैसे बड़े शहर में जैन पुस्तकालय के अभाव को महस
करते हुए कुछ सज्जनों के सहयोग से १० मई १९३१ को पब्लिक जैन लाईब्रेरी
स्थापना की, जो आज भी उन्नति के शिखर पर है।

वीर निर्वाण दिवस मनाने के लिए आपने प्रेमवर्द्धिनी सभा की स्थापना की
श्री पार्श्वनाथ रेल्वे स्टेशन पर जो ऊँचा प्लेटफार्म दिखाई देता है, वह आपकी ही दे
है।

प्रशंसा पत्र :

लोगों ने आपकी प्रतिभा को पहचाना और उसका सम्मान किया, यही कारण
है कि प्रशंसा पत्रों से आपकी गोद हमेशा भरी रही। आपकी योग्यता का ज्वलंत
उदाहरण है कि आपने सिर्फ छह माह में ही अध्ययन कर मुख्तारकारी की परीक्षा

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और थोड़े दिनों में ही कलेक्ट्रेट बार सहारनपुर के प्रसिद्ध मेम्बरों में गिने जाने लगे।

बी.डी. हाईस्कूल के संस्थापक रायबहादुर लाला बनारसीदास कहा करते थे कि 'इनके गाने देशभक्ति और समाजसेवा से भरे हुए हैं, पंजाब के शिक्षामन्त्री तथा अनेक महान् व्यक्तियों के साथ इनका बचपन बीता है तथा इनकी भाषा प्रभावशाली है।'

हमदर्द-ए-मुल्क नाटक के लिये आपको सैकड़ों सम्मान पत्र प्राप्त हुये। यहां तक कि स्काउट सर रॉबर्ट बेडेन पावेल ने लन्दन हेड क्वार्टर से लिखा 'इस ड्रामे में आपकी शुभभावनाएं और देशसेवा के उत्तम विचार झलकते हैं। आपका यह उत्साह बहुत प्रशंसा के योग्य है।'

हम कदम पर अभिनन्दन और सम्मान पत्रों द्वारा विभूषित होते हुये आप जन साधारण के रोम-रोम को अनुप्राणित करते आये हैं। आपकी प्रतिभा और प्रज्ञा अपनी कोटि को अकेली ही थी।

आपकी साहित्य सेवा ने जैनधर्म के उज्ज्वल एवं पारदर्शी पक्ष को प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जो सदैव स्मरणीय रहेगा।

❑

पं. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री

बरसात की अनेक बूंदों के साथ मन में अनेक प्रश्न एक साथ बौछार करने लगे। क्या मेघ की भांति हमारा मन भी किसी के दुःखभार से द्रवित हो हमारे हृदय की शुष्कभूमि को नम करता है ? क्या उसकी पीडा रूप आर्द्रता से हमारी सुख की हवाओं में परिवर्तन आता है ? और यदि नहीं तब हमारा जीवन उन रेगिस्तानी हवाओं के समान ही शुष्क और उष्णता से भरा क्यों होता है ? जिनमें मात्र स्वार्थता विद्यमान होती है।

मानवीयता का यह पतन यथार्थ में मानव का पतन है। मानवीयता के उत्थान हेतु अपने जीवन को समर्पित, अर्पित करने वाले मानव आज भी आदर्श रूप याद किये जाते हैं।

पं. देवकीनन्दन जी जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन मानवीयता के लिये अर्पण

किया, का जन्म रानी लक्ष्मीबाई की नगरी झांसी जिला के अन्तर्गत बरू सागर
सन् १८५३ को हुआ था। आपके पिता नायक हजारीलाल जी विचारशील
सात गांवों की समाज के पंचों में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। परम्परागत
चले आये नमक के व्यापार से यह परिवार जुड़ा हुआ था, किन्तु बाद में इसे
कपड़े के रूप में परिवर्तन मिला। आपकी मां श्रीमती तुलसीबाई सद्गृहस्थ
धर्मपरायण महिला थी। अन्य परिवारजनों में तीन अनुज क्रमशः धनीराम, परमान
एवं गोविन्ददास के साथ एक बहिन राजाबेटी थी। भरे-पूरे परिवार में पोषित
देवकीनन्दन जी ने अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से सबका ध्यान आकर्षित किया
जलक्रीड़ा में विशेष रुचि होने से आप कुशल तैराक के रूप में भी पहचाने जाते थे।

शिक्षा :

स्वभाव से चंचल किन्तु साहसी और दृढसंकल्पी देवकीनन्दन जी को पूज्य
गणेशप्रसाद जी वर्णी की पैनी दृष्टि ने पहचाना और बनारस ले जाने का निर्णय लिया
। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा आपने अपने गांव में ही पूर्ण की, किन्तु उच्च शिक्षा हेतु
बनारस तथा मुरैना को चुना। संस्कृतव्याकरण, न्याय तथा साहित्य के साथ मध्यमा
तक का अध्ययन आपने यहां किया।

कार्यक्षेत्र :

प्रारम्भ में आपने मुरैना विद्यालय में अध्यापन का कार्य किया। बाद में कारंजा
गुरुकुल में लगभग २२-२३ वर्षों तक निरन्तर सेवायें प्रदान कर अपने यश के साथ
संस्था के यश को प्रसारित करने में सफलता प्राप्त की। आपकी पाठन शैली अत्यन्त
आकर्षक एवं सुग्राह्य होती थी। शिक्षण के दौरान दोहे, श्लोक, सुभाषित या कथाओं
के हीरों के साथ अनुभव के मोती बिखरते हुए कठिन से कठिन विषय को सरल एवं
सुबोध बना देने में आपकी सानी कोई नहीं रखता था।

गृहस्थजीवन :

आपका विवाह सुमित्राबाई नामक कन्या से हुआ, किन्तु द्वितीय संतान के
जन्म के समय ही उनका स्वर्गवास हो गया। अयोध्याबाई से दूसरा विवाह किया,
किन्तु उसे भी आपने सुमित्राबाई के नाम से ही सम्बोधन दिया।

साहित्यसेवा :

साहित्यमर्मज्ञ पं. जी ने सागारधर्मामृत और पंचाध्यायी नामक ग्रन्थों की

हिन्दी टीका की। षट्खण्डागम जैसे गूढ तत्त्वविषयक ग्रन्थों के संशोधन और सम्पादन में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके साथ ही आपने अनेक वर्षों तक 'जैनसिद्धान्त' नामक मासिक पत्र का कुशलता पूर्ण सम्पादन भी किया।

सामाजिक अवदान :

कारंजा गुरुकुल की उन्नति या विकास गाथा आपकी नि:स्पृह सेवी का ही प्रतिफल है। खुरई में गुरुकुल की स्थापना आपके ही परामर्श पर की गई थी, जो आज भी समाज की श्रेष्ठ संस्था के रूप में विकसित है। बनारस के वर्णी संस्थान की स्थापना में आपका सहयोग तो था ही, साथ ही आपके ही संरक्षकत्व में परवार जैन सभा की स्थापना हो सकी। अम्बादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के आप उपमन्त्री रहे। इस प्रकार अनेक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर प्रतिष्ठित हो सामाजिक कार्यों में आपका सदा योगदान रहा। दानशीलता के कारण आप मुक्तहस्त से औषधदान करने में भी रत रहते थे।

सम्मान :

अपनी तर्कपूर्ण एवं विचारयुक्त प्रवचनशैली के कारण आप सिद्धान्त को भी जिस ललितभाषा व विनोदपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करते थे, वह जनसामान्य को भी आनन्दित करने वाली होती थी। आपके इन्हीं गुणों के कारण आपको 'व्याख्यान वाचस्पति' के विरुद से विभूषित किया गया था।

अन्तिमयात्रा :

बच्चों के उज्ज्वल भविष्य एवं सेठ हुकमचन्द जी के आग्रह पर आपने जीवन के अन्तिम समय में इन्दौर को अपना आवास स्थान बनाया। यही १२ मई १९५० को आपने इस जीवन सम्बन्धी अन्तिम पडाव से प्रयाण किया। आपकी विद्वत्ता और नि:स्पृह सेवावृत्ति हमेशा मार्गदर्शन कराती रहेगी।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

श्री दौर्बली जिनदास शास्त्री

बीसवीं सदी के आरम्भ में अपनी अद्वितीय प्रतिभा एवं अगाध विद्वत्ता के कारण श्री दौर्बली जिनदास शास्त्री की अलग-थलग पहिचान थी। वे दक्षिण भारत के विख्यात विद्वान् श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री जी के पुत्र थे। इनकी एक सहोदरी का विवाह यहीं के प्रसिद्ध विद्वान् श्री इन्द्रकुमार जी शास्त्री से हुआ था। श्री इन्द्रकुमार शास्त्री जी ने अपनी पुत्री इन्हें दे कर अपना जामाता बना लिया था। आपके एक पुत्र एवं चार पुत्रियां थीं। उनमें ज्येष्ठ पुत्री का परिणय ममेरे भाई श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री द्वितीय के साथ हुआ था।

विद्याध्ययन :

आपने अपने विद्वान् पिता से ही प्राय: जैनागम का गंभीर अध्ययन किया था। संस्कृत, प्राकृत, अर्धमागधी, तमिल और कन्नड के आप मर्मज्ञ विद्वान् थे। अध्ययन-अध्यापन, साहित्यसृजन व प्रवचन/व्याख्यान में आपकी विशेष अभिरुचि थी और इसी रुचि के अनुरूप आपने जीवन पर्यन्त कार्य भी किया।

सेवायें :

श्रवणबेलगोल में स्थापित गीर्वाक् वासोज्जीविनी महापाठशाला में श्री शास्त्री जी प्राचार्य के पद पर रहे और अध्यापन के द्वारा विद्यार्थियों को धीमन्त बनाया। गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, सर्वार्थसिद्धि जैसे अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों को अपने शिष्यसमुदाय के लिये पढ़ाया।

साहित्याभिरुचि :

श्री नेमिचन्द्राचार्य द्वारा विरचित प्रतिष्ठातिलक पर आपने एक महाव्याख्या लिखी। इस व्याख्या ने ही आपको कन्नड जगत् में विख्यात कर दिया। किन्तु खेद है कि वह व्याख्या अभी तक अप्रकाशित ही है। इसके अतिरिक्त कुछ दार्शनिक एवं जिनभक्ति से सम्बन्धित अन्य रचनाएं भी आपने की हैं।

प्रभावना एवं सम्मान :

शास्त्री जी का पंचकल्याणक तथा प्रवचन एवं साहित्य सर्जन द्वारा धर्मप्रभावना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पंचकल्याणक महोत्सव में तो आपकी प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। इनके प्रवचन जन-जन के लिये प्रिय थे।

मैसूर के श्रीमान् कृष्णराज ओडेयार ने इनकी विद्वत्ता एवं पाण्डित्य से प्रभावित हो इन्हें 'आस्थान' पदवी प्रदान कर सम्मानित किया और स्वयं को धन्य माना। आपकी बुद्धिमत्ता एवं कीर्ति श्रवणबेलगोल जैसे ही चतुर्दिक व्याप्त थी।

❑

के.एस. धरणेन्द्रय्या

आप मैसूर प्रान्त के साहित्य संस्कृति अभिरुदीप मण्डल के निर्देशक रहे और बहुमूल्य सेवायें प्रदान की। बैंगलोर में कलाक्षेत्र की उन्नति के लिये उन्होंने यथाशक्ति प्रयास किया।

श्री धरणेन्द्रय्या कन्नडभाषा के अधिकारी विद्वान् थे। कन्नड विश्वकोश की नींव डालने का श्रेय उनको ही प्राप्त होता है। वे कवि, साहित्यकार और कहानीकार भी थे। 'भक्तिकुसुमांजलि' उनके द्वारा रचित भक्ति गीतों का संग्रह है, जो उनके कवित्व होने का द्योतक है। 'वनमाले' धार्मिक कहानी कृति है। कर्नाटक के प्रसिद्ध क्षेत्र हुम्बज के इतिहास को दर्शाने वाली धार्मिक कादम्बरी 'पुण्यपुरुष' उनकी बहुचर्चित कृति है। 'जैनधर्म' पुस्तक तो विश्व के लिये प्रदत्त उनका अनुपम उपहार ही है। इनके अतिरिक्त अनेक स्मरण/अभिनन्दन ग्रन्थों में आपके अनेक लेख प्रकाशित हैं। इनकी एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वे स्वयं अधिक साहित्यसृजन में रत न रह नये साहित्यकारों व साहित्य को प्रोत्साहित व गौरवं प्रदान कर सम्मानित करते थे।

कविहृदय श्री धरणेन्द्रय्या जी पम्प, जन्न, नागचन्द, रत्नाकर आदि महान् कवियों के काव्यों से लोगों को मन्त्रमुग्ध कर देते थे।

कवि रविन्द्र जी के सम्मान उत्सव, वसव समिति व पुरन्दर कनकदास जी के चार सौ वां शतमान उत्सव के लिए आपने अथक परिश्रम कर कार्यक्रम को सफ लतापूर्वक सम्पन्न कराया। साथ ही प्रसिद्ध कवि रन्न जी की जन्मस्थली मुधोल में उनका स्मारक भी आपके ही प्रयास से निर्मित हुआ।

इस प्रकार धर्म, साहित्य और संस्कृति के लिये प्रदत्त आपकी सेवायें सदैव चिरस्थायी हैं।

❑

सवाई सिंघई धन्यकुमार जैन,

समाजसेवी, धर्मप्रभावक, जैनसाहित्य के प्रचारक-प्रसारक एवं विद्वान के रूप में स. सिंघई धन्यकुमार जी का नाम लिया जाता है। आपका जन्म ऐसे परिवार में हुआ, जिनके आठ पीढ़ियों तक के पूर्वजों ने दमोह, तेवरी, पुष्पावती, कटनी आदि अनेक स्थानों पर जीर्णशीर्ण जिनालयों का नवनिर्माण, विशालकाय जिनमन्दिरों का निर्माण, जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सवों को सम्पन्न कराकर धर्मप्रभावना में अमूल्य योगदान किया। आपके द्वारा स्थापित शिक्षायतनों, ट्रस्टों, औषधालयों व सहायता फण्ड आदि आज भी निर्धनों की हरसंभव मदद कर रहे हैं। कटनी के ऐसे परिवार में स.सिं. दरबारीलाल जी के यहां एकमात्र पुत्र के रूप में आपका जन्म हुआ। श्री कन्हैयालाल, गिरधारीलाल व रतनचन्द जी इनके बड़े पिता एवं श्री परमानन्द जी चाचा थे।

शिक्षा :

जैन शिक्षा संस्था कटनी में धन्यकुमार जी की आरम्भिक शिक्षा संपन्न हुई। अनन्तर संस्कृत में व्याकरण प्रथमा, जैनन्याय प्रथमा एवं धर्मविशारद की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। साथ ही स्वाध्यायी विद्यार्थी के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन कर उसमें दक्षता प्राप्त कर अच्छे अंकों से उसे पास किया।

पारिवारिक दायित्व :

अपने पिता और उनके समस्त भाइयों के दिवंगत हो जाने पर सम्पूर्ण कुटुम्ब का कार्यभार आपके ऊपर आ गया, जिसका उन्होंने बहुत ही साहस से निर्वाह किया। आपने कुलपरम्परा अनुरूप जिनेन्द्र दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, धर्मात्माओं की सेवा, दान आदि कार्यों में आजीवन अपने आपको समर्पित रखा।

साहित्यिक सेवा :

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा के मासिक पत्र 'परवारबन्धु' का सन् १९३९ से १९४४ तक कुशलतापूर्वक सम्पादन किया। सन् १९३९ में परवारबन्धु का राष्ट्रीय विशेषांक प्रकाशित किया, जिसकी सराहना सुभाषचन्द्र बोस एवं डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी ने भी की थी।

परवार जैन समाज का इतिहास लिखवाने में प्रेरक एवं बहुमूल्य योगदान देने

PDF Scanner ACE Scanner

वालों में आप अन्यतम हैं। विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य का हिन्दी भाषा में प्रमाणिक अनुवाद किया। आपकी अनेक रचनाएं विशाल भारत, माधुरी, सुधा आदि सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी।

धार्मिक/सामाजिक सेवा :

आप स्थानीय एवं भारतवर्ष की अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। जैन शिक्षा संस्था कटनी के लगभग २५ वर्ष तक अध्यक्ष पद पर सुशोभित रहे। कटनी की नगरपालिका के आठ वर्ष तक सदस्य और चार वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे। आपको अपने जीवन काल में अनेक कन्या विद्यालय, हाईस्कूल, धर्मार्थ औषधालयों एवं धर्मशाला का निर्माण कराकर आर्थिक दृष्टि से कमजोर विद्यार्थियों, गरीबों एवं असहायों, विपदाग्रस्त विद्वानों की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने का अवसर मिला।

धर्म और समाज सेवा में समर्पित श्री सिंघई जी ने कटनी में पंडित श्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री से समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय अत्यन्त रुचि के साथ कर उन्हें आत्मसात् भी किया। इसी का सुपरिणाम था कि जीवन के अन्तिम दिनों में ट्रस्टों सम्बन्धी अनेक मुकदमों की उलझनों को दृष्टि से ओझलकर दिया। अपने घर की व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा भी पत्नि और पुत्रों से भी नहीं की। अपितु वज्रदन्त चक्रवर्ती की वैराग्यभावना का पाठ और अन्त में णमोकार मन्त्र का जाप करते हुये ३.फरवरी १९९२ को इस नश्वर शरीर का त्यागकर दिया। आपके निधन से समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

❑

धन्यकुमार 'सुधेश'

धन्यकुमार जैन सुधेश जी का जन्म सतना जिले के नागौद तहसील में ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया संवत् १९८४ तदनुसार १९ मई १९२७ को हुआ था। आपके पिता श्री सवाई सिंघई बाबूलाल जी मध्यमश्रेणी के सद्गृहस्थ थे। जिन्होंने संवत् १९३७ में नागौद और संवत् १९४२ में खजुराहो में गजरथ महोत्सव संपन्न करवाया था, जिसके परिणामस्वरूप ही आपको सवाई सिंघई की उपाधि से विभूषित किया गया था। आपकी मां श्रीमती सिंगेन सोनाबाई जी धार्मिक विचारों की सुसभ्य महिला थीं।

बचपन :

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली उक्ति जब आपके बाल

मुखमण्डल पर प्रतिभासित हुई तो आप माता-पिता के ही नहीं, अपितु सारे नगर के नयनों के तारे बन गये। परिवार में सबसे छोटे होने से सभी का प्यार पाना आपका अधिकार की बात रही।

शिक्षा :

आपकी शिक्षा का श्रीगणेश स्थानीय विद्यालय से ही हुआ। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा नागौद में प्राप्त कर जुलाई १९४२ में आप दरबार कालेज रीवां में प्रविष्ट हुए। किन्तु इसी वर्ष भारतव्यापी स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रभावित हो आपने आंग्ल शिक्षा न लेने का संकल्प ले लिया। तदनन्तर आप श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर में प्रवेश ले पांच वर्षों तक अध्ययनरत रहे। यहां आपने साहित्यरत्न एवं काव्यतीर्थ की उपाधियां प्राप्त कीं। आपका छात्रजीवन अत्यन्त सम्मानित एवं प्रतिष्ठित रहा।

आजीविकोपार्जन :

नौकरी करना आपने कभी भी पसन्द नहीं किया। आपने ज्ञान और विद्वत्ता को भी अपनी आजीविका का साधन नहीं बनाया। आपकी व्यवसायिक अभिरुचि ने वस्त्र के व्यापार की ओर प्रवृत्त किया, जो पैतृक व्यापार था। इसी से आपने जीवनपर्यन्त अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की। सन् १९६५ में भारतीय प्रेस के नाम से मुद्रण का कार्य भी आरम्भ किया किन्तु उसे आपने अपने भतीजे श्री विमलकुमार एवं वीरेन्द्रकुमार को सौंप दिया।

दाम्पत्यजीवन :

फाल्गुन शुक्ल २००६ में श्री सिं. खेमचन्द जैन जबेरा वालों की सुपुत्री ताराबाई से आपका विवाह हुआ। ससुराल में आपकी पत्नी को सुधारानी नाम दिया गया, जो कि मात्र छह कक्षा तक पढ़ी थी, किन्तु स्वभाव की मृदुल, सहनशील, धर्मप्रिय, गृहकार्यों में पूर्ण दक्ष एवं नारीगुणों से समन्वित थीं।

साहित्याभिरुचि :

जब आप सातवीं कक्षा के छात्र थे, तब आपके स्कूल में एक कवि महोदय पधारे। उनकी कविताओं को श्रवण करने से आपके सुषुप्त कविहृदय का जागरण हो गया। और जब हाथ में लेखनी ली तो उसे अन्तिम समय तक नहीं छोड़ा। आपकी प्रथम रचना जैन गजट में प्रकाशित हुई। आपको गद्य और पद्य दोनों में ही समानाधिकार

से लिखने की दक्षता थी। आपने लगभग ४००० पृष्ठों का साहित्य सृजन किया। ५९ पत्र-पत्रिकाओं में आपकी ४५० कविताएं प्रकाशित हुईं। लगभग २८ पुस्तकों की रचना आपने की, जिसमें से १५ के करीब प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ के नाम इस प्रकार है - परमज्योति महावीर (महाकाव्य), करुणा के फूल (कवितासंग्रह), भामाशाह (नाटक), आर्यिका (गीतकाव्य), पुण्यतीर्थ पपौरा (काव्य), शहीद गाथा (उदयकाव्य), विराग (खण्डकाव्य), वीरायण, जैन तीर्थ खजुराहो, मुण्डमाल, आचार्य शान्तिसागर पूजन, मनुज प्रकृति से शाकाहारी, खजुराहो की शान्तिनाथ पूजन, मंगलगान आदि।

❑

जी.पी. धन्यकुमार शास्त्री

श्रवणबेलगोला की पावनधरा के सचेतन अनमोल रत्नों में एक थे श्री धन्यकुमार शास्त्री। आप यहां के पुरोहित श्री जी.एस. पद्मय्या के सुपुत्र थे। स्वस्ति श्री नेमिसागर जी वर्णी तथा भट्टाकलंक के आप भी समकालीन थे।

शिक्षा :

आरम्भिक शिक्षा श्रवणबेलगोला में प्राप्त की। तदनन्तर उत्तरभारत के मुरैना व इन्दौर नगर के विद्यालय में अध्ययन किया। मुरैना में भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. श्री मक्खनलाल जी शास्त्री और श्री जगन्नाथ शास्त्री आपके गुरु थे, जिनसे विद्याध्ययन कर न्यायतीर्थ की पदवी से अलंकृत और हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित बने।

शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त ही शिक्षा विभाग में भाषाध्यापक के पद पर नियुक्त हो अपनी सेवाएं देने लगें। इससे उन्हें जीविकोपार्जन में भी सुविधा रही।

साहित्यसेवा :

श्री शास्त्री जी की लेखनी ने साहित्यसृजन के क्षेत्र में भी ख्याति प्राप्त की। आपके द्वारा लिखित दर्शनस्तुति नाम ग्रन्थ प्रकाशित होते ही बहुचर्चित हो गया था। कन्नडभाषा की पुण्यास्रवकथाकोश और श्रेणिकचरित्र नामक आपकी श्रेष्ठ कृतियां हैं, जो अभी भी प्रकाशन की प्रतीक्षा सूची में हैं।

PDF Scanner ACE Scanner

उपलब्धि :

मैसूर के श्रीमन्महाराजा ओडेयार ने आपके अगाध पाण्डित्य को मान्यता प्रदान करते हुए आपको भी आस्थान विद्वान के पद से विभूषित किया था।

प्रयाण :

इस प्रकार शिक्षा, साहित्य, धर्म और समाज सेवा के कार्यों में निरन्तर सेवारत रहने वाले शास्त्री जी सेवानिवृत्ति से पूर्व ही सन् १९६६ में इस जगत से चल बसे। किन्तु उनके सुकार्य एवं यश ने धर्म की कीर्ति को बहुगुणित किया।

पं. नरेन्द्रकुमार 'भिसीकर'

बादलों की गडगडाहट ने शान्त वातावरण में हलचल पैदाकर दी और धरती सूर्य के ताप से बेचैनी के कारण विवश हो आकाश को निहार रही थी। उसकी इस पीड़ा से प्राणीकुल भी व्याकुल हो आसमान से मेघों को जल्दी-जल्दी भेजने के लिए प्रार्थनारत थे। दुआओं की सार्थकता ने साकार रूप लिया और पानी की बौछार ने सारे वातावरण को परितृप्त किया।

महाराष्ट्र के अकोला जिला अन्तर्गत कारंजा नामक स्थान में २९ जून १९०६ को एक ऐसे बालक का जन्म हुआ, जिसने पिता श्री जयवन्त साव भिसीकर एवं मां श्रीमती केशरबाई को संतुष्ट तो किया ही, खुशियों के इजहार से मानो सारा वातावरण ही गुंजायमान हो गया। आपके पिता जी कपास का व्यापार करते थे। आर्थिकस्थिति साधारण रहने पर भी असाधारण बालक के जन्म के कारण संतुष्ट थे।

विद्याभ्यास :

१९१२ में आप स्थानीय म्यूनिस्पिल स्कूल में प्रविष्ट हुए तथा वहां से चौथी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण कर आपने १९१८ में महावीर ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल कारंजा में प्रवेश लिया। वहां आपने ब्रह्मचारी देवचन्द जी के गुरुत्व की छाया में संस्कृत, धार्मिक ज्ञान में गोम्मटसार, राजवार्तिक और लघु सिद्धान्त कौमुदी आदि का अध्ययन किया। १९४२ में बंगीय संस्कृत परिषद् इन्दौर से आपने न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। गुरुकुल में अब आप अध्ययन के साथ अध्यापन का कार्य भी करने लगे।

गृहस्थाश्रम की शुरूआत :

सन् १९२८ में हिरासव मालसा द्रोणगांवकर नागपुर वालों की सुपुत्री मन्दोदरीबाई से आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। विवाह के समय आप व्यापाररत हो गये थे। आपकी पत्नी, जो कि सामान्य शिक्षा प्राप्त थी, उन्होंने आपके सहयोग से अपने धार्मिक ज्ञान व आचरण को पर्याप्त पूर्णता प्रदान की।

जीवननिर्वाह हेतु किये गये व्यापार से अपेक्षित आय तो हो ही जाती, साथ ही अध्ययन एवं मनन का अवसर भी मिल जाता था। किन्तु बाद में सन् १९६४ से १९६९ तक आप पुनः अध्यापन के कार्य हेतु श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल कारंजा में धर्माध्यापक के रूप में सेवारत रहे। इस प्रकार आप अपने ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए अभ्यास स्वरूप निरन्तर अध्ययन-अध्यापनरत रहते।

जिनवाणी की सेवा :

अपने संवेदनीय अनुभवों को आपने दार्शनिक आस्था के संपुट से सुवासित कर आध्यात्मिक ग्रन्थों का मराठी में अनुवाद किया। उनमें १. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पंचाध्यायी, अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड, मोक्षमार्गप्रकाश, अष्टपाहुड, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और क्षत्रचूडामणि जैसे ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त आपके अनेक मननीय लेख 'कल्याण', 'सन्मति' पत्रिका और अभिनन्दन/स्मृति ग्रन्थों में प्रकाशित होते रहे हैं।

साहित्यसेवा के क्षेत्र में निरन्तर जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर से जुड़कर निरन्तर महनीय सेवायें दी, जो अन्त तक बनी रहीं। इन सब के लिए समाज सदैव आपका ऋणी रहेगा।

❑

डॉ. नरेन्द्र जैन 'विद्यार्थी'

स्वच्छ श्वेत मोटी खादी की धोती-कुर्ता और टोपी, सादगी एवं सरलता की प्रतिमूर्ति, दबंग तथा निर्भीक, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे डॉ. नरेन्द्रकुमार, जो जन-सामान्य में 'विद्यार्थी जी' के नाम लोकप्रिय रहे। १५ अगस्त सन् १९२४ को छतरपुर जिले के धनगुवां गांव में श्री देवीप्रसाद जी के अभाव एवं समस्याओं से ग्रसित परिवार में जन्म ले, स्वयं ही अपना पथ प्रशस्त किया।

विद्यार्जन :

आरम्भिक शिक्षा द्रोणगिरि में हुयी। यहीं पर विद्याध्ययन के दौरान उन्हें संत गणेशप्रसाद जी वर्णी का सत्सानिध्य और पारसस्पर्श मिला। परिणाम स्वरूप आर्थिकविपन्नता में भी स्वार्जित साधनों से 'कुन्दन' बनकर उन्होंने शास्त्री, साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, बी.ए. एवं एम.ए. (संस्कृत) की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। 'भागवतपुराण के आधार पर भगवान् ऋषभदेव का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर से सन् १९६५ में पी-एच.डी. की उपाधि से विभूषित हुये। अध्ययनकाल में ही आपकी अभिरुचि लेखन, देशसेवा, जनकल्याण एवं समाजसुधार की ओर थी। इसी कारण आपने अपना जीवन इन कार्यों को समर्पित कर दिया।

साहित्यसेवा :

डॉ. विद्यार्थी ने साहित्य सम्पादन व लेखन द्वारा जनसामान्य को सही दिशा निर्देश दे प्रसुप्त चेतना को जागृत किया। आपने पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी की डायरी, पत्रों, प्रवचन एवं लेखों का सम्पादन/संकलन कर वर्णी साहित्य को आम आदमी तक सुलभ करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। १. वर्णी वाणी चार भाग, २. वर्णी पत्र पारिजात, ३. वर्णी जी का दिव्यदान एवं ४. जीवनगाथा आदि। वर्णी वाणी का पांचवां भाग भी आपने अन्तिम दिनों में सम्पादित कर तैयार कर दिया था, किन्तु खेद है कि वह अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही है। रीवां एवं छतरपुर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'विन्ध्याचल' का अनेक वर्षों तक सफल सम्पादन भी आपने किया।

आपने लगभग २५ पुस्तकों का लेखन एवं सम्पादन किया। सन् १९४९ में राष्ट्रीयचेतना से उद्बुद्ध हो अस्पृश्यता निवारण व कौमी एकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 'छुआछूत कलंक है', 'अछूत कोई नहीं' आदि पुस्तकें लिखीं। हरिजनों के मन्दिर प्रवेश जैसी जटिल समस्याओं पर शास्त्रीय तर्क एवं प्रमाण देकर 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' कृति लिखी, जिसने एक क्रान्ति ही पैदा कर दी।

'द्रोणगिरिदर्शन', 'रेशंदीगिरि', 'बापू की अनोखी खोज' आदि आपकी अन्य पुस्तकें हैं। आपकी 'सामाजिक अध्ययन जिला छतरपुर', 'सामाजिक अध्ययन जिल सतना', 'भूगोल' एवं 'महापुरुषों की कहानियां' मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत हो विद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं।

लोकभाषा, लोकसाहित्य, लोककथा व रेडियो रूपक आदि पर भी आपकी अनेक मौलिक रचनाएं समय-समय पर आकाशवाणी से प्रसारित होती रही हैं। इसके साथ ही अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, स्मृतिग्रन्थों, अभिनन्दनग्रन्थों, गोष्ठियों, सेमिनारों व समारोहों में आपके लेख सराहे गये। आपने हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त अपनी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड की मधुर बोली 'बुन्देली' में भी मनोहारी रचनायें लिखीं। श्री विद्यार्थी जी संवेदनशील कवि प्रकृति के धनी थे, अतः आपने स्वान्तःसुखाय अनेक काव्य रचनायें भी कीं।

राष्ट्रसेवा :

ग्रामीण परिवेश में जीवन गुजारने वाले विद्यार्थी जी ने गांवों में व्याप्त अभाव, गरीबी, छुआछूत, दस्युसमस्या और निरीह जनता के शोषण जैसी समस्याओं को निकट से मात्र देखा ही नहीं, अपितु भोगा भी। अतः इस दमनचक्र से उनके अन्तर्मन में सुलग रही आग को 'भारत छोडो' आन्दोलन ने और हवा दे दी। जिसके परिणामस्वरूप आप परीक्षा बीच में ही छोड़ स्वतन्त्रता की इस ज्वाला में कूद पड़े। राज्य के विरोध स्वरूप आपको निष्कासन की सजा मिली। अतः आप हीरापुर पहुंच गए। यहां भी राजनैतिक गतिविधियों में संलग्न रहे। मातृभूति की आजादी के लिए सन् १९४५ में नेताजी सुभाषचन्द बोस की आजाद हिन्द सेना के पुजारी सहगल, ढिल्लन, शाहनवाज आदि को ब्रिटिश सरकार ने कैद कर लिया तो आपका खून ही खौल गया। तब आपने जबलपुर जाकर सभाओं के द्वारा आजाद हिन्द फौज के लिए चन्दा भेजने का कार्य किया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में निस्वार्थ भाव से सेवा एवं कर्मठकार्यकर्त्ता होने के कारण कांग्रेस पार्टी ने सन् १९५४ में आपको बड़ा मलहरा विधानसभा उपचुनाव में टिकिट दिया। जिसमें आपने भारी जनसमर्थन से विन्ध्यप्रदेश की विधानसभा में प्रवेश किया। इस दौरान आपने शिक्षा, जलसंसाधन एवं विद्युत आपूर्ति जैसे लोककल्याणकारी कार्यों को प्राथमिकता दी। इस क्षेत्र में आज दिखाई देने वाले अनेक बांधों में आपका ही परिश्रम निहित है।

समाज सेवा :

समाजसेवा के क्षेत्र में विद्यार्थी जी सदैव अग्रणी रहे। आपने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर तो किया ही, साथ ही अभावग्रस्त प्रतिभासम्पन्न, असहाय, अनाथ विद्यार्थियों और महिलाओं को शासकीय रोजगार उपलब्ध कराया। इसके साथ ही

भगवान् महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर बुन्देलखण्ड में अनेक स्थानों पर धार्मिक एवं सामाजिक सेवायें संचालित होने में आपका अमूल्य योगदान रहा। द्रोणगिरि के पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव में शासकीय सहयोग एवं रामटोरिया में प्रतिवर्ष होने वाले अवारमाता के मेले के दौरान देवी के समक्ष होने वाली पशुबलि को दृढसंकल्प के साथ बन्द कराने का आपको ही श्रेय है।

उपलब्धियां :

आप जिला, तहसील एवं नगर स्तर की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं से अध्यक्ष से लेकर सदस्य तक के रूप में सम्बद्ध रहे। अनेक व्यापारिक संस्थाओं से भी संलग्न थे।

आपको वर्णी साहित्य के समृद्ध लेखन एवं सम्पादन के बहुमूल्य योगदान पर मरणोपरान्त वर्ष १९९७ का लब्धप्रतिष्ठित 'पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी पुरस्कार' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा द्वारा प्रदान किया गया था। 'छुआछूत कलंक है' और 'अछूत कोई नहीं' इन दो महत्त्वपूर्ण कृतियों पर विन्ध्यप्रदेश के शासन द्वारा छत्रसाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

सर्वांगीण सेवा एवं समर्पित व्यक्तित्व के कारण आपको मध्यप्रदेश विधानसभा द्वारा वर्ष १९८१ में रजतजयन्ती समारोह में प्रशस्तिपत्र प्रदान किया गया था। आप सामाजिक सम्मान के तो सदा से अधिकारी रहे और वह आपको सदैव सुलभ होते रहे।

चिरनिद्रा में विश्राम :

६८ वर्ष की आयु में ४ मई १९९२ को इस नश्वर संसार को परित्याग कर विद्यार्थी जी चिरनिद्रा में लीन हो गये। स्वावलम्बी, दृढसंकल्पी, विभिन्न क्षेत्रों में नि:स्वार्थ भाव से समर्पित स्व. विद्यार्थी जी की स्मृतियां आज भी सब के मन में प्रेरणास्पद बनी हुई हैं। आपके कार्यों को अविरत रूप से जारी रखने हेतु आपके परिवार ने 'डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी चेरिटेबिल ट्रस्ट' का गठन किया हुआ है, जो आज भी निर्धन व साधनविहीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति तथा पुरस्कार प्रदान का उनका मनोबल वर्धित करता है।

❑

डी. नागराज शास्त्री

ज्योतिषविशेषज्ञ, साहित्यकार, प्रवचनकार एवं बहुभाषाविद् डी. नागराज शास्त्री ने पवित्र तीर्थस्थल श्रवणबेलगोल में जन्म लेकर स्वर्ग को धन्य किया। आपके पिताश्री धर्मय्या जी यहां के पुरोहितवर्ग में गण्य थे। आपने अपने बाल्यकाल से ही पू. श्री नेमिसागर जी वर्णी और भट्टाकलंक जैसे कर्मयोगियों के साथ धर्ममय जीवन बिताया, जो कि इस सदी के पूर्वार्ध का काल था।

अक्षराभ्यास :

आस्थान महाविद्वान् श्री दोर्बली जिनदास शास्त्री जी से संस्कृत तथा जैनागम आदि का गहन अध्ययन किया। मैसूर के शासकीय शिक्षण महाविद्यालय में अध्ययन कर संस्कृत व कन्नड में विशेषज्ञता प्राप्त की। ज्योतिष की शिक्षा तो आपने विशेषरुचि के कारण प्राप्त की। इस प्रकार आप संस्कृत, कन्नड एवं ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित बन गये।

सेवावसर :

बाल्यकाल से आपकी रुचि अध्ययन, लेखन, प्रवचन एवं अध्यापन की रही। इसी कारण आपने आजीविकोपार्जन हेतु शासकीय शिक्षण महाविद्यालय मैसूर में प्रौढशाला के अध्यापक बन अपनी सेवायें आरम्भ की तथा वहीं से सेवानिवृत्ति ले संयममय जीवन यापन किया।

योग्यता प्रदर्शन :

मुख्यमन्त्री श्री हनुमन्तय्या जी द्वारा कन्नड व संस्कृत सलाहकार समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। सन् १९४०-५३ में बाहुबली के महामस्तकाभिषेक में रिलीजियस सदस्य रहकर अपनी योग्यता का परिचय दिया। सन् १९६१ में अष्टमहाग्रहनिवारक महापूजन में भी आपने सक्रिय योग देकर अपने कौशल को जगजाहिर किया।

साहित्यनिर्माण :

आदिपुराण का व्याख्यान, निरंजनस्तुति, केशराजन, शब्दमणिदर्पण का व्याख्यान, शान्तिपुराण व्याख्यान आदि आपकी प्रमुख कृतियां हैं। किन्तु खेद है कि आपकी अधिकांश कृतियां अप्रकाशित अवस्था में ही दूसरों के हाथों में पड़ कर नष्ट हो गयीं।

ACE Scanner
PDF Scanner

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित हो मैसूर के श्रीमान महाराज ने आपको आस्थानविद्वान के पद से विभूषित किया था। ज्योतिषरत्न की विरुदावलि तो आपके साथ थी ही, साथ ही आपकी निःस्वार्थ सेवाओं के परिणामस्वरूप स्वर्णपदक द्वारा भी सम्मानित किया गया था।

आपकी इन सेवाओं से श्रवणबेलगोला और दक्षिणभारत की कीर्ति अधिक विस्तृत हुई।

एस. डी. नागेन्द्र शास्त्री

श्रवणबेलगोल नामक विश्वप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र एवं श्रुतितीर्थ को अनेक विद्वानों की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। उनमें से एक थे श्री एस. डी. नागेन्द्र शास्त्री। सन् १९१७ में इसी पावन धरा पर आपने श्री धर्मपालय्या और श्रीमती सुवर्णम्मा के सुपुत्र के रूप में जन्म लिया। आप बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे।

अध्ययन :

दिगम्बर जैन वेद महापाठशाला, श्रवणबेलगोल एवं बनारस में आपका अध्ययन सम्पन्न हुआ। श्री नेमिसागर जी वर्णी, श्री ए. शान्तराज शास्त्री, श्री ए. सुब्बैय्या शास्त्री एवं पं. कैलाशचन्द शास्त्री आपके प्रमुख गुरुओं में परिगणित हैं। आपने निष्ठापूर्वक अध्ययन कर साहित्यपण्डित, साहित्यभूषण, विद्यालंकार एवं साहित्यरत्न जैसी उपाधियों को धारण किया था।

भाषा के मर्मज्ञ एवं सेवाकार्य :

आप कन्नड, हिन्दी, संस्कृत के तो मर्मज्ञ विद्वान् ही थे, साथ ही प्राकृत, तमिल और अन्य अनेक भाषाओं के ज्ञाता भी थे।

अध्यापन, प्रवचन, भाषण, साहित्यसृजन, अनुवाद, प्रतिष्ठा महोत्सव आदि में आपने बहुमूल्य सेवायें प्रदान की हैं। शिक्षा क्षेत्र में अरसीकेरी व हासन में कन्नड के भाषाध्यापक तथा संस्कृत व हिन्दी के अध्यापक के रूप में विद्यादान का सुअवसर आपको मिला। ३२ वर्ष तक शासकीय सेवा में रत रह सन् १९७५ में सेवामुक्त हुये।

चामराजेन्द्र संस्कृत महापाठशाला, बैंगलोर एवं महाराज संस्कृत पाठशाला

मैसूर के कन्नड एवं संस्कृत विभाग में मुख्यपरीक्षक के रूप में भी आपका सराहनीय योगदान रहा।

धर्मप्रभावना के क्षेत्र में श्री शास्त्री जी का अग्रणी योगदान रहा। सन् १९६१ में अष्टाह्निक महाशान्ति विधान, सन् १९८१ में भगवान बाहुबली सहस्राभिषेक महोत्सव और सन् १९८२ में धर्मस्थल प्रतिष्ठा महोत्सव में आपने सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इसी तरह राज्य के अन्य स्थानों पर प्रतिष्ठा महोत्सव के आयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

रचनायें :

संस्कृत व कन्नड में रत्नाकर अमरवाणी, जैनधर्म दिग्दर्शन, ज्ञानसम्पत्ति, अहिंसावाणी, काव्यजीवन आदि ३० से अधिक कृतियों की रचनायें आपने की हैं। बालकों के लिये शिक्षण, प्रौढों के लिए शास्त्रवाचन, व्याख्यान तो आपका नित्यकर्म था। आपने अनेक कृतियों को हिन्दी से कन्नड में अनुवादित कर कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि की।

विविध क्षेत्रों में सेवाकार्य करने वाले तथा धर्म व संस्कृति के स्थायित्व के प्रति समर्पित श्री नागेन्द्र शास्त्री की सेवायें सदा अविस्मरणीय रहेंगी।

पं. नाथूराम प्रेमी

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र के पुरोधा साहित्यकार एवं नवसृजकों के संपोषक के रूप में विशिष्ट पहचान बनाने वाले विद्वानों में पं. नाथूराम प्रेमी का नाम अग्रगण्य है। यह ऐसा नाम है जिसे शब्दों से बांधने या वर्णन करने से शब्द अपनी सीमितता से आकुलित हो अपने ही वैयर्थ को प्रकट करते हैं।

पं. नाथूराम प्रेमी का जन्म सागर जिले के देवरी नामक ग्राम के निवासी, जो कि मालवा प्रान्त के नर्मदाकछार की ओर के थे श्री टूँडे मोदी के परिवार में वि.सं. १९३८ को हुआ था। आपके यहां खेती और साहूकारी का ही व्यवसाय होता था।

ज्ञानार्जन :

गरीबी के कारण आपकी आरम्भिक शिक्षा गांव के मदरसे में ही हुई। बाद में ट्रेनिंग की परीक्षा पास कर लेने से आपको मास्टरी की नौकरी भी मिल गई। नौकरी

के दरम्यान ही आपको शासन की ओर से नागपुर के कृषिकालेज में पढ़ने का अवसर मिला।

साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद आपने संस्कृत, बंगला, मराठी और गुजराती आदि को सीखना आरम्भ किया और उनमें दक्षता प्राप्त कर अनेक कृतियों के अनुवाद करने में सफलता हासिल की। किशोरावस्था में आपको अमीरअलि मीर के संसर्ग के कारण कविता करने का शौक उत्पन्न हुआ, जिससे आप अपने नाम को 'प्रेमी' उपनाम के साथ लिखने लगे। किन्तु यह शौक सहज न होने से अधिक दिन तक नहीं चल सका।

साहित्यिक अवदान :

आपने आरम्भ के दिनों समस्यापूर्ति के रूप में 'रसिकमित्र', 'काव्यसुधाकर' आदि पत्रिकाओं में कविताएं लिखी। इसके बाद अन्य लेखकों की कविताओं के संशोधन कार्य जिस खूबी से करने लगे वह तारीफ-ए-काबिल रही। सन् १९१२ में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय को जन्म देकर आपने साहित्य के क्षेत्र में बहुगुणित विकास करने का उद्यम किया। आपने हिन्दी साहित्य के अलावा जैनधर्म से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का सम्पादन, प्रणयन एवं अनेक ग्रन्थों के अनुवाद के साथ उनकी मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण टीकाएं लिखीं। जिनमें जैन साहित्य का इतिहास जैसी पुस्तकें तो आपकी धरोहर हैं।

आपने 'जैनहितैषी' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन कर उसकी प्रतिष्ठा को सरस्वती और विशाल भारत जैसी तत्कालीन हिन्दी साहित्य की पत्रिकाओं के समकक्ष स्थापित किया।

समाजसेवा :

माणिक्यचन्द पानाचन्द जी झवेरी के विशेष विश्वासपात्र होने के कारण आपने माणिकचन्द ग्रन्थमाला की स्थापना करायी, जो कि बाद में भारतीय ज्ञानपीठ में अन्तर्भुक्त हो गयी। इसके अतिरिक्त आपने अनेक सामाजिक संस्थाओं को जन्म देकर उनके पोषण का दायित्व भी निर्वहन किया।

गौरव :

युगपरिवर्तनकारी व्यक्तित्व कभी परमुखापेक्षी नहीं होता। वह स्वयं अपनी राह निर्धारित करता हुआ जगत् का मार्गदर्शन होता है। उसका यशोगान उसके पीछे होते रहना उसकी अनिवार्य नियति हो जाता है। पं. प्रेमी जी का गुणकीर्तन शब्दों की

सीमाओं में नहीं समाता। आपको अनेक उपाधियों से विभूषित करने का प्रयास भी आपके पाण्डित्य को प्रमाणित करने का साधन नहीं हो सकता था।

चिरवियोग :

हिन्दी साहित्य जगत् एवं जैन साहित्य के जाज्वल्यमान इस नक्षत्र ने जी भरकर प्रकाश दिया और अन्त में ३० जनवरी १९६० को इस नश्वर जगत् से प्रयाण करते हुए अपने प्रेमियों को शोकसागर में व्याकुल होने के लिए अकेला छोड़ दिया।

डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

आज सूर्य बादलों की ओट में अपना मुंह छिपाये हुये है या यूं कहे कि धरती पर एक ऐसा सूर्य उदित हुआ, जिसके आगे आकाश के सूर्य को अब प्रकाश प्रदान करने की आवश्यकता कम महसूस होने लगी।

राजस्थान, धौलपुर जिला के ग्राम बाबरपुर में १६ सितम्बर १९१२ को इस जगत् को अपने ज्ञानसूर्य से अलौकिक प्रकाश देने वाला बालक जायसवाल समाज के भूषण पिता श्री बलवीर जी एवं मां सावित्रीबाई के आंगन में उदित हुआ। मात्र छह माह की अवस्था में ही पिता जी के देहावसान से आपको अपने मामा घियाराम के यहां बसई आने के लिए विवश होना पड़ा।

ज्ञानार्जन :

ज्ञानपिपासा की तृप्ति हेतु आपने मामा के पास ही प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ की। तदनन्तर राजाखेडा माध्यमिक शाला से मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। यहीं पर कुन्दकुन्द विद्यालय से प्रवेशिका की परीक्षा पास करने के बाद स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी से जैनधर्म शास्त्री, ज्योतिषाचार्य व न्यायतीर्थ आदि की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत में एम.ए. करने के उपरान्त सन् १९६१ में भागलपुर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. और १९६५ में मगध विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार अध्ययन के शिखर तक पहुंचकर आप उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हो गये।

वैवाहिक जीवन :

सन् १९३३ में चिरंजीलाल जी की सुपुत्री सुशीलादेवी के साथ आपने वैवाहिक

जीवन की शुरुआत की। आपके भांति ही लौकिक और धार्मिक शिक्षा में [illegible]
सामंजस्य पूर्ण नवनिर्माण को जन्म दे सुव्यवस्थित किया।

कार्यक्षेत्र :

आरा से ही पाठशाला से अध्यापन के कार्य को आरंभ कर प्रधानाध्यापक के पद तक जीवन ही पहुंच गये। इसके बाद जैन सिद्धान्त भवन के पुस्तकालय के अध्यक्ष पद पर रह शासकीय संस्कृत विद्यालय सुल्तानगंज में ज्योतिष के शिक्षक नियुक्त हुये। अनन्तर एच. डी. जैन कालेज में अध्यापन कराते हुए आपने लगभग १५ व्यक्तियों को पी-एच. डी. हेतु निर्देशन प्रदान किया। इस प्रकार १९३१ से १९७४ तक लगातार ३४ वर्षों तक कुशलशिक्षक के रूप में आपने सेवायें प्रदान की।

साहित्यिक उपलब्धियां :

आपकी साहित्यिक अभिरुचि ने साहित्य जगत् को अनुपम साहित्य से समृद्ध किया। ज्योतिष विषय के तो आप एकमात्र ख्यात विद्वान् थे। आपने 'मुहूर्तमार्तण्ड' की रचना कर जैन ग्रन्थों में ज्योतिष का सन् १९४१ में प्रथम ग्रन्थ प्रस्तुत किया। सन् १९५२ में भारतीय ज्योतिष, सन् १९७० में आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, ये दोनों उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किये गये, सन् १९७१ में संस्कृत गीतकाव्यानुचिन्तनं और संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान नामक रचनाओं पर मिले पुरस्कार वास्तविक रूप से आपकी विद्वत्ता का सम्मान है।

प्राकृत भाषा का रक्षण करते हुये उसे सींचकर निष्प्राण होने से बचाया। आपने प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास नामक कृति को जन्म देते हुए प्राकृतभाषा के पठन-पाठन हेतु अभिनव प्राकृत व्याकरण व प्राकृत प्रबोध जैसी कृतियों को प्रस्तुत किया। पाइज्जपज्जसंगहो एवं पाइज्जगज्जसंगहो के नाम से गद्य और पद्य के पाठ्यक्रम योग्य पुस्तकों का संकलन कर प्राकृत की लोकप्रियता को पैदा किया।

जीवन के अन्तिम दिनों में 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' चार भागों में तथा 'भारतीय संस्कृति में जैन वाङ्मय का अवदान' दो भागों में प्रस्तुत कर इतिहास एवं संस्कृति की प्रमाणिक प्रस्तुति में श्लाघनीय कार्य किया।

PDF Scanner ACE Scanner

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य छोटे-मोटे ग्रन्थों की भी रचना आपने की। पत्र-पत्रिकाओं में शोधपरक निबन्ध एवं 'भाग्यफल' उपन्यास जो कि धारावाहिक रूप से 'वीर' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। आपने अनेक ग्रन्थों की चिन्तन पूर्ण प्रस्तावनाएं लिखीं, जिनमें विष्णुपुराण में प्रतिपादित भारत, अभिधान चिन्तामणि, वैजयन्तीकोष, ज्वलितप्रदीप, शब्दरत्नावली, युग और साहित्य उल्लेखनीय हैं।

सम्पादन के क्षेत्र में भी आपका महनीय योगदान रहा। आपने एक वर्ष तक 'मनीषा', संस्कृत के 'मागधपत्रम्' एवं 'जैनसिद्धान्त भास्कर' का सम्पादन कार्य कर सम्पादन के क्षेत्र में नये प्रयोगों को जन्म दिया।

संस्थाओं से अभिन्नता :

शास्त्री जी वस्तुत: स्वयं एक संस्था थे। फिर भी अनेक संस्थाओं से सम्बद्धता रखकर देश, समाज व साहित्य की सेवा की। जहां आप १९६९ में भोजपुर की जनदीप हिन्दी साहित्य संस्था के अध्यक्ष पद पर रहे, वहीं दूसरी ओर आरा नागरी प्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष रहने का सौभाग्य आपको मिला। बिहार प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्यकारिणी के १५ वर्षों तक सदस्य तथा हिन्दी परामर्शदात्री समिति भोजपुर के सक्रिय सदस्य के रूप में योगदान किया। दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के छह वर्ष तक अध्यक्ष रह विद्वत्परिषद् को अपने नाम की सार्थकता प्रदान की। वर्णी ग्रन्थमाला के सहायकमन्त्री और वैशाली प्राकृत शोध संस्थान की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में आपका योगदान सराहनीय रहा।

प्रेरणास्रोत :

अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से आपने समकालीन विद्वानों को न केवल प्रभावित किया, वरन् उनके प्रेरणास्रोत भी बने। धर्म, दर्शन, साहित्य व ज्योतिष में रुचि रखने वाले श्री शास्त्री जी ने जैनधर्म और समाज की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को अपनी सेवाओं से उपकृत किया है।

और अन्त :

सरस्वती के वरदपुत्र और सिद्धहस्त लेखक शास्त्री जी को १० जनवरी सन् १९७४ में इस लोक को छोड़कर जाना पड़ा। किन्तु आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर सम्पूर्ण भारत आज भी गौरवान्वित होता है।

PDF Scanner ACE Scanner

एस. पी. पद्मण्णा

दक्षिण भारत के विद्वान्, साहित्यकार, सम्पादक, कवि, गायक और [illegible] मार्गदर्शक के रूप में श्री एस. पी. पद्मण्णा का आज भी आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। आपका जन्म श्रवणबेलगोल में पिताश्री पार्श्वनाथय्या शास्त्री एवं मातुश्री कुसुमतम्मा के परिवार में हुआ, जो कि चन्द्रगिरि पर्वत के पुरोहित के [illegible] प्रसिद्ध थे।

विद्यार्जन :

आपने श्रवणबेलगोल और मैसूर के शिक्षाकेन्द्रों से आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। श्रवणबेलगोल के आस्थान महाविद्वान् श्री ए. सुब्बैय्या शास्त्री, श्री आ.वै.चन्द्रशेखर शास्त्री, श्री आ. वी. चन्नकेशवय्या, श्री ए. शान्तराज शास्त्री और ज्योतिषरत्न डी. नागराज शास्त्री जैसे विशिष्ट विद्वानों का शिष्यत्व आपको प्राप्त था। पं. एस. वी. पार्श्वनाथय्या शास्त्री से आपने जैनागम, पूजाविधि आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। शास्त्री तक की शिक्षा पा लेने के बाद आपने कन्नडभाषा में विद्वत्ता अर्जित की।

सेवाकार्य :

श्री पद्मण्णा ने अध्ययन के उपरान्त अध्यापन को ही अपना कार्यक्षेत्र के रूप में चुना। जिसमें निरन्तर ३४ वर्षों तक आपने सेवायें प्रदान की। इस दौरान आप अनेक संस्थाओं से जुड़ गये। जिनमें मैसूर शिक्षण महापाठशाला, कर्नाटक संघ, श्रवणबेलगोल के वैदिक विद्यावर्धक संघ, तिम्बूर कर्नाटक संघ एवं श्रवणबेलगोल में सन् १९६७ में कर्नाटक साहित्य परिषद् के अधिवेशन में कार्यदर्शी नियुक्त हुये। वे विद्यार्थी संघ के कार्यदर्शी भी रहे। तुमकूर जिला साहित्य परिषद् समिति में तिप्तूर तालुक के प्रतिनिधि रहे। कर्नाटक सरकार की आगम एवार्ड सलाहकार समिति के सदस्य थे। सन्मणि साहित्य परिषद् की कार्यकारिणी के सदस्य रहे और श्री मठ में पुराण वाचन तो करते ही थे।

साहित्यकर्म :

माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन करते ही जो साहित्य लेखन की ओर अग्रसर हुए तब से आपने कभी भी विराम नहीं लिया। आपकी साहित्यिक रुचि अत्यधिक

तीन थी। आपकी प्रमुख कृतियां हैं - श्रवणबेलगोल का वैदुष्य, गोम्मट स्तुति, भट्टाकलंक देव, कविरत्नत्रय, केरुकाड कन्नड, कन्नडाम्बे, जाम्बवतीकल्याण, जिनपूजार्चना, कलिकुण्ड आराधना, जीवंधर, पद्मावतीदेवी, सप्तऋषिमण्डलपूजा, भक्तामरस्तोत्र, श्रावकदर्पण, तत्त्वचिंतारत्न, जैनश्री कल्याण स्तवन, वीर वाङ्मयी आदि काव्य। होमवाडे, अभिषेक और सिद्धचक्र आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थिकायें है, तो 'गुरुदेव' मासिक का तो आप नियमित सम्पादन करते रहे हैं।

श्री पद्मण्णा श्रेष्ठतम गायक भी थे। आपने कन्नड साहित्य की अनेक कृतियों का गायन कर विशेष कीर्ति अर्जित की। आपके विषय में कहा जाता है कि आपके गायन को सुनने के लिए सोते हुए व्यक्ति जाग जाते थे। आपका सुस्वर गुम्फित काव्यगान आज भी लोगों के हृदय में गूंजता है। इसके साथ आपने अनेक विद्यार्थियों को गायन की शिक्षा प्रदान कर गुरुत्व भी प्राप्त किया।

सम्मान :

कर्नाटक सरकार की ओर से आपको अनेक बार गौरव प्राप्त हुआ। साहित्यविशारद और वक्ताकविशेखर की प्रशस्तियों से आपको सम्मान दिया गया था। ऐसे बहुभाषाविद्, कलाविद् श्री एस.पी. पद्मण्णा मानवस्मृति में सदा के लिये निवास कर गये।

❑

पं. डी. पद्मनाभ शर्मा

संस्कृति के परिवेश में कुछ व्यक्तिगत तथा कुछ वंशानुगत संस्कारों के बीच शनैः-शनैः व्यक्तित्व को निखराता हुआ मानव क्रमशः उत्थान की ओर अग्रसर होता है। संस्कार जो व्यक्ति के रोम-रोम में व्याप्त होते हैं और संस्कृति जिसकी गोद में खेलकर, जिसके आंचल की छांव में मानव बढ़ा होता है।

मैसूर प्रान्त के भुवनहळ्ळि, जिला मैसूर में आपका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी को मां श्रीमती चन्द्रमती के गर्भ से हुआ। आपके पिता श्री देवचन्द्र, जो संस्कृतभाषा के प्रकाण्ड विद्वान् और जैनसिद्धान्तानुसार 'सम्यग्भावळ' नामक दो हजार श्लोक प्रमाण ज्योतिषक ग्रन्थ के कर्त्ता थे, आपने तत्कालीन मैसूर महाराज से सम्मान प्राप्त किया था। पूजा-प्रतिष्ठा के कार्यों में भी आप दक्ष थे। ऐसे पिता से संचित संस्कारों के बीच आपका बचपन दो बहिनों और चार भाईयों के साथ बड़ी ही नाजुकता से व्यतीत हुआ।

शिक्षा एवं अर्थोपार्जन :

प्रारम्भिक शिक्षा आपने अपने सुयोग्य एवं विद्वान् पिता के संरक्षण में ली। सात या आठ वर्ष की उम्र तक कन्नड, प्राकृत और संस्कृत का अध्ययन किया। १९४५ में संस्कृत काव्य परीक्षा तथा १९५३ में कन्नड पण्डित परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश होने से आपका कन्नड, हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान निरन्तर वृद्धिंगत होता रहा।

अर्थोपार्जन हेतु आपने गवर्नमेन्ट हाईस्कूल फोर्ट, बेंगलौर में शासकीय सेवायें आरम्भ की, जो आजीवन निर्वाह का सहारा बनी रहीं।

गृहस्थजीवन :

आपका विवाह नागरत्नम्मा के साथ सम्पन्न हुआ था, जो कि संस्कृत, हिन्दी और कन्नड की साधारणविज्ञ एवं सद्गृहिणी थी, किन्तु आपके साहित्यनिर्माण एवं सपर्या की श्रेष्ठ सहकारिणी थी। आपको तीन पुत्र व तीन सुपुत्रियों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

साहित्यिकक्षेत्र :

पितृप्रदत्त संस्कारों को सिंचित कर आपकी साहित्यिक साधना ने विकसित होना आरम्भ किया तो देखते ही देखते लगभग चालीस ग्रन्थों का सृजन हो गया। जिनमें व्याख्यानों का संकलन, नाटक, उपन्यास और कुछ अनूदित पुस्तकें भी सामिल हैं। आपने त्यागवीर बाहुबली, अभिनव वाग्देवी कान्ति, अणुव्रत आन्दोलन, जैन संस्कृति पर्वगळु, जैन तेरापंथ दर्शन, जैन साहित्य कथेगळु आदि १० स्वतन्त्र कृतियां एवं समन्तभद्र संगति, विजयपार्श्वनाथ, कन्नडमेघदूत, गोम्मटेश्वर लावणी, प्राणप्रिय काव्य आदि सात काव्यग्रन्थों की रचनायें सम्पन्न कीं।

इष्टोपदेश, रयणसार, शब्दमणिदर्पण, कर्नाटक शब्दानुशासन, धनंजय शब्दकोष आदि आठ संकलित पुस्तकों के नाम उपलब्ध हैं। वसन्ततिलके नाक्विरूल, शान्तिसन्देश, मेष्टरमंगलु, दुर्दैवदाराविडपि कान्ति कवयित्री आदि आपके प्रसिद्ध नाटक हैं। पतितपावन तथा निराशेद निहुसिरू ये दो ख्यात उपन्यास और आत्मदर्शन व भक्तामर कथेगळु का सम्पादन के साथ वस्तुविज्ञानसार तथा निर्ग्रन्थप्रवचन का कन्नड में अनुवाद कर कन्नड जैन साहित्य के भण्डार में अपार वृद्धि की। आपने लगभग प्रत्येक विधा में अपने सुफलदायी लेखनी का प्रयोग कर अपनी विद्वत्ता एवं

PDF Scanner ACE Scanner

रचनाधर्मिता का परिचय दे, ख्यातिलब्ध विद्वानों की शीर्ष पंक्ति में सुरक्षित स्थान बना लिया।

इसके अलावा आपने 'वीरभारती' मासिक पत्रिका का सम्पादन करते हुए कन्नड भाषा की प्राय: सभी पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण लेख प्रदानकर लोगों को संतुष्टि वितरित की। हिन्दी भाषा पर आपका अधिकार होने से आप हिन्दी में अच्छे व्याख्यान करने के लिए प्राय: जैनबहुल नगरों में आमन्त्रित होते रहे।

राष्ट्र एवं समाज सेवा :

आपने छात्र जीवन में भारतीय कांग्रेस के आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तथा महात्मा गांधी जी के 'क्विट इण्डिया' आन्दोलन में प्रमुख रूप से भागीदारी की। सन् १९५४ से आचार्य श्री तुलसी जी के अणुव्रत आन्दोलन को कर्नाटक में प्रभावी बनने में आपका सक्रिय योगदान रहा।

आपकी समाज सेवा रेडियो भाषण और धार्मिक प्रवचनों से आरम्भ हुई। सुव्यवस्थित एवं आकर्षक भाषण शैली के परिणामस्वरूप आपको हजारों नगरों से आमन्त्रण प्राप्त हुए। मैसूर प्रान्त की लगभग सभी प्रमुख संस्थाओं में आपकी भागीदारी एवं जैन समाज के संगठन में आपका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

अपने जीवन को साहित्य व समाज सेवा में अर्पित कर आपने दक्षिण ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष को गौरवान्वित किया है। आपके ज्ञान का प्रकाश तो कन्नड जैन साहित्य जगत् को आज भी रोशनी प्रदान कर रहा है।

❑

पन्नालाल अग्रवाल

माघ शुक्ला द्वादशी, वि.सं. १९६० को नसीराबाद छावनी निवासी श्री लाला भगवानदास जी के घर में जन्में लाला पन्नालाल जी बचपन में ही दिल्ली आ गये थे।

विगत ३०-३५ वर्षों तक सरस्वती की आराधना करने वाले साहित्यसेवी श्री पन्नालाल जी अग्रवाल दिल्ली निवासी थे। प्राचीनग्रन्थों के उद्धार के लिये ख्यातनाम हैं। आप अनुवाद के साथ नवीन साहित्य निर्माण में सहयोग प्रदान किया करते थे।

आप भले ही उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं थे, किन्तु विद्वानों एवं साहित्यकारों के सत्संग का लाभ युवावस्था से ही प्राप्त होता रहा। जिससे दिल्ली के २-३ शास्त्रभण्डारों की देखभाल एवं सुरक्षा में जागरुक एवं समझदारी से साहित्यिक कर्तव्यपालन करने में तत्पर रहे।

साहित्य उद्धार में अभिरुचि होने से आप भारतीय व विदेशी विद्वानों को यथावसर सामग्री उपलब्ध कराने में अहर्निश तत्पर रहते थे। आपके सहयोग से विभिन्न अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन संभव हो सका, उनमें कतिपय हैं -

१. वीर सेवा मन्दिर सरसावा से प्रकाशित - अध्यात्मकमलमार्तण्ड, पुरातन जैन वाक्यसूची, आप्तपरीक्षा, न्यायदीपिका, बनारसी नाममाला, विवाहक्षेत्रप्रकाश।

२. माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित - वरांगचरित्र, हरिवंशपुराण, जम्बूस्वामी चरित्र, प्रमाणप्रमेयकलिका।

३. भारतीय ज्ञानपीठ बनारस से प्रकाशित - मदन पराजय, महापुराण, हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, जैन जागरण के अग्रदूत, तत्त्वार्थवृत्ति, वसुनन्दिश्रावकाचार, सर्वार्थसिद्धि आदि।

४. अम्बादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला कारंजा से प्रकाशित - पाहुड दोहा, सावयधम्मदोहा।

५. मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित - कालीदास कपूर द्वारा लिखित वृहत् अंग्रेजी सूची, श्री अद्भुत शास्त्री द्वारा लिखित हिन्दी सेवी संसार।

६. हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से प्रकाशित - आज के हिन्दी सेवी, अर्धकथानक आदि।

७. जीवराज जैन ग्रन्थमाला सोलापुर से प्रकाशित - तिलोयपण्णत्ती २ भाग, कुन्दकुन्द प्राभृत आदि।

८. जर्मन विद्वान् एच. बी. ग्लासी द्वारा लिखित - डेट जैनी झम्स।

९. प्रयाग विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद से प्रकाशित - हिन्दी का सर्वप्रथम प्रकाशित आत्मचरित, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य।

१०. दिगम्बर जैन पुस्तकमाला सूरत द्वारा प्रकाशित - आदिपुराण, चन्द्रप्रभपुराण, चिद्विलास, नयनसुखविलास।

इनके अतिरिक्त आत्मावलोकन, मौर्य साम्राज्य के जैन वीर, महर्षि शिवव्रतलाल रचित जैनधर्म। माई दयाल जैन देहली, ज्योतिप्रसाद जैन एवं कामताप्रसाद जैन द्वारा लिखित जैन तीर्थ और उनकी यात्रा इत्यादि की तैयारी के लिए सामग्री भेजकर सहायता की।

आपने स्वयं भी कुछ रचनायें कीं हैं। जिनमें 'दिल्ली की जैन संस्थायें' प्रकाशित है। मुद्रित जैन ग्रन्थों की सूची तैयार करके उसे जैन प्रकाशित साहित्य के नाम से प्रकाशित कराया। आपके अनेक लेख अनेकान्त, वीरवाणी, जैनमित्र, जैनसन्देश, जैनगजट, वीर आदि में भी प्रकाशित होते रहते थे।

पिछले पचास वर्षों के जैन विद्वानों, लेखकों एवं सुधारों के पत्रों का संकलन आपकी प्रेरणा से माई दयाल जैन दिल्ली के द्वारा किया गया है, जिसमें बैरिस्टर चम्पतराय जी के पत्रों का संकलन एवं जीवनी तो तैयार भी हो चुकी है।

आप जब जैन मित्र मण्डल दिल्ली के मंत्री थे तब आपने राजर्षि शिवव्रतलाल जी से जैनधर्म लिखाया था। प्रसिद्ध जैन सुधारक बाबू सूरजभानु वकील व ब्र. शीतलप्रसाद जी से ट्रेक्ट एवं पुस्तकें लिखवाई थीं। पच्चीसों जैन लेखकों के परिचय आपने माई दयाल जैन जी से भी लिखवाये, जो कि दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत के साहित्यांक में प्रकाशित हुए थे।

दिल्ली के लाल किले में भारत सरकार के तत्त्वावधान में सांस्कृतिक सम्मेलन के अवसर पर आपने साहित्यिक प्रदर्शनी के अन्तर्गत दिल्ली के जैन शास्त्रभण्डारों के कुछ प्राचीन जैन ग्रन्थ एवं चित्रों को प्रदर्शित किया था।

दिल्ली की कई साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं के उत्साही कार्यकर्त्ता के रूप में आप अपनी संलग्नता का निर्वाह करते रहे।

❑

पं. पन्नालाल बाकलीवाल

सेवा व सिद्धान्त ही जिनका जीवन था ऐसे पं. पन्नालाल जी धर्मालंकार वास्तव में जैन समाज के अलंकार स्वरूप ही थे। आदर्शमय जीवन व्यतीत करने वाले पण्डित जी जिन्हें जैन समाज का विद्यासागर कहा जाता था, वस्तुतः मूकसेवी थे। ऊँचे-पूरे तथा गौर वर्ण युक्त आपका प्रभावक व्यक्तित्व वरवश ही लोगों को

आकर्षित करता था। ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व का जन्म जिला सागर के ग्राम पाल में हुआ था।

ज्ञानार्जन :

ज्ञानार्जन हेतु आप अपनी जन्मभूमि को छोड़कर सागर आ गये और प्रारम्भिक शिक्षा को पूर्णकर उच्चशिक्षा के लिए स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में प्रवेश किया। जहां आपकी सम्पूर्ण शिक्षा सम्पन्न हुई।

कर्मक्षेत्र :

स्याद्वाद महाविद्यालय से शिक्षा पूर्ण करते ही आपके ज्ञान एवं विद्वत्ता के फ लस्वरूप आप अनेक वर्षों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में जैनदर्शन के प्राध्यापक पद पर आसीन रहे। यहां आप 'पोप साहिब' के विरुद से लोकप्रिय हो गये थे।

आदर्शमय जीवन :

बाबू धन्यकुमार जैन अजमेरी सम्पादक 'विशाल भारत' सन् १९१४-१५ की एक घटना के सन्दर्भ से पण्डित जी के बारे में बताते हैं कि - भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था के कार्यालय में मैंने जब पंडित जी से किताब पर कवर चढ़ाने हेतु एक पेज मांगा, तो उन्होंने यह कहते हुए मना कर दिया कि इस पेज की कीमत चुकाकर आप ले सकते हैं। क्योंकि इस कागज का मालिक पूरा समाज है, पर लेने के लिये नहीं बल्कि देने के लिये। इस उत्तर ने बाबू धन्यकुमार जी के मन ने पण्डित जी के कंजूस होने की अवधारणा को जन्म दिया। किन्तु १०-१२ वर्ष तक संसर्ग में रहने के उपरान्त अवैतनिक कार्यकर्त्ता का क्या आदर्श होना चाहिये ? इसका परिज्ञान एवं ज्वलन्त उदाहरण के रूप में पण्डित जी का जीवन प्रकाशमय हो गया।

मां जिनवाणी की सेवा :

एक युग था, जब जैन ग्रन्थ छापने वालों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उस समय बाकलीबाल साहिब ने जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय की स्थापना कर जैन साहित्य का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बाद में श्री नाथूराम 'प्रेमी' की विशिष्ट योग्यता देखकर आपने उन्हें इस कार्यालय का साझीदार बना लिया और उन पर सारा उत्तरदायित्व सौंप कर स्वयं उच्चतर प्रकाशन संस्था और विद्यालयों की स्थापना जैसे महत्त्वपूर्ण

एवं अन्य कार्यों में जुट गये। काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

जब आप 'जैनहितैषी' पत्र का प्रकाशन करते थे, उस समय आपने श्री निर्णयसागर प्रेस के मालिक को प्रेरणा देकर प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, यशस्तिलकचम्पू आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये।

बंगाल में धर्मप्रचार :

जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करने हेतु आप निरन्तर प्रयासरत रहे। बनारस से 'भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था' को कलकत्ता ले गये और वहां बंगाली विद्वानों में सर्वश्री महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य, पं. हरिहर शास्त्री, बाबू शरच्चन्द्र घोषाल एवं पं. चिन्ताहरण चक्रवर्ती आदि को जैन साहित्य की ओर आकर्षित किया। इसी समय आपने एक 'बंगीय अहिंसा परिषद्' की स्थापना की तथा उसकी तरफ से 'जिनवाणी' नामक एक बंगला मासिक आरम्भ किया।

साहित्यसृजन :

आपकी कुशल लेखनी व प्रखर बुद्धि ने अनेक ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया। धर्मपरीक्षा का अनुवाद, रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र की छात्रोपयोगी टीकाएं, जैन बालबोधक चार भाग, स्त्री शिक्षा दो भाग आदि जैनधर्म की पुस्तकों के साथ हिन्दी की सर्वोपयोगी पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। आपने जैन समाज को धर्मज्ञान की सच्ची शिक्षा देने की महान् भावना से जैन शिक्षालयों के लिए पाठ्य पुस्तकों का निर्माण भी सतत् जारी रखा।

आज समाज को ऐसे ही महापुरुषों की आवश्यकता है, जो समाज को अपनी कार्यकुशलता से उन्नति के पथ पर अग्रसर करते रहें। आपके अभाव से समाज में अपूरणीय क्षति हुई है।

❑

पं. परमानन्द शास्त्री

अन्वेषक, साहित्यकार, सम्पादक, चिन्तक एवं मनीषी पं. परमानन्द जी वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली से जुड़ा है। आपकी जन्मभूमि सिवाय ग्राम (जिला सागर है। आपने गोलापूर्व परिवार में सामान्य स्थिति के व्यक्ति श्री हरयावलाल जैन एवं माता श्रीमती मूलाबाई के गर्भ से श्रावण कृष्णा १९६५ को जन्म लिया। श्री काशीराम जी आपके अग्रज थे।

विद्यार्जन :

अपनी जन्मभूमि में ही आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर श्री दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय सागर से न्यायतीर्थ और न्यायशास्त्री तक शिक्षा की। अष्टसहस्री और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसी कृतियों के अध्ययन का सौभाग्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के चरणसानिध्य में बैठकर मिला।

गृहस्थाश्रम एवं कर्मक्षेत्र :

इन्द्रकुमारी के साथ विवाह कर आपने गृहस्थ जीवन का आरम्भ किया। आपने दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया।

सन् १९२९ से १९३५ तक खतौली, सलावा और शाहपुर की पाठशालाओं में विद्यार्थियों को शिक्षित किया। तदनन्तर सन् १९३६ में वीर सेवा मन्दिर सरसावा पहुंचे। वहां श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार का सत्सानिध्य और बाबू सूरजभान जी वकील की प्रेरणा से आपकी रुचि अध्ययन के साथ ऐतिहासिक एवं शोधपूर्ण लेखन की ओर अग्रसर हुई। सन् १९४० में आप वीर सेवा मन्दिर सरसावा से दरियागंज दिल्ली आ गये, तब से यहीं अपनी सेवाओं से समाज को उपकृत करते रहे।

साहित्यसेवा :

श्री शास्त्री जी ने साहित्यिकसेवा के रूप में लगभग ५०० से अधिक निबन्ध लिखे, जो जैनसिद्धान्त भास्कर तथा जैन सन्देश शोधांक जैसी शोधात्मक पत्रिकाओं में विशेष ख्याति के साथ प्रकाशित हुए।

मोक्षमार्गप्रकाशक, चिद्विलास, अनुभवप्रकाश, जैनग्रन्थ प्रशस्तिसंग्रह, जैन तीर्थयात्रासंग्रह, जिनवाणी संग्रह, पुरातन जैन वाक्य सूची, जैन परम्परा का इतिहास

आदि ग्रन्थों का सफल सम्पादन आपके यशोगान को विस्तृत करने वाला हुआ। एकीभावस्तोत्र, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश का अनुवाद एवं जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के प्रथम भाग का सहसम्पादकत्व विशेष उललेखनीय है। नेमिनाथपुराण और अर्थप्रकाशिका जैसी अनेक कृतियों पर आपकी खोजपूर्ण प्रस्तावनायें मननीय हैं।

जैन इतिहास एवं संस्कृति के मर्मज्ञ, साहित्यसेवी, शोधार्थियों के लिये प्रेरक एवं मार्गदर्शक अन्वेषी विद्वान् पं. शास्त्री जी का सन् १९९२ में देहावसान हो गया, परन्तु आपकी सेवा एवं साधना आज भी मील का पत्थर बनी हुई है।

❑

पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ

जैन जगत् के अग्रगण्य विद्वान्, गोलालारीय समाज के भूषण, समाजसुधारक, श्रेष्ठ सम्पादक, कुशल समीक्षक, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, ग्रन्थों के रचनाकार, अनुवादक एवं कार्यकर्त्ता रहे पं. परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ। आपका जन्म माघ शुक्ला तृतीया सं. १९६४ में महरौनी में हुआ था। पिताश्री सिंघई मौजीलाल जी। कुशल वैद्य एवं माता श्रीमती सगनाबाई थीं। कुछ समय उपरान्त आप सपरिवार ललितपुर आकर बस गये। उनके परिवार में तीन भाई और एक बहिन हैं।

ज्ञानार्जन :

पं. जी ने आरम्भिक शिक्षा महरौनी, मिडिल तक ललितपुर और तदुपरान्त साढूमल, मुरैना, जबलपुर और इन्दौर में धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। साथ ही शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण कर इन उपाधियों से विभूषित हुये।

गृहस्थजीवन में प्रवेश :

२३ वर्षीय होने पर पंडित जी का विवाह राष्ट्रभाषाकोविद कमलादेवी के साथ हुआ। जो सही अर्थों में सहयोगिनी बनीं। आप तीन पुत्र एवं दो पुत्रियों के पिता बने।

सेवाकार्य :

पण्डितजी के मन में धर्म और समाजसेवा की भावना थी जिसे उन्होंने साकार किया सूरत में। यहां जैनमित्र कार्यालय में सहयोगी सम्पादक के रूप में कार्य किया।

PDF Scanner ACE Scanner

वीरपत्र के आजीवन सम्पादक रहे। गजरथविरोध, मरणभोज, पर्दाप्रथा, दस्साओं के अधिकार, मुनिभेषियों का बहिष्कार जैसे आन्दोलन किए। दिगम्बर जैन पत्र-पत्रिकाओं के साथ श्वेताम्बर पत्रों में लेख छपे। शिवपुरी में प्रतिष्ठा एवं विद्वत्परिषद् रजत जयन्ती के उत्सव के स्रोत पंडित जी ही थे।

दिगम्बर जैन मुनियों के अप्रतिष्ठित विहार के सम्बन्ध में पण्डित जी महात्मा गांधी से मिले और मुनिचर्या पर पर्याप्त चर्चा की। इस चर्चा से प्रभावित हो उन्होंने यह प्रकाशित कराया कि ऐसे उच्चकोटि के दिगम्बर जैन साधुओं को कहीं भी नहीं रोका जावे।

राष्ट्रभाषा प्रचार :

पण्डित जी ने सूरत में राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल की स्थापना कर नि:शुल्क हिन्दी भाषा का अध्ययन कराया। आप राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के सदस्य भी मनोनीत हुये।

राष्ट्रसेवा :

महात्मा गांधी के साथ पण्डित जी ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया, फिर भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में हुये धरावणा के नमक आन्दोलन में भागीदारी की। सन् १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन में सपत्नीक सक्रिय भाग लिया।

परिणामस्वरूप पहले सूरत और बाद में साबरमती के जेल में भेजे गये, जहां साढे तीन माह कैद में रहे। यहां भी आपने भाषण दिये और कठिनाईयों व विरोधों के बावजूद भी राजनैतिक कैदियों को हिन्दी भाषा पढ़ायी। दिल्ली की विशाल सभा में आपने हरिजनों के मन्दिर प्रवेश का प्रस्ताव रखा। अनेक राजनैतिक विरोधों, सामूहिक बारों को रहते हुए भी प्रस्ताव पास कराया।

साहित्य सेवा :

पण्डितजी द्वारा रचित/अनुवादित लगभग २० कृतियां हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं - १. जैनधर्म की उदारता, २. चर्चासागर समीक्षा, ३. दानविचारसमीक्षा, ४. सुधर्मश्रावकाचार, ५. विजातीयविवाहमीमांसा, ६. मरणभोज, ७. दस्साओं का पूजाधिकार, ८. भगवान् महावीर और उनका सन्देश, ९. ज्ञानविचारसमीक्षा, १०. परमेष्ठी पद्यावली, ११. चारूदत्तचरित्र।

PDF Scanner ACE Scanner

अनूदित कृतियां हैं - १. समयसार परमागम, २. प्रवचनसार, ३. मोक्षशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र टीका, ४. समयसारप्रवचन, ५. मूल में भूल, ६. वस्तुविज्ञानसार। सम्पादित ग्रन्थ वात्सल्य जीवनगाथा है।

गुजराती भाषाभाषियों को हिन्दी सीखने के लिये रचित कृतियां हैं - १. हिन्दीभाषा प्रवेशिका, २. राष्ट्रभाषा प्रारम्भिनी, ३. हिन्दुस्तानी प्रवेशिका (पंचवटी परिचय)।

उपलब्धियां :

सन् १९२८ में कांग्रेस के सदस्य एवं राष्ट्रभाषा प्रचारक समिति के सदस्य रहे। वीर निर्वाण भारती द्वारा दिल्ली में सन् १९७४ में पण्डित जी को स्वर्णपदक एवं २५००/- रूपये के साथ 'समाजरत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया। आप सरकार द्वारा ताम्रपत्र तथा सम्मान निधि से सम्मानित थे।

लगभग सन् १९४३ में पण्डित जी ने सूरत से त्यागपत्र दे दिया और ललितपुर में आकर रहने लगे। यहां आपने 'वीर' पत्र का सम्पादन किया। धर्म, समाज और राष्ट्र की सेवा करते हुए आपने १२ जनवरी सन् १९७८ को ऐहिकलीला से विराम पाया। आपकी सेवा और सुकार्य सदैव इस धरा पर अमर रहेंगे।

❑

पं. फूलचन्द्र शास्त्री जखौरा

पण्डित श्री फूलचन्द्र जी एक कुशल अध्यापक विद्वान् लेखक, अनुवादक एवं कवि थे। पौष शुक्ला नवमी सं. १९६७ को ग्राम सिरगन (ललितपुर) में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री जानकीदास और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था, जिनके एक छोटा भाई श्री धर्मचन्द एवं एक बहिन हीरादेवी थी।

अर्जन :

श्री गोपालदास दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना से शास्त्री तक शिक्षा आपने प्राप्त की थी। आपके विद्यागुरु श्री पं. गोपालदास जी बरैया थे।

योग्यवय होने पर आपका परिणयसूत्र-बन्धन सौ. ललितादेवी से हुआ। जिनके दो पुत्र श्रीकुमार और राजकुमार हुए।

ACE Scanner
PDF Scanner

कार्यक्षेत्र एवं रचनायें :

शिक्षाप्राप्ति के अनन्तर पंडित जी ने अध्ययन-अध्यापन व
अपना कार्यक्षेत्र बनाया। बीना विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। वे
ही। इसलिए आपकी अधिकांश रचनायें पद्यात्मक हैं, जो इस प्रकार
जिनाष्टकावलिस्तोत्रम् - यह संस्कृत में चतुर्विंशति तीर्थंकरों के स्तवनात्म
हैं। इसमें प्रत्येक तीर्थंकर की महिमा एवं विशिष्ट गुणों के द्योतक ८-८ पद्य
अन्त में अनुष्टुप् छन्द में उपसंहार है। इसमें काव्य के सभी गुण समाहित हैं।
जी ने इसका हिन्दी पद्यानुवाद किया है तथा पं. अभयकुमार जी शास्त्री
भाषानुवाद कर काव्य के भावों को प्रेषणीय बना दिया है। स्तोत्र के अन्त में
तथा रचनाकाल का उल्लेख भी है।

२. नित्यनवदेवपूजा, ३. शीतलारिष्टनिवारक पूजा, ४. दक्षिण
लावनी, ५. शारदाष्टक जिनवाणी स्तुति, ६. गुर्वाष्टक आदि।

अध्यापन कार्य से मुक्त होते ही आपने जखौरा ग्राम को अपना निवास
बना लिया। यहां ही आपने जिनवाणी की सेवा एवं आत्मसाधना करते हुए महत्
का अवसर प्राप्त किया। अब आपकी स्मृतियां ही शेष हैं।

पं. फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री

पं. श्री कैलाशचन्द्र जी का यह कथन कि 'हम तो उन्हीं के अनुवादों
पढ़कर सिद्धान्तग्रन्थों के ज्ञाता बने हैं' तथा पं. जगन्मोहनलाल जी के ये शब्द 'उ
तो वे हमसे चार माह बड़े हैं परन्तु ज्ञान में तो सैकड़ों वर्ष बड़े हैं' से हमें पं. फूलच
सिद्धान्तशास्त्री के जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ व श्रेष्ठ विद्वान् होने का बोध हो जाता
पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री और पं. कैलाशच
सिद्धान्ताचार्य ये तीनों रत्नत्रयी के नाम से विख्यात रहे हैं, इन तीनों में ये प्रधान
थे।

११ अप्रेल सन् १९०१ को उत्तरप्रदेश के सिलावन (झांसी) में एक सामान्
परिवार में आपका जन्म हुआ। श्री दरयावलाल जी सिंघई आपके पिता एवं श्रीमती
जानकीबाई माता का नाम था। आप परवार जाति में उद्भूत हुए थे।

शिक्षा :

आरम्भिक शिक्षा जन्मभूमि के समीपस्थ खजुरिया ग्राम में प्राप्त की। मौसेरे भाई से तत्त्वार्थसूत्र और बहिन से जिनसहस्रनाम तथा भक्तामर वाचन का अभ्यास किया। आगे की शिक्षा के लिये सर सेठ हुकमचन्द दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, इन्दौर, श्री दिगम्बर जैन विद्यालय साढूमल एवं श्री गोपालदास दिगम्बर जैन विद्यालय मुरैना में अध्ययन कर शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की।

गृहस्थजीवन :

पं. जी ने पुत्रीबाई से परिणय कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। आपके एक पुत्र और तीन पुत्रियों ने जन्म लिया। आपके पुत्र श्री अशोककुमार जैन इंजीनियर हैं।

कर्मक्षेत्र :

अध्ययन के उपरान्त आप कर्मक्षेत्र में उतरे, तो साढूमल विद्यालय, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस और नाभिनन्दन दिगम्बर जैन विद्यालय बीना में अध्यापन का कार्य किया। तदनन्तर नातेपुते (महाराष्ट्र) में रहकर छह वर्ष तक साहित्यिक प्रवृत्ति में लीन रहे। जब विदिशा के श्रेष्ठि श्री लक्ष्मीचन्द जी जैन ने साहित्योद्धारक फण्ड की स्थापना की और षट्खण्डागम के सम्पादन और प्रकाशन की योजना बनाई तो आप डॉ. हीरालाल जी के सहायक बनकर सन् १९३७ से १९४० तक अमरावती में रहे। तत्पश्चात् बीना आ गये।

राष्ट्रीय सेवा :

देश की स्वतन्त्रता हेतु पं. जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया और सन् १९४१ में जेलयात्रा भी संपन्न की। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार आन्दोलन में भाग लिया और आजीवन खादी पहनी।

साहित्यसेवा :

पं. जी की यशस्वी लेखनी ने अनेक ग्रन्थ समाज के लिये समर्पित किये। जिनमें हैं - १. जैनधर्म और जाति व्यवस्था, २. विश्वशान्ति और अपरिग्रह, ३. जैनतत्त्वमीमांसा, ४. वर्ण, जाति और धर्म, ५. जैन तत्त्व समीक्षा का समाधान, ६. अकिंचित्कर एक अनुशीलन, ७. जयपुर खानियां तत्त्वचर्चा : भाग १-२. ९. परवार समाज का इतिहास।

PDF Scanner ACE Scanner

सम्पादित, अनूदित एवं टीका ग्रन्थों में - १. पमेयरत्नमाला, २. आलापपद्धति, ३. षट्खण्डागम का सह सम्पादन एवं अनुवाद, ४. गोम्मटसार का सम्पादन एवं अनुवाद भाग २-७, ५. कषायपाहुड भाग १-१६ का सम्पादन एवं अनुवाद, ६. सप्ततिकाप्रकरण, ७. तत्त्वार्थसूत्र सम्पादन एवं विवेचन, ८. सर्वार्थसिद्धि, ९. ज्ञानपीठ पूजांजलि, १०. समयसार कलश भावार्थ सहित सम्पादन, ११. श्री कानजी स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ, १३. सम्यग्ज्ञान दीपिका, १४. लब्धिसार-क्षपणासार, १५. ज्ञानसमुच्चयसार, १६. आत्मानुशासन : पं. टोडरमल की टीका का संपादन एवं प्रस्तावना।

आपकी सभी अनुवादित एवं सम्पादित कृतियां प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त आपने सन् १९३५-३७ तक 'शान्तिसिन्धु' आचार्य शान्तिसागर सरस्वती भवन नातेपुते सोलापुर तथा सन् १९४९-५२ तक 'ज्ञानोदय' भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी जैसी श्रेष्ठ पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इसके अलावा आपके लेख तो यदा-कदा प्रकाशित होते ही रहते थे।

संस्थापित संस्थाएं :

१. अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के आप अन्यतम संस्थापक तथा कार्यकारी प्रथम संयुक्तमन्त्री हैं। २. श्री सन्मति जैन निकेतन नरिया, वाराणसी के संस्थापक सदस्य एवं मन्त्री, ३. श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी के संस्थापक संयुक्त मन्त्री एवं ग्रन्थमाला सम्पादक, ४. श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन इंटर कालेज ललितपुर के संस्थापक एवं सदस्य, ५. अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के द्रोणागिरि अधिवेशन के अध्यक्ष, ६. श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन शोध संस्थान वाराणसी के संस्थापक आदि। इस तरह से पं. जी ने अपने जीवनकाल में कई संस्थाओं को जन्म देकर उनकी उन्नति की है।

सामाजिकक्षेत्र :

श्री शास्त्री जी आरम्भ से ही सामाजिक क्षेत्रों से जुड़े रहे। आपने सामाजिक आन्दोलनों द्वारा जैन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों तथा विषमताओं का विरोध किया। जिनमें दस्सा मन्दिर प्रवेश, गजरथ के नाम पर अनावश्यक खर्च तथा हरिजन मन्दिर प्रवेश बिल पर व्यापक विरोध किया। तभी पं. जी ने अपनी लेखनी से लिखा कि जैन संस्कृति एवं धर्म को वर्णव्यवस्था स्वीकार ही नहीं है।

PDF Scanner ACE Scanner

वर्णी इन्टर कालेज ललितपुर, दिगम्बर जैन गुरुकुल खुरई और अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन संस्थान शिरपुर तथा अन्य अनेक पारमार्थिक संस्थाओं की तोष वृद्धि में सहयोग प्रदान किया। अनेक विद्यार्थियों को भी आर्थिक सहायता दे या दिलाकर उनके विद्याध्ययन एवं जीवन निर्माण में सक्रिय भूमिका निभायी।

सम्मान/पुरस्कार :

सन् १९६२ में जैन सिद्धान्त भवन आरा की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में बिहार के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. अनन्तशयनम् अयंगार द्वारा आप सिद्धान्ताचार्य की उपाधि से विभूषित किये गये। सन् १९७४ में वीर निर्वाण भारती द्वारा तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. वी.डी. जत्ती के कर-कमलों से आपको 'सिद्धान्तरत्न' की उपाधि प्रदान की गयी। सन् १९८५ में आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के सानिध्य में इन्दौर में आयोजित समारोह में आपको वृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। सन् १९८७ में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासंघ द्वारा श्रीमहावीरजी में चांदी के प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया गया। प्रथम राष्ट्रीय प्राकृत सम्मेलन बैंगलोर में सन् १९९० के अवसर पर प्राकृत ज्ञान भारती पुरस्कार से अलंकृत किये गये। अखिल भारतवर्षीय मुमुक्षु समाज ने जयपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा १९९० के अवसर पर एक लाख रूपये की राशि से सम्मानित किया।

और अन्त :

स्वभाव से सरल, सादगी की प्रतिमूर्ति, निरहंकारी, उदारप्रकृति, परोपकारी, सहयोग में तत्पर, अनेक संस्थाओं के संस्थापक तथा उन्नयनकर्त्ता, राष्ट्र-समाज एवं साहित्य के कर्मठ सेवक एवं श्रेष्ठ वक्ता श्री पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने वृद्धावस्था एवं अस्वस्थता के कारण ३१ अगस्त सन् १९९१ में इस जगत् से विदा ले, अपने सजग एवं कर्मठ जीवन को जगत् को प्रेरणास्तम्भ रूप में स्थापित कर दिया।

❑

पं. बलभद्र जैन

साहित्याराधन द्वारा जीवन सार्थक करने की क्षमता विरले ही
है और उन विरलों में एक थे पं. श्री बलभद्र जी जैन। आपका जन्म
कुर्रीचितरपुर ग्राम में ८ मई सन् १९१६ को जमींदार एवं दीवान श्री
माता श्रीमती नेमप्यारी के परिवार में हुआ था। बड़े ही लाड-प्यार
संस्कारों के साथ आपका पालन-पोषण हुआ।

शिक्षा :

आरम्भिक शिक्षा ग्राम में ही प्राप्त कर पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी,
तथा संस्कृत विषयों की उच्च शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा प्राप्ति के
स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े और अनेक वर्षों तक देशसेवा में संलग्न रहे।

साहित्यसेवा :

देश स्वतन्त्र होने के उपरान्त आपने साहित्यसृजन एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं
का सम्पादन ३१ वर्षों तक किया। आपकी प्रमुख कृतियों में - १. भारत के दिगम्बर
जैन तीर्थ भाग १-५, २. अहिंसा दर्शन, ३. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग १,२,
जैनधर्म का सरल परिचय, ५. परमोपकार मन्त्रकल्प, ६. मधुरमिलन (कहानीसंग्रह)
आदि के नाम गणनीय हैं।

सम्पादित कृतियों में - १. समयसार, २. नियमसार, ३. रयणसार, ४.
बारसाणुवेक्खा, ५. अष्टपाहुड, ६. द्रव्यसंग्रह आदि का सम्पादन आचार्य देशभूषण
एवं आचार्य विद्यानन्द जी के सानिध्य में किया।

दैनिक सन्देश, साप्ताहिक जैन सन्देश, पाक्षिक जैसवाल, दिव्यध्वनि एवं
प्राकृतविद्या जैसी लोकख्यात पत्रिकाओं का सम्पादन तथा उनमें शोधपूर्ण लेखों का
आलेखन आपने किया।

समाजसेवा के अवसर :

अपने जीवनकाल में अनेक संस्थाओं से जुड़े रहने वाले पण्डित जी ने महत्त्वपूर्ण
पदों पर रहकर समाज एवं देश के उत्थान में सराहनीय योगदान किया। भारतवर्षीय
दिगम्बर जैन संघ मथुरा एवं कुन्दकुन्द भारती दिल्ली से आप अनेक वर्षों तक सक्रिय
रूप से जुड़कर कार्य करते रहे।

बड़े पुत्र की केंसर में मृत्यु होने के उपरान्त आप इतने अधिक टूट गये थे कि घर-संसार में उदासीभाव छा गया था। इसी अस्वस्थता के कारण ८३ वर्ष की अवस्था में २४ मई सन् १९९९ को आपका देहावसान हो गया।

जैनदर्शन, साहित्य और पुरातत्त्व के प्रकाण्ड विद्वान्, सिद्धहस्त लेखक ओजस्वी वक्ता एवं जागरूक पत्रकार के रूप में समाज ने एक सिपाही को सदा-सदा के लिए खो दिया, किन्तु आपकी याद आज भी अश्रुविगलित कर देती है।

❑

बाबगोंडा भुजगोंडा पाटील

महाराष्ट्र प्रान्त में समाजसेवा एवं सुयश के कार्यों के लिए एक सुख्यात नाम है बाबगोंडा। जिन्होने आचार्य शान्तिसागर जी महाराज की दीक्षास्थली ग्राम समडोली (सांगली) में दिनांक १२ दिसम्बर सन् १८८० को जन्म पाने का अवसर पाया। आपके पिता श्री दादा भुजगोंडा पाटील एवं मां रुक्मणीबाई गांव के सम्पन्न एवं धार्मिक संस्कारों से समृद्ध प्रतिष्ठित नागरिक थे।

ज्ञानार्जन :

सांगली में आपने प्रारम्भ से लेकर मेट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद इस कुशाग्र बुद्धि संपन्न बालक को उच्च शिक्षा हेतु बम्बई के विल्सन कालेज में भर्ती कराया गया, जहां से आपने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। यहां आपने अर्थशास्त्र एवं इतिहास विषय में विशिष्ट योग्यता हासिल की। बाद में सन् १९२० में एल. एल. बी. की परीक्षा पास कर ली, किन्तु वकालात का कार्य नहीं किया।

दायित्ववहन :

आपने परिवारगत पारम्परिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए अनाज के व्यापार व आढतिया का कार्य किया। आपका भरापूरा परिवार इसी आय से संतोष व शान्ति का आहार-पानी ग्रहण करता था।

समाजसेवा :

महाराष्ट्र प्रान्त की आज दिखने वाली विशिष्ट संस्थाओं के प्रारम्भ होने में

PDF Scanner ACE Scanner

आपका योगदान कहीं न कहीं अवश्य ही छिपा है। आपने रत्नाकर बैंक, [illegible] संस्थान और लट्ठे एज्युकेशन सोसायटी जैसी अनेक संस्थाओं की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके साथ आपने व्यवसायिक क्षेत्र में अग्रगण्य [illegible] रत्नाकर प्रोडक्टस् लिमिटेड की भी स्थापना की।

साहित्यजगत :

आप एक अच्छे समाजसेवी ही नहीं थे अपितु आपने तत्कालीन आवश्यकताओं के आधार पर धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन कर उसके मर्म को पहचाना और उससे जनसामान्य को लाभान्वित करने के लिए अनेक रचनाएं की। आपके द्वारा लिखी गयी इतिहास विषयक पुस्तकें तो दस्तावेज से कम नहीं हैं, जिनका कभी भी मूल्य कम नहीं होता।

आपकी प्रमुख रचनाओं में ऐतिहासिक जैन वीर, दक्षिण भारत जैन व जैनधर्म, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, महावीर वाणी, रायबाग दुबिनबागे, अहिंसा, जैन हे हिन्दू नव्हेत, भगवान् महावीरांचे महावीरत्व; सम्राट खारबेल आदि समाज के लिए विशेषतया हितकारी हैं।

इसके साथ ही आप एक कुशल एवं ओजस्वी सम्पादक थे। आपने सन् १९२४ से १९४६ तक 'जिनविजय' जो कि अब प्रगति आणि जिनविजय बन गया है, का सफल सम्पादन किया और उसे समाज में काफी लोकप्रिय बनाया।

अन्तिम बेला :

इस निष्काम साहित्य व ऐतिह्य साधक ने समाज को जितना अधिक उपकृत किया है उसका शतांश भी उऋण करने में समाज कदापि समर्थ नहीं है। अहर्निश साधना से कभी विराम न लेने वाले इस इतिहासपुरुष ने सन् १९५५ में अपनी उज्ज्वल चांदरिया को ज्यों का त्यों छोड़कर महाप्रयाण किया। आपके प्रशंसक आज भी आपकी याद में अश्रुविगलित हो जाते हैं।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. बाबूलाल जैन 'जमादार'

समाजोद्धारक, श्रेष्ठ साहित्यकार, ओजस्वी वक्ता, निर्भीक चिन्तक, धर्म और संस्कृति के संरक्षक के रूप में पं. श्री बाबूलाल जी जमादार लब्धख्यात हैं। २२ अप्रेल सन् १९२२ को ललितपुर में जमींदार एवं प्रतिष्ठित उद्योगपति श्री फुन्दीलाल जी एवं श्रीमती रामप्यारीबाई के सुपुत्र के रूप में जन्म हुआ। आपके दो अग्रज छोटेलाल एवं रतनचन्द और तीन बहिनें थीं।

शिक्षा :

आरम्भिक धार्मिक तथा माध्यमिक तक की शिक्षा आपने ललितपुर में प्राप्त की। अनन्तर सेठ हुकमचन्द विद्यालय इन्दौर से विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। जम्बू विद्यालय सहारनपुर से स्वाध्यायी विद्यार्थी के रूप में साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त की। अध्ययनकाल में आप शिक्षणेतर गतिविधियों में जैसे कुश्ती, तैराकी और भाषण आदि कलाओं में अग्रणी रहे और अनेक पुरस्कारों को प्राप्त किया।

गृहस्थाश्रम एवं सेवाकार्य :

सन् १९४२ में श्री आनन्दीलाल जैन मानौरा की सुपुत्री दक्खीदेवी के साथ दाम्पत्यजीवन आरम्भ किया। सात पुत्र और एक पुत्री के पिता के रूप में अपनी संतान को उच्चशिक्षा से योग्य एवं सफल जीवनभोगी बनाया।

समाज की शिक्षा संस्थाओं में शिक्षक एवं गृहपति के कार्य से सेवाकार्य आरम्भ कर अपनी अनुपम सेवायें अनेक विद्यालयों एवं संस्थाओं को प्रदान कीं। सन् १९५४ से १९७१ तक दिगम्बर जैन कालेज बडौत में धर्म और संस्कृति विभाग के अध्यक्ष रहे। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के संयुक्त मन्त्री व मन्त्री के पद पर जो सेवायें कीं वे सदैव अविस्मरणीय हैं। इसके साथ अनेक अन्य संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहकर उनके मन्त्री और संयोजक रहे।

साहित्यसेवा :

श्री जमादार जी ने अनेक कृतियों की रचना कर साहित्य भण्डार में वृद्धि की। आपकी कृतियां हैं - १. प्रतिज्ञा नाटक, २. मां और ममता, ३. आचार्य नेमिसागर चरित्र, ४. हस्तिनापुर गौरव, ५. कर्त्तव्यशील युवक, ६. समाज दर्पण, ७.

PDF Scanner ACE Scanner

ते गुरु मेरे उर बसो, ८. आर्यिका, ९. उत्थान-पतन, १०. लेखा-जोखा, ११. सराक बन्धुओं के बीच, १२. भक्तामरस्तोत्र पद्यानुवाद, १३. प्राच्य जैन सराक शोधकार्य, १४. जैन संस्कृति के विस्मृति प्रतीक, १५. जैनियों ने कभी मांग नहीं की, १६. जैन गणना सूची : तीन भागों में, १७. श्रावकदर्शन सराक धर्म, १८. श्री सम्मेदशिखर गौरव, १९. खण्डगिरि उदयगिरि गौरव, २०. सराक हृदय। इनके अतिरिक्त आपकी प्रेरणा से शास्त्री परिषद् द्वारा ८६ ट्रेक्ट प्रकाशित हो सके।

सराकोद्धारक :

आपने पूर्वीभारत के पिछड़े विस्मृत धर्मबन्धुओं, सराक, रंगिया, त्गोप आदि जातियों को धर्मपरिवर्तन कराकर उन्हें पुनः धर्म में दीक्षित करने का भरसक प्रयास किया। उनकी स्थिति का अध्ययन किया। इन बन्धुओं से सम्पर्क कर सही बोध कराया और उन्हें जैनधर्म की दीक्षा दी। वहां के अनेक विध्वंस मन्दिरों का जीर्णोद्धार तथा नये जिनालयों का निर्माण कराया। इस प्रकार सराक बन्धुओं का स्थितीकरण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

श्रेष्ठ प्रवचनकार :

आप कुशल अध्यापक व विद्वान् के साथ प्रभावक प्रवचनकार थे। आपकी वाणी में सिंह की-सी गर्जना होती थी। उनका प्रत्येक प्रवचन/भाषण विद्वत्तापूर्ण आकर्षक तथा श्रोताओं को बांधे रखता था। श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने की उनमें क्षमता थी। उनकी वाणी में लालित्य, प्रसाद गुण एवं ज्ञान का रस मिला रहता था।

उपाधि/सम्मान :

आपकी अनुपम सेवाओं से प्रभावित हो भारत के कोने-कोने से सैकड़ों अभिनन्दन पत्र आपको सम्मान में दिये गये। आप 'वाणीभूषण', 'पण्डितरत्न', 'व्याख्यानवाचस्पति', 'समाजरत्न', 'समाजविभूषण', 'विद्वान् हृदय' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित हुये। आपके सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ था।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. बारेलाल राजवैद्य

आपका जन्म टीकमगढ जिला के ग्राम समर्रा में दिनांक १ मार्च १९०५ को हुआ था आपके पिता श्री भगवानदास थे। शिक्षा के क्षेत्र में आपने चिकित्सा एवं ज्योतिर्विज्ञान में प्रवीणता हासिल की, देव-शास्त्र-गुरु में अडिग आस्था थी।

शिक्षा :

आरम्भिक शिक्षा वीर दिगम्बर जैन विद्यालय, पपौरा में हुई। तदनन्तर स्वाध्यायी छात्र के रूप हो टीकमगढ रियासत में मान्यता प्राप्त राजवैद्य की उपाधि हासिल करने के बाद आप ज्योतिषाचार्य व प्रतिष्ठाचार्य के रूप में भी मान्यता प्राप्त हो गये। यही शिक्षा आपकी आजीविकोपार्जन का साधन बन गयी।

परिवार :

'सादा जीवन उच्च विचार' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले पं. राजवैद्य जी पवित्र आचरण से जीवन में विरागता को प्रश्रय देते थे। आपको विवेकमय जीवन के साथ संस्कारों की धरोहर एवं समाजविज्ञान का ज्ञान विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था। इसी के कारण आपके पुत्रों में डॉ. कपूरचन्द, पं. बाबूलाल, डॉ. राजेन्द्रकुमार, जयकुमार शास्त्री, देवेन्द्रकुमार व डॉ. सुरेन्द्रकुमार के नाम से ६ पुत्र हुये, जो कि पैतृक गुणों से सम्पन्न एवं सामाजिक व धार्मिक कार्यों में अग्रणी रहे।

साहित्यिक अवदान :

आपने अपने जीवन काल में मां जिनवाणी की सेवा करते हुए काव्यग्रन्थों के सृजन की ओर प्रगति की, जिनमें अंजनचोरचरित्र, वारिषेणचरित्र व अहारक्षेत्र स्तोत्र जैसे काव्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही आपने प्रतिष्ठा तथा व्रतविधान सम्बन्धी संग्रह ग्रन्थों का संकलन का ज्योतिषरत्नाकर जैसी कृतियों के द्वारा जैन साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि की।

सामाजिक अवदान :

सन् १९२९ से तीर्थक्षेत्र अहार के ५३ वर्षों तक मन्त्री पद पर सेवारत रहे। आपके कार्यकाल में मन्दिरों का सुधार, निर्माण, विद्यालय, संग्रहालय, सरस्वती भवन, व्रती आश्रम, महिलाश्रम आदि की स्थापना तथा भगवान शान्तिनाथ जिनालय

के जीर्णोद्धार के साथ त्रिकाल चौबीसी व विद्यमान बीस तीर्थंकरों की स्थापना का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। आपने अहार क्षेत्र की जिस समर्पण भाव से सेवा की वह आपकी श्रेष्ठतम साधना से कथमपि कम नहीं कही जा सकती। आपके ही प्रयासों का सुफल था कि सन् १९८२ में भगवान शान्तिनाथ स्वामी का अष्टशताब्दी महामस्तकाभिषेकोत्सव का भव्यता पूर्ण आयोजन हो सका।

विरागता की ओर :

आपने अपने जीवन में व्रतों को महत्त्व देते हुए उनका आचरण करने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया। सद्गृहस्थ का जीवनयापन करते हुए जिनवाणी की आराधना के फलस्वरूप समता पूर्वक १७ अगस्त ८१ को इस नश्वर शरीर का परित्याग करते हुए महाप्रयाण किया।

बालचन्द्र जैन पुराविद्

जैनमन्दिरों और मूर्तियों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदानकर्ता श्री बालचन्द्र जी का जैन समाज में गौरवपूर्ण स्थान है। गोरखपुरा (बड़ा मलहरा), जिला छतरपुर में स्व. श्री गोलेलाल जी सिंघई केघर सन् १९२६ को आपका जन्म हुआ था पितामह द्वारा ग्राम गोरखपुरा में शिखरबन्द मन्दिर का निर्माण कराने के परिणामस्वरूप सिंघई की पदवी से विभूषित हुये थे।

विद्याभ्यास :

सन् १९३७ में जैन शिक्षा संस्था कटनी से विशारद, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस से धार्मिक शिक्षा शास्त्री तथा साथ ही गवर्न्मेन्ट संस्कृत कालेज की शास्त्री और एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व) शिक्षा सन् १९४८ में प्राप्त की। सन् १९५८-५९ में प्रिंस आफ बेल्स म्यूजियम बम्बई से संग्रहालय विज्ञान में ट्रेनिंग ली।

दाम्पत्यजीवन :

चमेलीबाई का पाणिग्रहण कर आपने निजघर में संसार बसाया। तीन पुत्रों

और दो पुत्रियों ने जिसे आनन्द से भर दिया। सन् १९५२ तक साधूराम हाईस्कूल कटनी में संस्कृत शिक्षक के पद पर फिर महाकौशल महाविद्यालय जबलपुर में इतिहास के व्याख्याता के पद पर सेवाएं प्रदान की। एक वर्ष बाद केन्द्रीय संग्रहालय नागपुर में पुरातत्त्वीय सहायक के रूप में नियुक्त होकर दो वर्ष तक कार्य किया। अनन्तर पदोन्नति कर रायपुर संग्रहालय में क्यूरेटर के पद का कार्यभार संभाला। सन् १९६२ में म.प्र. उपसंचालक पद पर पहुंचे। इस पद को लगातार गौरवान्वित करते हुए इसी पद से आप सेवानिवृत्त हुए।

धर्म-साहित्यसेवा :

पुरातत्त्व विभाग में कार्य करते हुये जैन संस्कृति के प्रतिमानों का अन्वेषण कर उन्हें प्रकाश में लाने वालों में आपकी महनीय गणना की जाती है।

'जैनप्रतिमा विज्ञान', 'छत्तीसगढ का इतिहास' और 'छत्तीसगढ के उत्कीर्ण लेख' आपकी उल्लेखनीय कृतियां हैं। पुरातत्त्व तथा प्राचीन मुद्राशास्त्र विषयक आपके अनेक आलेख 'एपिग्राफिया इण्डिका' और 'जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री' आदि लब्धप्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे।

'कला' (मासिक पत्रिका) कटनी और 'जनरल आफन्यूमिस्टमेटिक सोसाइटी आफ इण्डिया' कृतियों के आप सम्पादक रहे हैं। 'स्वर्णांचल माहात्म्य' आपकी अनुवादित कृति है। स्तरीय पौराणिक कहानियों का लेखन भी किया है जो 'आत्मसमर्पण' के नाम से संकलित व प्रकाशित हुआ है। आप कवि भी थे। आपका 'राजुल' खण्डकाव्य और अनेक समीक्षात्मक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मुद्रित होते रहे हैं।

उपलब्धियां :

'साहित्य साधना समिति' काशी के संस्थापक और 'कला' मासिक के संस्थापक रहे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देकर उन्होने राष्ट्रसेवा भी की है।

इस प्रकार धर्म और संस्कृति के सेवक श्री बालचन्द्र जी का सन् १९९४ में निधन हो गया, पर उनकी स्मृतियां आज भी शेष हैं।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

मात्र पुरस्कार ही विद्वत्ता, कला और साहित्य की कसौटी नहीं हो सकती। अपितु प्रशंसनीय भावों को प्रकट करने के लिये 'पुरस्कार' एक साधन मात्र है। ऐसे एक विशिष्ट साधक एवं मनीषी, जिनका गौरव सम्पूर्ण जैन जगत् के लिये गरिमामय अनुभूति कराने में सक्षम है, ने झांसी जिला के सौंरई ग्राम में संवत् १९६२ को श्री अच्छेलाल एवं श्रीमती उजयारीबाई के घर जन्म ले इस धरा को पूज्यता प्रदान की। चूंकि सौंरई ग्राम बुन्देलखण्ड के उस क्षेत्र से सम्बन्धित है जहां डाकूओं का आतंक पूरे शोरसराबे पर रहा है। इसी के चलते आपके पिता को परिवार सहित हंडुवा जिला सागर में आने के लिए विवश होना पड़ा था। इस सब सुरक्षा के बाद भी होनी को कौन टाल पाया है ? आपको मात्र ४ वर्ष और ९ माह के अन्तराल में १२ वर्ष की अवस्था में माता-पिता दोनों के वात्सल्य से वंचित होना ही पड़ा।

शिक्षा :

१९२१ से २८ तक स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में रहकर आपने नव्यन्याय, जैनन्याय, धर्म शास्त्री, सिद्धान्तशास्त्री आदि की परीक्षायें उत्तीर्ण की। पं. वंशीधार जी व्याकरणाचार्य बीना आपके काका जी एवं पं. दरबारीलाल जी कोठिया आपके चचेरे भाई होने से उनके संसर्ग में आप जीवनभर अनेक अनुभवों से शिक्षित व परिपक्व होते रहे।

कार्यक्षेत्र :

शिक्षा समाप्त होने के बाद जीवन निर्वाह हेतु आपने सन् १९२८ से १९४० तक जारखी, आगरा, गुना, मथुरा और उज्जैन में अध्यापन का कार्य किया। पश्चात् सन् १९४० से धवला ऑफिस अमरावती और जीवराज जैन ग्रन्थमाला सोलापुर में ग्रन्थ सम्पादन, अनुवाद व प्रस्तावना लेखन आदि के कार्य में अपने समय का सही उपयोग किया।

साहित्यिक सेवा :

सोलापुर में ग्रन्थ सम्पादन का कार्य करते हुए आपने कई महत्त्वपूर्ण शोधपरक निबन्ध 'अनेकान्त' जैसी पत्रिका में प्रकाशित कराये। आपके सम्पादन व अनुवाद से - षट्खण्डागम (धवलाटीका सहित) भाग ६-१६, तिलोयपण्णत्ती भाग १-२,

PDF Scanner ACE Scanner

जंबुदीपपण्णत्ती, आत्मानुशासन, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, लोकविभाग, पुण्यास्रवकथाकोश, ज्ञानार्णव, धर्मपरीक्षा, जैन लक्षणावली (जैन पारिभाषिक शब्दकोश) भाग १-३, ध्यानशतक एवं ध्यानस्तव, श्रावकप्रज्ञप्ति, सुभाषितरत्नसन्दोह और षट्खण्डागम परिशीलन आदि ग्रन्थ जैन जगत को मिल सके।

सामाजिकगतिविधियां :

आपने सन्मति साहित्य सभा सोलापुर के एक वर्ष तक अध्यक्ष एवं मराठी रामायण प्रकाशन समिति, सोलापुर के २ वर्ष तक सदस्य के रूप अपनी अमूल्य सेवायें समाज को प्रदान की।

उपलब्धियां :

'लोकविभाग' ग्रन्थ के सफल सम्पादन व अनुवाद पर आपको भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी का विशेष पुरस्कार, स्वर्णपदक व 'धर्मदिवाकर' की उपाधि से अलंकरण करते हुये ८ मई १९६८ को भेंट किया गया था। वीर निर्वाण भारती मेरठ द्वारा १९७४ में आपको 'रजत प्रशस्ति पत्र' प्रदान कर सम्मानित किया गया। १९८० में जैन समाज सागर द्वारा सिद्धान्तभूषण की उपाधि एवं १९८३ में पद्मश्री सुमतिबाई शहा विद्यापीठ ट्रस्ट सोलापुर द्वारा प्रशस्तिपत्र देकर सम्मान किया गया। सन् १९८५ में दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् एवं दिगम्बर जैन महासमिति जैसी अनेक संस्थाओं के द्वारा आपका गौरव संवर्द्धन किया गया। किन्तु इन सब सम्मान और गौरव के बीच भी सदा इनसे अलिप्त रहे।

जीवराज जैन ग्रन्थमाला सोलापुर एवं वीर सेवा मन्दिर दरियागंज दिल्ली आदि के माध्यम से पं. जी ने जैन साहित्य के संवर्द्धन व प्रसार की जो महती सेवा की है वह वस्तुतः उनके जीवन की तपस्या का प्रतिफल ही है। आपने अपने ज्ञान को जैनदर्शन के विकास और उन्नयन हेतु समर्पित कर समाज से कभी उऋण न होने जैसा कार्य किया है।

बिहारीलाल जैन 'चैतन्य'

साहित्य की अनेक विधाओं में दक्षता एवं प्रामाणिकता हासिल करने वाले व जन्मत: अपने नाम को धन्य करने वाले थे श्री बिहारीलाल 'चैतन्य'। आपका जन्म तत्कालीन आगरा के बुलन्दशहर नगर में १५ अगस्त सन् १८६७ को हुआ था। आपके पिता श्री लाला देवीदास जी एवं मां श्रीमती रामदेवी के नाम से सुख्यात थीं। आप परिवार में एक मात्र पुत्र थे। आपके अलावा एक बहिन थी, जो कि राजधानी दिल्ली में विवाही गई थी।

विद्याध्ययन :

आपका विद्याभ्यास पांच वर्ष की अवस्था में शुभमुहूर्त के साथ आरम्भ किया गया था। सन् १८८४ में आपने उर्दू से मिडिल पास कर ली थी। किन्तु इसी वर्ष आपके पिता ने सम्पूर्ण परिवार से विदा ले ली, जिससे आपके ऊपर सारी जिम्मेवारियां आ पड़ी और अध्ययन में विराम लग गया। बाद में छात्रवृत्ति एवं ट्यूशन के सहारे आपने परिवार के पोषण के साथ शिक्षाक्रम जारी किया और सन् १८८९ में मिडिल तथा सन् १८९१ में फारसी भाषा के साथ ऐंट्रेस की परीक्षा उत्तीर्ण की।

लौकिक शिक्षण लेने के बाद आपने महसूस किया हिन्दी भाषा का ज्ञान न होने के कारण आपको धार्मिक ज्ञान प्राप्त कर पाने में कठिनाई हो रही है। अत: आपने हिन्दी व साथ में धर्मशास्त्रों का अभ्यास किया। सन् १८९२ से नित्य स्वाध्याय का नियम लेने से कुछ वर्षों में पर्याप्त धार्मिक ज्ञान अर्जित कर लिया।

आजीविका एवं पारिवारिकदायित्व निर्वहन :

सन् १८९१ में ऐंट्रेंस पास होने के दो वर्ष बाद कलेक्टर आफिस में कार्य करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद आपने शिक्षक की सर्विस को अच्छा समझ कर अध्यापकी का जो कार्य किया वह निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ३० जुलाई सन् १९२५ को सेवामुक्त होने पर ही समाप्त हो सका।

आपने कस्बा जेवर निवासी श्री लाला रामभरोसे की सुपुत्री श्रीमती सूर्यकला के साथ अक्टूबर सन् १८८४ में वाग्दान कर फरवरी सन् १८८९ में विवाह कर आजीवन बन्धन को स्वीकार कर लिया। लेकिन इस सब के बाद भी आपको २४ वर्ष

तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में कहीं कोई बाधा नहीं आ सकी। आपने दो पुत्र एवं दो पुत्रियों को इस धरा पर अवतरित होने में सहयोग किया।

साहित्यार्चना :

मिडिल पास करने के पूर्व ही आपमें साहित्यरुचि स्पष्ट होने लगी थी। तब आप आवश्यक नोट्स तैयार करने लगे थे, जो समय पर काम भी आते और सुरक्षित भी रह जाते थे। गणित में सर्वाधिक रुचि होने के कारण आपका सर्वप्रथम लिपिबद्ध होने वाला उर्दू ग्रन्थ था 'तशरीहुल मसाहत', जो कि बाद में नार्मल स्कूल एवं हाई स्कूलों के लिए टेक्सबुक के रूप मान्य हो गया।

आपके द्वारा रचित अन्य साहित्य में प्रमुखतया ये नाम लिये जा सकते हैं - दीवाचा हनुमानचरित्र (पांच भाग), हफ्तजवाहर (तीन भाग), रोमन उर्दू, अनमोल बूटी, दवामीजंत्री, खलासा फनेजराअत, अनमोलकायदा, हकीम अफलातून, फ दिजहर(तीन भाग), जमीमा अनमोल बूटी, भोजप्रबन्ध नाटक, गंजीनए मालूमात, इलाजुल अमराज, हकीम अरस्तू, नशीली चीजें, मॉडर्नमेंटल अरिथमेटिक और अनमोल कायदा आदि मौलिक रचनायें थी।

आपने मौलिक लेखन के साथ आवश्यकता के अनुकूल पुरातन ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद भी किया। इनमें ये नाम गण्य हैं - भर्तृहरि शतकत्रय, सीताजी का बारहमासा, योगसार, चाणक्यनीति दर्पण, जैन वैराग्यशतक, सुदामाचरित्र, वैराग्यकुतूहल नाटक, हनुमानचरित्र, अनमोल बूटी, उपयोगी नियम, अग्रवाल इतिहास, हिन्दी साहित्य अभिधान (अनेक भागों में), जैनधर्म के विषय में अजैन विद्वानों की सम्मतियां (दो भाग), प्रकीर्णक कविता संग्रह, जम्बूकुमार नाटक, मनोरंजक नाटक, आश्चर्यजनक स्मरणशक्ति, विज्ञानार्कोदय नाटक, विश्वालोचन आदि।

समाज सेवा :

समाज सेवा के नाम पर आपने अनेक संस्थाओं की स्थापना के साथ उनके सुचारु रीत्या संचालित होने के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अनेक ज्ञानवर्द्धक पाठशालाएं व औषधालयों का निर्माण कराया। इसके साथ ही आपने समाज में नवीन चेतना जगाने के लिए अनेक पत्रों के सम्पादन का कार्य भी बखूबी किया।

आपने अन्त तक अत्यन्त अल्पाहार ग्रहण करते हुए मां जिनवाणी एवं साहित्य भण्डार की जो वृद्धि की वह अन्य के लिए संभवतया असंभव ही है। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री (प्रथम)

श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री जी दक्षिण भारत के ऐसे श्रेष्ठतम विद्वानों में से हैं जिन्होंने धर्म और साहित्य की सेवा के लिये अपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया। पर उनके लौकिक जीवन के बारे में कहीं कोई उल्लेख तक उपलब्ध नहीं होता।

बीसवी सदी के आरम्भ में श्रवणबेलगोला में धर्मसिंहासनालंकृत स्वस्ति श्री शान्तराज स्वामी जी के आप समकालीन थे। इनके पूर्वज तमिलनाडु से श्रवणबेलगोल में आकर बस गये थे। आपकी ज्येष्ठ पुत्री का विवाह आगम के अध्येता विद्वान् इन्द्रकुमार शास्त्री के साथ हुआ था। श्री दौर्बली जिनदास शास्त्री इनके एक मात्र पुत्र थे। वे भी इनके ही समान प्रसिद्ध विद्वान् बने।

बहुभाषाविद् :

आप कन्नड, तमिल, प्राकृत, संस्कृत एवं देवनागरी भाषा के विशेषज्ञ थे। उन्होने प्राकृतभाषा के धवल ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में परिवर्तित किया और उसकी लेखन सम्बन्धी गल्तियों को संशोधित कर सुरक्षित किया। यह कथन उनके वंशज के परिवार में रखी हुई सुरक्षित 'षट्खण्डागम' भाग १ की पीठिका में उल्लिखित है।

साहित्य सृजन :

स्वस्ति श्री शान्तराज स्वामी जी के पूर्वजों ने परभाषा के पाण्डित्य को प्राप्त कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था। चतुर्विंशति तीर्थंकरों के आराधन ग्रन्थों को उनके द्वारा रचा गया, ऐसा कहा जाता है। तमिललिपि में ताडपत्रों पर अनेक ग्रन्थों की रचना भी की। आप अनेक ग्रन्थों के रचनाकार थे, जो अभी भी अप्रकाशित हैं। इन ग्रन्थों की तालिका तैयार कर प्राच्य संशोधन संस्था ने उसकी माइक्रो फिल्म बनाई है। भगवान श्री गोम्मटेश्वर शताष्ट नामावली ग्रन्थ भी आपके द्वारा ही रचा गया था। इसका प्रमाण ग्रन्थ के इस कथन से मिला है कि 'ब्रह्मसूरि भूरि सुखीभवेत्'।

श्री शास्त्री जी की विद्वत्ता और गौरव से मात्र श्रवणबेलगोल ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष गौरवान्वित हुआ है।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ

परम्परा की चादर ओढ़े मानव भविष्य के रंगीन सपनों की नगरी में सैर करके भी अपने आपमें सुरक्षात्मक महसूस करता है। क्योंकि परम्परा का सुरक्षा कवच उसे मानवीयता के दायरे में बांधे रखता है। विरासत में मिले संस्कार उसे मानवीयता का परिचय कराते हैं, और वह सम्पूर्ण जीवन मानवीयता के लिये समर्पित कर देता है।

मानवीयता के लिये समर्पित एक ऐसा व्यक्तित्व जो पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था, संवत्१९७२ में जयपुर नगरी में पैदा हुआ था। पिता श्री गेंदीलाल भांवसा जयपुर के प्रसिद्ध संगीतज्ञों में गण्य थे। उनकी गोद में गुनगुनाती हुई स्वर लहरियों के बीच बचपन को व्यतीत कर आपने युवा अवस्था में प्रवेश किया।

साहित्य सेवा :

जयपुर नगर के प्रसिद्ध विद्वान्, पत्रकार, लेखक एवं कुशल वक्ता के रूप में पहचाने जाने वाले पं. न्यायतीर्थ जी ने ३० वर्षों से अधिक समय तक 'वीरवाणी' का कुशलता पूर्वक सम्पादन किया। इसके पूर्व आप जैनबन्धु तथा जैनहितेच्छु के भी सम्पादक रहे। संयमप्रकाश एवं बनारसीविलास जैसे उपयोगी ग्रन्थों का सम्पादन आपकी बौद्धिकयोग्यता के प्रमाण हैं। जयपुर के जैन दीवानों पर लेखमाला के रूप में आपके द्वारा लिखित खोजपूर्ण सामग्री प्रकाशित हो आपके श्रम को दर्शित करने में समर्थ रही है।

आप अनेक वर्षों तक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष आदि अनेक पदों पर सेवारत रहे। साहित्य सेवा के साथ समाजसेवा के लिए पं. जी वीरनिर्वाण भारती मेरठ द्वारा 'समाजरत्न' की उपाधि से सम्मानित हुए थे।

❑

श्री भगवत्स्वरूप 'भगवत्'

यशस्वी साहित्यकार, कविरत्न पुण्यश्लोक थे श्री भगवत्स्वरूप जी जैन 'भगवत्'। आपका जन्म फरिहा (मैनपुरी) में संवत् १९६७ को हुआ था। इनके पिता श्री लाला मनीरामजी जैनधर्म के दृढश्रद्धानी विद्वान् तो थे ही, बूरे-बतासे के प्रसिद्ध

PDF Scanner ACE Scanner

व्यापारी भी थे। पद्मावती पुरवाल जैन समाज द्वारा आपको अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। आपका एक अनुज था लक्ष्मणस्वरूप।

ज्ञानोपसना :

बाल्यकाल में प्रथम कक्षा बहुत पढ़ाने पर भी उत्तीर्ण न कर सके। यह अलग बात है कि आपका क्षयोपशम, सूझबूझ व स्मरणशक्ति या शब्दों की पकड़ तीव्र थी। एक बार सुनने पर ही वह शब्द आपके मस्तिष्क में जीवनपर्यन्त के लिए कैद हो जाता था। सं. १९८६ में पं. जोखीराम जी शास्त्री के प्रयास से यहां की बन्द पाठशाला पुन: आरम्भ हुई, जहां आपने विधिवत् अध्ययन किया।

गार्हस्थिकजीवन :

सखावतपुर (आगरा) निवासी लाला कनीराम की सुपुत्री महादेवी के साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। माताजी के देहावसान के कारण इन्हें पिताजी के साथ अल्पायु में व्यापारादि में संलग्न होना पड़ा।

पिताजी भी इन्हें अधिक समय साथ न दे सके। उनके निधन के बाद घर का दायित्व दोनों भाईयों पर आ गया। संवत् १९९० में फरिहा में प्लेग की महामारी फैली। इसमें अल्पकाल में ही भाई लक्ष्मणस्वरूप जी, उनके तीन पुत्र एवं दो पुत्रियां तथा स्वयं का १४ वर्षीय पुत्र एवं एक पुत्री चल बसी। इस अनभ्रपात को आप सह भी नहीं पाये थे कि आपका अन्तिम चार वर्षीय पुत्र भी प्रयाण कर गया। घर के सारे कुल दीपकों के अस्त होने से श्री भगवत्स्वरूप जी ने फरिहा से फिरोजाबाद जाने का निर्णय लिया, पर उनके परममित्र पं. रत्नेन्दु जी ने क्षेत्र की सेवा करने की प्रेरणा देकर रोक लिया।

तीर्थसेवा :

श्री भगवत्स्वरूप जी नि:स्पृह तीर्थसेवी थे। मरसलगंज की समर्पित भाव से सेवा की। भगवान् ऋषभदेव की विशाल पद्मासन प्रतिमा एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराके क्षेत्र में विराजमान कराने का श्रेय आपको ही है।

साहित्यिक अभिरुचि :

संवत् १९८६ में फिरोजपुर के मेले के समय पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ससंघ फरिहा आये। उनके सत्समागम से कविता के

माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त करने लगे। उनकी स्वरचित कविताएं प्राय: जैनगजट एवं खण्डेलवाल जैन हितेच्छु में प्रकाशित होती रहती थी।

श्री भगवत्स्वरूप जी के लिखने का तरीका अपने किस्म का विशेष एवं निराला था। एक-एक अक्षर मोती-सा जड़ा प्रतीत होता था। सुन्दर लिपि लिखने वाले साहित्यकार यदा-कदा ही दिखाई देते हैं, किन्तु आपकी गणना उनमें होती थी। एक बार जो भी कलम से प्रसूत होता, वही अन्तिम भी हो जाता। लिखकर काटना आपको कदापि प्रिय नहीं था। आप कहते थे - जो काटता है वह कमाई है। उनके लेखन में जैनत्व की अमर छाप दिखाई देती है, जो कि आपके दोनों समय के नियमित स्वाध्याय श्रवण कर हृदयंगम करने का सुपरिणाम है।

सृजन :

श्री भगवत्स्वरूप जी दूरदर्शी थे। एक दिन शास्त्रसभा से लौटते समय आपने कहा - दादा जी आने वाले पचास वर्षों में हमारी नयी पीढी धर्मविमुख होगी, शास्त्र नहीं सुनेगी और चारित्रभ्रष्ट होगी। अत: मैंने निर्णय लिया है - जैन शास्त्रों की कथाओं को नई शैली में लिखूं। इससे उनका मनोबल नहीं गिरेगा, परम्परा कायम रहेगी। और अपने निर्णयानुसार लिखना आरम्भ कर दिया। आपकी अमर साहित्यिक कृतियों के नाम हैं - सुकुमाल महामुनि चरित्र (तीन भाग), सुखानन्द मनोरमा चरित्र (दो भाग), भगवत लावनी शतकसंग्रह तथा भगवान् पार्श्वनाथ पूजन आदि।

कहानी, नाटक, कविता व गीत आदि की अब तक आपकी कुल ३४ पुस्तकें छप चुकी हैं। उनके कुछ गीतों के रिकार्ड भी बने हैं एवं कई गीत आकाशवाणी केन्द्र से वन्दना कार्यक्रम एवं पर्व के दिनों में प्रसारित होते रहे हैं।
आपके द्वारा लिखे नाटकों को मंचों पर साकार रूप प्रदान किया गया और सराहा गया। आपकी अनेक रचनाओं के तो ८-१० से १६-१७ संस्करण प्रकाशित हुए और 'घरवाली' कृति का ३३ वां संस्करण भी छप चुका है। आपकी कतिपय रचनायें अभी भी प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। हस्तलिखित चार कापियां, जिनमें लगभग सौ-सौ रचनाएं हैं, छायावाद एवं रहस्यवाद की अनुपम रचनाएं हैं।

अपूर्ण इच्छा :

जैन महाकाव्य लिखने की आपकी तीव्र इच्छा थी। इस हेतु आपने प्रेरणा के मिलने पर आदिपुराण के ८० पृष्ठ पढ़े और धर्म की इस पुराणनिधि से अत्यधिक प्रभावित हुए पर आपको अपनी समीपस्थ मृत्यु के आभास हो जाने के कारण कहा

कि अब मुझे इतना अधिक लिखने का समय नहीं। काश यह कार्य लिख गया होता तो सर्वोपरि सिद्ध होता।

सामाजिक गौरव :

शान्तिवीर सिद्धान्त संरक्षिणी सभा ने कविरत्न श्री भगवत्स्वरूप जी को धर्मभूषण की उपाधि से विभूषित करते हुए परसलगंज के मेले में अभिनन्दन किया। आपके अभिनन्दनार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ भी समर्पित किया गया। तीर्थ सुरक्षा, साहित्यसृजन, मुनि-त्यागियों की वैयावृत्त एवं विद्वानों के सत्कार करने में सदैव अग्रणी रहे। साधर्मी भाइयों के प्रति तो आपको सहज वात्सल्य भाव उमड़ता था।

परलोकप्रयाण :

जैनागम को हृदयंगम करने वाले श्री भगवत्स्वरूप जी तत्त्वज्ञानी व दूरदर्शी व्यक्ति थे। आपने ५ दिसम्बर १९४४ दिन मंगलवार को सम्यक्त्व के स्वरूप का चिन्तन करते हुए मोह-ममता से एकदम परे रह दृढता एवं श्रद्धान के साथ णमोकार महामन्त्र का श्रवण करते हुए दोपहर १२ बजे इस देह से विदा ले ली। अन्तिम समय तक आपके होठों पर शान्त मुस्कराहट, चेहरा गम्भीर और तेजस्वी दिख रहा था।

❑

टी. एस. भरत चक्रवर्ती

दक्षिणभारत में जैनागम एवं तमिल भाषा के प्रमुख विद्वानों में श्री टी.एस. भरत चक्रवर्ती की गणना होती है। अकलंक चैत्यालय के तमिलनाडु (क्षीपेसम्बूर) ग्राम में १९२८ को आपका जन्म हुआ। आप श्री नेमिसागर जी वर्णी के उन शिष्यों में से थे जिन्होंने उनके स्वप्नों को साकार किया।

ज्ञान-वैभव :

श्रवणबेलगोल में विशारद प्रथमवर्ष तक अध्ययन किया। तदुपरान्त मुरैना विद्यालय में न्यायतीर्थ, शास्त्री एवं काव्यतीर्थ तक की शिक्षा एकाग्रता के साथ ग्रहण कर आप जैनागम के अध्येता विद्वान् बने।

अध्ययनोपरान्त आपने ए. जी. जैन हायरसेकेण्ड्री विद्यालय, चैन्नै में हिन्दी अध्यापक के रूप में तीस वर्ष तक अपनी सेवायें प्रदान की। वहां से सेवानिवृत्त हो एम. जैन कालेज में जैनालॉजी के प्राध्यापक के रूप में आगम ज्ञान प्रदान करते रहे।

PDF Scanner ACE Scanner

बहुभाषाविद :

आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, तमिल, कन्नड आदि के अधिकारी विद्वान् थे। इनका उपयोग सेवानिवृत्ति के उपरान्त किया। सेवाकाल के पूर्ण होने पर ग्रन्थ लेखन, अनुवाद और प्रकाशन के कार्य में संलग्न हो गये।

श्रेष्ठ रचनाकार :

इष्टोपदेश, समाधिशतक, अष्टपाहुड, श्रावकधर्म, दशलक्षणधर्म, क्रमबद्धपर्याय, अनेकान्त और स्याद्वाद, निमित्त-नैमित्तिक, सम्यग्दर्शन इत्यादि लगभग चालीस रचनाओं का तमिलभाषा में अनुवाद करने का दुरूह कार्य आपने किया है।

आप श्रेष्ठ अध्यापक होने के साथ प्रभावक प्रवचनकार भी थे। तमिलनाडु की श्रावक एवं जैन समाज, दशलक्षण पर्व पर आपकी प्रवचनों को सदैव स्मरण करती रहती है।

उपाधियां :

आध्यात्मिकता की ओर आपका विशेष लगाव/झुकाव होने से आप श्रेष्ठ प्रवचनकार तो थे ही। इसी से प्रभावित हो आपको 'आत्मबन्धु', 'विद्वद्रत्न', 'प्रतिष्ठाशिरोमणि' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया था।

जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति को महिमामण्डित करने वालों में टी.एस. भरत चक्रवर्ती सदैव स्मरणीय रहेंगे।

❑

पं. के. भुजबली शास्त्री

दक्षिण भारत के अहिन्दी भाषी विद्वानों द्वारा हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि करने वाले विद्वानों में अग्रगण्य हैं पं. श्री के. भुजबली शास्त्री। धर्म, इतिहास, साहित्य, पुरातत्त्व आदि विविध विषयों के वेत्ता, शैली में गंभीरता के साथ रोचकता का समावेश आदि उनकी कतिपय विशेषतायें हैं। ठिगने कद, श्यामल वर्ण, विशाल भाल, पुष्टदेह, मुखमुद्रा पर खेलती मधुर मुस्कान ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे श्री शास्त्री जी। धर्मनिष्ठ विद्यारसिक एवं समाज में प्रतिष्ठित श्री आदिराज (आदप्पा) के सुयोग्य सुपुत्र एवं प्रकाशपुंज थे। इस प्रकाशपुंज ने ११ फरवरी सन् १८९७ में अहाता, मैसूर के दक्षिण कनारा जिले के काशिपट्टण ग्राम में जन्म लिया।

विद्यार्जन :

अंग्रेजी पढ़ने के लिये स्वास्थ्यित अपने ग्राम में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त कर के नैत्तिकता ग्राम की संस्कृत पाठशाला में अध्ययन हेतु गये। सन् १९१६ में वियर ग्राम से सेठ वर्धमानैय्या द्वारा संचालित संस्कृत पाठशाला में पहुंचे। वहां पहले आयुर्वेद का अध्ययन आरम्भ किया। पर सेठ जी की इच्छानुसार संस्कृत का ही अध्ययन किया। सन् १९२१ में गोपालदास जैन विद्यालय मुरैना जाकर शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। यहां न्यायकुलभूषण और न्यायाचार्य की अन्य उपाधियां भी प्राप्त की। वे कन्नड, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं के ज्ञाता भी थे।

कार्यक्षेत्र :

शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् आप आरा नगर के बाबू निर्मलकुमार रईस के यहां गये और उनके द्वारा संस्थापित जैन सिद्धान्त भवन के सन् १९२३ ई. से १९४४ तक (२१ वर्ष) पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कार्य किया।

आरा में पं. ब्र. चन्दाबाई जी द्वारा संचालित बालाविश्राम में छात्राओं को पढ़ाया और आपने ही संस्कृत और न्याय की उच्च कक्षाएं आरम्भ कीं।

सन् १९४४ में मूडबिद्री आ गये और भारतीय ज्ञानपीठ की कन्नडशाखा में अध्यक्ष पद पर रहे। सन् १९४६ से १९६८ तक कर्नाटक विश्वविद्यालय के अनुसंधान विभाग में संशोधक और सहायक के रूप में धारवाड में कार्य किया।

साहित्यसेवा :

हिन्दी, संस्कृत, कन्नड आदि भाषाओं में पत्रों, पाण्डुलिपि, पुस्तकों आदि का सम्पादन, अनेक कृतियों की प्रस्तावना, कन्नड भाषा में अनुवाद और मौलिक साहित्य सृजन द्वारा अनुपम साहित्यसेवा की। उनके द्वारा सम्पादित पत्र हैं -

१. शरणसाहित्य, २. विवेकाभ्युदय, ३. वीरवाणी, ४. गुरुदेव सभी कन्नड़। हिन्दी भाषा के जैनसिद्धान्तभास्कर पत्र के सम्पादक तथा बाद में परामर्श मण्डल में रहे। वायस आफअहिंसा, अलीगढ के सम्पादक मण्डल में भी रहे।

ग्रन्थ सम्पादन एवं अनुवाद : आरा में आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का अन्वेषण कर उन्हें सुसम्पादित किया। संस्कृत भाषा के 'मुनिसुव्रत महाकाव्य', 'चित्रसेन पद्मावतीचरितम्' एवं 'भव्यानन्द' की पाण्डुलिपियों का सम्पादन तथा अनुवाद किया। 'मुहूर्तदर्पण' उनकी हिन्दी में अनूदित कृति है।

मौलिक कृतियां - बाल्यकाल से ही श्री शास्त्री जी की लेखन के प्रति विशेष अभिरुचि रही। छात्रावस्था में ही श्री शास्त्री जी ने 'जैनधर्म', जैनदर्शन और बाहुबलि चरित ग्रन्थों की रचना की। मूर्तिपूजा की आवश्यकता, जैनभूषारत्नगळु, आदर्शजैनमहिलेयरु, आदर्श जैन वीररु, आदर्श साहित्यगळु, जैन वाङ्मय, मातृस्मृति, दैनिकषट्कर्म, निबन्धसंग्रह, प्रबन्धपुंज, समवसरण, भव्यस्मरणे, महावीर वाणी, कन्नड कविचरिते, कामन कालग आदि कन्नडभाषा की प्रमुख कृतियां हैं।

संस्कृत भाषा की उनकी प्रमुख कृतियां है - आत्मनिवेदनम्, शान्तिशृंगारविलास और भुजबलिचरितम्। आरा से ही वे हिन्दी में लेखन कार्य करने लगे थे। आपकी हिन्दी भाषा की प्रथम पुस्तक 'दिगम्बर मुद्रा को सर्वमान्यता' है। इसके प्रकाशित होते ही हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार/लेखकों में उनकी गणना होने लगी। कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची और प्रशस्तिसंग्रह हिन्दी के ग्रन्थ हैं।

ज्ञानकोष, ज्ञानप्रदीपिका, वृहत्समाधिमरण, क्षत्रचूडामणि आदि पुस्तकों की हिन्दी में विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएं लिखी पुस्तकें भी प्रकाशित करायीं।

इनके अतिरिक्त हिन्दी तथा कन्नड भाषी पत्रों में पुरातत्त्व, जैन इतिहास, धर्म, संस्कृति विषयक शताधिक शोधपूर्ण निबन्ध/लेख लिखे व प्रकाशित कराये। अनेक प्राचीन ग्रन्थों की खोज की। जैन प्राकृत वाङ्मय के शताधिक शोध खोजपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किये। वीरवंकेण नामक प्रबन्ध को मैसूर शासन ने तथा मूडबिद्री नामक निबन्ध को केरल प्रशासन ने पाठ्य ग्रन्थों में स्थान दिया।

सार्वजनिक सामाजिक सेवायें :

श्री शास्त्री जी ने मैसूर सरकार के प्राच्य संशोधन मन्दिर के सदस्य बनकर कार्य किया। राजकीय तथा राष्ट्रीय परीक्षा, परीक्षालयों के परीक्षक बन सेवा की। राजकीय व राष्ट्रीय प्रकाशनों की प्राचीन ग्रन्थों की प्रतियां प्रदान कर उनका पुनः प्रकाशन कराया।

आपके द्वारा ही भ्रातृसंघ संस्था की स्थापना हुई। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा के अन्वेषण मन्त्री, जैन कन्याशाला, पणपिल और परस्पर सहायक संघ, मूडबिद्री के अध्यक्ष,

PDF Scanner ACE Scanner

वीरसेवामन्दिर जैन सिद्धान्त भवन, दरियागंज के मन्त्री, श्री शान्तिप्रसाद जैन
समिति तथा जैन विद्वत्परिषद् के सदस्य रहे है।

धार्मिक सेवायें :

पावापुरी, आरा, राजगृही, श्रवणबेलगोल आदि अनेक स्थानों पर विम्ब प्रतिष्ठा, नेत्री प्रतिष्ठा, मानस्तम्भ प्रतिष्ठा आदि महोत्सव सम्पन्न कराये और प्रवचनों द्वारा प्रभावक प्रभावना की। देश के विभिन्न नगरों-महानगरों में आयोजित सेमिनारों और महोत्सवों में भी आपका सक्रिय योगदान रहा।

आप मन्त्रविद्या के विशेषज्ञ थे। मन्त्र विधान के अनुसार उन्होंने लोगों को भूतप्रेतादि की बाधा से मुक्ति दिलायी।

सम्मानित उपाधियां/अभिनन्दन :

सन् १९३८ में वाराणसी के महामण्डल द्वारा आप 'विद्याभूषण' की उपाधि से अलंकृत किये गये। सन् १९६३ में जैन सिद्धान्त भवन, आरा के हीरक जयन्ती महोत्सव के समय बिहार के राज्यपाल महोदय श्री अनन्तशयनम् आयंगर के करकमलों से वे 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि से विभूषित हुये। इसके अतिरिक्त जैन समाज शिमला, जैन मठ हुम्बज, जैन जीर्णोद्धार संघ कार्कल, आरा की विद्या परिषद्, साहित्य परिषद् जैसी अनेक संस्थाओं ने उन्हें अभिनन्दन पत्र प्रदान कर सम्मानित किया और स्वयं को धन्य समझा।

श्री शास्त्री जी के अगाधपाण्डित्य, सम्पादनकौशल और सौजन्य के प्रशंसक पू. महात्मा गांधी, राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरु जैसे देशभक्त तथा ब्र. शीतलप्रसादजी, ज्योतिषाचार्य रामदास शर्मा, पं. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य आदि पुरोधा विद्वान भी थे।

धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व के अधिकारी विद्वान्, बहुभाषाविद् श्री शास्त्री जी ने कन्नड, हिन्दी और संस्कृत भाषा में लगभग ४० ग्रन्थों का सृजन, सम्पादन और अनुवाद किया। विषम परिस्थितियों तथा परिपक्व वार्धक्य में भी उनकी लेखनी की गति अविराम तथा युवकोचित उत्साह से सम्पन्न रही।

❑

पं. मक्खनलाल शास्त्री

भारतीय संस्कृति के परिवेश में, उसकी महानता की छांव में कुछ ऐसे महापुरुषों का जन्म हुआ, जिनका स्मरण मात्र ही हमें गौरव प्रदान करने के लिए पर्याप्त होता है। इसी शृंखला में पण्डितप्रवर मक्खनलाल जी नाम लिया जा सकता है। आपका जन्म चावली ग्राम में पिताश्री वैद्य तातारामजी और मां श्रीमती मेवारानी के संस्कारित पद्मावती पोरवाल जाति के तिलक गोत्रज परिवार में हुआ। आप छह भाई थे। श्री रामलाल जी ने अविवाहित रहते हुये व्यापार एवं धर्मसाधना की। श्री मित्रसेनलाल जी रूई के व्यापारी बने। पण्डित नन्दनलाल जी ने अपनी चारित्रसाधना को बढ़ाकर मुनि पद को धारण किया और मुनि सुधर्मसागर जी के नाम से विभूषित हुए। पंडित लालाराम जी ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से लगभग १०० ग्रन्थों की टीकाओं का प्रणयन कर साहित्यभण्डार की श्रीवृद्धि करने कर अवसर पाया। आपसे छोटे भाई श्रीलाल जी जौहरी भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इस प्रकार सुसंस्कृत परिवार में आपके धार्मिक संस्कारों का होना स्वाभाविक ही था।

अध्ययन :

अपने गांव में ही छठी कक्षा उत्तीर्ण कर आप दिगम्बर जैन विद्यालय मथुरा और सहारनपुर में संस्कृत का करने हेतु चले गये। वैद्यक पढ़ने के विचार से पीलीभीत के प्रसिद्ध ललितहरी वैद्यक विद्यालय में भी आपने प्रवेश लिया, पर जिनदर्शन के न मिल पाने से विद्यालय छोड़ बनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय में न्याय ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। मुरैना से पण्डित प्रवर गोपालदास जी से उच्चकोटि के शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन कर आप जैनदर्शन व धर्म के मर्मज्ञ विद्वानों की श्रेणी में स्थापित हो गये।

कर्मक्षेत्र :

जीविकोपार्जन हेतु आपने सर्वप्रथम कलकत्ते में कपड़े की दुकान से शुरूआत की, किन्तु पं. धन्नालाल जी और खूबचन्द्र जी के अतीव आग्रह पर आप मुरैना आ गये। यहां गुरूणां गुरु गोपालदास जी के कीर्तिस्तम्भ रूप पं.गोपालदास दिगम्बर जैन महाविद्यालय का अक्षुण्ण रूप से संचालन कर आपने गुरुदक्षिणा का भार ऊऋण किया। आपने यहां न केवल अनेक विद्वानों के व्यक्तित्व को संवारा, अपितु उनके जीवन को समुन्नत भी बनाया। पं. लालबहादुर शास्त्री, पं. कुंजीलाल जी, पं.

PDF Scanner ACE Scanner

भागचन्द्र जी, पं. फू लचन्द्र जी, पं. मक्खिनलाल शास्त्री, पं. जिनचन्द्र शास्त्री, पं. वर्धमान शास्त्री, पं. श्रेयान्सकुमार जी, पं. नागराज जी, पं. धर्मचक्रवर्ती आदि के नाम उल्लेख करने से ही आपकी ज्ञानी शिष्य परम्परा का परिचय दिया जा सकता है। आपके छात्रों में आचार्य विमलसागर जी, मुनि पार्श्वसागर जी, मुनि प्रबोधसागर जी, भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति व लक्ष्मीसेन जी भी हैं, जिन पर आपको गर्व था।

साहित्य सेवा :

आपके सुयोग्य करकमलों से मां जिनवाणी की अपूर्व सेवा सम्पन्न हुई। आपने जिन सिद्धान्तग्रन्थों की टीकायें लिखी, उनमें - राजवार्तिक, पंचाध्यायी और पुरुषार्थसिद्धयुपाय के नाम उल्लेखनीय हैं। अनेक गम्भीर उच्चकोटि के विस्तृत नोट्स लिखे जिनमें सिद्धान्त सूत्र समन्वय व सिद्धान्त विरोध परिहार मुख्य हैं। सैद्धान्तिक विवाद को दूर करने के उद्देश्य से स्पृश्यास्पृश्यविचार, चर्चासागर शास्त्रीय प्रमाण, जैनधर्म हिन्दूधर्म से भिन्न है, मुनिविहार, कानजी मत का खंडन, आर्यभ्रम निराकरण आदि की रचना की।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के साप्ताहिक मुखपत्र 'जैनगजट' का १२ वर्षों तक सम्पादन करते हुए आपने उसे अर्धसाप्ताहिक करने का प्रयास किया, जो कतिपय वर्षों तक सफल सिद्ध हुआ। 'जैनदर्शन' पाक्षिक स्वतन्त्र पत्र का प्रकाशन भी आपने आरम्भ किया, जो बाद में जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा का मुखपत्र बन गया।

समाजसेवा :

मुरैना विद्यालय के आप केवल प्रधानाचार्य ही नहीं रहे अपितु आप उसके प्राण थे। क्योंकि उसकी आर्थिक व्यवस्था के स्तम्भ आपके द्वारा ही स्थापित किये गये थे। आर्थिकस्थिति को समाज के सहयोग से परिपुष्ट करते हुए ग्वालियर के महाराजा से मिलकर बारहबीघा जमीन एवं वर्धमान चैत्यालय बनवाया। अपने कार्यकाल में आपने गुरु गोपालदास जी की गौरवर्णीय साढे तीन फुट ऊँची पद्मासन स्टेच्यु भी तैयार करायी। मुरैना में लगभग १६ वर्ष तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट व ओकॉफ कमेटी के सदस्य रहने का सौभाग्य भी आपको प्राप्त हुआ था। इसके साथ आप महासभा के परीक्षालय के वर्षों तक मन्त्री पर प्रतिष्ठित रहे।

आपके सभापतित्व में अनेक संस्थाओं ने जन्म लिया। दिगम्बर जैन शास्त्रि

परिषद के सिवनी अधिवेशन और दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के गठन अधिवेशन में आपके सभापतित्व ने प्रगति करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

उपाधियों की उपलब्धि :

अनेक उपाधियों से विभूषित पण्डित जी जन-जन के श्रद्धेयार्य थे। देहली और अम्बाला के शास्त्रार्थों में मौखिक व लिखित रूप से आपने विरोधियों को निरुत्तर कर 'वादीभकेसरी' की पदवी प्राप्त की थी। आपका यह शास्त्रार्थ मुद्रित भी हुआ है। महासभा के सेडवाल अधिवेशन में सुधारकों के विरुद्ध आपके कर्त्तव्यपरायणता पूर्ण सहयोग से प्रभावित हो आपको 'धर्मवीर' एवं आपके भाई को 'धर्मरत्न' की उपाधि से विभूषति किया गया। दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद के पैठन अधिवेशन में 'विद्यावारिधि' की पदवी से नवाजा गया। 'न्यायालंकार' की उपाधि तो आपने जैनदर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपलक्ष्य में प्राप्त की थी। अनेक स्थानों पर पर्युषणपर्व के समय प्रवचन एवं शंका-समाधान कर 'न्यायदिवाकर' जैसी उपाधियों को पाने का अधिकार सिद्ध किया।

चारित्र की दिशा में प्रवृत्ति :

चारित्र ही व्यक्तित्व की आधारशिला है, इस सूक्ति को चरितार्थ करते हुये आपने आचार्य प्रवर श्री शान्तिसागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा व आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी से तीसरी प्रतिमा को धारण किया। आपने आचार्य श्री शान्तिसागर जी के संघ के राजाखेडी संकट के समय कौशलपूर्वक कार्य कर अपने जीवन को जोखिम में डालकर आक्रमकों को पकडवाने में सहयोग किया। आचार्य शान्तिसागर जी ने सल्लेखना के समय आपको आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा था कि 'तुम अपना धर्मसाधन करते हुए निर्भीकता से धर्मरक्षा में तत्पर रहते हो, आगम पर अटल श्रद्धा रखते हो, अत: तुम्हारा सम्यग्दर्शन दृढ है, तुम्हारा कल्याण होगा।'

आप देवदर्शन को आत्मीयगुणों में वृद्धि का कारण मानते थे। आपका विश्वास था कि भावों की विशुद्धि के लिये द्रव्यशुद्धि भी आवश्यक है। इसलिये चारित्रमार्ग पर प्रवृत्त होना अनिवार्य हैं। श्रेष्ठ शिक्षक, उपदेशक एवं परम्परा को जीवित रखने वाले इस अद्वितीय विद्वान् ने सन् १९८० में अन्तिम सांस लेकर इस जगत् से विदाई ले अपने भक्तों व शिष्यों को रुदनसागर में निमग्न होने को मजबूर कर दिया। आपकी सामाजिक व धार्मिक सेवायें निरन्तर याद की जाती रहेंगी। ❑

महात्मा भगवानदीन

'लेखन व्यक्ति के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है।' हिन्दी वाङ्मय के यशस्वी व शीर्षस्थ साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार जी की यह उक्ति महात्मा भगवानदीन जी पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। कारण महात्मा जी ने जो कुछ लिखा वह आत्मप्रयोजन के लिए लिखा। उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों को जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिए पढ़ा और जीवन की साधना के लिए चुना।

जन्म स्थल आदि की अप्राप्त जानकारी के बावजूद भी भगवानदीन जी का जीवन एक अत्यन्त स्मरणीय परिच्छेद है। इतना ही कहा जा सकता है कि आप योग्य शिक्षा से सुशोभित थे, जिसके ही परिणामस्वरूप आप आजीविकोपार्जन हेतु स्टेशन मास्टरी प्राप्त करने में समक्ष हो सके।

हृदयपरिवर्तन :

रेल की तरह जीवन की भागती-दौड़ती गाड़ी को सही पटरी के साथ गन्तव्य तक पहुंचाने हेतु स्टेशन मास्टरी छोड़ने के लिए विवश हो गये। धर्म की प्यास उनमें उत्कट थी और संयम साधना के तीव्र आकांक्षा भी। तीर्थों की यात्राएं कीं, जंगल-पहाड़ घूमे, अनेक संस्थाओं के सम्पर्क में आये और अन्त में हस्तिनापुर के ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम के अधिष्ठाता का पद ग्रहण करते ही ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया।

उभरता व्यक्तित्व :

सरल एवं सहज स्वभाव न उन्हें विद्यार्थियों के बीच लोकप्रिय बनाया। आश्रम के बालक उनकी प्रार्थना गाते। महात्मा जी जब अध्ययन कराते तब भाष्य बनाते, उनकी भावुकता आश्रम की कसौटी बनी। आध्यात्मिकता की ओर बढ़ते सोपानों ने साधना को उत्तरोत्तर बढ़ाया और रूढिगत सामाजिकता कम हो गई। महात्मा जी को आचार्य उमास्वामी विरचित मोक्षशास्त्र ने अत्यधिक प्रभावित किया था। वही आपके जीवन का आधार बना था। आप इसे 'स्वातन्त्र्यदर्शनसार' के नाम से विभूषित करते थे। ऋषभब्रह्मचर्याश्रम में आपने इसकी व्याख्या रूप में प्रवचन भी किये।

राष्ट्रीयता का उद्भव :

निःस्वार्थ सेवा, प्रेम और करुणा को अपनाने के कारण राष्ट्र के प्रति प्रेम तो

PDF Scanner ACE Scanner

सीमातीत था, किन्तु आश्रम में थोड़ा संघर्ष होने के कारण आप आश्रम से विदा होकर राष्ट्रसेवा की ओर प्रवृत्त हुए। आपने असहयोग आन्दोलन में सहभागिता देकर कराकर अपना बहुत-सा समय जेल में बिताया।

एकान्त की महत्ता :

एकान्त में विचारों के मंथन/उद्वेलन ने आपको लिखने के लिए प्रेरित किया। जब आप कवि, वक्ता और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बन गये, तब जेल आपके लिए साहित्यिक सेवाओं की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त जगह सिद्ध हुई। जैनेन्द्रकुमार जैन के शब्दों में 'भगवानदीन जी की अधिकांश अभिव्यक्ति आध्यात्मिक और अतिशय मूल्यवान बनी है।' अध्ययन और लेखन की अभिरुचि के कारण उन्होंने जैन साहित्य के पोषक आत्मवाद, कर्मवाद और मुक्तिवाद के सिद्धान्तों के समर्थक अरविन्द साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन किया और जैन तत्त्वज्ञान से उसे पुष्ट किया।

साहित्यिकक्षण :

महात्मा जी ने आरम्भ में ही चन्द्रकान्ता सन्मति पढ़कर, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक तिलस्मी उपन्यास की रचना की। किन्तु हृदय-परिवर्तित होने के साथ ही उसे जला दिया।

ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिति को लेकर हुए संघर्ष से उद्वेलित हो आपने 'जैनहितैषी' के लिये अनेक लेख लिखे। इन लेखों में लेखक की सच्ची श्रद्धा और कार्यकुशलता के दर्शन होते हैं। इनमें धर्मनिष्ठा जहां सिर चढ़कर बोलती है, वहीं अन्धश्रद्धा से विरोध भी मुखरित होता है।

बालोपयोगी साहित्य का काफी अधिक मात्रा में सृजन आपके हृदय की निश्छलता व उदारता का दिग्दर्शक है।

आपके अनेक लेखों का संग्रह पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ है। जिससे उनकी लोकप्रियता की स्पष्ट ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। सोलहकारण भावना जैसी आपकी अन्यतम रचनाएं जैनसाहित्य जगत् में अपने प्रकार के विचारों का महत्त्वपूर्ण एवं सुरक्षित स्थान रखती हैं।

आपने विचारों के अन्त:प्रवाह में शान्ति और संयम की जो साधना की, उसे ही जीवन के अन्त में प्राप्त करते हुए इस भौतिक जीवन को विराम दे दिया।

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन

समाजसुधारक के रूप में विख्यात रहे हैं डॉ. महेन्द्रकुमार जैन। [illegible] जिला छतरपुर में १५ अप्रैल १९२१ को पिता श्री सिंघई रामदीन जी के परिवार [illegible] आपका जन्म हुआ।

अक्षरज्ञान :

द्रोणगिरि, सागर और बनारस के शिक्षाकेन्द्रों में रहकर साहित्याचार्य साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ तथा एम.ए. आचार्य, बी.एड् की शिक्षा प्राप्त की। 'रविषेणाचार्यकृत पद्मचरित्र का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिशीलन' विषय पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुतकर पी-एच. डी. की उपाधि से विभूषित हुये। आपको हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और गुजराती भाषा पर समान अधिकार था।

गृहस्थधर्म :

आपने मुन्नीदेवी जैन के साथ परिणयसूत्र में बंधकर गृहस्थ जीवन का आरम्भ किया। तीन पुत्र और छह पुत्रियों को जन्म दे उनके पितृत्व को धारण किया।

शिक्षानन्तर गांधी जी के साथ 'करो या मरो' आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया और कांग्रेसी विचारधारा से प्रभावित हुए। राष्ट्रभाषा परिषद् भगवां तथा मध्यप्रदेशीय संस्कृत शिक्षक संघ के लिये समर्पित योगदान किया। द्रोणप्रान्तीय नवयुवक संघ द्रोणगिरि के अध्यक्ष और मन्त्री, उपमन्त्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणागिरि, अध्यक्ष जैन समाज एवं गणेश वर्णी जैन पाठशाला भगवां, दिगम्बर जैन मन्दिर चंदला जैन व्यवस्थापक समिति एवं संस्कृत शिक्षक संघ म.प्र. के सदस्य रहे। आप अनेक राष्ट्रीय संगठनों से भी सम्बद्ध रहे। आपने रात्रिभोजन, मरणभोज, दाजनीप्रथा, फिजूलखर्ची आदि के विरुद्ध संघर्षकर समाज को दिशाबोध दिया।

साहित्य सेवा :

१. पद्मचरित्र पर शोधप्रबन्ध, २. ब्र. पं. सरदारमल सचिदानन्द व्यक्तित्व और कृतित्व, ३. उच्चतर माध्यमिक संस्कृत व्याकरण, ४. रत्नराशि की दीपिका तथा १०० से अधिक आलेख आपके प्रकाशित हैं। सम्पादित कृतियों में - १.

विचारविमर्श, २. छतरपुर जिला जैन सामाजिक व सांस्कृतिक सर्वेक्षण (१९८६)। अप्रकाशित कृतियों में १. प्रतिष्ठाकल्पद्रुम और २. बुन्देलखण्ड तीर्थदर्शन आदि।

गौरवार्जन :

जैन समाज भगवां, चंदला, गोरखपुरा आदि द्वारा आपका समय-समय पर सम्मान किया गया था।

आपकी पुण्यस्मृति में 'डॉ. महेन्द्रकुमार जैन अध्ययन केन्द्र भगवां' की स्थापना की गई है।

❑

पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

न्यायाचार्य के रूप में प्रसिद्ध पं. महेन्द्रकुमार जी की देशभर में कोई सानी नहीं। अपनी सम्पादनकला से पाठकों के हृदय को अभिभूत करने वाले एवं भारत के दिग्गज विद्वानों में आप अग्रगण्य थे। सागर जिला के खुरई नगर के निवासी श्री जवाहरलाल जी एवं श्रीमती सुन्दरबाई के परिवार में ११ मई १९११ को बुद्धपूर्णिमा के दिन जिस बालक ने जन्म लिया, वह बुद्धिमत्ता का बोधक होने से पूर्णचन्द्र के नाम से अभिहित हुआ। बाद में महेन्द्रकुमार के नाम से ख्यात हुए। आपके तीन भाई और दो बहिनें थीं।

विद्याभ्यास :

प्रारम्भिक शिक्षा खुरई में प्राप्तकर इन्दौर में आपने साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। सन् १९२१ में प्रथम श्रेणी में न्यायतीर्थ तथा बाद में शास्त्री की शिक्षा प्राप्त कर १९ वर्ष की आयु में ही अपनी प्रतिभा के बल पर विशिष्ट विद्वानों में गिने जाने लगे। सुगठित शरीर और पूर्ण स्वस्थता के कारण आपका व्यक्तित्व विशेष प्रभावशाली दिखता था। आपने 'सिद्धिविनिश्चयविवरण' ग्रन्थ पर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी।

गृहस्थ जीवन :

सुख व सम्पन्नता से गृहस्थ जीवन प्रारम्भ करने वाले डॉ. महेन्द्रकुमार जी ने

PDF Scanner ACE Scanner

दो पुत्रों को जन्म दिया। प्रतिभासम्पन्न दोनों पुत्र क्रमशः पद्मकुमार बिहार में और अरविन्दकुमार बम्बई में इंजीनियर पद पर आसीन हैं।

अर्थोपार्जन :

प्रतिभा के धनी जैसे ही शास्त्री और न्यायातीर्थ की परीक्षायें उत्तीर्ण हुए कि सन् १९३० में आप स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक के रूप में नियुक्त हो गये। अपने १३ वर्ष के अध्यापन काल में आपने महाविद्यालय के दर्शनशास्त्र के स्तर को ऊँचा उठाते हुए यहां की अकलंक सरस्वती भवन की अभिवृद्धि पर पूर्ण ध्यान केन्द्रित रखा। आपका विचार था कि इसे इस स्तर का बना दिया जाये कि जिससे यहां बैठकर शोधकार्य भलीभांति सम्पन्न किये जा सकें। इसलिये आपने ग्रन्थालय में संस्कृत, पाली और प्राकृत के अलभ्य ग्रन्थों को उपलब्ध कराने में कठिन श्रम किया।

सन् १९४४ में देश की सुप्रसिद्ध एवं सुप्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था 'भारतीय ज्ञानपीठ' की स्थापना होने पर आपकी नियुक्ति वहां हो गयी। आपने इस संस्था को भी पर्याप्त उन्नति प्रदान कराने में परिश्रम किया। सन् १९५० के लगभग हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में बौद्धदर्शन के प्राध्यापक के पद पर तथा १९५९ में संस्कृत विश्वविद्यालय में जैनदर्शन के प्राध्यापक के रूप में आपकी सेवायें शासन को प्राप्त हुई।

साहित्यिक कर्म :

अथक परिश्रमी होने के कारण आपने अल्प वय में ही अनेक ग्रन्थों का सम्पादन व अनुवाद विस्तृत प्रस्तावना के साथ लिखकर साहित्यकर्मियों को आश्चर्य में डाल दिया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पादित आपके प्रमुख ग्रन्थों में न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायविनिश्चय, तत्त्वार्थवार्तिक, सिद्धिविनिश्चय, तत्त्वार्थवृत्ति, प्रमाणमीमांसा, षड्दर्शन समुच्चय, सत्यशासन परीक्षा, विश्वतत्त्वप्रकाश, प्रमाणप्रमेयकलिका, युक्त्यनुशासन, आत्मानुशासन व प्रभावकचरित्र आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य भट्टाकलंकदेव द्वारा रचित लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय और प्रमाणसंग्रह इन तीन का संकलन कर 'अकलंकग्रन्थत्रयम्' के नाम से सुन्दर और बेमिशाल सम्पादन किया। विविधतीर्थकल्प आपकी संस्कृत से हिन्दी में अनूदित

अन्यतम कृति है। 'जैनदर्शन' जिसे डॉ. महेन्द्रकुमार के सम्पूर्ण चिन्तन का सार कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, ६०० पृष्ठीय आपकी मौलिक रचना है। जिस पर उत्तरप्रदेश सरकार ने दर्शनशास्त्र की श्रेष्ठकृति का पुरस्कार दिया।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी पं. जी न्यायग्रन्थों तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु आप एक सिद्धहस्त कहानीकार, निबन्धकार, पत्रकार व कविहृदय भी थे। आपके कहानीकार का रूप १९५० में प्रकाशित हुई प्रथम कहानी 'अमृतदर्शन' से स्पष्ट होता है। निबन्धकार के रूप में आपके अनेकान्तदर्शन का सांस्कृतिक आधार, सर्वोदय की साधना, विश्वशान्ति के मूल आधार, आध्यात्मिकसंस्कृति, स्यात् एक प्रहरी तथा अनेकान्त : स्वयं ही एक न्यायाधीश जैसे प्रमुख निबन्ध कई हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ से आपने 'ज्ञानोदय' पत्रिका को सम्पादन सहित आरम्भ किया एवं जनहितार्थ 'लोकोदय ग्रन्थमाला' की स्थापना का श्रेय भी आपको ही है।

प्रशंसनीय उद्‌बोधन :

डॉ. महेन्द्रकुमार जी की साहित्यसेवा से प्रभावित हो अनेक विद्वानों ने आपकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। डॉ. मंगलदेव शास्त्री जैसे संस्कृत के उद्‌भट विद्वान और विख्यात शोधशास्त्री ने आपके विषय में 'न्यायकुमुदचन्द्र' के आदि शीर्ष में कहा है 'जैनदर्शन के साहित्य का सम्पादन प्रारम्भ हो गया है और इसका सर्वप्रथम श्रेय पं. महेन्द्रकुमार जी को है।' पं. जी की सम्पादन कला का लगभग सभी ने अनुकरण किया। इसी प्रकार पं. सुखलाल जी संघवी ने न्यायकुमुदचन्द्र के प्राक्कथन में आपके विषय में उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा है कि 'मैं पण्डित जी की प्रस्तुत गवेषणापूर्ण और असाधारण कृति का अभिनन्दन करता हूं।'

असमय में वियोग :

साहित्यजगत् का उज्ज्वल नक्षत्र २० मई सन् १९५९ को रात्रि ७ बजे अचानक पक्षाघात के कारण मात्र ४८ वर्ष की अवस्था में प्रभाविहीन हो गया। जैनन्याय और जैनदर्शन के सभी पक्षों के विश्लेषक तथा विशदीकरण करने वाले प्रौढ विद्वानों के रूप में आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. माणिकचन्द्र कौन्देय

सिर पर टोपी, गले में दुपट्टा और साधारण धोती-कुर्ता पहने हुये एक सौम्य आकृति जो व्यक्तित्व को सरल व सहजभाव से प्रकट करती है, पं. माणिकचन्द्र कौन्देय न्यायाचार्य की छाया है। धर्म और संस्कृत के लिये पूरी तरह समर्पित पं. जी का नाम शीर्षस्थ विद्वानों में से एक है। आपका जन्म ग्राम चावली जिला आगरा में वि.सं. १९४३ माघ शुक्ला पंचमी को लाला हेतसिंह वैद्य के परिवार में मां श्रीमती झल्लाबाई की कोख से हुआ। इस धार्मिक दम्पत्ति ने अपने जिन उच्च संस्कारों से पं. जी को संवारा वे संस्कार उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होकर वटवृक्ष का रूप बने। पं. जी के बड़े भाई पं. श्री नरसिंहदास जी भी अपने समय के श्रेष्ठ विद्वानों में परिगणित होते थे।

शैक्षणिक योग्यता :

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गांव की ही पाठशाला में प्रारम्भ कर ग्यारह वर्ष तक ली। संवत् १९५४ में आपने डेढ वर्ष तक प्रवेशिका चौरासी मथुरा में तथा खुर्जा में क्वींस कालेज की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ वर्ष अजमेर में अपने बड़े भाई के सानिध्य में सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया। पश्चात् जयपुर में संस्कृत व्याकरण, साहित्य और न्याय के ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया। यहां आपको न्यायोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई। तदनन्तर विद्वानों की जन्मदात्री काशी नगरी के स्याद्वाद महाविद्यालय में आ पूर्वन्यायमध्यमा तथा आचार्य की परीक्षा पास की। इसके अतिरिक्त जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना में जैनसिद्धान्त का गहन अध्ययन कर गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पंचाध्यायी जैसे महान् ग्रन्थों को मंथन किया।

अर्थोपार्जन :

अर्थोपार्जन हेतु आपने अध्यापन क्षेत्र को ही उपयुक्त माना। वि.सं. १९५८ से २०१८ तक लगभग ६० वर्ष तक आपने गोपालदास सिद्धान्त विद्यालय मुरैना व जम्बू विद्यालय सहारनपुर में प्रधानाध्यापक पद पर सेवायें प्रदान की। जहां आपने लगभग ४०० विद्वानों को तैयार करने जैसा महत् कार्य किया। कुछ समय आप पन्नालाल दिगम्बर जैन कालेज फिरोजाबाद में भी धर्माध्यापक के पद पर कार्य करते रहे।

संयमी जीवन :

'सादा जीवन उच्च विचार' के प्रतीक पं. जी प्रतिदिन एक करवट सोकर

ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे और एक मील तक भ्रमण करते हुए संस्कृत श्लोकों का मनन करना आपकी दिनचर्या बन गया था। जाप, सामायिक, ध्यान, पुरुषार्थपूर्वक इन्द्रियों का दमन, आत्मरमण, कषायनिग्रह व शुभभावनायें भाना आपके आध्यात्मिक तप की सामग्री थी।

जिनदर्शन एवं पूजन के अनुरागी, मुनियों में अतिशय भक्ति रखने वाले, परोपकार की भावना से नम्रीभूत आप दूसरी प्रतिमा के धारी, चरित्रशील एवं संयमी व्यक्तित्व के धनी थे।

साहित्यसृजन :

आपकी अमर कृतियों में 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार' की तत्त्वार्थचिन्तामणि टीका है। चौदह वर्ष तक घोर परिश्रम करके डेढ लाख श्लोक प्रमाण टीका आपकी उत्कृष्ट विद्वत्ता की परिचायक है। जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वविवेचना को आपने हस्तामलकवत् स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

बहुचर्चित इस भाष्य के अतिरिक्त आपने 'जिनशासन का रहस्य', 'षट्द्रव्यों की आकृतियां' और 'धर्मफल सिद्धान्त' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। 'कारणों की शास्त्रानुकूल चर्चा' शीर्षक से आपकी एक लेखमाला एक साथ अनेक पत्रों में प्रकाशित हुई, जिसकी लगभग तेरह-चौदह किस्तं थी। अकेले जैन सन्देश में प्रकाशित आपके स्फुट लेखों का संकलन किया जाये तो भी चार-पांच सौ पृष्ठीय सामग्री हो सकती है। 'दर्शन दिग्दर्शन' आपकी अप्रकाशित कृतियों में गणनीय है। मालवा प्रान्तीय जैन सभा के अध्यक्ष पद से दिये गये भाषणों का एक संग्रह भी पुस्तकाकार रूप में सामने आया है।

आपकी अगाध विद्वत्ता, अकल्पनीय तार्किकशैली, वस्तु अन्तस्तत्त्वस्पर्शिनी प्रज्ञा, तत्त्वव्यवस्थायी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करने की पद्धति एवं सबसे अधिक निर्व्याज हृदय से शिष्यानुग्रह करने की वृत्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

सेवा-सहकार :

आपने काशी में वैष्णव विद्वानों के साथ संस्कृत भाषा में होने वाले शास्त्रार्थों में भाग लेकर जैनधर्म की महती प्रभावना का कार्य किया। दिल्ली, भिवानी, अजमेर, भौगांव आदि स्थानों पर भी आर्य-समाजियों के साथ शास्त्रार्थ आपने किये। इसके अतिरिक्त दिल्ली, अजमेर, सुजानगढ, बम्बई और जबलपुर आदि स्थानों पर

दशलक्षणपर्व के अवसर पर समाज को प्रभावशाली एवं तात्त्विक उद्बोधन देकर लाखों जैन बन्धुओं को जैनशास्त्रीय तत्त्वों से परिचित कराया।

उपाधियां एवं अभिनन्दन :

आपके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व और साहित्यसपर्या ने आपको 'न्यायभूषण', 'न्यायदिवाकर', 'तर्कशिरोमणि', 'प्रवचनचक्रवर्ती', 'न्यायरत्न' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित कराया। मई १९६८ में फिरोजाबाद के जैन मेले के अवसर पर 'मानसरोवर साहित्य संगम' द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक सभा के भव्य समारोह में आपका अभिनन्दन किया गया था।

चिरस्मरण :

फिरोजाबाद के गौरव व प्रतिष्ठित विद्वान् के रूप में आपकी सेवायें एवं साहित्याराधना सदैव स्मरणीय रहेगी।

❑

श्री मिलापचन्द कटारिया

राजस्थान की मरुभूमि ने न जाने कितने ज्ञानी, ध्यानी एवं सन्तों को जन्म दिया। अजमेर जिले की केकड़ी में संवत् १९५७ में बालक मिलापचन्द कटारिया का जन्म हुआ, जो बाद में निजी स्वाध्याय के आधार पर पण्डित के रूप में ख्यात हुये। आपके पिता श्री नेमिचन्द कटारिया मध्यम आर्थिकस्थिति के थे, तथापि आपको लाड-प्यार और संस्कारों में किसी भी प्रकार की कमी नहीं महसूस हुई। पिता से ज्ञान-सम्पदा भी विरासत में मिली, जिसे आपने अपनी योग्यता से और भी वृद्धिंगत किया।

ज्ञानार्जन :

साधारण शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए लगभग १५ वर्ष की अवस्था से ही शास्त्र स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। साथ ही आपकी अभिरुचि प्रवचन की ओर भी हो गयी, जिससे निरन्तर ५५ वर्षों तक शास्त्रसभा को लाभान्वित करते हुए लोगों को अपने अर्जित ज्ञान का अंश प्रदान करते रहे। संगीतप्रेमी पण्डित जी यदा-कदा पं. चैनसुखदास जी से धार्मिक चर्चा एवं गंभीर प्रसंगों पर वार्तालाप करते रहते थे।

PDF Scanner ACE Scanner

साहित्याभिरुचि :

लोकहितार्थ अपनी रचनाधर्मिता को सर्वप्रथम 'गवेषणा' के रूप में प्रकट किया। यह लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। तब से निरन्तर अनेक गवेषणात्मक आपने लिखे, जिनका संकलन 'जैन निबन्धावलि' के नाम से १९६६ में वीर शासन संघ, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किया गया था। आपने अन्तिम लेख के रूप में सन् १९७१ को 'तीर्थंकरों के वंश' समाज को अर्पित किया।

समाजसेवा :

पण्डित जी ने केकड़ी की 'दिगम्बर जैन संस्था' के अन्तर्गत औषधालय, विद्यालय, सरस्वती भवन, वाचनालय आदि को गतिशील किया, और लगातार ४० वर्ष तक संस्था के मन्त्री रहकर अपनी सेवाओं से संस्था की उन्नति में अथक प्रयास किया। अनेक मण्डल-विधान, प्रतिष्ठाएं एवं जैन पद्धति से विवाहों को सम्पन्न कराने में आपका सहयोग कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

अभिनन्दन :

आपकी विद्वता, निर्भीकता और नि:स्वार्थ सेवा से प्रभावित हो केकड़ी की जैन समाज की ओर से संवत् २०२४ में आपको 'विद्याभूषण' की उपाधि से विभूषित करते हुए गौरव प्रदान किया गया था।

शुद्ध धार्मिकवृत्ति, आर्षमार्गानुयायी और स्वस्थ समालोचक कटारिया जी जैसे निर्भीक व गंभीर विद्वान् ने संवत् २०२८ की वैशाख शुक्ला १० को इस संसार व शरीर का त्यागकर सेवाभाव की मिशाल को सदा-सदा के लिए स्थापितकर दिया, जो सदैव स्मरणीय बनी रहेगी।

❑

डॉ. मुनीन्द्रकुमार

जिंदगी का प्रत्येक क्षण नया उत्साह और नयी उमंग के साथ आता है। ये छोटे-छोटे क्षण ही कण बन जीवन महल को तैयार करते हैं और जिंदगी को सुरूप व कुरूपता प्रदान करते हैं। जिंदगी का एक क्षण सम्पूर्ण जीवन को परिवर्तित कर देता है। इन्हीं क्षणों की संबद्ध शृंखला का एक वह क्षण, जब खुर्जा जिला बुलन्दशहर में २ दिसम्बर १९३० को डॉ. मुनीन्द्रकुमार का जन्म हुआ, सार्थकता को प्राप्त हुआ

PDF Scanner ACE Scanner

था। पिता श्री अमीरसिंह जी, जो कि उस समय नायाब तहसीलदार थे और बाद में डिप्टी कलेक्टर के पद से सेवामुक्त हुये थे, अपने इस लाडले को पा प्रसन्न थे। मां सूरजमुखी ने अपने धार्मिक संस्कारों के मध्य आपका पालन-पोषण किया।

शिक्षा की ओर बढ़ते कदम :

संस्कारों को हृदय में संजोय बालक ने लौकिक शिक्षा की दहलीज में प्रवेश किया। सेंट जांस हाईस्कूल आगरा में हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर हिन्दी विद्यापीठ बिहार से साहित्यालंकार और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्यरत्न की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। राजकीय कृषि महाविद्यालय कानपुर से १९५२ में बी.एस.सी. (कृषि), सन् १९५३ में पंजाब विश्वविद्यालय से जनर्लिज्म में डिप्लोमा करते हुए सन् १९५४ में एम.ए. (इतिहास) तथा १९६४ में दिल्ली विश्वविद्यालय से एल.एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर अनेक योग्यताओं को प्रमाणित किया। सेवाभावना से प्रेरित हो १९६८ में बोर्ड ऑफ होम्योपैथिक सिस्टम ऑफ मेडिसन दिल्ली से डी.एच.एस. की उपाधि भी प्राप्त की।

गृहस्थ जीवन :

दाम्पत्यजीवन हेतु श्रीमती शशिप्रभा जी के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया, जहां आपको चार सुपुत्रियों का संयोग प्राप्त हुआ। आवश्यकता एवं कर्त्तव्यपरायणता के फलस्वरूप आपने सन् १९५३ में इण्डियन नेशनल कालेज में अध्यापक के पद पर, सन् १९५४ से उपसम्पादक एवं सन् १९५७ से सहायक सम्पादक भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के पद पर कार्य किया।

सन् १९८४ में आपकी ज्येष्ठ सुपुत्री की असावधानीवश कपड़ों में आग लगने तथा डाक्टरों की अतत्परता ने आपको मानव सेवा की ओर मोड़ दिया। फलस्वरूप आप कुछ दिनों बाद से होम्योपैथिक चिकित्सालय खोलकर प्रतिदिन ४-५ घण्टे रोगियों को औषधदान दिया करते।

साहित्यगतिविधियां :

आपकी सिद्धहस्त लेखनी द्वारा अनेक रचनाओं ने जन्म पाया। जिनमें - भारत की नवीन कहानियां, मानव से भगवान बनो, मेडिकल ज्यूरिस प्रूडेंस, मेडिकल पैथालॉजी एवं होम्योपैथिक सर्जरी आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त आपने 'अमर' हिन्दी मासिक, बी. जे. आई. समाचार अंग्रेजी-हिन्दी पाक्षिक, एवं जैन

गजट अंग्रेजी मासिक के प्रकाशन में सक्रिय सहयोग दिया। व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में 'धरती के लाल', 'खेती विस्तार समाचार', 'खादल समाचार', 'किसान जगत' आदि हिन्दी मासिक तथा एग्जामिनेशन, इन्फ रमेशन, राईस न्यूज लेटर, एग्रीकल्चर न्यूज लेटर, इण्डियन एनिमल साइन्स आदि अंग्रेजी मासिक में सहायक सम्पादक के रूप में आपके कार्य प्रशंसनीय रहे हैं।

समाज सेवा :

डॉ. साहब ने अनेक सामाजिक संस्थाओं की स्थापना कर समाज सेवा की। आगरा में सन् ४५-४६ में विजय सेवा समिति, नाटक क्लब, विजय क्लब, पुस्तकालय आदि की स्थापना की। कानपुर में हिन्दी साहित्य परिषद एवं रामायण समाज की स्थापना कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सक्रिय योगदान किया। रूढियों एवं कुरीतियों के उन्मूलन हेतु दिल्ली में सन् १९५३ में जैन समाज में दहेज विरोधी संस्था स्थापित की। आचार्यश्री देशभूषण मुद्रणालय और प्रकाशन ट्रस्ट, जैन सूचना ब्यूरो, निर्वाणभारती, जैनसभा धर्मार्थ ट्रस्ट (रजि.) एवं लार्ड महावीर चेरीटेबिल होम्योपैथिक हास्पिटल ट्रस्ट की स्थापना कर आपने जन सेवा के कार्यों में विशेष रुचि ली।

इस प्रकार आपका व्यक्तित्व केवल एक शासकीय अधिकारी तक ही सीमित नहीं रहा वरन् एक चिकित्सक, साहित्यकार एवं समाजसेवी के रूप में भी सदैव स्मरणीय रहेगा।

❑

पं. मुन्नालाल 'मणि'

जैनधर्म की शिक्षा के लिये पाठशालाओं के संस्थापक, औषधालय के संस्थापक, विद्वत्ता और प्रवचनकुशलता में अपने समय के प्रख्यात मनीषी रहे श्री मुन्नालाल जी 'मणि'। कार्तिकवदी दोज वि.सं. १८७५ को झांसी जिले के महरौनी में आपका जन्म हुआ। इनके पिता श्री खुन्नीलाल जी सामान्य परिस्थिति के परन्तु स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे।

शिक्षा :

महरौनी में ही मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्दौर में सर सेठ हुकमचन्द जैन विद्यालय में प्रथम छात्र के रूप में विशारद एवं शास्त्री तक अध्ययन कर परीक्षा उत्तीर्ण की।

PDF Scanner ACE Scanner

पं. श्री मुन्नालाल जी व्याख्यानवाचस्पति इन्दौर वाले आपके भ्राता थे, उनसे आपको सदा मार्गदर्शन मिलता रहा।

व्यवसाय :

अध्ययन के उपरान्त आजीविका हेतु आपने कपड़े की दुकान का स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया। इसमें निरन्तर प्रयास एवं सूझबूझ के कारण आप अत्यधिक सफल रहे। व्यवसाय के साथ आप सामाजिक एवं साहित्यक्षेत्र से भी जुड़े रहे।

साहित्यिक अवदान :

पं. मुन्नालाल जी 'मणि' कवि थे। मात्र १५ वर्ष की अवस्था से ही आपने कवितायें लिखना आरम्भ कर दिया था। आपके द्वारा एक हजार पृष्ठ की कृति मणिप्रकाश एवं अन्य ग्रन्थ भी लिखा गया। किन्तु पत्नी की असावधानी के कारण वह अनुपलब्ध ही रह गया। 'मणि परख' एवं 'सधर्मशतक' आपकी अभी भी अप्रकाशित दो कृतियां सुरक्षित हैं।

सामाजिक अवदान :

श्री मणि जी धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते हुए बाल्यकाल से ही विद्यार्थियों में धर्मसंस्कार के बीजारोपण के पक्षधर थे। अतएव आपने बाकल (जबलपुर) में एक जैन पाठशाला, अशोकनगर में 'अक्षयधर्मनिधि' तथा दुर्ग में ३०००० /- रूपये के ध्रौव्य फण्ड को जमाकर एक जैन पाठशाला की स्थापना की। ये पाठशालायें आज भी विधिवत् रूप से चल रही हैं। कोहा में जैन औषधालय की स्थापना भी आपके ही प्रयास की देन है। प्राचीन एवं नवीन विद्वानों की निर्मात्री साढूमल पाठशाला में २५ वर्ष तक मंत्री पद पर रहकर सेवा कार्य आपने किया।

सम्मान :

राजनादगांव, दुर्ग, देहली, वर्धा, अशोकनगर, कोटा, नसीराबाद, मेरठ तथा अन्य स्थानों से अभिनन्दन पत्र, सम्मान एवं स्वर्णपदक अर्जित कर अपनी विद्वत्ता एवं प्रवचनशैली को प्रमाणित करने का सौभाग्य प्राप्त किया।

इस प्रकार इस निष्काम कर्मयोगी ने सतत् सेवारत रहते हुए आषाढ कृष्ण षष्ठी वि.सं. १९११ को संसार से विदा मांग ली।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. मुन्नालाल रांधेलीय

पाटन (बण्डा) जिला सागर के प्रतिष्ठित एवं धार्मिक पण्डित श्री गंगाधर जी के सुपुत्र थे पं. मुन्नालाल जी रांधेलीय। २२ दिसम्बर १८९२ को आपका जन्म हुआ। पैतृक सम्पत्ति के रूप में सरस्वती की उपासना मिली अतएव आप बाल्यकाल से ही सरस्वती आराधक रहे।

शिक्षा :

सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशाला में अध्ययनकर न्यायतीर्थ तथा मुरैना के विद्यालय में रहकर शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की। आप इस सदी के जैन समाज में प्रथम न्यायतीर्थ एवं स्नातक थे। साहित्याचार्य प्रथम खण्ड का अध्ययन भी किया पर अवरोध आने के कारण पूरा न हो सका।

कर्मक्षेत्र :

श्री रांधेलीय ने प्रथम जैन प्रधानाध्यापक के पद पर अपनी सेवायें प्रदान कीं। जीविकोपार्जन करते हुये आप साहित्य एवं समाज सेवा में अग्रणी रहे। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की विस्तृत टीका, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र टीका एवं पं. दौलतराम जी कृत छहढाला की मनमोहिनी टीका जैसी कृतियां आपकी ज्ञानाराधना के परिणाम स्वरूप समाज को मिल सकीं। इसके अतिरिक्त सन् १९२१ में 'गोलापूर्व जैन समाज' मासिक तथा सन् १९३४ में 'जैनप्रभात' पाक्षिक का सम्पादन किया।

श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणागिरि के संस्थापक एवं अधिष्ठाता, दिगम्बर जैन गोलापूर्व महासभा की स्थापना, गोराबाई जैन मन्दिर ट्रस्ट के मन्त्री, दिगम्बर जैन महिलाश्रम के सभापति, बुन्देलखण्ड जैन प्रान्तिक सभा के मन्त्री और ब्रिटिश शासन में आनरेरी मजिस्ट्रेट जैसी समाज सेवा के कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हुए। रेशंदीगिरि में जलमन्दिर और पाठशाला का शिलान्यास कराकर विशेष ख्याति अर्जित की।

सम्मान :

सन् १९७८ को श्री रांधेलीय जी को 'वर्णी' की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपके सम्मान में हीरक जयन्ती महोत्सव पर स्मृति ग्रन्थ भी प्रकाशित किया था। इस प्रकार समाजसेवा एवं साहित्यसेवा करते हुये आपने २ मई सन् १९९३ को इस संसार से विदा ले ली।

PDF Scanner ACE Scanner

पं. मूलचन्द शास्त्री

पं. मूलचन्द जी शास्त्री अपनी सारस्वत साधना के लिये देश भर में विख्यात रहे। कर्कशतर्क और सुकुमार साहित्य वज्र और कुसुम दोनों ही उनकी लेखनी से प्रसूत हैं। शास्त्री जी द्वारा विरचित काव्य उनकी आध्यात्मिक भावभूमि से उद्भूत होकर चिरन्तन काव्य परम्परा पर कालजयी बनने के लिए प्रतिष्ठित है।

आपका जन्म म.प्र. के सागर जिलान्तर्गत ग्राम मालथौन में अगहन वदी अष्टमी संवत् १९६० को मां श्रीमती सल्लोबाई की कूख से हुआ। जब आप २१ वर्ष के थे तभी आपके पिता श्री सटोलेलाल जी की अकस्मिक मृत्यु हैजे के कारण होने से मां ने मेहनत करके आपको योग्य बनाया।

शिक्षा :

आपको प्रारम्भिक शिक्षा बमुश्लिक मां ने गांव में ही दिलाई। इसके बाद आप चौरासी मथुरा में चले आये। वहां १९१५ से १९१७ तक अर्थात् ३ वर्ष तक रहकर धर्म प्रवेशिका उत्तीर्ण की। आगे के शिक्षण हेतु सन् १९२० में आपने स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में प्रवेश किया। वहां पर श्रीमान् पं. अम्बादास जी शास्त्री के सानिध्य में धर्मशास्त्री एवं क्वीन्स कालेज से साहित्यशास्त्री उत्तीर्ण की।

आजीविकोपार्जन :

अर्थोपार्जन हेतु अपने विद्या को अपनी आजीविका का साधन बनाया। इसके लिये आप कई जगह गये। प्रारम्भ में आपने गांधी विद्यापीठ, अहमदाबाद में पं. सुखलाल जी संघवी के सानिध्य में कार्य किया। यहां आपने अनेक जैन साधुओं को अध्ययन कराया। इसके बाद आप जैन पाठशाला गुना, कोलारस, पपौरा, महावीर जी और अन्त आदर्श महिला विद्यालय महावीर जी में ही लगभग १४ वर्ष तक धर्माध्यापक के रूप में कार्यरत रहे।

पारिवारिक जीवन :

आप अपनी मां के इकलौते पुत्र थे। श्रीमती मनवादेवी के साथ आपका विवाह हुआ और गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। चार पुत्र और चार पुत्रियों से भरपूरा परिवार आपने विकसित किया।

साहित्यिक क्षेत्र में योगदान :

प्रारम्भ में आपकी रुचि साहित्य में विशेषत: न्यायशास्त्र में रही। आपने

अपनी प्रतिभा एवं समय के सदुपयोग रूप मौलिक रचनाओं को आरम्भ किया। आपने लगभग ५० से अधिक कृतियों का अनुवाद भी किया। श्वेताम्बर स्थानकों में अध्यापन कार्य कराने के कारण आपके साहित्य में श्वेताम्बर परम्परा के कतिपय प्रभाव परिलक्षित होते हैं। आपने हरिभद्र सूरि कृत षोडशप्रकरण की पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप में लगभग १५००० श्लोक प्रमाण एवं १४५० श्लोक प्रमाण विजयधर्मसूरि प्रबन्ध काव्य पर संस्कृत टीकाएं लिखीं। आचारांग आदि ग्यारह आगमों तथा कई उपांगों पर श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुसार हिन्दी टीकायें कीं। आपकी कतिपय टीकायें तो अन्य नामों से भी प्रकाशित हुई हैं, किन्तु इनकी प्रशस्ति से आपके कृतित्व की स्पष्ट सूचना मिल जाती है। न्यायरत्न नामक सूत्रग्रन्थ की रचना कर उसकी संस्कृत में तीन टीकायें लिखीं। आत्ममीमांसा पर भी आपने टीका लिखी, जो कि आपके गंभीर अध्ययन एवं कुशाग्रबुद्धि की परिचायक हैं।

अनुवादों की शृंखला में औपपादिकसूत्र, राजप्रश्नीयसूत्र, जीवाभिगमसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, नन्दीसूत्र, उत्तराध्ययन आदि के हिन्दी में अनुवाद आपकी सफल लेखनी से प्रसूत हैं। परीक्षोपयोगी दृष्टि से आत्ममीमांसा और युक्त्यनुशासन के भी हिन्दी में अनुवाद आपने किये हैं।

सुकुमार व भावपूर्ण साहित्य की पंक्ति में १४ सर्गों में गुम्फित 'लोंकाशाह महाकाव्य' तथा ७० वर्ष की उम्र में दो भागों में विभाजित 'वचनदूत' नामक खण्डकाव्य का प्रणयन आपने किया।

चम्पूकाव्यों के विकास में 'वर्द्धमानचम्पू' की रचना की। द्रौपदी, पूजनाधिकारी, मोक्षपद जैसी रचनाओं के साथ पादपूर्ति के रूप में भक्तामरस्तोत्र, कल्याणमन्दिरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र एवं विषापहारस्तोत्र पर भी आपकी लेखनी निरबाध रूप से प्रवाहित हुई है। जैनदर्शन के तुलनात्मक अध्ययन रूप में आपने भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति कृत चतुर्विंशतिसंधान का अनुवाद किया, किन्तु यह रचना अभी तक अप्रकाशित ही है।

आपने साहित्य की अनेक विधाओं पर अधिकारपूर्वक लेखनी चलाकर अपनी पैनीदृष्टि और बेजोड़ प्रतिभा का परिचय दिया। धर्म व समाज के मूकसेवक बन आप मां सरस्वती की सेवा में निरत रहे। संस्कृत भाषा के महाकवि, भाषाशास्त्र के विशेषज्ञ एवं जैनदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् श्री शास्त्री जी ने ८३ वर्ष की आयु में ५ अगस्त १९८६ को इस संसार से महाप्रयाण कर अपने परिवार के साथ समस्त जैन समाज को शोकाभिभूत कर दिया। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

पं. मूलचन्द्र वत्सल

नवीन विचारक, गंभीरचेता, महान् अध्येता, समाज सुधारक, स्पष्टवादी एवं परोपकारी श्री वत्सल जी ने राष्ट्र, समाज और साहित्य की जो सेवा अपने जीवनकाल में की है उसकी यश:कीर्ति आज भी जीवंत है ।

आपके पितामह सिंघई सोनेलाल जी म.प्र. के दमोह जिलान्तर्गत बिलाई ग्राम के रहने वाले थे। इसी स्थान पर श्री वत्सल का जन्म हुआ। आपके पिता श्री सिंघई हीराचन्द जी विद्वान्, कर्मठ कार्यकर्ता और सुरुचि सम्पन्न पुरुष थे, जिन्होंने अपना निवास दमोह को निश्चित किया था।

शिक्षा :

बाल्यकाल से ही विद्याध्ययन में अत्यन्त रुचि रखने वाले श्री वत्सल जी ने बचपन में ही कवित्त, प्रार्थनाएं और भजनादि कण्ठाग्र कर लिये थे। ११-१२ वर्ष की अल्पायु में ही आपको खुरजा, ब्यावर, अजमेर, ग्वालियर आदि स्थानों में पिता जी के साथ तथा एकाकी भी रहने का अवसर मिला। उस समय अनेक प्रसिद्ध विद्वानों से सम्पर्क करने का आपको अवसर मिला। जिनसे आपने सैद्धान्तिक एवं आचारविषयक अनेक अनुभवों का संग्रह किया। जब आप अजमेर में थे तब आपकी आयु १४ वर्ष की थी। वहां आप वाचनालय खुलने के समय से लेकर बन्द होने तक बराबर अध्ययन करते रहते थे।

पिताजी के अत्यन्त भ्रमणशील होने के कारण आप किसी एक स्थान पर विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके। अपितु आपने प्रकृतिप्रदत्त प्रतिभा और स्वयं के कठिन परिश्रमपूर्ण अध्ययन से सिद्धान्त, धर्म, इतिहास और साहित्य जैसे विषयों में शास्त्री तक की योग्यता को अर्जित कर लिया था। आपने अपनी अध्ययनशीलता के बल पर गुजराती, बंगला, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं पर भी अधिकार कर लिया था।

कार्यक्षेत्र :

प्रारम्भ से ही प्राय: एकाकी जीवनव्यतीत करने के कारण निर्भयता, दृढता,स्वावलम्बन, कष्टसहिष्णुता आदि अनेक गुणों से समन्वित हो गये। आपने सन् १९१७ से दमोह में सराफी की एक प्रसिद्ध फर्म से कार्य आरम्भ किया। अपनी

कार्यकुशलता एवं ईमानदारी से कुछ ही महिनों में उच्च स्थान पा लिया। अन्त में सन् १९३८ में स्वयं का वर्तनभण्डार खोला, जिससे आपको आर्थिक रूप से निश्चिंतता प्राप्त हो सकी।

गृहस्थजीवन :

'सादा जीवन उच्च विचार' की कहावत को चरितार्थ करते हुए आपने गृहस्थ जीवन को पूर्ण सादगी से व्यतीत किया। पत्नि के वियोग के समय आपकी आयु मात्र ३० वर्ष की थी, पर आपने दूसरा विवाह नहीं किया। बाल विधवाश्रम की संचालिका विदुषी चन्दाबाई जी ने आपकी दोनों बेटियों को आश्रम में स्थान देकर चिन्तामुक्त कर दिया।

साहित्यिक गतिविधियां :

श्री वत्सल जी की साहित्यिक अभिरुचि बचपन से ही थी। आर्थिक स्थिति दयनीय होने पर आप दमोह छोड़कर बिजनौर चले गये। यहां रहकर आपने 'वीरपत्र' को सुन्दर एवं लोकप्रिय बनाने में लाला राजेन्द्रकुमार जी को पूर्ण सहयोग दिया। साहित्यिक गोष्ठी का निर्माण, साहित्यसम्मेलन, महिला विद्यापीठ और पंजाब में हिन्दी परीक्षाओं के केन्द्र स्थापित किये। अपनी उत्कृष्ट साधना से साहित्यसृजन की एक लम्बी शृंखला स्थापित की। आपकी कृतियों में - विचार पुष्पोद्यान, आदर्श जैन महात्मा, आदर्श जैन कुमार, आदर्श जैन कुमारियां, जैन कवियों का इतिहास, महात्मा रामचन्द्र, सती रत्न, वीर पंचरत्न, महात्माओं की वाणी, जैनधर्म शिक्षावली, सुदर्शन नाटक, ऐतिहासिक महापुरुष, सती चरित और शीलमहिमा, जैन महिला गायन, वीरगायनमंजरी, वीर गायन, हिन्दी जैन विवाह विधि, हिन्दी संस्कार विधि, सदाचार रत्नकोष, समाधिशतक, देवउपासना, उपदेशरत्नमाला, जैन वनितारागिनी, कुण्डलपुर पूजन आदि आपकी प्रमुख कृतियां हैं।

सामाजिक चेतना :

परोपकारी श्री वत्सल जी ने सामाजिक क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित पद को प्राप्त किया। सामाजिक उत्थान के लिए किये गये कार्यों की सदा श्लाघा होती रही। दमोह में वाचनालय के अभाव को देखते हुए आपने अत्यन्त परिश्रम के साथ सार्वजनिक वाचनालय स्थापित कराया। जैन पाठशाला एवं महिला ज्ञान मन्दिर की स्थापना कर आपने शिक्षण की ओर लोगों को जागरुक किया। सन् १९२९ में 'आदर्शजैन'

मासिक पत्र का प्रकाशन कर सामाजिक चेतना में प्राण फूंकने का कार्य किया।

महाकौशल प्रान्तीय परिषद के आप कई वर्षों तक संचालक रहे और सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में हुये यशस्वी अधिवेशन आपके विशेष प्रयत्नों की ही कहानी हैं। आपने जातिसुधार और सामाजिक क्रान्ति हेतु जो कवितार्कम किया वह वरदान सिद्ध हुआ ।

राष्ट्रीयचेतना :

सन् १९२० में पिता के स्वर्गवासी होने पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को समर्पित किये गये क्षणों को सार्थक किया। अन्तस् में उठती राष्ट्रीय चेतना की भावना और देश में बलवती होती असहयोग आन्दोलन की आग से उत्साहित हो आपने भी खादी, चरखा, नशाबन्दी, अछूतोद्धार, विदेशीवस्त्रबहिष्कार आदि कार्यों में सक्रिय सहयोग किया।

इसी समय आपने एक राष्ट्रीय शाला स्थापित कर देशसेवा, परोपकार और त्याग की उत्कृष्ट भावनाओं के कारण अपनी आर्थिक परिस्थिति की ओर ध्यान न दे, राष्ट्रीय चेतना को उन्नत करने का आदर्श विकसित किया।

इस निःस्वार्थ धर्म, समाज एवं राष्ट्र सेवी की विशिष्ट सेवाएं सदैव याद की जाती रहेंगी।

ब्र ब्र ब्र

पं. मूलचन्द किसनदास कापडिया

लगन, उत्साह और बुद्धि का चातुर्य जीवन में आने वाली बाधाओं को दूर कर जीवनपथ को निष्कंटक बना देता है। सरल और सुगमपथ को प्रसन्नता के पाथेय के साथ तय करना आनन्द के लिये होता है।

पं. मूलचन्द कापडिया उन व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने पूरी एक शताब्दी के इतिहास की उथल-पुथल को देखा और उसमें अडिग रहकर अपनी चिरन्तन भावनामय कृतियों द्वारा समाज को नेतृत्व दिया।

आपका जन्म बीसाहुमड जाति के मंजेश्वर गोत्र में वि.सं. १९३९ को मां

हीराकौर की कोख से हुआ था। आपके पिता श्री किसनदास जी कपड़े के अच्छे व्यापारी थे, जिससे 'कापडिया' इस संज्ञा को प्राप्त हो गये थे।

शिक्षा :

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुजराती स्कूल में और अंग्रेजी शिक्षा मिशन हाईस्कूल में हुई। आप एक मेधावी छात्र रहे और अपने अध्ययनकाल में स्कालरशिप प्राप्त करते रहे।

धार्मिक शिक्षा की प्रेरणा आपको स्व. दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जौहरी बम्बई द्वारा प्राप्त हुई। आपने १५ वर्ष की अवस्था से ही नित्य स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा ले ली और धार्मिक ग्रन्थ का तार्किक व सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन किया। उसी का प्रभाव है कि आप धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में इतनी अधिक सेवा कर सके।

पारिवारिक दायित्व :

अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री मगनलाल जी की मृत्यु के पश्चात् पिताजी को सहयोग देने हेतु आपने कपड़े की दुकान पर बैठना प्रारम्भ कर अपने कर्त्तव्यबोध को प्रकट किया।

ईश्वरलाल कापडिया जी आपके कनिष्ठ भाई थे जो कि बम्बई में मखमल का व्यापार करते थे। किसी उत्साही व्यक्ति के पास विपदायें भी पूर्ण जोश के साथ आती हैं। श्री कापडिया ने गृहस्थ जीवन में वियोगों की लम्बी शृंखला भोगी, पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरी पत्नी श्रीमती सविताबाई जी आपकी जीवन संगिनी बनी और उन्होंने एक पुत्र बाबूभाई और पुत्री दमयन्ती को जन्म दिया। किन्तु पुत्र का सुख भी आपके जीवन में अधिक दिन तक नसीब न हो सका। अत: वह भी सोलह वर्ष की आयु में टायफायड का शिकार हो इस दुनिया से कूच कर गया। २५ वर्ष की आयु होने पर श्रीमती सविताबाई ने आपका साथ छोड़ दिया। अब आपके परिवार को संभालने की सारी जिम्मेदारी ईडर निवासी डाह्याभाई ने ली, जिसका पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह भी किया।

साहित्य सेवा :

आपने दुकान की जिम्मेदारी के साथ साहित्यसेवा का व्रत भी लगन के साथ

पालन किया। दुकान से बचे समय का सदुपयोग 'दिगम्बर जैन' गुजराती एवं हिन्दी मासिक पत्र के सम्पादन करने में करते थे। जिसके द्वारा आपने समाज व लोगों के हृदय में गहरी पैठ बना ली।

श्री कापडिया जी ने बम्बई के दानवीर सेठ माणिकचन्द जी द्वारा संस्थापित श्री दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा से 'जैनमित्र' नामक हिन्दी पत्र का प्रकाशन किया, इस लोकप्रिय पत्र को पढ़ने हेतु आपने हिन्दी भाषा का विशेष परिज्ञान प्राप्त किया। जब आपने सूरत में अपना 'जैनविजयप्रेस' खोला और बम्बई दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा की मैनेजिंग कमेटी में गजपन्था के अधिवेशन में जाकर प्रस्ताव रखा कि 'जैनमित्र' को साप्ताहिक किया जाये और इसे सूरत से ही प्रकाशित किया जाये तो मैं स्वयं ऑनरेरी प्रकाशक के पद पर कार्य करूंगा। आपका प्रस्ताव आनन-फानन में स्वीकार हो गया और १८ वें वर्ष से यह पत्र साप्ताहिक हो गया। पश्चात् आपने इसके सम्पादन का भी कार्य भार संभाला। आत्मीयता के साथ कार्य करते हुये इस पत्र को दीर्घजीवी बनाने का श्रेय आपको ही है। इस पत्र की विशेषता यह थी कि प्रतिवर्ष अपने ग्राहकों को यह उपहारग्रन्थ भेंट करता था।

'दिगम्बरजैन' मासिक के साथ 'दिगम्बर जैन पुस्तकालय' की स्थापना आपकी सेवा व निष्ठा का प्रतिफल थी। जिससे आपने लगभग १५० हिन्दी और ५० गुजराती ग्रन्थों को प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त की।

रूढियों के विरोध स्वरूप आपने परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए 'जैन महिलादर्श' का प्रकाशन भी सूरत से कराया। जिसकी संस्थापिका एवं संचालिका माननीया विदुषी पं. चन्दाबाई जी आरा थी।

सामाजिक सेवायें :

श्री कापडिया जी ने अपने स्व. पुत्र बाबूभाई की स्मृति में १५ हजार रूपये से बी.एम.आई. के. कापडिया नामक संस्था, दिगम्बर जैन बोर्डिंग कालेज के विद्यार्थियों के हितार्थ संस्थापित की। अपने पुत्र बाबूभाई, पिता श्री किशनदास तथा पत्नी श्रीमती सविताबाई के नाम से तीन ग्रन्थमालायें, जिनमें विशेषत: उपहारग्रन्थ प्रकाशित होते थे, संस्थापित कीं।

अशिक्षा, बालविवाह, विधवाओं के तिरस्कृत जीवन और उनकी परतन्त्रता आदि के विरोधी श्री कापडिया जी ने उनके उत्थान हेतु अनेक कार्य किये। शतवर्षोन्मुख

व्यक्तित्व वाले आपके जीवन में कृतित्व अनेक विधाओं से संपन्न है। आपकी सुदीर्घकालीन साहित्यसाधना, पत्रकारिता, सम्पादनकला आदि किसी से अनजानी नहीं है। समाज, साहित्य और संस्कृति के प्रति आपकी समर्पण की भावना से ओतप्रोत प्रवृत्ति जैन विद्वानों को सदैव प्रेरणास्पद बनी रहेगी।

❑

पं. मोहनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ

सत्य सदैव चिरस्थायी रहता है, वह आवरणमय तो हो सकता है, किन्तु समाप्त नहीं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति विश्व में अपना अलग महत्त्व रखती है। क्योंकि परम्परा का नवनीत उसकी आधुनिकता में समाया हुआ है। उसका केन्द्र परम्परा से शुरू होकर आधुनिकता की परिधि में मानव को बांधता है, परम्परा और आधुनिकता का अनूठा सामंजस्य जहां मानव को अपनी अस्मिता से परिचित कराता है, वहीं दूसरी ओर विकास की रफ्तार में उसे लक्ष्यहीन नहीं वरन् लक्ष्यवान् व वेगवान् बनाकर प्रेरित करता है।

जन्म एवं शिक्षा :

सागर के बरायठा नामक ग्राम में श्री भूरेलाल जी के आंगन में इस बालक ने जन्म लिया। घर के वातावरण में आरम्भिक अक्षराभ्यास करने के बाद विभिन्न स्थानों से आपने व्याकरण शास्त्री, साहित्य शास्त्री, काव्यतीर्थ आदि उपाधियों को प्राप्त करने की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

कर्मारूढ :

३६ वर्ष तक प्रधानाध्यापक के पद पर आरूढ हो धार्मिक शिक्षण एवं प्रतिष्ठा का कार्य करते हुए आपने मुख्यत: पपौरा, किशनगढ, सिवनी, खण्डवा, कुण्डलपुर, द्रोणगिरि, मलहरा एवं जबलपुर आदि स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बनाया।

१३१ से अधिक जैन ग्रन्थों का लेखन/सम्पादन/अनुवाद करते हुए उन्हें प्रकाशित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हो सका है। आपकी मौलिक कृतियों में - अखिल भारतीय गोलापूर्व जैन डायरेक्टरी, श्रावक नित्यक्रिया-कलाप, मुनि नित्यक्रिया-कलाप, सन्त वर्णी, नीति रत्नाकर और जैन विवाह पद्धति आदि उल्लेखनीय हैं।

PDF Scanner ACE Scanner

आपने सेवा कार्यों रूप मन्दिर पर कलश तब चढ़ाया, जब कि आपने नन्दीश्वरद्वीप में एक जिनालय की स्थापना के साथ एक लाख रूपये के स्वैच्छिक दान से विद्यार्थियों एवं साधनहीन कन्याओं के विवाह के लिए ट्रस्ट की स्थापना का सराहनीय कार्य किया।

सम्मान :

सन् १९४१ में जैन पंचायत सभा जबलपुर ने आपका सम्मान कर गौरवान्वित किया। पर्युषण पर्व के सन्दर्भ में भी अनेक स्थानों से धर्मप्रभावना पूर्वक सम्मान प्राप्त करने में आप अग्रणी रहे।

और अन्त :

सन् १९९२ को साहित्य जगत् का यह सूर्य अस्ताचल में निमगन हो गया किन्तु उसकी रोशनी आज भी अज्ञानांधकार को दूर करने में समर्थ है।

❑

यशपाल जैन

गांधीवादी विचारधारा के मनीषी, हिन्दी जगत् के यशस्वी लेखक और सम्पादक रहे हैं श्री यशपाल जैन। इनका जन्म एक सितम्बर सन् १९१२ को उत्तरप्रदेश के अलीगढ जिले के अन्तर्गत विजयगढ नामक कस्बे में हुआ था।

आपकी आरम्भिक शिक्षा अलीगढ में ही हुई। बी.ए. (सन् १९३५) तथा एल.एल.बी. (सन् १९३७) की परीक्षाएं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण कीं।

अभिरुचि :

विद्यार्थी जीवन से ही इनकी अभिरुचि लेखन की ओर रही। नवमी कक्षा के विद्यार्थी काल में ही आपने दो सामाजिक उपन्यास लिखे साथ ही अनेक कथा और कविताओं की रचना कर डाली जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

अध्ययन पूर्ण होने पर अपनी रुचि के अनुरूप ही श्री यशपाल ने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया और कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। आपके द्वारा सम्पादित होने वाली कतिपय पत्र-पत्रिकायें थी - जीवन सुधा (मासिक), मधुकर (पाक्षिक)। इनसे आप सन १९४६ से अन्त तक जुड़े रहे। भारत में प्रमुख गांधीवादी

प्रकाशन संस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल' के तो आप प्राण ही थे। सन् १९४७ से इस मण्डल की पत्रिका 'जीवनसाहित्य' का सम्पादन करते रहे।

स्वतन्त्र सम्पादन एवं सहयोगी :

अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों के सम्पादन में आप निःस्वार्थ भाव से सहयोगी रहे। प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, राजेन्द्रबाबू व्यक्तित्व दर्शन, नेहरू व्यक्तित्व और विचार, गांधी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव, संस्कृति के परिव्राजक (काका कालेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ), गांधी संस्मरण और विचार, समन्वयी साधन, प्रेरक साधक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, समाज विकास माला आदि आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ हैं।

चार उपन्यास, चौदह कहानी संग्रह, आत्मकथा, तीन जीवनियां, पांच रूपक, एकांकी नाटक, एक कवितासंग्रह, तीन संस्मरण निबन्ध संग्रह, चार निबन्ध संग्रह, दश यात्रा पुस्तकें, तीन अनूदित उपन्यास और लगभग २० संकलित तथा सम्पादित पुस्तकें आपकी प्रकाशित हैं।

विदेशयात्रा :

हिन्दी में स्व. राहुल सांस्कृत्यायन और डॉ. रघुवीर के बाद श्री यशपाल ही तीसरे लेखक थे, जिन्होने अनेक बार अपने देश में भ्रमण के साथ विश्व के ४२ देशों की विदेश यात्राएं कीं। रूस की दो बार यात्रा भारतीय शिष्ट मण्डल के सदस्य के रूप में, सन् १९६३ में अखिल वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन रंगून द्वारा आमन्त्रित होने पर वहां दीक्षान्त भाषण दिया। सन् १९८१ को टोकियो में आयोजित विश्वशान्ति सम्मेलन में गांधी विचारधारा और जैनधर्म के प्रतिनिधि के रूप में आमन्त्रित किये जाने पर वहां शान्ति प्रयासों के प्रसार में विशेष योगदान दिया।

पुरस्कार एवं उपाधियां :

श्री यशपाल जी को उनकी कृति 'रूस में छियालीस दिन' पर सोवितय लेण्ड का 'नेहरू पुरस्कार' मिला। 'सेतु निर्माता' पुस्तक पर पुनः सोवियत लेण्ड के 'नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किये गये। 'अणुव्रत पुरस्कार' तथा 'सुलभ साहित्य अकादमी पुरस्कार' भी आपको प्राप्त हुए थे।

वर्ष १९९० में भारत सरकार ने आपको पद्मश्री अलंकरण से अलंकृत किया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा वर्ष १९९३ में साहित्य वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित हुए। इसी तरह भारतभर की अनेक संस्थाओं के द्वारा आपका

PDF Scanner ACE Scanner

सम्मान एवं उपाधियां प्रदान कर गौरव सम्वर्द्धन किया गया था । कानपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित किया।

सदैव मानवीय मूल्यों के पक्षधर रहे श्री यशपाल जी जैनधर्म और आचार पर गहरी आस्था रखते थे। वे जीवनपर्यन्त शाकाहारी रहते हुए उसकी स्थापना एवं अन्य देशों में सौहार्द्र संवर्द्धन की दिशा में सदा प्रयासरत रहे।

अनेक विश्वविद्यालयों में आपके साहित्य पर पी-एच. डी. के लिए शोधकार्य हो चुके/हो रहे हैं। ७२ वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में बड़े आकार वाले ८५० पृष्ठों का अभिनन्दन ग्रन्थ 'निष्काम साधक' आपको समर्पित किया गया, जो अब तक अभिनन्दनग्रन्थों में विशेष स्थान रखता है।

उदात्त और लोककल्याणकारी विचारों के साहित्य के सृजन के कारण देश-विदेशों में लोकप्रिय श्री यशपाल जी का ८८ वर्ष की आयु में १० अक्टूबर को दोपहर २.०० बजे नागदा में देहावसान हो गया। आपका अवसान आपके सुकार्यों को कभी समाप्त नहीं कर सकता।

❑

पं. रतनचन्द मुख्तार

'स्वाध्याय से बढकर तप नहीं।' गुरुमुख से श्रवण का अवसर न पाकर भी व्यक्ति स्वाध्याय के बल पर ज्ञान का आगार बन सकता है, दूसरों को मार्गदर्शन देकर उनकी जिज्ञासाओं का शमन कर सकता है। यह कोई लोकोक्ति नहीं वरन् एक कठोर सत्य है और उस सत्य का नाम था - पं. रतनचन्द जैन मुख्तार।

उत्तरप्रदेश के सहारनपुर शहर में जुलाई सन् १९०२ में आपका जन्म हुआ था। धार्मिक एवं संस्कारवान् श्री धवलकीरत जी आपके पिता एवं श्रीमती बरफी देवी आपकी माताजी थीं। बचपन में ही पितृच्छाया से विहीन होने पर आपके बड़े भाई ने पारिवारिक जिम्मेदारियों को निवाहा।

शिक्षा :

सन् १९२० में मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९२३ में मुख्तार की परीक्षा पास करते ही सहारनपुर क्षेत्र के न्यायालय में कार्य आरम्भ किया। पिता के धार्मिक संस्कारों के कारण आपकी दैनिक दिनचर्या में जिनपूजन व जिनागम का पठन-पाठन के अमिट संस्कार अंकुरित होने लगे।

विद्यार्थी जीवन में आपने यद्यपि अंग्रेजी व उर्दू का अध्ययन किया था, लेकिन धार्मिक ग्रन्थों के लिए हिन्दी, संस्कृत एवं प्राकृत का ज्ञान आवश्यक था। अत: दृढनिश्चय के साथ आपने इन भाषाओं का अध्ययन किया और उनमें दक्षता हासिल की। स्वाध्याय द्वारा आपने सिद्धान्तग्रन्थों में गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, धवला और जयधवला आदि का विशिष्ट अध्ययन किया। मात्र चार वर्ष की अवधि में नयचक्र , प्रमेयकमलमार्तण्ड और अष्टसहस्री जैसे न्याय के कष्टसाध्य ग्रन्थों का पारायण किया।

साहित्याभिरुचि :

आप सन् १९५४ से ही श्रोताओं की शंकाओं का समाधान गंभीर अध्ययन के आधार पर करते रहे और अनेक वर्षों तक शास्त्री परिषद के शंका समाधान विभाग के मन्त्री रहे। आपके जीवन की प्रमुख शंका-समाधानों का एक संकलन आपके शिष्य ने ही संग्रहीत कर पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व के नाम से दो भागों में संयोजित किया है। इसके अलावा आपने क्रमबद्धपर्याय, अकालमरण, पुण्य का विवेचन, गुणस्थान मार्गणा चर्चा आदि लघु पुस्तिकायें एवं जीवकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार जैसे महाग्रन्थराजों की विवेचना प्रस्तुत कर जिनवाणी के भण्डार की श्रीवृद्धि की।

सेवा :

पं. दरबारीलाल कोठिया द्वारा सन् १०५४ में आपको शंका-समाधान विभाग सौंपा गया। फलत: जहां आपका परिचय अनेक स्वाध्यायप्रेमियों से हुआ, वहीं शंकाकर्ताओं को आगमानुकूल समाधान उपलब्ध होने लगा। सन् १९६५ से सन् १९६८ तक आपने अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।

संयमी जीवन :

साधुओं की संगति में सदा निरत रहने से जीवन की सार्थकता को समझने का अवसर सदा ही मिलता रहा। वकालात के कार्य में सच को झूठ और झूठ को सच बनाने की कला के कारण आपने इस कार्य से ही विराम लेकर सदा के लिए हाथ जोड़ लिये। निरन्तर स्वाध्याय एवं मनन-चिन्तन करते रहने के परिणामस्वरूप आपने शीलव्रत धारण कर अन्तिम समय तक इसे पालन करने का पुरुषार्थ किया।

यश:कीर्तन :

आपके सिद्धान्तज्ञान की विशिष्टता अप्रतिम थी। जिसके कारण आपको सदैव सम्मान व बहुमान मिलता रहा। आपके विलक्षण पाण्डित्य से प्रभावित होकर सिद्धान्तसूर्य की उपाधि भी प्रदान की गई थी।

और अन्त :

'सादा जीवन और उच्च विचार' के उच्चादर्श मय जीवन वाले इस व्रती विद्वान् ने २७ नवम्बर सन् १९८० तक की दैनिकचर्या यथावत् पूर्ण की और २८ नवम्बर सन् १९८० मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी के सन्ध्याकाल में दृष्टिगोचर जगत् से विदाई लेकर अपनी यश:काय को ही इस संसार के लिये अवशिष्ट की।

❑

पं. राजधरलाल जैन

कर्मनिष्ठ, समाजसेवी, मां भारती के वरदपुत्र एवं श्रेष्ठ गुरु के रूप में श्री राजधरलाल जी विख्यात रहे हैं १६ दिसम्बर सन् १९२३ को ललितपुर के एक धार्मिक परिवार में आपने जन्म लिया। आपके पिता श्री भैयालाल जी एवं माता श्रीमती गुणमाला के घर में आपके अतिरिक्त एक भाई बालचन्द और बहिन राजमती ने भी जन्म लिया था।

शिक्षा :

सन् १९४३ में मेट्रिक पास कर १९४६ में डिप. टी. की शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर इन्टर, बी.ए. तथा एम.ए. (अंग्रेजी) की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की।

गृहस्थ जीवन एवं आजीविकोपार्जन :

एक सुयोग्य कन्या विमला जैन का पाणिग्रहण कर गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों को पहचाना। आपके एक पुत्री अनुराधा मात्र थी।

मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर अगस्त सन् १९५३ में नगरपालिका इटारसी में आप शिक्षक पद पर सेवाकार्य करने लगे। यहां १० वर्ष तक सेवा करने के बाद अक्टूबर १९६३ से दिसम्बर १९८१ तक म.प्र. शासकीय सेवा में शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्त हुए।

अभिरुचियां :

शिक्षित एवं विविध रुचि सम्पन्न श्री जैन हारमोनियम एवं तबलावादन में प्रवीण थे। शास्त्र प्रवचन एवं सामाजिक कार्यों में विशेष रूप से भाग लेना आपके जीवन का अंग ही था। सन् १९४२ से टैगोर क्लब के सचिव बनकर साहित्यिक रुचि व गतिविधियों में सामिल हुए। आपने 'नवीन भारत का इतिहास' भाग ६-८, लिखे जो कि म.प्र. में पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुये। आपके प्रयासों से महात्मा गांधी स्मृति महाविद्यालय इटारसी एवं प्रूफपब्लिक स्कूल की नींव रखी गई, जो आज यहां की प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों में गण्य हैं। समाज की अनेक संस्थाओं में भी आपने सक्रियता से कार्य कर उन्हें समृद्धि के शिखर पर पहुंचाया।

सम्मान/प्रशस्तियां :

आपकी सेवा तथा समर्पण भाव से प्रभावित हो अनेक संस्थाओं ने सम्मान किया। उनमें सन् १९७० की सेवा के लिए 'दलित विलक्षण समाज' द्वारा, सन् १९७२ में 'स्वतन्त्रता दिवस रजय जयन्ती पर्व' पर म.प्र. शासन द्वारा एवं सन् १९७५ में उत्तम सेवाओं के लिए प्राचार्य मंच द्वारा आपको सम्मानित किया गया। सन् १९७६ में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समाज द्वारा स्वर्णपदक और सन् १९७८ में नागरिक सुरक्षा विभाग द्वारा रौप्य पदक से विभूषित किया गया। आकाशवाणी भोपाल, जिलाधीश होशंगाबाद, एवं म.प्र. तृतीय वर्ग कर्मचारी संघ ने भी आपका सम्मान कर अपना गौरव प्रकट किया।

प्रयाण :

समाज और साहित्यसेवा में समर्पित श्री राजधरलाल जी ने ७६ वर्ष की आयु में १२ अगस्त १९९९ में इस लोक से प्रयाण किया। उनकी स्मृतियों को चिरस्थायी बनाने के लिए उनका अभिनन्दन ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित करने की योजना है।

❑

मा. रामसिंह जैन

प्रारम्भिक जीवन :

दिगम्बर जैनधर्म के प्रचार एवं स्व-पर कल्याण हेतु अपना जीवन समर्पित कर देने वाले थे मास्टर रामसिंह जी जैन। विद्वानों की नगरी आगरा के समीप मूंगरा

ग्राम में एक संभ्रान्त एवं उदार 'धर्मनीवाल जैन' घराने में ९ अगस्त सन् १९...
आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्री चन्द्रभान जी एवं पितामह श्री मन्नीलाल...
बहुत बड़े जमींदार थे। जब रामसिंह चार-पांच वर्ष के ही थे, तब माताजी...
देहावसान हो जाने से उनके स्नेह से वंचित तो जरूर हो गये पर इसकी पूर्ति पिता...
पितामह दोनों ने करने की भरपूर कोशिश की।

शिक्षा :

आपने प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही गांव के विद्यालय में प्राप्त की, इसके...
समीपस्थ अछनेरा ग्राम में। पितामह की आज्ञा से आगरा में माध्यमिक शिक्षा...
की। सन् १९४० में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' द्वारा संचालित 'विशारद'...
परीक्षा तथा सन् १९४७ में आगरा विश्वविद्यालय की बी.ए. की परीक्षा उत्...
की। सन् १९४८ में प्रशिक्षण प्राप्त कर एल.टी. की उपाधि पायी और सन् १९...
में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्यापनकार्य :

अध्ययनकाल से ही आपकी अध्यापन में रुचि थी। विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण
होते ही आपने अपना विद्यालय खोल लिया। बाद में अनेक शिक्षा संस्थाओं में
अपनी सेवायें भी प्रदान करते रहे। कुछ समय अछनेरा इन्टरकालेज में, एम.डी. जैन
हाईस्कूल आगरा एवं मार्डन हाईस्कूल आगरा में भी अध्यापन कार्य किया। सन्
१९५३ में के.जी. हायर सेकेण्डरी स्कूल में हिन्दी के अध्यापक का पदभार ग्रहण
किया। यहीं से ३० जून १९७६ को आपने वरिष्ठ अध्यापक के पद से अवकाश
ग्रहण किया।

राजनैतिक योगदान :

विद्यार्थी जीवन से ही आपने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया।
आप महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुयायी थे। समाज व देश के प्रति की गई
आपकी सेवाओं से प्रभावित हो नगर महापालिका के चुनाव में कांग्रेस कमेटी द्वारा
आपको सदा टिकिट दिया गया और क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भी किया। आपने अनेक
वर्षों तक शहर कांग्रेस कमेटी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पद पर सेवायें भी कीं।

धार्मिक अवदान :

लगभग सन् १९४८-४९ में परम पूज्य क्षु. श्री सहजसागर जी महाराज का

धूलियागंज में चातुर्मास हुआ। इसी दौरान आप आरम्भ की गई ग्रन्थमाला के प्रकाशक मनोनीत हुए तथा आपके द्वारा ही लिखित 'भगवान् महावीर' पर एक ट्रेक्ट प्रकाशित हुआ। अपने साले श्री सुगनचन्द जी की प्रेरणा से जैनधर्म के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। इसके बाद आपने ब्र. मूलशंकर देसाई को अपना गुरु बना लिया और सदा धर्मसाधन करते रहे।

आप श्रेष्ठ प्रवचनकार एवं वक्ता थे। आप घण्टों धाराप्रवाह भाषण करने की अद्भुत क्षमता रखते थे।

साहित्य सेवा :

आपने आरम्भिक दिनों में राजनैतिक पत्रिका 'सेविका', सामाजिक पत्रिका 'पल्लीवालबन्धु' तथा 'पल्लीवाल जैन पत्रिका' का कुशल सम्पादन किया। जैनधर्म से सम्बन्धित अनेक लेख जैनदर्शन, वीरवाणी, दिव्यध्वनि, अमरवाणी, नवभारत टाइम्स आदि में प्रकाशित होते ही रहते थे। भगवान महावीर और उनका दिव्य सन्देश तथा जैनधर्म के प्रवर्तक भगवान आदिनाथ आदि आपकी अमर कृतियां हैं, जो साहित्य भण्डार को समृद्ध करती हैं।

आप आदर्श मुनिभक्त एवं जैनदर्शन व सिद्धान्त मर्मज्ञ विद्वान् थे। आप श्रावक के आवश्यकों में सदा निरत रहते तथा जीवन में आदर्शों को साकार करने में तत्पर रहते थे।

अवसान :

२४ अप्रेल सन् १९७८ को आगरा में आपका असामयिक निधन हो गया। इससे जैन समाज में अपूरणीय क्षति हुई।

सेठ रावजी नेमचन्द शहा

आपका जन्म सोलापुर में सन् १८९० को श्री नेमचन्द जी धार्मिक एवं संस्कारसम्पन्न परिवार में हुआ था।

शिक्षा :

बालक राव जी बचपन से कुशाग्रबुद्धि सम्पन्न था। उसे लौकिक एवं धार्मिक विषयों को पढ़ने में सदा सुयश प्राप्त हुआ। सन् १९०७ में हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता के

आन्दोलनों का दौर था। उस समय आप पूना में उच्च अध्ययन में संलग्न थे। देश के नेताओं के व्याख्यान सुन आपकी मनो भावनाओं ने भी सामाजिक, एवं राजनैतिक क्षेत्र में योगदान करने की प्रतिज्ञा कर ली। सन् १९१२ में बनकर आप नगर के अग्रगण्य वकीलों में सामिल हो गये। आप संस्कृत, मराठी, हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे।

विद्यार्थी जीवन में अनेक बार वक्तृत्व कुशलता हेतु सोलापुर, धूलिया आदि नगरों में प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने के अवसर भी आये।

सामाजिक सेवा :

सोलापुर में श्री गो. कृ. देवघर की अध्यक्षता में इण्डियन सोशल कान्फ्रेंस हुई, जिसमें आपने सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। हरिजन एवं पिछड़ावर्ग की प्रान्तिक सभा के उत्थान में भी आपने अथक परिश्रम किया। आपने कोल्हापुर में भट्टारक लक्ष्मीसेन की अध्यक्षता में साहित्यिक एवं समाज सेवा का लक्ष्य बनाकर विदर्भ प्रान्त की जो सेवा की वह विशेष उल्लेखनीय है। इसके अलावा आपने अनेक सन्दर्भों पर जैन धर्म के विरुद्ध होने वाले आरोपों एवं वितण्डाओं का सप्रमाण जवाब देकर जो समाज व धर्म की सेवा की वह अतुलनीय है।

आप अनेक संस्थाओं से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे। अखिल विश्व जैन मिशन के आप प्रान्तीय संयोजक, भारत जैन महामण्डल के संयोजक एवं सम्मानित सभासद रहे। दक्षिण भारत जैन महामण्डल में भी आपको सम्माननीय स्थान प्राप्त था।

साहित्यिक कर्म :

आपने अपने जीवन में साहित्य के क्षेत्र में जो योगदान किया है वह अन्यत्र दुर्लभ ही माना जाना चाहिये। आपकी अनेक कृतियों की प्रशंसा समय-समय पर समीक्षक, प्रस्तावना लेखक और पाठक करते रहे हैं। आपकी रचनाओं में अन्ताराष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वाली प्रथम कृति है - धर्मादर्श (मराठी), जिसका ज्ञानकोष बनाने में अत्यधिक उपयोग किया गया था। समायिक पाठ (मराठी), समाधिशतक, महापुराणामृत, जिनशासन, तीर्थंकरों की प्राचीनता और जैन शासन, जैन साहित्य सृष्टि, जैन कोड एण्ड जैनिज्म और अनेक प्राचीन आचार्यों के जीवनवृत्त पर खोजपूर्ण व प्रमाणिक सामग्री का संकलन आदि गिनी जाने योग्य रचनायें हैं।

इसके अलावा आपने 'जैनधर्म पर आक्षिप्त विधान और निरसन' नामक प्रबन्ध में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अनेक भूलों को सुधारने में योग किया। इस प्रकार आपका अमर वाङ्मय विश्व के मुख्य धर्मों के साथ जैनधर्म को तुलनात्मक दृष्टि से प्रतिपादित/व्याख्यायित करता है।

आपने मात्र लिखा ही नहीं है अपितु समय के अनुसार कुशल सहसम्पादन कर प्रगति आणि जिनविजय और सत्यवादी को यथार्थ रूप से प्रगति पथ प्रदान किया। अनेक अभिनन्दन ग्रन्थ एवं स्मारिकाओं का सम्पादन भी आपके यशोवर्द्धन के लिए रहा।

गौरव एवं सम्मान :

आपको अपने कार्यों के लिए तथा आपकी वक्तृत्व की विशेषता के लिए सदा सम्मान मिलता रहा। एकदा सन् १९४६ में जगन्नाथपुरी के शंकाराचार्य द्वारा आपको 'वाङ्मय प्रदीप' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। इसके साथ अन्य स्थानीय एवं राजकीय संस्थाओं से आपको सम्मानित होने का अवसर भी सुलभ हुआ। अनेक सम्मेलनों की अध्यक्षता करने जैसे सम्मान तो इस सब के अतिरिक्त थे ही।

अन्तिम समय :

सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के प्रचार-प्रसार में अग्रगण्य श्री शहा जब निंबाल गए थे तभी आपको ब्रेनहेमरेज होने जाने से वहां ही अन्तिम श्वांस मिल सकी। देश ने ऐसे निस्पृह एवं सफल धर्मप्रचारक का वियोग शोकाकुल हो सहन किया।

❑

श्रीमती रूपवती 'किरण'

परतन्त्रता के परिधियों को तोड स्वतन्त्रता के विस्तृत आकाश में स्वैर विचरण करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। परम्परावादी मान्यताओं में पली बालिका अपने को घूंघट के अन्दर कैद न कर सकी। सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियां विकलांग होते हुये भी पूर्ण स्वस्थता का भ्रम पाल उसी परिवेश में रहने को बाध्य करती हैं, किन्तु अन्ततः अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए बालिका रूपवती

किरण ने बचपन से ही इस चक्रव्यूह को तोडने के लिए अपनी आत्मशक्ति को संगठित कर नन्हें कदमों से चलना आरम्भ किया।

नागपुर में श्री लक्ष्मीचन्द के आंगन में सन् १९२५ में जन्मी, किन्तु आपने नाना श्री नन्दलाल के परिवार में मां के आंचल की छांव तले बचपन की दहलीजों को पार किया।

अक्षराभ्यास :

शिक्षा की ललक एवं परम्पराओं की बेडियों को तोड़ने के लिये आपने पिता और नाना को इस बात को मानने के लिए विवश किया कि मैं पं. ब्र. चन्दाबाई जी के सानिध्य में शिक्षा ग्रहण करूंगी और सन् १९३८ तक बालाश्रम आरा में पं. के. भुजबली शास्त्री के गुरुत्व में धार्मिक शिक्षण प्राप्त किया। किन्तु चार वर्ष बाद मां की असाध्य बीमारी के कारण आपको वापिस नागपुर आना पड़ा।

पारिवारिक जीवन :

सन् १९४० में १४ वर्ष की उम्र में बालविवाह के बन्धन को स्वीकारते हुए जबलपुर के प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न परिवार फर्म मुन्नीलाल बप्पूलाल आयल मिल, वालों के यहां श्री कोमलचन्द के साथ गृहस्थ जीवन आरम्भ किया। सन् १९५१ में ससुराल में आपके पतिदेव के तीन भाइयों में सम्पत्ति सम्बन्धी आपसी बंटवारा हुआ। पति के सरल और निश्छल स्वभाव का अन्य भाइयों ने लाभ उठाया और लाखों की नगदी विलीन हो गयी। दुर्भाग्यवश दिनोंदिन आर्थिक विषमता के थपेड़ों से श्री कोमलचन्द जी अपना मानसिक संतुलन खो बैठे। अनिद्रा और अंग्रेजी में धारावाहिक रूप से बोलना आपका मानसिक रोग बन गया। इसी समय पुत्र के वियोग के दु:ख ने भी मानसिक संताप में वृद्धि कर दी।

बड़े पुत्र नरेन्द्रकुमार ने कर्त्तव्यपरायण बन मां के गार्हस्थिक बोझ को बांटने में सहयोग किया। जीवन के जिन कटु अनुभवों से आप गुजरी उनमें दहेज प्रथा भी एक थी। क्योंकि योग्य, सुशिक्षित और चित्रकला व संगीत आदि में प्रवीण होने के बावजूद भी आपको अपनी तीन पुत्रियों के प्रणयबन्धन हेतु अर्थाभाव के कारण सघन मानसिक चिन्ताओं से गुजरना पड़ा।

साहित्य यात्रा :

ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही राष्ट्रीय भावनाओं से आन्दोलित हो आपकी

लेखनी ने कागज को पहचान लिया था, किन्तु पारिवारिक जीवन में उनके पल्लवन का उपयुक्त वातावरण न मिल सका। श्रद्धेय कविवर कल्याणकुमार 'शशि' ने आपको अपनी संवेदनाओं को कविता के रूप में परिणत करने के लिए प्रेरित किया और सर्वप्रथम १९४५ में पूज्य वर्णी जी की प्रेरणा से मंच पर बोलने की निर्भीकता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत अनेक कविताओं व लेख के साथ आपने पौराणिक कथानकों, कहानियों, नाटकों एवं एकांकी के रूप में अपनी लेखनी को प्रवाहित किया। सन्मतिसन्देश के माध्यम से आपने अपना परिचय जैन साहित्य जगत् में स्थापित ही नहीं किया अपितु लोकप्रियता भी हासिल की। इसके अलावा गद्यकाव्य लिखना भी आपका अन्यतम शौक था।

आपने ६ नाटक, ३४ एकांकी, ३०० कवितायें, ३० कहानियां एवं सैकड़ों लेखों को अपनी लेखनी से निबद्ध किया। आपकी अनेक कविताएं आकाशवाणी जबलपुर और इन्दौर आदि से प्रसारित भी होती रहती थी। देश की मासिक पत्रिकाओं में आपके नियमित स्तम्भ के रूप में रचनायें प्रकाशित होती रहती थीं। स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कृतियों में - वसन्ततिलका (नाटक) तथा जैनदर्शन (निबन्धसंग्रह) उल्लेखनीय हैं। सन् १९६२ में जैन महिलादर्श, सूरत के स्थायी स्तम्भ 'कवितामन्दिर' तथा अनेकान्तकाव्य संग्रह का सम्पादन आपके करकमलों से सम्पन्न हुआ।

सामाजिक कार्य :

आपने सांध्यकालीन धार्मिक पाठशाला को स्थापित करते हुए सन् १९४५ में महिला पुस्तकालय की स्थापना की। तथा तीन वर्ष तक उसकी मन्त्राणी एवं संचालिका पद के कार्य को दक्षता से निर्वाह करते हुए उसकी अभिवृद्धि में संलग्न रहीं। 'वीणा' साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था का गठन कर १९६४-६५ तक उसके अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। अनेक कवि सम्मेलनों में कवितापाठ करने के सुअवसर भी आपने पाये।

पारिवारिक व साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और बुद्धिचातुर्य से सफलता को प्राप्त करने वाली और कठिन परिस्थितियों में अडिग श्रमशील जीवन की कहानी प्रस्तुत करने वाली इस महिलारत्न ने चिरविश्रान्ति हेतु अपने आपको तैयार किया।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

लक्ष्मीचन्द 'सरोज'

अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक एवं सामाजिक कार्यों में श्रेष्ठ कार्यकर्ता के रूप में पहचान बनाने वाले श्री लक्ष्मीचन्द 'सरोज' का आज भी स्मरण किया जाता है। आपका जन्मस्थल झांसी जिले का सिरगन ग्राम है। जहां गोलालारे जैन समाज के लांगूर गोत्र में २ फरवरी १९२५ को श्री जयकुमार जैन एवं श्रीमती प्यारीबाई के परिवार में आपका जन्म हुआ था।

विद्याभ्यास :

अपने ग्राम में ही आरम्भिक शिक्षा कक्षा आठ तक प्राप्त कर उच्च अध्ययन हेतु इन्दौर चले गये। वहां पर शास्त्री, साहित्यरत्न आदि की परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वाध्यायी विद्यार्थी के रूप में एम. ए. तथा बी.एड. की उपाधि भी प्राप्त की।

जीवननिर्वाह एवं अभिरुचि :

श्री लक्ष्मीचन्द जी ने आजीविका हेतु अध्यापन का कार्य आरम्भ किया और इस कार्य में संलग्न रहते हुए ही उच्चशिक्षा प्राप्त की। अध्ययन-अध्यापन के साथ विद्यार्थी जीवन से ही सम्पादन व लेखन के प्रति विशेष आकर्षण रहा। अध्ययनकाल में ही आपने 'सुधा' और 'वर्धमान' पत्रों का सम्पादन/संकलन किया। बाद में 'चेतना' (दैनिक), 'शाश्वतधर्म' (मासिक), 'राष्ट्रअर्चना' (वार्षिक) आदि पत्रों के कुशल एवं योग्य संपादक रहे। इसके साथ ही अर्चना एवं प्रेरणा जैसी पुस्तकों का सम्पादन भी किया।

देश के लब्धप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपके लगभग साठ लेख और ५०० से अधिक काव्य प्रकाशित हुए।

सामाजिक योगदान :

समाज की उन्नति के लिये यथाशक्ति प्रयत्नशील रहते हुए ही आपने पत्रकारिता के आदर्श स्वरूप को चुना और अनेक पत्रों का सम्पादन कर सामाजिक चेतना को जागृत किया। इसी के माध्यम से प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को रोकने और जनचेतना को पैदा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे।

श्री 'सरोज' कमलवन के कोमल एवं सुकुमार वह पुष्प थे जो अनवरत अपनी सुगन्ध से साहित्यसाधना और समाज सेवा को प्रोत्साहित करते रहे। आपने ११ अक्टूबर सन् १९९१ को इस संसार से विदा ले आपनी सुवास को समेट लिया। ❑

PDF Scanner ACE Scanner

डॉ. लालबहादुर शास्त्री

बौद्धिक क्षमता, अप्रतिहत कवित्व, वक्तृत्व और शालीन व्यक्तित्व के धनी, आँखों में स्नेहिल अपनापन, वाणी में माधुर्य तथा जिनके साहचर्य में अपरिमेय सन्तोष की झलक एक साथ देखने को मिलती हो ऐसे व्यक्तित्व का नाम था डॉ. लालबहादुर शास्त्री। जिनका स्थान जैन समाज एवं विद्वत्समाज में शीर्षस्थ था।

डॉ. साहब का जन्म लालरू (पंजाब) में एक सम्पन्न परिवार में हुआ। आपके पिता जी ईस्ट इंडियन रेल्वे में एक उच्चपदाधिकारी थे। आपका परिवार आगरा के एत्मादपुर तहसील स्थित गांव पमारी से सम्बन्धित था। किन्तु रेल्वे विभाग की नौकरी होने के कारण आपने अनेक नगरों में निवास किया। देशव्यापी इनफ्लुंजा बीमारी ने आपके पिताजी पर भी बार किया और वे उसके ग्रास ही हो गये। मां पहले ही स्वर्गस्थ हो चुकी थीं। इस प्रकार ५ और ८ वर्ष की अल्प आयु में माता-पिता का वियोग सहन करना पड़ा। आपके बड़े भाई राजबहादुर, जिन्हें फुलजारीलाल भी कहा जाता था, पिता के देहावसान से मात्र एक वर्ष पश्चात् चल बसे। इस प्रकार लगातार वियोगजन्य दारुण दु:खों से परिपक्व हो आपने जीवनयात्रा में गमन किया।

अध्ययन :

पमारी गांव से दो मील दूर देवखेडा गांव की प्राथमिक पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु प्रवेश लिया। तत्पश्चात् ब्यावर महाविद्यालय और बाद में श्री गोपालदास दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मुरैना में अध्ययन किया। इस प्रकार अंग्रेजी साहित्य से बी.ए., संस्कृत में एम.ए. एवं साहित्याचार्य करने के बाद १९६३ में 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समयसार' नामक विषय पर शोधप्रबन्ध लिखकर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि ग्रहण की। इसके साथ ही संस्कृत एसोसियशन की सर्वोच्च उपाधि 'न्यायतीर्थ' एवं 'काव्यतीर्थ' को प्राप्त किया।

अर्थोपाजन :

अध्ययन करने के पश्चात् पारिवारिक दायित्व के निर्वहन हेतु आप कई वर्षों तक सर सेठ हुकमचन्द इन्दौर के यहां पारिवारिक अध्यापक के रूप में कार्यरत रहे। यहां पं. देवकीनन्दन जी शास्त्री, पं. वंशीधर जी न्यायालंकार एवं पं. खूबचन्द जी शास्त्री जैसे विद्वानों के समागम को प्राप्त कर आपने जैनदर्शन के गूढ रहस्यों का ज्ञान

प्राप्त किया। सन् १९६३ से सेठ जी की पारमार्थिक संस्थाओं में मन्त्री पद पर सेवायें देते रहे। और अन्त के निकट सन् १९६६ में देहली के केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में शिक्षा मन्त्रालय से सम्बन्धित प्रवक्ता नियुक्त हुये। आपकी अध्यापन पटुता ने शीघ्र ही आपको रीडर के पद पर पदस्थ करके जैनदर्शन का विभागाध्यक्ष बना दिया।

समाज के प्रकाशस्तम्भ :

जैनदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त 'अनेकान्त' के अनुवर्ती श्री शास्त्री जी ने एकान्तपक्षी लोगों के मतों का खण्डन कर समाज में समन्वयवादी दृष्टि को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

साहित्यसुश्रूषा :

साहित्यिक गतिशीलता में निरत आपकी लेखनी ने अनेक कृतियों को सृजित किया। जिनमें महावीर दर्शन, महावीर वाणी, मुक्तिमन्दिर, सत्य और तथ्य, बेटी की विदा, घरवाला आदि हिन्दी काव्य को समृद्ध करने वाली एवं संस्कृत काव्य को भी गतिशील रखने वाली आपकी कतिपय रचनायें साहित्य जगत् में आयी। संस्कृत रामचरित्र ग्रन्थ का हिन्दी अर्थ एवं विद्वत्तापूर्ण सम्पादन आपने किया। साथ ही आपके द्वारा सम्पादित अन्य ग्रन्थों में आचार्य विद्यानन्दकृत आत्मपरीक्षा एवं पं. टोडरमलकृत मोक्षमार्गप्रकाशक का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अनेक संस्थाओं के पत्रों से भी जुड़ने का आपको अवसर मिला। आपने सन् १९३९ से जैनसन्देश के सहायक सम्पादक व १५ वर्षों तक जैनगजट के प्रधान सम्पादक के रूप में सम्पादकीय कॉलम लिखे, जो आपकी विद्वत्ता एवं तर्कपूर्ण सामाजिक गतिविधियों के सूक्ष्म आकलन की पद्धति को स्पष्ट करते थे। १९६२ से आप जैनदर्शन के प्रधान सम्पादक के रूप में भी समाज को अपने बौद्धिक ज्ञान से लाभान्वित करते रहे।

गौरवार्जन :

साहित्य सेवा के साथ समाज सेवा के रूप में आपने अनेक सामाजिक संस्थाओं में पदस्थ हो सेवायें प्रदान की। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष और भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा तथा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शान्तिवीर सभा के कार्यकारिणी सदस्य के रूप में आपको समाज में सदा गौरव मिलता रहा। जादूभरी, प्रभावक एवं आकर्षक वक्तृत्व शैली से निःसृत भाषणों ने आपकी विशिष्ट

छाप अंकित कर दी थी। जिससे समाज ने आपको 'विद्वद्भूषण', 'व्याख्यानवाचस्पति' एवं 'पण्डितरत्न' आदि सम्मानपूर्ण अलंकरणों से विभूषित करते हुए अभिनन्दनपत्र एवं रजत पदक प्रदान किये।

इस प्रकार निस्पृह व्यक्तित्व की सम्पुटता से युक्त श्री शास्त्री जी ने व्यक्ति न होकर संस्था के ही रूप में जीवनपर्यन्त कार्य किया। जिनकी सेवायें समाज को दिशाबोध दे गतिशील रखने में सक्षम हैं।

❑

पं. लालाराम शास्त्री

हवा के वासन्ती आंचल में सारा भूमण्डल सुन्दरता की गाथा गा रहा था। फूलों की क्रमबद्ध पंक्तियों में जहां राहगीरों को अपने ओर आकर्षित करने की प्रतिद्वन्द्विता थी, तो पास ही बहती नदी में प्यास से व्याकुल पथिकों को अपने अमृतरूप जल से परितृप्त करने का उत्साह था।

सुन्दरता से मोहित तथा जल से तृप्त पथिक क्या वास्तव में संतुष्ट था ? किसी अनजानी राह पर अपरिचित लक्ष्य की ओर बढ़ते उसके चरण उसकी असंतुष्टि को स्पष्ट ही व्यक्त कर रहे थे।

भिन्न-भिन्न राहों से आत्मसंतुष्टि के प्रयास में लीन मानव आज भी संलग्न है। संतुष्टि के इस सफर में पं. लालाराम जी शास्त्री का नाम अपरिचित नहीं है, अपितु एक सफल टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, आपका जन्म चावली ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री लाला तातारात जी पद्मावती पोरवाल जाति के भूषण थे। धर्मात्मा और निरपेक्ष अनुभवी वैद्य होने से स्वभावत: सज्जन व परोपकारी थे। पिता के ये गुण विद्वच्छिरोमणि लालाराम जी में पल्लवित व विकसित होना अनिवार्य ही था। श्री पं. नन्दनलाल जी (मुनि सुधर्मसागर जी) और पं. मक्खनलाल जी मुरैना के नाम से विख्यात अन्य दो भाईयों के भी पिता होने का गौरव श्री तालाराम जी को प्राप्त था।

शिक्षा :

आपने धर्म में शास्त्री ही किया था, किन्तु आपका संस्कृत एवं हिन्दी भाषा

PDF Scanner ACE Scanner

पर अधिकार तत्कालीन विद्वानों में सर्वोत्कृष्ट था।

साहित्यसेवा :

साहित्यसृजन को अपनी आत्मसंतुष्टि का माध्यम बनाकर न जाने कितने ज्ञानपिपासुओं को आपने तृप्त किया। गूढ़ अध्ययन, चिन्तन और मनन से जहां आपके स्वभाव में गम्भीरता आयी, वहीं आपकी लेखनी में सरल एवं सुबोधग्राहिता प्रस्फुटित हुई। आपकी टीकाओं की विशेषता यही होती है कि जहां पाठक को अर्थग्रहण में कठिनाई होती है, वहीं आप उसके अन्तःस्थल के रहस्य को खोलकर स्पष्ट एवं मूलानुगामी बना देते हैं। आपकी टीकाओं में टीका का यथार्थ रूप प्रतिभासित होता है, ऐसा नहीं कि संकलन करके मात्र टीका को कठिन, दुरूह या काया से पुष्ट किया जाए।

प्रखर बुद्धि की परिचायक आपके द्वारा जिन अनेक ग्रन्थों की टीकायें लिखी गई, उनमें प्रमुख हैं - आदिपुराण, उत्तरपुराण, शान्तिपुराण, चारित्रसार, आचारसार, ज्ञानामृतसार, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, जिनशतक, सुभौमचरित्र, सूक्तिमुक्तावली, तत्त्वानुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, चतुर्विंशतिसन्धानकाव्य, चतुर्विंशति-तीर्थंकरस्तोत्र, सुधर्मश्रावकाचार आदि। स्वतन्त्र रचनाओं में बालबोध जैनधर्म, क्रियामंजरी एवं मुनियों व तीर्थक्षेत्रों की पूजायें आपकी अविरल मां जिनवाणी की भक्ति के परिणाम स्वरूप ही आलिखित हुईं।

सहयोगकार्य :

आपने दिगम्बर जैन महासभा के मुखपत्र 'जैनगजट' का कई वर्षों तक कुशल सम्पादन किया। इसके साथ आप महासभा के मन्त्री एवं शास्त्रि परिषद् के सभापति व संरक्षक रहे। दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा ने दो अधिवेशनों में आपको सभापति का कार्यभार सौंपा।

उपाधियां :

महासभा ने आपको 'धर्मरत्न' की उपाधि से सम्मानित किया। दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा ने आपको 'सरस्वती दिवाकर' की उपाधि से विभूषित कर गौरव प्रदान किया था।

❑

पं. बी. लोकपाल शास्त्री

दक्षिणभारत की कीर्ति को गौरवान्वित करने वाले प्रसिद्ध विद्वानों में श्री पं. बी. लोकपाल शास्त्री गण्य होते हैं। आपका जन्म श्री पद्मय्या एवं श्रीमती लक्ष्मीमती के परिवार में २१ अक्टूबर सन् १९१८ को हुआ था। यद्यपि आपको जन्म से कोट्टे हेगडे के नाम से पुकारते थे, किन्तु श्रवणबेलगोल के पीठाधीश्वर श्री नेमिसागर जी वर्णी द्वारा परिवर्तित कर लोकपाल शास्त्री नाम कर दिया गया था।

अध्ययन :

आपके प्रथम गुरु पूज्य श्री नेमिसागर जी वर्णी रहे। जिनसे जैनागम का अध्ययन किया और न्यायतीर्थ की उपाधि प्राप्त की। पं. श्री सुब्बैय्या शास्त्री जी बेंगलोर का शिष्यत्व प्राप्त कर संस्कृत एसोसिएशन से काव्यतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। साहित्य परिषद् द्वारा साहित्यरत्न की उपाधि से भी विभूषित हुये।

कर्मप्रवृत्ति :

आपका मुख्य कार्यक्षेत्र अध्यापन एवं धर्म के प्रचार-प्रसार का रहा। वे सन् १९४५-४६ में मैसूर में सार्वजनिक संस्कृत परीक्षा के परीक्षक रहे। भगवान गोम्मटेश्वर दिगम्बर जैन वेद महापाठशाला के अध्यक्ष, मुख्योपाध्याय एवं विद्यार्थीनिलय के व्यवस्थापक सन् १९४७-४९ तक रहे।

कोट्टमण्ड के पद्मय्या के समीप ही अपना मकान बनाकर उनके परिवार के बच्चों को कन्नडभाषा का अध्ययन कराया। वे इस परिवार को प्रतिदिन धर्मोपदेश देते थे और पद्मय्या के कार्यालय में कन्नड सम्बन्धी पत्र व्यवहार के लिये सहयोग भी प्रदान करते। आजीविकोपार्जन हेतु श्री पद्मय्या गोड़ा ने इन्हें स्वतः पांच एकड़ जमीन प्रदान की थी।

सन् १९४९ में कार्कल के वकील श्री एच.पी.ए. जैन द्वारा धर्मप्रचारक नियुक्त किए गये। उन्होंने यह कार्य बैनाड के श्री एम.एस. पद्मय्या की प्रेरणानुसार किया। इस प्रकार कार्य में आपके संबल थे श्री नेमगोडा। उन्होंने सन् १९५० से अन्त तक नेमगौडा और पद्मय्या गौडा के साथ बैनाड, हेगडदेवन कोह के चारों ओर तथा अन्य स्थलों पर धर्म प्रचारकर एवं बच्चों को संगीत के माध्यम से सुसंस्कारित किया।

साहित्यिक कर्म :

श्री शास्त्री जी ने पद्मय्या गौडा के यहां कार्य करते हुए भी धर्मप्रचार के उद्देश्य से अनेक कृतियों का सृजन किया। जैसे – जैनक्रियादर्पण, जैनतत्त्वोपदेश भाग १ और २ आदि।

सम्मान :

सन् १९६७ में श्रवणबेलगोल में अभिषेक समारोह के सन्दर्भ में आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी के सानिध्य में हिन्दी विशारद, वाणीभूषण और व्याख्यानविचक्षण की उपाधियों से आपको सम्मानित किया गया था। धर्मस्थल के मंजैय्या हेगडे द्वारा आयोजित धर्मसम्मेलन में जैनधर्म के प्रतिनिधि के रूप में भी आपने भागीदारी की थी।

इस प्रकार १९५०-७७ तक बैनाड में धर्मप्रचार करते हुए ८ जनवरी १९७७ को इस नश्वर संसार और शरीर का त्याग कर अपनी कीर्ति को चिरजीवन्त बना लिया।

❑

पं. वंशीधर न्यायालंकार

पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, पं. फूलचन्द जी, पं. कैलाशचन्द जी, पं. के. भुजबली आदि उच्चकोटि के विद्वानों के गुरु के रूप में जिनका स्मरण किया जाता है, वे हैं श्री वंशीधर जी न्यायालंकार। शिष्यों की विद्वत्ता ही गुरु के गौरवगान के लिए पर्याप्त है। आपके ज्ञानभण्डार से ये ही नहीं, इन जैसे और भी अनेक विद्वानों ने ज्ञानरस संग्रहीत किया था।

ऐसे ज्ञानप्रतापी सूर्य का उदय संवत् १९४७ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उ.प्र. के महरौनी कस्बें में हुआ था। आपके पिता श्री किशोरीलाल, जिनकी आर्थिकस्थिति बहुत ही साधारण थी, जिनेन्द्रदेव के भक्त तथा अतिभद्र परिणामी थे। इन्हीं संस्कारों को आत्मसात् कर आप भी जीवन पथ पर आरूढ हुये।

विद्यार्जन :

ग्राम के मदरसे में कक्षा पांच तक का अध्ययन करने के बाद स्थानीय पाठशाला

में धर्म का शिक्षण लगभग डेढ साल तक किया। अध्ययन में रुचि तथा व्युत्पन्नमति होने के कारण पूज्य वर्णी जी के सानिध्य में बनारस रहकर अध्ययन करते रहे। आपने मुरैना में गुरु गोपालदास जी बरैया के सानिध्य में रहकर गोपाल सिद्धान्त महाविद्यालय मुरैना से सिद्धान्त और न्याय ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। इसी बीच गोम्मटसार कर्मकाण्ड, तत्त्वार्थवार्तिक, पंचाध्यायी आदि ग्रन्थ भी आपके अध्ययन के विषय बने।

कार्यक्षेत्र :

बनारस में स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना होने पर इस विद्यालय के सर्वप्रथम स्नातक होने का सौभाग्य आपको ही मिला। मुरैना में अध्ययन करते समय आपको प्रशस्तमति देखकर गुरु गोपालदास जी ने अपने विद्यालय में अध्यापक पद पर नियुक्त किया। इस विद्यालय में आपने लगभग १५ वर्ष तक अपनी सेवायें प्रदान की।

समाजसेवा :

शिक्षा क्षेत्र के साथ समाज सेवा का क्षेत्र आपकी सेवाओं से अछूता नहीं रहा। श्रद्धेय वर्णी जी द्वारा जबलपुर में स्थापित शिक्षा मन्दिर में लगभग तीन वर्ष तक अध्ययन कराया। बाद में सर सेठ हुकमचन्द जी द्वारा इन्दौर में संस्थापित महाविद्यालय में प्राचार्य पद पर आमन्त्रित किये गये, तब तक शिक्षा के क्षेत्र में आपकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि आपके इन्दौर महाविद्यालय पहुंचते ही पं. जीवंधर जी ने अपना प्रधानाचार्य पद आपको अर्पित किया। वृद्धावस्था के कारण आपने विद्यालय के आचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया और धार्मिक जीवन तथा स्वाध्याय आदि में संलग्न हो गये।

त्यागमय जीवन :

आपका व्यक्तित्व जितना उच्च और असाधारण था, उतना ही आपका जीवन अर्थात् खानपान, वेशभूषा, रहन-सहन साधारण था। अपने जीवन के कुछ समय पहले आपने सातवीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर अपने जीवन को त्यागमय बनाया।

संयमी जीवन व्यतीत करते हुये पंडित जी ने घर पर ही समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त किया।

पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य

भारत के अग्रदूतों में उन मनीषियों के नाम जिन्होंने अपने आत्मबल और जनहित की भावना से न केवल अपने आपको अमर किया वरन् भारतीय संस्कृति को भी समृद्धि प्रदान की, उनमें एक हैं पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य।

आपका जन्म सोंरई ग्राम में भाद्रपद शुक्ला सप्तमी वि.सं. १९२६ को हुआ। मात्र तीन माह की अल्प अवस्था में पिता श्री मुकुन्दलाल जी एवं १२ वर्ष की अवस्था में मां राधादेवी के देहावसान ने आपको असहाय छोड़ दिया। आपने आत्मबल से इन दु:खों के सघन अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश से दूर किया।

शिक्षा :

आरम्भिक शिक्षा आपने सोंरई की ही पाठशाला में प्रवेश कर प्राप्त की, फिर अपने मामा के यहां वारासिवनी चले आये। वारासिवनी की पाठशाला ने आपके हृदय में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया और पश्चात् आप सागर आ गये। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी की छत्रच्छाया एवं ज्ञानार्जन की तीव्र लालसा ने आपको विद्वानों की नगरी बनारस जाने के लिये प्रेरित किया। यहां आपने अविरत रूप से ११ वर्ष तक अध्ययन करते हुये व्याकरणाचार्य, धर्मशास्त्री, न्यायतीर्थ आदि की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

परिवार एवं अर्थोपार्जन :

विद्वत्ता से पूर्ण आपके परिवार में पं. बालचन्द जी शास्त्री, पं. दरबारीलाल जी कोठिया और पं. शोभाराम जी साहित्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र रूप से सुशोभित होते थे। तीन पुत्र तथा तीन पुत्रियों से समृद्ध आपका पारिवारिक जीवन संघर्षमय ही रहा।

स्वतन्त्र विचारों के पोषक पं. जी ने जीवननिर्वाह हेतु आरम्भ से ही बीना में कपड़े का व्यवसाय आरम्भ किया, जो आपको अन्त तक सहायी हुआ।

सामाजिक सेवा :

समाज के लिये आपकी स्नेहभावना तथा नि:स्वार्थ सेवा स्मरणीय हैं। आपके मन्त्रित्व काल में सन्मार्ग प्रचारिणी समिति द्वारा देवगढ और केवलारी में गजरथ

विरोधी आन्दोलन किये गये और बामोरा का दस्सा पूजाधिकार का ऐतिहासिक मुकद्दमा भी समिति की ओर से आपने लड़ा था। श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी में आप वर्षों मन्त्री पद पर कार्यरत रहे। दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के मन्त्री पद पर रहने के पश्चात् ४ वर्ष तक अध्यक्ष पद पर मनोनीत हुये। सिवनी और श्रावस्ती के नैमित्तिक अधिवेशनों में आपने जो अध्यक्षीय भाषण दिये वे सामयिक व गवेषणापूर्ण थे। गुरु गोपालदास जी बरैया शताब्दी समारोह का आयोजन आपके ही कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

राष्ट्रीय सेवा :

धर्म व समाज की भांति राष्ट्रप्रेम की भावना ने आपको राष्ट्र सेवा के लिये जागृत किया। परिणामतः आप राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय सहयोग देने लगे। सन् १९४२ के आन्दोलन में आपने ६-७ माह सागर व नागपुर के कारावास को अपना आवास बनाया। अमरावती की जेल में स्वतन्त्रता संग्राम लड़ते हुए आपने अनेक असहनीय दुःख सहे। नगर कांग्रेस कमेटी के वर्षों अध्यक्ष तथा मध्यप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य पद से आपने अपनी अपूर्व सेवायें प्रदान की। खादी को अपनाकर भी आप अन्य खादीधारी नेताओं से बचे रहे।

साहित्य सेवा :

ज्ञानमनीषी पं. जी 'शान्तिसिन्धु' पत्र के सहसम्पादक रहे तथा 'सनातन जैन' पत्र के प्रमुख सम्पादक की भूमिका का निर्वाह भी कुशलतापूर्वक किया। आपने पंडित फूलचन्द जी की 'जैनतत्त्वमीमांसा' के विरोध में 'जैनतत्त्वमीमांसा की मीमांसा' नामक आलोचनात्मक महत्त्वपूर्ण कृति का सृजन किया। 'जैनदर्शन में कार्यकारणभाव और कारकव्यवस्था' पुस्तक लिखकर तो आपने जैनदर्शन की चिन्तनधारा को ही नई दिशा प्रदान की। 'जैनशासन में निश्चय और व्यवहार' कृति आपके द्वारा किये गये आध्यात्मिक क्षेत्र के भ्रमित आकाश में उज्ज्वल ज्योति की भांति दीप्त है। 'खानिया जैन तत्त्वचर्चा की मीमांसा' भी आपके द्वारा प्रस्तुत की गई। इनके अतिरिक्त आपने अनेक दार्शनिक, सैद्धान्तिक तथा सामयिक मौलिक लेख पत्र-पत्रिकाओं व स्मृति/अभिनन्दनग्रन्थों में लिख कर साहित्यभण्डार की श्रीवृद्धि की है।

उपाधियां एवं सम्मान :

आपकी सेवाओं से प्रभावित हो वीर निर्वाण भारती मेरठ ने सन् १९७४ में

उपराष्ट्रपति महोदय के करकमलों द्वारा आपको 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि से विभूषित किया था। सागर जैन समाज ने १९९० में 'सरस्वती के वरदपुत्र' के सम्बोधन से सम्मानित किया। सन् १९९० में ही आपको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करते हुए समस्त जैन समाज ने गौरव प्रदान किया।

अतीव शान्तिप्रिय और जनप्रिय पण्डित जी ने शिक्षा को अपनी आजीविका का साधन कभी नहीं बनाया, अपितु उसे वे विशुद्ध ज्ञानप्रकाश मान जीवन को आलोकित करने वाली मानते रहे। सन् १९९५ में आपने उसी आत्मिकज्ञान को उपयोग करते हुए भी लम्बी बीमारी और असहाय अवस्था के बावजूद समतापूर्वक इस देह का विसर्जन कर दृश्यजगत् से विदाई ली। आपके सेवाओं से समाज आज भी अभिभूत तथा कृतज्ञ है।

❑

पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

बहुमुखीप्रतिभा के धनी, बहुभाषाविद्, बहुविधक्षेत्र में समर्पित योगदान कर्त्ता, विद्वान् पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री जैसे विद्वान् को पाकर सभी भारतवासी अपने को धन्य मानते हैं। दक्षिणभारत के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र मूडबिद्री में २७ मई सन् १९०९ को आपका जन्म वेणूर के निवासी, संगीत एवं ज्योतिष के ज्ञाता तथा धर्म व साहित्य के रसिक पिता के परिवार में हुआ था। आपका जन्म अन्यों की दृष्टि में दुःखद तथा सुखद माना गया। दुखद इसलिये कि जब वे गर्भावस्था में थे, तब माता-पिता ने शिखरजी की यात्रा की। उस समय पिताजी दुर्दैव से किसी आततायी के चुंगल में फंस गये और कभी वापिस न लौट सके तथा सुखद इसलिये कि माता अमृतमयी के यात्रा से लौटने के उपरान्त एक माह बाद रोहिणी नक्षत्र में आप उत्पन्न हुये। माता-पिता ने इनके जन्म से पूर्व ही संतान का नाम वर्धमान रखा लिया था और उनकी इच्छा के अनुरूप ही रोहिणी नक्षत्र के कारण वही नाम आया। आपके अग्रज पं. श्री लोकनाथ जी शास्त्री थे।

अक्षराभ्यास :

अपनी जन्मभूमि की जैन पाठशाला में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर अपने ज्येष्ठ भ्राता की प्रेरणा व सहयोग से मुरैना व इन्दौर में अध्ययन कर शास्त्री, न्यायतीर्थ व काव्यतीर्थ की उपाधियां अर्जित कर। वे निष्णात पण्डित बन गये।

कार्यक्षेत्र :

अध्ययनोपरान्त सन् १९२९ से ३२ तक अजमेर में सेठ टीकमचन्द जी द्वारा संचालित महावीर विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। अनन्तर स्व० धर्मवीर रावजी सखाराम दोशी के आमन्त्रण पर सोलापुर गये और साहित्यिक सेवा में संलग्न हुये।

पत्र-सम्पादन के क्षेत्र में आपने जैनबोधक (मराठी, हिन्दी), वीरवाणी (कन्नड), विश्वबन्धु (कन्नड, मराठी, हिन्दी), स्याद्वादमार्तण्ड (हिन्दी), जैनसिद्धान्त आदि पत्रों का सफल सम्पादन किया। कोल्हापुर मठ से निकलने वाले रत्नत्रय के प्रधान सम्पादक भी रहे।

पुस्तकों के सम्पादन के क्षेत्र में आपने उग्रादित्याचार्य कृत कल्याणकारक वैद्यक ग्रन्थ, भरतेश वैभव, दानशासन, शतकत्रय आदि ग्रन्थों का सम्पादन तथा अनुवाद किया। आचार्य कुन्थुसागर ग्रन्थमाला के माध्यम से लगभग ४५ ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार सदृश महान् ग्रन्थ के सात भाग का सम्पादन भी आपने ही किया है।

एकदा श्री शास्त्री जी को अजमेर में शाहपुरा के आर्यसमाजियों के साथ छह दिन तक लगातार शास्त्रार्थ करना पड़ा था, इससे आपकी ख्याति चारों ओर फैल गयी।

बम्बई परीक्षालय की देखरेख आदि कार्य भी आप आजीवन करते रहे। वर्तमान में बम्बई परीक्षालय के २५० से अधिक केन्द्रों से दस हजार से अधिक विद्यार्थी परीक्षा देते हैं। इसका श्रेय आपको ही है।

पुरातत्त्व के अन्वेषक :

श्री शास्त्री जी अध्ययन काल से ही अन्वेषक रहे हैं। अध्ययन के बाद आपने सर्वप्रथम अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के पुरातत्त्व विभाग में कुछ समय संशोधनकार्य किया। विजौलिया के शिलालेख के अन्वेषण का श्रेय आपको ही है।

संस्थाओं से सम्बद्धता :

आपने अनेक संस्थाओं से संबद्ध रहकर उनकी उन्नति और विकास में बहुमूल्य

योगदान किया है। आचार्य कुन्थुसागर ग्रन्थमाला, बम्बई परीक्षालय, अ.भा.शास्त्री परिषद्, महासभा के पुरातत्त्व विभाग आदि के मंत्री पद पर रहे। मूडबिद्री के वीरवाणी विलास भवन एवं हुम्चा के कुन्दकुन्द विद्यापीठ के ट्रस्टी तथा अनेक वर्षों तक प्रधानमन्त्री पद पर रहकर उन्होंने सेवायें दी। वे विद्वत्परिषद्, शान्तिवीर धर्मसंगठन सभा, अ.भा. महासभा आदि संस्थाओं के कार्यकारिणी सदस्य एवं शास्त्री परिषद् के उपाध्यक्ष भी रहे।

धर्म एवं समाज सेवा :

धर्म और समाज की सेवा के लिये शास्त्री जी का जीवन समर्पित ही रहा है। सन् १९५३ और सन् १९६७ में जैनबद्री में आयोजित महामस्तकाभिषेक में वे निरन्तर कार्य में तत्पर रहे। वेणूर मस्तकाभिषेक में प्रधानाचार्य के पद भार का निर्वाह किया।

राजस्थान, भीमपुर, लोहाटिया, मुगाणा, शिरडशाहपुर, नौगामा, सम्मेदशिखर जी, बम्बई आदि अनेक स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा कार्यक्रम सम्पन्न कराये। बम्बई के पोदनपुर त्रिमूर्ति प्रतिष्ठा महोत्सव में वे प्रतिष्ठाचार्य रहे। इस तरह के धार्मिक आयोजनों एवं प्रवचनों द्वारा धर्म प्रभावना की। आप प्रभावक प्रवचनकार व वक्ता भी थे। अनेक सर्वधर्म सम्मेलनों में उन्होंने जैनधर्म के प्रतिनिधि स्वरूप भाग लिया। यह समाज के लिए गौरवपूर्ण बात है।

उपाधियां/सम्मान :

कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते ही आपके विशिष्ट प्रभावनात्मक कार्यों से प्रभावित हो आपको समग्र क्षेत्रों से उपाधियां से अलंकृत किया गया। शाहपुरा शास्त्रार्थ में 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित हुये। 'व्याख्यानकेसरी', 'समाजरत्न', 'विद्यालंकार', 'धर्मालंकार' जैसी उपाधियों से उन्हें सम्मानित किया गया। अजमेर, सोलापुर, विलिचोड, सूरत, बम्बई, सुजानगढ, हुमच, बांसवाडा, बागलकोट, शिरडशाहपुर, हैदराबाद, बेलगांव, कलकत्ता, होसदुर्ग आदि अनेक स्थानों से प्रशस्त्रिपत्र एवं अभिनन्दन पत्रों द्वारा आपका यथोचित सम्मान किया गया था।

प्रो. वी.वी. बागी

डी.पी. पत्रानुसार प्रो. वी.वी. बागी आधुनिक गणित के क्षेत्र में अन्यतम प्राध्यापक के रूप में विख्यात तथा श्रेष्ठतम गणितीय कृतियों के रचनाकार के रूप में गौरवान्वित हैं। आपके लौकिक जीवनविषयक जानकारी अज्ञात ही है।

कर्मक्षेत्र :

श्री बागी गणित विषय के श्रेष्ठतम प्राध्यापक रहे हैं। उनकी गणित जैसे नीरस विषय के अध्यापन की शैली अत्यन्त सरल तथा रोचक होती थी। वह विद्यार्थियों/ जिज्ञासुओं के लिये कथ्यवस्तु को हृदयंगम कराने में पूर्ण सक्षम/सफल होते थे। अनुभवगम्य अध्यापन कला के कारण प्रो. बागी ने देश-विदेश के विद्वानों में विशेष ख्याति अर्जित की।

साहित्यिकगतिविधियां :

गणितज्ञ श्री बागी ने अध्यापन का कार्य करते हुये अनेक कृतियों की संरचना भी की। उनमें प्रमुख हैं -

१. हाईयर एल्जेब्रा एण्ड ट्रिग्नॉमेट्री।
२. प्लेन ट्रिग्नॉमेट्री।
३. द एनालिटिकल ज्योमेट्री ऑफ कोनिक सेक्शन।
४. द फस्ट कोर्स इन एल्जेब्रिक ज्योमेट्री।

कर्नाटक विश्वविद्यालय के पाठ्य पुस्तक निदेशनालय के अनुरोध पर सन् १९७८ में आपने अंक गणित की पुस्तकों की कन्नडभाषा में रचना की।

जैनधर्म और तत्त्वदर्शन पर आपकी गहरी पकड़ थी, आपने नियमित स्वाध्याय के द्वारा यह सब किया हुआ था। धारवाड शिक्षण केन्द्र के विकास में आपकी महनीय भूमिका रही। सन् १९७०-७५ से पूर्व के जैन विद्यार्थियों के लिये आवास योग्य 'सन्मति विद्यार्थी निलय' का श्रमपूर्ण निर्माण आपने सन्मति सेवा समिति द्वारा कराया।

इस प्रकार श्री प्रो. बागी ने स्वयं अपने लौकिक/भौतिक परिचय से परे रखकर भी धर्म, समाज और साहित्य की अनुपम सेवा की। वे मात्र अपने कार्यक्षेत्र में ही नहीं अपितु विश्व में भी स्मरणीय रहेंगे। ❑

कवि शर्मनलाल 'सरस'

कविहृदय, जिसे सारी प्रकृति बोलती प्रतीत होती है, जो कभी सूर्य को विषयकर अपनी लेखनी को गतिशील करता है, तो कभी सागर की लहरों से बातें करती उसकी लेखनी मिलती है। चांद की चांदनी जब उसके पृष्ठों के आंगन में नृत्य करती है तो पक्षीगण सुरताल से साथ दे उसमें संगीत पैदा कर सुशोभित होते हैं। दुःख में भी सुख की छांव को तलाशने वाले ये कविहृदय अपने छन्द और अलंकारों से लोगों को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं, किन्तु इनकी मुस्कराहट के पीछे स्वयं के दुःखों व संघर्षों के सागर को शायद ही कोई समझ पाता है।

१४ जनवरी सन् १९३७ को सकरार (झांसी) में स्व. श्री छक्कीलाल जी के परिवार में जन्मे एक ऐसे ही कविहृदय श्री शर्मनलाल जी 'सरस' को कवित्व प्रतिभा पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त थी। आपके पिता सफल गायक एवं कवि थे। निर्धन परिवार में आर्थिक संघर्ष से जूझते हुये आपने अपने अन्दर संवेदना, अर्जन और शक्ति को संचित कर लोगों को सदा मुस्कान प्रदान करने का कार्य किया।

शिक्षा एवं परिवार :

आपने आरम्भ से विशारद तक की शिक्षा श्री वीरविद्यालय पपौरा में प्राप्त की। निर्धनता व शारीरिक अस्वस्थता के कारण आगे का शिक्षण अवरुद्ध हो गया। फलस्वरूप आपका विवाह भी नहीं हो सका। आपने अपनी लेखनी को ही अपनी जीवनसंगिनी बनाया, जिसने आपको अन्त तक साथ दिया। बाद में तो यह आपकी पूजाकर्म बन गई थी।

साहित्यसेवा :

विविध जैन पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रमुख सामाजिक पत्रों में आपकी रचनायें सादर स्थान प्राप्त करती थीं। धार्मिक, हास्य व करुणारस से ओतप्रोत आपकी लगभग १२ पुस्तकें स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें पपौरावैभव, आहारगौरव, झांसी का पानी, सरससुधा, जनजागरणगीत, नए चरण, जैनधर्म का द्वार, सोनागिरसुषमा, देवगढदर्शन तथा पार्श्वनाथपूजन आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा हास्य एवं व्यंग्य कविताओं के कई संग्रह भी प्रकाशित हैं। जैसे सरस के समोसे, साली, विवाह पुष्पांजलि आदि।

दहेजप्रथा के विरोध में जितना अच्छा और प्रभावक चित्रण आपने किया

अन्यत्र दुर्लभ है। आपकी अनेक रचनाओं की इतनी अधिक लोकप्रियता हो गई थी कि उन्हें अन्य कविजनों को आपके अभाव में पढ़ना होता था। बुन्देली भाषा में भी आपने सैकड़ों लोकगीतों का प्रणयन किया ।

सामाजिकसेवा :

कविसम्मेलनों के माध्यम से आपने सामान्यजन व युवाओं में नवीन चेतना जागृत कर उनको नये उत्साह से गतिशील करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आपने सृजन के अलावा भी आपने सकरार में वीर वाचनालय एवं साहित्य सेवा संगम की स्थापना कर समाज को लाभान्वित करने का प्रयास किया।

उपाधियां :

बुन्देलखण्ड रामायण महासभा झांसी ने आपको 'हास्यशिरोमणि' की तथा एक जिला कांग्रेस अधिवेशन में भारत सरकार की स्वास्थ्य मन्त्री श्रीमती सुशीला नैय्यर ने आपको 'आशुकवि' की उपाधि से अलंकृत किया।

भारतवर्ष के प्रमुख नगरों एवं बुन्देलखण्ड के छोटे-बड़े शहरों और नगरों में होने वाले कवि सम्मेलनों के मंच से आपने इतनी ख्याति अर्जित की कि बिना 'सरस' के सब नीरस लगता था। आप एक श्रेष्ठ हास्य कवि के रूप में सदैव स्मरणीय किये जाते रहेंगे ।

❑

ए. शान्तराज शास्त्री

जैनधर्म के प्रभावक-प्रचारक, साहित्यकार, सम्पादक, अनुवादक एवं दक्षिण भारत की कीर्ति को दिग्दिगन्त प्रसारित करने में श्री ए. शान्तराज शास्त्री जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

साहित्यिक अवदान :

कन्नड एवं संस्कृत भाषा पर श्री शास्त्री जी का पूर्ण अधिकार था। उन्होने अनेक संस्कृत कृतियों का कन्नड में अनुवाद किया। अनेक ग्रन्थों की टीकाएं लिखी एवं कन्नड भाषा में साहित्य सृजन भी किया है। वे हैं - १. महापुराण, २. उत्तरपुराण. ३. इष्टोपदेश टीका, ४. तत्त्वरत्नप्रदीपक, ५. द्वादश अनुप्रेक्षा, ६. दशभक्ति, ७.

नागकुमार चरित्र, ८. नेमिजिनेशसंगति, ९. परमात्मबोध, १०. पार्श्वनाथ तीर्थंकर चरित्र, ११. पूर्वपुराण, १२. सज्जनचित्तवल्लभ, १३. शतकत्रयं, १४. नेमिकथेगळु आदि। नेमिजिनेशसंगति की विस्तृत प्रस्तावना भी लिखी है।

आरम्भ में 'विश्वबन्धु', 'वीर' पत्रिका और आठ वर्ष तक 'विवेकाभ्युदय' पत्रिका के सम्पादक के रूप में विशिष्ट सेवायें आपने प्रदान कीं।

उपाधियां / सम्मान

श्री शास्त्री जी अपनी बहुमूल्य सेवाओं के लिये राजमहलों, गुरुकुलों तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मान पाते रहे हैं। वे आस्थान विद्वान् तथा उभयपण्डितरत्न जैसी उपाधियों से विभूषित किये गये थे।

कर्नाटक के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुये उन्होंने कन्नड के कवियों तथा उनके काव्यों से जन-जन को परिचित कराया। विस्मृत कवियों को प्रकाश में लाकर आपने धर्म व साहित्य की अमूल्य सेवा की।

❑

पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल

संसार का प्रत्येक प्राणी जन्म और मृत्यु की सीमाओं में बंधा हुआ है। जिसका जन्म हुआ उसकी मृत्यु भी निश्चित है, किन्तु जन्म और मृत्यु के अन्तराल में मानव को अपना जीवन अपने ढंग से जीने की स्वतन्त्रता है। मानवीयता से ओत-प्रोत जीवन सदैव अनुकरणीय होता है। भारतीय संस्कृति की अनवरत महापुरुषों की परम्परा में जितने भी महापुरुष हुये वह मात्र अपने लिए ही नहीं वरन् उनका जीवन मानवीयता के लिए समर्पित होता था, इसलिए उनका नाम पुरुष से महापुरुष की श्रेणी में सम्बद्ध होता है।

समाज जैनदर्शन एवं साहित्य को अपने व्यक्तित्व में आत्मसात् करने वाले एक ऐसे ही युगपुरुष थे पं. शोभाचन्द भारिल्ल। आपका जन्म भारत की हृदयस्थली कहे जाने वाले मध्यप्रदेश के सागर जिले के ग्राम खैराना में सन् १९०४ को हुआ था।

शिक्षा :

ज्ञानार्जन की तीव्र प्यास ने जैसे पं. जी का सारा बचपना सोख लिया था और

ज्ञानामृत पान के लिए मात्र ११ वर्ष की उम्र में ही अपने परिवार से दूर मथुरा चले गये। वर्षों तक ज्ञानार्जन करने के उपरान्त आप जैनधर्म एवं समस्त दर्शनों का विशेष एवं तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु राजस्थान के बीकानेर शहर में स्थित प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थागार 'सेठिया जैन लाइब्रेरी' में रहे।

सेवा के सुअवसर :

आपकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा को देखकर श्री जैन गुरुकुल ब्यावर में प्रधानाचार्य पद के लिए आपको आमन्त्रित किया गया, जहां पर आप ३० वर्ष तक अनवरत सेवारत रहे। यहां ही एक अन्य संस्था 'जैन सिद्धान्तमाला' में सैकड़ों जैन साधु-साध्वियों को जैन आगम, दर्शन एवं अध्यात्म का अध्ययन कराया। आपने दिल्ली में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन की संचालन समिति के मन्त्री पद का उत्तरदायित्व भी बड़ी निष्ठा व लगन से पूर्ण किया।

साहित्य-साधना :

लौकिक दायित्वों को निभाते हुए पं. जी ने सैकड़ों ग्रन्थों का लेखन, अनुवाद, सम्पादन एवं संशोधन कर मां जिनवाणी की जो सेवा की उसका रंग पानी से धुलने पर सदा उज्ज्वल ही होता है और युगों-युगों तक फीका नहीं पड़ता। इसके साथ ही 'वीर', 'जैनशिक्षणसन्देश', 'सुधर्मा' और 'जैनजीवन' आदि जैसे पत्रों का सम्पादन करके पत्रकारिता के गुणों को अभिव्यक्त किया और 'मरुधर केशरी' जैसे विशाल एवं उच्चकोटि के अभिनन्दन ग्रन्थों का सम्पादन कर अपनी प्रांजल भाषा, वस्तुपरक दृष्टिकोण और चिन्तन से जैन साहित्य को समृद्धि के शिखर की ओर गति प्रदान की।

❑

पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री

धूप ने कुहरे को शीघ्र ही अस्तित्वहीन कर पारदर्शी हवा के रहते हुए जगत् को यथावत् अवभासित कराने का कार्य हर-हमेश किया है। आकाश में चमचमाते सूर्य ने सम्पूर्ण प्रकृति को ही सुन्दरता प्रदान कर उसका सौन्दर्यवर्धन किया है। किन्तु मानव की अभीप्सा इससे भी पूर्ण नहीं होती। वह इस सौन्दर्ययुक्त जगत् में भी अपनी कृतियों की बेमिशालता स्थापित करना चाहता है।

सौन्दर्य एवं कला की अनुपम मिशाल बनी ताज नगरी के जिला के गोंछ ग्राम में सन् १९१९ आषाढ वदी अष्टमी को जमींदार एवं कुशल वैद्य श्री ओंकारप्रसाद के घर एक बालक का जन्म हुआ। जिसका नामकरण हुआ श्यामसुन्दर। पिता के वैद्य एवं नि:शुल्क औषधि वितरण जैसे नि:स्वार्थ सेवा के गुणों को आपने पैतृक सम्पत्ति के रूप में आत्मसात् किया।

विद्यार्जन :

साहित्यसृजन के बीज रूप ज्ञानार्जन के लिए आपने श्री गोपाल दिगम्बर जैन महाविद्यालय मुरैना में सन् १९३५ में शास्त्री तक की शिक्षा हासिल की। शिक्षागुरु पं. मक्खनलाल जी शास्त्री ने आपको जो शिक्षा और सदाचार की दिशा दी उसने संसार के समस्त मिथ्या आवरणों के भ्रम से दूर रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और परिणामस्वरूप आप आजीवन अविवाहित रहे। जीवन की अन्य आपूर्तियों के लिए आपने स्वतन्त्र रूप से कपड़े का व्यवसाय किया और जीवनपर्यन्त जिनवाणी की सेवा करते रहे।

साहित्य सेवा :

पं. जी ने अपनी लेखनी से संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखा। आपकी प्रमुख रचनाओं में आचार्य विमलसागर, भक्तामरस्तोत्र, आचार्य महावीरकीर्ति पूजन, षट्कर्म-समुच्चय और आचार्य सुधर्मसागर चरित्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'बालकेशरी' और 'स्याद्वादमार्तण्ड' जैसी पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन आपके बुद्धिचातुर्य को प्रकट करता है।

सामाजिक सेवा :

बचपन से ही लोकोपकार व परोपकार की भावना से प्रेरित होने कारण आप समय-समय पर समाज के आग्रह पर बम्बई, पावागढ, कुंथलगिरि, कलकत्ता और बाराबंकी आदि स्थानों पर धर्मप्रभावना हेतु आमन्त्रित किये गये। आप श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन इण्टर कालेज एवं स्थानीय दिगम्बर जैन मेला महोत्सव समिति के मन्त्री १९५५ तक रहे। स्थानीय अन्य संस्थाओं में भी आपका सदा योगदान रहा। आपने जैन मेला भूमि सत्याग्रह का नेतृत्व कर १०० व्यक्तियों के एक जत्थे सहित जेल की यात्रा भी की।

उपाधियां :

आपकी पाण्डित्य प्रतिभा एवं वाक्कला से प्रभावित हो लोगों ने आपको 'सिद्धान्तविज्ञशिरोमणि' तथा 'वाणीभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। अनेक स्थानों की समाज के द्वारा आपको सम्मान पत्र भी भेंट किये गये थे।

इस नश्वर देह का त्याग करते हुए आपने महाप्रयाण तो कर दिया, किन्तु जन-जन के हृदयों में आप आज भी श्रद्धा के साथ निवास करते हैं।

जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल

व्यक्ति जब अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और मनोरथों की पूर्ति मात्र को अपने जीवन का मापदण्ड मानता है, तब वह स्वार्थभावना से सिंचित शूलाकीर्ण पौध जैसा होता है। किन्तु यही भावना जब विशालता को धारण कर मैत्री-प्रमोद रूप से वटवृक्ष के रूप में उदात्तजीवन मूल्यों को विकसित करती है तो वह सुवास से महकते गुलशन जैसा होता है।

श्रीपाल जी ने अपनी भावनाओं को आत्मकेन्द्रितता के संकुचित दायरे से बाहर निकल कर 'वसुधैव कुटुम्बकं' की परिधि तक विस्तृत करने का प्रयास किया था। स्वार्थ भावना का ज्वार उनकी स्थिरता और प्रतिकूलाओं का तूफान आपकी गति को अवरुद्ध नहीं कर सका। समय के साथ चलते हुए आपके गतिशील चरण सदैव गन्तव्य की ओर ही प्रगति करते रहे।

गन्तव्य या लक्ष्य को प्राप्त करने वाले ऐसे युवा मनीषी, जिनका जन्म ५ जुलाई सन् १९०० को तिरूपनम्बूर नामक गांव में मां कुलन्दैयम्माळ की कुक्षि से हुआ था। आपके पिता गुणपाल नैनार अनेक गुणों से समृद्ध सद्गृहस्थ थे। तिरूपनम्बूर गांव आज अकलंकबस्ती के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि यहां कभी आचार्य भट्ट अकलंक स्वामी ने बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म का पुनरुद्धार एवं प्रचार-प्रसार किया था। इस गांव की इस रूप में प्रसिद्धि और श्रीपाल जी की लोकहितार्थ की गई सेवायें उन्हें आज भी अकलंकदेव के रूप में याद करने विवश करती हैं।

शिक्षण :

कांचीपुरम् में प्राथमिक शिक्षा के क्षणों को सहेजते हुये आपने उच्चशिक्षा भी

यही प्राप्त की। अध्ययन समाप्त होते ही आप अपने गांव आ पंचायती विद्यालय में अध्यापन कार्य में संलग्न हो गये। जहां आपने जैनधर्म के तत्त्वों का चिन्तन एवं तमिलसाहित्य के अध्ययन से अपना बौद्धिकविकास तो किया ही साथ में विद्यार्थियों को भी उचित मार्गदर्शन दे उनके भविष्य को सुनहरा बनाने में योग किया।

साहित्यसेवा :

जैनधर्म की प्रभावना हेतु एवं उसके महत्त्व के स्थापनार्थ आपने अनेक पुस्तकें तमिल भाषा में लिखी। आपने जैनधर्म के इतिहास व पुरातत्त्व विषयक अनुसंधान कर समाज को उससे परिचित कराया। सन् १९६८ में मद्रास में हुये विश्व तमिल सम्मेलन पर लिखी आपकी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी बेजोड़ थी। आपके कतिपय भजन श्रद्धालुओं को भक्तिरस से सराबोर करने एवं आध्यात्मिक प्रवाह में वाहित होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सन् १९६६ से आपने जैनधर्म सम्बन्धित विषयों पर भाषण प्रसारित किये। 'सद्धर्म' नामक तमिलमासिक के सम्पादन के साथ ही तिरूपनमूर में 'धर्मसागरस्वामी' पुस्तकालय स्थापित किया। इसमें लगभग ३०० मुद्रित और ५० ताडपत्र ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण संकलन था। जीवरक्षक नाम पत्रिका के माध्यम से आपने जीववध रोकने हेतु जो प्रयास किये वे सराहनीय हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपने 'बालसुन्दर' व 'कलियुग का प्रह्लाद' नाटक भी लिखे।

आपके द्वारा तिरुत्तक्कदेव साहित्यानुशीलन समिति की स्थापना की गई। मदुरै के श्रमण पर्वत की सुरक्षा के लिए 'श्रमणपर्वतजाये' नामक पुस्तिका का प्रकाशन तथा कांचीपुरम् के जैन समाज के सहयोग से जीवकचिन्तामणि व स्मृतिमंजरी पुस्तकों का प्रकाशन सम्पन्न कराया। प्रो. ए. चक्रवर्ती नैनार के तिरुक्कुरल के विमोचन समारोह का आयोजन आपके ही निर्देशन का परिणाम था।

ताडपत्रीय सामग्री पर आधारित 'धर्मपरीक्षा' धारावाहिक निबन्ध, जो कि पेरियार साप्ताहिक के गणतन्त्र विशेषांक में लिखा था, विशेष प्रशंसनीय रहा। जैन साहित्य शोध समिति का गठन कर लगभग १५-२० ग्रन्थों के प्रकाशन का प्रबन्ध भी आपकी ही देन थी।

समाज सेवा :

आपकी नि:स्वार्थ समाज सेवा आज के युवावर्ग के लिये आदर्श उपस्थित

करती है। आपने सन् १९२१ में मद्रास में दक्षिण भारत जीव रक्षक प्रचार सभा की स्थापना की। आपने इस सभा के माध्यम से जीवदया का स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य कार्य किया। बलिप्रथा को रोकने के लिए भी आपने सतत् संघर्ष किया। इसके लिए आपने कविता, कहानियां एवं नाटक आदि लिखकर हृदयपरिवर्तन करने का भी प्रयास लगभग १८ वर्षों तक किया। जिसमें अनेक स्थानों पर सफलता ने आपके चरणों का स्पर्श किया। सन् १९५१ में राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने भी प्राणी मात्र को अभय देने की बात को स्वीकार किया।

जागरूकता के प्रतीक :

निडर, निष्पक्ष व्यक्तित्व के धनी श्रीपाल जी सदैव जागरूक प्रहरी के रूप में प्रतिष्ठित हुये। धर्म विरोधी प्रचार-प्रसार में असहनीय प्रदर्शन को रोकने के लिए आपने साहसिक कदम उठाये। जैन समुदाय को विकृत सिद्ध करने वाली 'कल्कि' नामक पत्रिका के सम्पादक की कहानियों में से विवादग्रस्त भाग निकलवाने में परिश्रम पूर्ण कार्य किया। धार्मिक वैमनस्य दूर करने में भी आपकी भूमिका सराहनीय रही। बलिप्रथा को रोकने के लिए तो आपने महात्मा गांधी एवं जवाहरलाल नेहरू आदि के प्रोत्साहनभरे तार दिखलाकर अनेक बार विरोधियों का मुख ही बन्द कर दिया था। इसी तरह जैनधर्म विरोधी अंशों से युक्त फिल्मों के प्रदर्शन पर रोक में भी आपकी भूमिका अग्रणी रही।

अन्यान्य विविधताएं :

सन् १९२१-२५ तक आप कांग्रेस महासभा के सदस्य रह लोगों में राष्ट्रीय चेतना जागरण के कार्य में सन्नद्ध रहे। तमिललेखक संघ और कवि संघ के प्रधान रहकर आपने साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया। नेल्लि ग्राम पंचायत बोर्ड के स्कूल के अध्यापक के रूप में भी आपकी सेवायें स्मरणीय रहीं।

तमिल संगीत सभा में जीवक चिन्तामणि नृत्यनाटिका की प्रस्तुति के साथ चूडामणि ग्रन्थ के रचयिता तोलामणि देवर का स्मृतिदिवस समारोह आयोजित करने का साकार स्वप्न आपकी देन है।

सम्मान एवं अलंकरण :

व्यक्ति के कार्य उसे अपने नाम के अतिरिक्त कुछ ऐसे सम्बोधनात्मक शब्दों से विभूषित करने को मजबूर करते हैं, जो उनके व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से उजागर

करते हैं। श्रीपाल जी की जीवरक्षक गतिविधियों ने ही सन् १९४३ में तमिल सरकार के अर्थमन्त्री पणमुरुगम् चेट्टियार की अध्यक्षता में भगवान महावीर जयन्ती के सन्दर्भ पर 'जीवबन्धु' की उपाधि से अलंकरण उपहृत किया था। इस सम्मान के साथ ही आपकी कार्यगति अत्यन्त तीव्र हो उठी।

इस प्रकार तमिल के अद्वितीय महानायक के रूप में आपकी जीवन साधना सदैव नि:स्वार्थता से साधित रही। धर्म एवं समाज के हितार्थ कर्मठ योद्धा के रूप में आपके कार्य विशाल तथा यश:पताका को सदैव उत्तोलित रखने वाले हैं।

पं. सिद्धिसागर प्राणाचार्य

सिद्धिसागर की उपाधि से सम्मानित, प्रतिष्ठाकारक सिद्धि फार्मेसी के संस्थापक, आयुर्वेदिक ग्रन्थों के रचनाकार, विद्वान एवं साहित्यकार के रूप में पं. श्री सिद्धिसागर जी की यश:पताका आज भी सुशोभित है। इनका जन्म मन्दिरों की नगरी मडावरा (झांसी) में एक ऐसे परिवार में हुआ जिनके पूर्वज बधेऊ(टीकमगढ़) निवासी एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने के उपलक्ष्य में सिंघई पद से सम्मानित थे। आर्थिक परिस्थिति विषम होने पर आप मडावरा आ गये। पुन: स्थिति नियंत्रित होने पर एक विशाल मन्दिर का निर्माण एवं जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव भी कराया। इसी परिवार में १४ जनवरी सन् १९०३ को श्री दौलतराम जी के घर पर एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया नाथूराम। जो आगे चलकर सिद्धिसागर के नाम से ख्यात हुआ। आपके पांच अग्रज थे, जिनमें चार तो प्रथम ही अल्पायु में कालकवलित हो गये तथा पांचवें का २० वर्ष की आयु में देहावसान हो गया।

शिक्षा :

श्री नाथूराम जी आरम्भ से ही प्रतिभाशाली रहे। आपने मडावरा में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर समीपस्थ सादूमल पाठशाला में धार्मिक शिक्षार्जन किया।

वैवाहिक जीवन एवं कार्यक्षेत्र :

टीकमगढ़ के गौर ग्राम निवासी बिलौआ परिवार के जालमचन्द जी की बहिन के साथ आपका विवाह हुआ। जिनसे तीन पुत्रों ने जन्म पाया, वे हैं - बाहुबलि, भरत एवं भूपेन्द्र।

अलवर (राज.) की जैनपाठशाला में सन् १९२४ में अध्यापन कार्य से कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया। ज्ञान के क्षयोपशम से प्रतिभा में निखार आया। जिसके कारण यहां आप प्रकाण्ड विद्वान् के रूप में विख्यात हुए।

अध्यापनकार्य के साथ यहां आपने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्तकर उसके भी विशेषज्ञ बन गये। इसी कला के कारण आप राजघराने के सम्पर्क में आये, और निकटता बढ़ने पर अलवर नरेश ने आपको 'सिद्धिसागर' की उपाधि से विभूषित किया। कुछ समय बाद अलवर से ललितपुर आने पर निःशुल्क चिकित्सा आरम्भ किया। निस्वार्थ भाव से चिकित्सा करते हुए सफलता ने उनके चरण चूमे और वे इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गये। इस कार्य के साथ उन्होंने 'सिद्धिफार्मेसी' आयुर्वेदिक औषधि प्रतिष्ठान की स्थापना की। अल्पकाल में ही इसकी ख्याति विस्तृत एवं भारतीय स्तर की हो गयी। सिद्धिफार्मेसी से भारी मात्रा में औषधियां पूरे देश में भेजी जाने लगीं।

साहित्यिककर्म :

सन् १९३२ में ललितपुर से 'मासिक सिद्धि' पत्रिका का प्रकाशन आपके सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ। इसके साथ उन्होंने विश्वकल्याण, अनुभूतयोग, इंजेक्शन रहस्य वैज्ञानिक चमत्कार, महिला चिकित्सा आदि अनेक आयुर्वेदिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

धर्मप्रभावना :

श्री सिद्धिसागर जी प्रतिष्ठाचार्य भी थे। आपने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, दिल्ली तथा अन्य स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणकप्रतिष्ठा महोत्सव गजरथ आदि के कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न करा धर्मप्रभावना का कार्य किया।

आपने जैन तीर्थयात्रा के संघ निकालकर अनेक लोगों को तीर्थदर्शन करने का सुअवसर प्रदान किया। ५०-५० बसों को एक साथ यात्रा संघ में सामिल कर संघनायकत्व का भार निर्वहन किया।

६० वर्ष की आयु में २५ नवम्बर १९६३ को पण्डित सिद्धिसागर जी ने इस मर्त्यलोक से विदा ले, आपने कार्यों की मिशाल सदा-सदा के लिए स्थापित कर दी। ❑

ACE Scanner
PDF Scanner

ए. सुब्बैय्या शास्त्री कार्कळ

जैनधर्म, दर्शन के उद्भट अध्येता, अनेक विद्वानों के जनक, प्रेरणास्रोत एवं श्रेष्ठतम साहित्यकार श्री सुब्बैय्या के नाम को कौन नहीं जानता ? किन्तु खेद है कि फिर भी हमें उनके जीवनवृत्त की सम्पूर्ण जानकारी नहीं मिल सकी। आप स्वस्ति श्री नेमिसागर जी वर्णी के समकालीन थे।

शिक्षा :

शास्त्री, न्यायतीर्थ, न्यायविशारद आदि की परीक्षायें आपने उत्तीर्ण की थीं। जैनतत्त्वदर्शन का गहन अध्ययन कर उसमें अगाध पाण्डित्य आपने प्राप्त किया हुआ था, साथ ही आप बहुभाषाविद् भी थे।

साहित्यिक अवदान :

आचार्य पुष्पदन्त एवं आचार्य भूतबली द्वारा रचित जैनदर्शन की प्रमुख कृति षट्खण्डागम के अनुवादकार्य में आपने अथक परिश्रम किया था। यह कार्य लगभग १००० पृष्ठों का था, जो आपके सहयोग से ही हिन्दी में प्रकाशित हो सका। सन् १९८० में इसकी द्वितीय हस्तलिखित प्रति भी प्रकाश में आयी। आपकी अनेक रचनाओं व सेवाकार्यों से समाज सदा ही उपकृत हुआ है।

सामाजिक अवदान :

श्री शास्त्री जी अनेक संघ/संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। आपने उनके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभायी।

सम्मान :

साहित्यसेवा के लिये राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किये जाने वाले विद्वानों में आपकी गणना होती है। इसके अलावा आप आस्थान विद्वान की उपाधि से भी विभूषित थे।

समाज के श्रेष्ठ एवं सम्माननीय ऐसे विद्वानों को पाकर समाज गौरव का अनुभव करती है। अतः वे सदैव अविस्मरणीय रहेंगे।

❑

बाबू सुमेरचन्द्र

विचारों के असंख्य धागों में उलझा हुआ मन जब शान्त हो तन्मयता की डोर से कसता चला जाता है, तब व्यक्ति उस एक छोर के सहारे दूर आकाश तक की ऊँचाईयों को प्राप्त कर पाता है। कारण, एकाग्रता ही सफलता की कुंजी होती है। ऐसे जीवन की इबारत को सागर की अनन्त लहरें भी निश्शेष करने में समर्थ नहीं हो पाती। बाबू सुमेरचन्द्र जी ऐसे ही व्यक्तित्वों में परिगणित होते थे। आपका जन्म जनवरी १८७५ में हुआ था। तत्कालीन पंजाब के अम्बाला जिलान्तर्गत बूड़ियां की मिट्टी ने आपके बचपन के साथ तरुणाई को भी सुगन्धित करने का यश पाया। मिलनसार, परिश्रमी, धर्मात्मा और कर्तव्यनिष्ठ आदि गुणों से सजे बाबू जी वास्तव में व्यक्तित्व के सुमेरु ही थे।

आजीविकोपार्जन :

आपने नहर विभाग में महागणक के पद पर नियुक्ति पाकर अपने आजीविकोपार्जन की अन्य चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त की। यही आपके निश्चिन्त जीवननिर्वाह का साधन बन सका।

मां जिनवाणी की सेवा :

हिन्दी और उर्दू भाषाओं में आपने कुल १३ पुस्तकों को आपनी लेखनी से प्रसूत किया। इनमें 'जनमतसार' आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में मानी जाती है। अन्य कृतियां - जैनप्रकाश, धर्म के लक्षण, शाहरानजात, शीलवती (उपन्यास), खुलासा गजाहत, पारसचरित्र, जैनसंगीतमाला, सप्तव्यसन, फरायज इन्सानी, महाराज चन्द्रगुप्त, अग्रवाल वंशावली और सुमेरुलब्धात् के नाम से प्रकाशित हुई हैं। सरल और सुबोध भाषा में निबद्ध आपकी कृतियां न केवल सर्वसाधारण के लिये हृदयंगम होती हैं वरन् युगबोध से भी समन्वित हैं।

१८ सितम्बर १९६६ को आपने इस संसार को अलविदा कर महाप्रयाण कर जैन साहित्य जगत् के उज्ज्वल आकाश में सदैव चमकीले नक्षत्र की तरह स्थान बना लिया।

❑

ACE Scanner
PDF Scanner

पं. सुमेरुचन्द्र 'दिवाकर'

जैन समाज के यथार्थ दिवाकर (सूर्य) थे पं. श्री सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर। उनकी उच्चधार्मिक, सामाजिक और साहित्य सेवा से सभी परिचित हैं। आपका जन्म भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा के जन्मदाता, समर्पित समाजसेवी एवं विशेषख्याति प्राप्त सिंघई श्री कुंवरसेन जी जैन के सम्पन्न घर में ८ अक्टूबर १९०५ अर्थात् विजयदशमी, रविवार को सिवनी में हुआ था। आपको धार्मिक संस्कार और सेवा के गुण विरासत में ही मिल गये।

शिक्षा :

श्री सुमेरुचन्द्र जी ने अध्ययन हेतु विदेशी सत्ता द्वारा संचालित अंग्रेजी मिशन हाईस्कूल में प्रवेश लिया। सन् १९२१ में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में उस विद्यालय को छोड़ दिया। कारंजा और मुरैना के जैन गुरुकुल में संस्कृत और धर्म का अध्ययन किया। तत्पश्चात् स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में रहकर न्यायतीर्थ तथा शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर स्व. विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी की सलाह पर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से पुनः अंग्रेजी का अध्ययन आरम्भ किया। हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्टर, जबलपुर से बी.ए. तथा नागपुर विश्वविद्यालय से एल. एल. बी. की परीक्षाएं उत्तीर्ण कर उपाधियां प्राप्त कीं।

ब्रह्मचर्यव्रत :

युवावस्था में भी इनका रागभाव अत्यन्त क्षीण था। विवाह प्रस्ताव आने पर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत की बात कहकर उन प्रस्तावों को अस्वीकृत किया और व्रतपालन के लिये सुमेरू की तरह अचल रहे।

कार्यक्षेत्र :

पण्डितजी की योग्यता और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सन् १९३६ में नागपुर उच्चन्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ग्रिल ने इनसे पूछा – क्या तुम्हें गवर्मेन्ट सर्विस चाहिए ? वे उन्हें उच्च पद पर नियुक्त करना चाहते थे पर दिवाकर जी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि मैं अहिंसामय जैनधर्म की सेवा करते हुए अपना जीवन बिताने का संकल्प कर चुका हूं। मेरी दृष्टि धनार्जन की नहीं है। इस उत्तर से

ग्रिल ने अतीव प्रसन्न होकर वांछित कार्य में सफलता का आशीर्वाद दिया। शिक्षाप्राप्ति के अनन्तर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया।

आप चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी के दिव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। फिर निर्विकल्प हो जिनशासन की सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया।

रामटेक गुरुकुल के संस्थापकों में एक श्री दिवाकर जी थे। उन्होंने इसका कई वर्षों तक संचालन किया। सर्वधर्म सम्मेलन शिमूजी, टोकियो में जैनियों का प्रतिनिधित्व कर जैनधर्म पर आलेख पढ़ा। वर्ल्ड ओरियण्टल कान्फ्रेंस देहली को 'एंटीक्विटी ऑफजैनिज्म' लेख भेजा था। आस्ट्रेलिया की कान्फ्रेंस में 'वर्लडीमस' नामक आपका लेख पढ़ा गया।

पं. श्री सुमेरुचन्द्र जी प्रभावक वक्ता एवं लेखक रहे हैं। पर्युषण पर्व और महावीर जयन्ती पर भारत के उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम से साग्रह आमन्त्रण पर गये। प्रवचनों/भाषणों द्वारा जैनधर्म की महती प्रभावना तथा सेवा की।

साहित्यसेवा :

अनेक ग्रन्थों का सम्पादन एवं मौलिक प्रणयन कर श्री दिवाकर जी ने मां जिनवाणी की अनुपम सेवा करने का अवसर पाया। आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में - १. महाबन्ध भाग १ का हिन्दी अनुवाद, २. महाबन्ध पूर्ण मूल तथा ताम्रपत्रार्थ प्रति का सम्पादन, ३. कषायपाहुड मूल व हिन्दी अनुवाद, ४. जैन गजट साप्ताहिक पत्र का सम्पादन ख्यात है। श्री दिवाकर जी ने दक्षिण के मूडबिद्री से महाबन्ध जैसे महान् ग्रन्थों को भट्टारकों के एकाधिकार से प्राप्त कर इनका सम्पादन किया और विस्तृत भूमिका लिखी।

महत्त्वपूर्ण कृतियों हैं - १. जैनशासन, २. चारित्रचक्रवर्ती, ३. तीर्थंकर, ४. महाश्रमण महावीर (हिन्दी व कन्नड), ५. आध्यात्मिक ज्योति, ६. जैनशासन का मर्म, ७. महावीर जीवनदर्शन (हिन्दी व मराठी), ८. विश्वतीर्थ श्रवणबेलगोला, ९. निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर, १०. निर्वाणभूमि चम्पापुरी, ११. नन्दीश्वरदर्शन, १२. अहिंसा और विश्वशान्ति, १३. पशु बलिदान पर विचार, १४. तात्त्विक चिन्तन (गुजराती व हिन्दी), अध्यात्मवाद की मर्यादा, १५. सैद्धान्तिकचर्चा, १६. पाप-पुण्यमीमांसा, १७. इष्टोपदेश, १८. समाधिशतक, १९. समीचीनदृष्टि, २०. सुलझे

पशु उपदेश सुन, २१. दिगम्बरत्व पर एक दृष्टि, २२. आचार्य शान्तिसागर महाराज : जीवन चरित्र, २३. आचार्य देशभूषण महाराज : जीवनचरित्र, २४. आगमपथ, २५. पंचास्तिकाय।

आपकी अंग्रेजी पुस्तकों में - १. रिलीजन एण्ड पीस, २. ग्लेमनेस ऑफ जैनिज्म, ३. एन्टीक्वरी ऑफ जैनिज्म, ४. लार्ड पार्श्वनाथ, ५. ए पब्लिक हालिडे आन लार्ड महावीराज बर्थ डे, ६. आईडल डेथ, ७. डाक्ट्रिनी ऑफ अहिंसा, ८. तीर्थंकर महावीर : लाइफ एण्ड फिलासॉफी आदि।

अप्रकाशित रचनाएं - १. विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी का जीवन चरित्र, २. छहढाला (अंग्रेजी), ३. परमात्मप्रकाश, ४. भारत के जैनतीर्थ, ५. श्रमणवाणी, ६. कुन्दकुन्द एक अध्ययन, ७. कलिंग चक्रवर्ती खारबेल के शिलालेख।

उपाधियां एवं सम्मान :

प्राचीन दिगम्बर जैन ग्रन्थराज महाबन्ध की प्रति मूडबिद्री से प्राप्तकर उसका सम्पादन एवं ताम्रपत्र पर उत्कीर्णन सम्बन्धी सराहनीय कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के उपलक्ष्य में आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के समक्ष सोलापुर में 'धर्मदिवाकर' की उपाधि से अलंकृत किया गया। सिद्धान्त ग्रन्थों की हिन्दी टीका के माध्यम से धर्म की विशेष प्रभावना करने के परिणाम स्वरूप दिगम्बर जैन समाज सागर ने श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय में आचार्य श्री विद्यासागर जी के सानिध्य में धवलग्रन्थों की वाचना के अवसर पर श्रुतपंचमी दिनांक १७.६.१९८० को उन्हें रजतपत्र प्रदान कर सम्मानित किया।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा गोहाटी (आसाम) में अधिवेशन के समय 'विद्वद्रत्न' उपाधि से आप विभूषित किये गये। सन् १९७६ में जबलपुर में एक विशाल महोत्सव में मध्यप्रदेश के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री नवीनचन्द्र द्विवेदी की अध्यक्षता में आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। अखिल भारतीय दार्शनिक परिषद् द्वारा सर्वधर्म के दिग्गज विद्वानों व दार्शनिक मनीषियों की उपस्थिति में आपका सम्मान किया गया। २५०० वे निर्वाणोत्सव पर दिल्ली में आचार्य श्री विद्यानन्द जी के सानिध्य में श्री दिवाकर जी को 'चारित्रचक्रवर्ती' ग्रन्थ के रचयिता के रूप में अभिनन्दित किया गया। २५.१०.१९९३ को श्री चारुकीर्ति भट्टारक जी द्वारा आपको 'विद्यावारिधि' की उपाधि से समलंकृतकर रजत थाल प्रदान किया गया।

साधुसेवा का सुफल :

अनेक दिगम्बर गुरुओं की सेवा से प्राप्त आशीर्वाद के कारण आप अपने जीवन की स्वर्णिम सन्ध्या तक निरन्तर अध्ययन और लेखन में व्यस्त रहे। पवित्र जीवन जीते हुए आशुचि देह से सम्बन्ध का परित्याग कर दिया। आपके दिनांक २८ जनवरी सन् १९९४ को पूर्ण सावधानी के साथ णमोकार महामन्त्र का श्रवण एवं मनन करते हुए अभिव्यक्तियां समाज के लिए सदा प्रकाशस्तम्भ हैं।

पं. सुमेरचन्द्र शास्त्री न्यायतीर्थ

उत्तरप्रदेश के जिला एटा के ग्राम विलराम को आपकी जन्मस्थली होने का श्रेय है। पिता श्री छुन्नीलाल एवं माता श्रीमती रेनुकाबाई आपको अपनी गोद में पाकर धन्य हो उठे। आपके पिता गल्ले के व्यापारी एवं चौधरायने घराने के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

शैक्षणिक योग्यता :

आरम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् अपने मामा पं. कुंवरलाल जी न्यायतीर्थ की प्रेरणा पा आपने ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी मथुरा से १९३५ में मध्यमा और विशारद की शिक्षा पूर्ण की। पं. बालचन्द जी शास्त्री, पं. दीपचन्द्र जी वर्णी, पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य और पं. कैलाशचन्द्र ही सिद्धान्तशास्त्री जैसे यशस्वी विद्वानों के सानिध्य में आपने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में न्यायतीर्थ, शास्त्री एवं बी.ए. की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

आजीविका के साधन :

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु जैन पाठशाला कोलारस, देवबन्द, खतौली आदि में धर्माध्यापक, संस्कृताध्यापक एवं प्रधानाध्यापक के रूप में अपनी सेवायें प्रदान की। इसी बीच १ वर्ष के लिए आप श्री महावीरजी के व्यवस्थापक रहे। लगभग २५ वर्षों से अधिक जैन संस्कृत कामर्शियल हायर सेकेण्डरी स्कूल कुचामनसेठ दिल्ली में हिन्दी एवं संस्कृत के अध्यापक के पद पर आसीन रहे।

समाजसेवा एवं धर्मप्रचार :

नि:स्वार्थभाव से समाज सेवा व धर्मप्रभावना हेतु आपने अनेक संस्थाओं के अनेक पदों को सुशोभित किया, किन्तु पदलिप्सा आपके अन्दर जरा-सी भी नहीं आयी। बाबू अजितप्रसाद जैन लखनऊ एवं बाबू कामताप्रसाद जी की प्रेरणा पाकर आपने अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंज तथा शाकाहार प्रचार के लिए जनकल्याण समिति के संस्थापक के रूप आपका सहयोग किया है। दिल्ली में जैन विद्वत्समिति एवं दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् के मन्त्री व संयुक्त मन्त्री के रूप आपकी सेवाओं का उल्लेख अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन महिलाश्रम एवं धर्म प्रचारिणी परिषद् दिल्ली की स्थापना तथा आदरणीया चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ और श्री चम्पतराय शताब्दी समारोह तो आपकी अथक लगन और सेवा के प्रतिफल थे। भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव में विश्वधर्म प्रेरक मुनि सुशीलकुमार जी के साथ आपका सक्रिय योगदान स्तुत्य रहा।

नैतिक धार्मिक शिक्षण कमेटी का गठन कर आपने ग्रीष्मावकाश में बच्चों को नैतिक एवं धार्मिक संस्कारों से सुसज्जित करने की प्रेरणा आपकी थी।

साहित्यसेवक :

नैतिक शिक्षा के उद्देश्य से अनेक बालोपयोगी साहित्य का सृजन आपने किया है। उनमें - शकुन सिद्धान्त दर्पण, निबन्धमाला, सम्राट खारबेल और हिन्दी साहित्य का इतिहास जैसी स्वतन्त्र कृतियां आपने समाज को प्रदान की हैं।

कतिपय श्रेयस्कार्य :

राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी एवं उपराष्ट्रपति श्री डॉ. राधाकृष्णन् की उपस्थिति में ब्र. चन्दाबाई जी के अभिनन्दन ग्रन्थ के विमोचन का सफल कार्यक्रम आपके द्वारा ही सम्पन्न हो सका।

पश्चिमी जर्मन की राजधानी बोर्न में बैरिस्टर चम्पतराय लायब्रेरी की स्थापना, प्रो. लोथर बेन्डल जर्मनी को डेढ वर्ष तक जैनधर्म की शिक्षा एवं हिन्दी का विशिष्ट ज्ञान कराया। रोम के डॉ. ज्योसेफटुक्की को जैनधर्म की ओर आकर्षित कर उन्हें सिद्धयन्त्र तथा भक्तामर के ४८ मन्त्र देकर विश्व में जैनतन्त्र का प्रथम ग्रन्थ प्रकट किया।

इस प्रकार विदेशों में जैनधर्म का प्रचार करने वाला आपका परोपकारमय जीवन सदैव स्मरणीय रहेगा।

बाबू सूरजभानु वकील

भारत की नवीन राजनीति में दादाभाई नौरोजी और हिन्दी गद्य के नव विकास में प्रेमचन्द का जो स्थान है, जैन समाज की नव चेतना के इतिहास में वही स्थान बाबू सूरजभानु जी का है। आपका दिव्यप्रकाश अज्ञानांधकार में सोये व्यक्तियों को चुपचाप जगाकर एक नई रोशनी द्वारा दिशाबोध कराता हुआ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। मूक समाजसुधारक और साहित्य सेवी के रूप में आपकी सेवायें आपके नामपद के सूरज और भानु इन दोनों हिस्सों को सार्थक करती हैं।

इस देदीप्यमान सूर्य का उदय वि.सं. १९२५, सन् १८७० में नकुड जिला सहारनपुर में हुआ। आपके पितामह लाला नागरमल जी तहसीलदास थे और पिता लाला खुशवन्तराय जी नगर के जिलेदार। चाचा अमृतराय जी की गोद में आपका बचपन व्यतीत हुआ, कारण कि आपके पिता का १८८६ में देहान्त हो गया था।

शिक्षा :

होशियारपुर की मिट्टी में होशियारी के संस्कारों को संयोजित कर मिडिल पास किया और १८८५ में मैट्रिक की परीक्षा लाहौर से पासी की। बाद में नकुड़ में ही रहकर सन् १८८७ में आपने लोअर सब-आर्डिनेट प्लीडर की परीक्षा देकर उसमें सफलता प्राप्त की।

वैवाहिकजीवन :

सन् १८८२ में मात्र ११ वर्ष की उम्र में आपका बालविवाह सम्पन्न हुआ किन्तु विधि के विधान के नियन्त्रण में रहने से १८८९ में आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, तब १८९० में आपका पुनर्विवाह हुआ। जिससे आपको कुलवन्तराय और सुखवन्तराय नामक दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति हो सकी।

जीवननिर्वाह :

प्लीडर हो जाने पर पहले एक साल तक सहारनपुर में वकालात की और उसके बाद आप देवबन्द चले गये। जहां सन् १९१४ तक वकालात करने के पश्चात् समाजसुधार के कार्य में अपने जीवन को समर्पित कर दिया।

श्रद्धा एवं आस्था की किरण :

आपका सारा खानदान उर्दू-फारसी दां था। धर्म से विशेष रुचि न रहते हुए भी

स्त्रियां रोज मन्दिर जाया करती थीं। होशियारपुर में जब आपकी उम्र लगभग १२ वर्ष की थी, आपने प्रसिद्ध श्वेताम्बर मुनि श्री आत्माराम जी के व्याख्यान सुने तभी जैनधर्म के प्रति रुचि जाग्रत हुई। पश्चात् लाहौर में चाचा के सानिध्य में देवदर्शन और शास्त्रश्रवण का अवसर पाया और हृदय के कोने में दबी हुई जिज्ञासाओं को समाधान की दिशा दी।

आदर्श का प्रभाव :

मुरादाबाद के मुंशी मुकुन्दराय जी और पं. चुन्नीलाल जी, जिन्होंने मथुरा में जैन महासभा तथा अलीगढ में जैन विद्वान् तैयार करने के लिये पं. छेदालाल जी की संरक्षकता में एक बड़ी पाठशाला की स्थापना की थी, उक्त दोनों विद्वानों का बाबू जी पर अमिट प्रभाव पड़ा और वे आपके आदर्श गुरु बन गये।

जाग्रति का शंखनाद :

आपने 'जैनप्रकाश' नामक मासिक पत्र का लाहौर में घर-घर घूमकर प्रचार किया। देवबन्द में वकालात करते हुए सन् १८९२-९३ में बाबू जी ने 'जैन हितोपदेशक' नामक मासिक पत्र उर्दू में आरम्भ किया। सन् १८९५-९६ के आसपास जैनगजट के सबसे पहले सम्पादक के रूप बाबू जी ही नियुक्त हुये। आपने आर्य समाज के द्वारा उठायी आपत्तियों को अपनी लेखमाला 'आर्यमतलीला' के नाम से जैन गजट में प्रकाशित कराया, जो बराबर २८ अंकों तक निकली।

साहित्य सेवा :

प्रचार-प्रसिद्धि से दूर रहने वाले बाबू जी मात्र कर्त्तव्य पथ के राही थे। अनेक रचनाओं के जन्मदाता होने पर भी उनके प्रकाशन की ओर आपका विशेष लगाव नहीं था। पं. नाथूराम 'प्रेमी' के पास एक पुस्तक 'तीर्थंकरचरित्र' जो बेहद परिश्रम से लिखी थी, करीब २० वर्ष तक अप्रकाशित पड़ी रही, परन्तु आपने कभी उसकी चर्चा तक नहीं की। आपकी एक बहुचर्चित पुस्तक जो सन् १९०६ में 'मनमोहिनी नाटक' नाम से प्रकाशित हुई थी, वस्तुतः वह गार्हस्थ्य उपन्यास ही था। आपने अपनी लेखनी से ऐसे साहित्य को प्रसूत किया जो समाज में फैले मिथ्या विश्वासों और भ्रमों को दूर कर जनमानस को सत्यता से साक्षात्कार करा सकें। रामदुलारी, लज्जावती का किस्सा, गृहदेवी, मंगलादेवी, सती-सतवन्ती, तारादेवी, असली और नकली धर्मात्मा आदि रचनायें इसी ढंग की हैं।

आपने द्रव्यसंग्रह, षट्पाहुड, परमात्मप्रकाश, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय और वसुनन्दि श्रावकाचार का हिन्दी अनुवाद किया तथा आदिपुराण, हरिवंशपुराण और पद्मपुराण को समीक्षात्मक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया।

अन्य मौलिक कृतियों में ज्ञानसूर्योदय दो भाग, कर्तारखण्डन, [illegible], जैनधर्म प्रवेशिका, श्राविकाधर्म-दर्पण, भाग्य और पुरुषार्थ, युवकों की दुर्दशा और जैनियों की अवनति के कारण आदि अनेक रचनायें आपकी रचनात्मक दृष्टि की परिचायक हैं।

आपके अनेक लेख वर्ण और जाति विचार, ब्राह्मणों की उत्पत्ति, आदिपुराण का अवलोकन, अलंकारों से देवी-देवताओं की उत्पत्ति, वेश्याओं का सत्कार आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपने कोर्ट की वकालत जरूर छोड़ी परन्तु यथार्थ रूप से आप जीवन भर वकील ही बने रहे। असत्य के विरुद्ध सत्य के मुकद्दमे तथा संस्कृति की सम्पदा पर कुरीतियों के कब्जे के विरुद्ध वे बराबर जिरह और बहस करते रहे और १६ सितम्बर १९४५ को दिवंगत हो गये।

हजारीलाल 'काका'

दुःख जीवन की कसौटी है। यह जितना सत्य है, उससे अधिक सत्य यह है कि पुरुषार्थ के बिना जीवन का अर्थ कुछ भी नहीं है। इसी पुरुषार्थ से वह बड़ी-बड़ी बाधाओं को भी लांघने में सक्षम होता जाता है। क्योंकि दुःख और हताशा जीवन में मात्र रुदन करने के लिये ही नहीं आते, अपितु वे भीतर की शक्ति को पहचानने के लिये उसकी समृद्धि से जीवन को संभालने की पावन प्रेरणा भी प्रदान करते हैं।

श्री हजारीलाल जी 'काका' एक ऐसे पुरुष हैं, जिनका जीवन दुःख, वेदनाओं और बाधाओं के एक लम्बे दौर से गुजरा है। २४ दिसम्बर सन् १९१९ में उत्तरप्रदेश के झांसी जिलान्तर्गत सकरार नामक छोटे-से गांव में जन्मे काका जी जब मात्र पांच वर्ष के थे तभी आपकी माता श्रीमती ललिताबाई जी आपका साथ छोड़ स्वर्गवासिनी हो गई। आपकी विधवा मौसी ने मां-सी होने का फर्ज अदा किया और पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठा

के साथ आपका पालन-पोषण किया। १० वर्ष की अवस्था में पिता की छाया ने भी आपका साथ छोड़ दिया।

शिक्षा :

आपने प्राथमिक शिक्षा गांव के स्कूल में आरम्भ की। आगे के शिक्षण की कोई अन्य व्यवस्था न हो सकी, अपितु परिस्थितियों ने अपने अनुभवों से आपको शिक्षित कर दिया।

परिवार एवं दायित्व :

बड़े भाई की शादी के मात्र ५ वर्ष बाद ही समय ने आपसे भाई को छीना और परिवार का सारा उत्तरदायित्व आपके कंधों पर आ गया। यद्यपि भाई के वियोग ने आपकी सहनशक्ति को झकझोर दिया, किन्तु आप प्रत्येक स्थिति में अडिग रहे। आपने भाई साहब की देखरेख में गल्ले का व्यापार आरम्भ किया था, उसे ही अब नियमित रूप से संचालित करते रहे।

आपकी भाभी के प्रयत्नों से आपका विवाह उन्हीं के मायके में कस्तूरीबाई नामक सौन्दर्यवती एवं गुणवन्ती कन्या से हो गया। सन्तान के रूप में आपको दो बच्चियां थीं। तीसरी संतान जब गर्भ में ही थी, कि तभी आपकी पत्नी ने अपने भवितव्य को पहले ही स्वप्न में देख लिया था, और उस स्वप्न को साकार रूप देने के लिए पुत्ररत्न को आपकी गोद में सौंप परलोक की ओर गमन किया।

इस प्रकार जीवन की विसंगतियों को भोगते हुए आपने जो अर्जन किया, वह प्रत्येक परिस्थिति में आपको जूझने में सक्षम बनाता रहा।

साहित्यकर्म :

काका जी के नाम से विख्यात इस कवि को इन संघर्षों ने लेखन की ओर प्रवृत्त किया। सुख व संतुष्टि की तलाश में उनकी लेखनी ही सहारा होने लगी। आपनी आपदाओं को भूलकर अब वे स्वयं तो कम हंसते, पर अपने व्यंग लेखन से जगत् को हंसाने में माहिर हो गये। आपकी प्रकाशित रचनाओं में दहेज का दानव, दहेज के दानवों से, पावागिरि परिचय, सालासाली, पावागिरिपूजन आदि उल्लेखनीय हैं। कतिपय कृतियां अभी भी प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

आपके निधन से जैन कविसम्मेलन के मंचों की रौनक ही समाप्तप्राय हो गयी। आपकी कविताएं युवाओं व वृद्धों को समान रूप से उत्साहित एवं मनोरंजन देने में समर्थ होती थी। ❑

डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन

भारतीय संस्कृति को आत्मसात् करने वाले डॉ. हरीन्द्रभूषण जी ने जहां परम्पराओं को जीवन में संयोजित किया था, वहीं दूसरी ओर अपने कार्यों से आधुनिकता के सोपानों को पार भी किया।

जन्म :

सागर जिलान्तर्गत नरयावली में १६ अगस्त १९२१ में जन्में डॉ. हरीन्द्रभूषण के पिता श्री छोटेलाल जी नरयावली, रामछापरी एवं कन्हैरा गांव के मालगुजार थे। किन्तु मात्र छह वर्ष की अवस्था में मां का ममतामयी आंचल आप से सदा के लिए दूर हो गया।

दूसरी ओर पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी की सत्संगति ने आपके पिता के हृदय में संसार की असारता का जल-सिंचन किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आपके १४-१५ वर्ष की अवस्था के होते न होते ही पिता जी इन्दौर के दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम में रहने लगे। यद्यपि पिताजी के इस कृत्य से आप माता-पिता दोनों के स्नेह से वंचित हो गये, तथापि लोकोपकार का विचारकर पिताजी के गृहत्याग को भी बिना विचलित हुए स्वीकार कर लिया।

विद्यालाभ :

माता-पिता का वियोग होने पर आपने मां सरस्वती की गोद में शरण ली। अध्ययन के साथ-साथ ट्यूशन करते हुए आपने सन् १९३९ में न्याय, व्याकरण, साहित्य और आयुर्वेदादि विषयों से विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की और स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश पा लिया। वहां आपने सिद्धान्तशास्त्री, व्याकरणशास्त्री, मैट्रिक और इन्टर की परीक्षाएं अच्छे अंकों के साथ पास की। अपने व्यक्तित्व को विस्तृत करते हुए आप उसी समय टाइपिंग का प्रशिक्षण लेने के साथ भारत के प्रसिद्ध चित्रकार श्री राणदाद उकीलके से 'उकील्स स्कूल ऑफ आर्टस्' में चित्रकला की शिक्षा लेते रहे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. कर आपने सागर विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। तदुपरान्त यहां ही डॉ. रामजी उपाध्याय के निर्देशन में पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर डॉ. के सम्बोधन से अभिहित होने लगे।

गृहस्थ जीवन :

६ फरवरी सन् १९४५ में दमोह निवासी श्री दुलीचन्द जी चौधरी की सुपुत्री केशरदेवी के साथ आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। आपके दो पुत्र हुए, जो क्रमशः प्रदीप मोदी एवं प्रवीण मोदी नईदिल्ली एवं गाजियाबाद में कार्यरत हैं।

कर्मक्षेत्र :

शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप सागर विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए। किन्तु दूसरे ही वर्ष वहां से आप वर्णी जैन इन्टर कालेज ललितपुर में अध्यापन कार्य के लिए नियोजित किये गये, जहां छह वर्षों तक सेवारत रहे। तदनन्तर श्री महारानी लाल कवरि डिग्री कालेज बलरामपुर में व्याख्याता के पद पर रहने के बाद विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में संस्कृत के व्याख्याता तथा रीडर के पद पर सेवारत रहे। यहां से सेवानिवृत्त हो आप कुंभोज के अनेकान्त शोध संस्थान में निर्देशक के पद पर अन्तिम समय तक रहे।

सेवा क्षेत्रों की विविधता :

बचपन से ही देशप्रेम की भावना हृदय में आन्दोलित होने के कारण आपने सन् १९४२ के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। परिणामस्वरूप आपके नाम गिरफ्तारी वारंट जारी हुआ और छह माह की कैद में रहना पड़ा। जेल से निकलने के पश्चात् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बम काण्ड में भाग लेने के कारण पुनः वारंट जारी होने पर तीन वर्षों तक भूमिगत रहे।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी इस सृजक ने जहां अपनी सृजनधर्मिता से अनेक सोपानों को तय किया, वहीं साहित्य का क्षेत्र भी आप से अछूता न रह सका। अत्यन्त सरल भाषा और सारगर्भित, रोचक शैली में निबद्ध आपकी रचनाएं आरम्भ से ही निबन्धात्मक रहीं। आपके आलेख 'विक्रम' और 'सागरिका' जैसी शोध पत्रिकाओं में स्थान पाते रहे। कालिदास से सम्बन्धित लगभग सात शोध पत्र एवं संस्कृत साहित्य व जैनधर्म से सम्बन्धित लगभग १५ शोध निबन्ध प्रकाशित हुए। 'जैन अंगशास्त्रों के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास' और 'भारतीय संस्कृति और श्रमण परम्परा' आपकी विशेष चर्चित कृतियां हैं। आपकी एक संस्कृत रचना 'गद्यकलिका' सागर विश्वविद्यालय के बी.ए. प्रथमवर्ष के पाठ्यक्रम के रूप स्वीकृत हुई।

साहित्यिक गतिविधिओं में अग्रणी होने के कारण आप अखिल भारतीय कालिदास परिषद् के सन् ६० से सदस्य रहे। जहां आपने संस्कृत साहित्य एवं कालिदास साहित्य के प्रचार हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। चार वर्षों तक 'बोर्ड ऑफ स्टडीज इन संस्कृत विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन' के भी सदस्य रहे। विक्रम विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य भी आप रहे। सन् १९७८ में आप पूना में सम्पन्न हुए आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस के प्राकृत और जैन विद्या विभाग के अध्यक्ष रहे। इसके अलावा आपने लगभग एक दर्जन शोधछात्रों को निर्देशन देकर उन्हें पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कराने में कुशलता का परिचय दिया।

समाज सेवा में भी आप पीछे नहीं रहे। सन् १९६५ में जैन शिक्षण समिति उज्जैन की स्थापना कर विशेष प्रशंसनीय कार्य किया। जिससे कि निर्धन किन्तु प्रतिभासम्पन्न छात्रों को आर्थिक सहायता एवं जैनधर्म के प्रति रुचि पैदा करने में अपार सफलता मिली। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के मन्त्री एवं बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद् के अध्यक्ष पद को सुशोभित करने का सुअवसर भी आपको प्राप्त हुआ।

सम्मान :

सन् १९७७ में मैथिली विश्वविद्यालय दरभंगा ने आपको महामहोपाध्याय की मानद उपाधि से सम्मानित किया। सन् १९७८ में म.प्र. के मुख्यमन्त्री ने स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी के रूप में आपको प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए सम्मानित किया।

बहुमुखी प्रतिभावान् इस साधक ने १७ अक्टूबर सन् १९८९ को महायात्रा की ओर प्रस्थान करते हुए इस असार संसार को सदा के लिए अलविदा कर दिया। आपके द्वारा की गई सेवाओं से समाज एवं देश आज भी अभिभूत है।

❑

हिराचन्द नेमचन्द दोशी

महाराष्ट्र के आर्थिक जगत् एवं सामाजिक क्षेत्र में अपने कार्यों से नई रोशनी एवं नये आयामों को स्थापित करने का गौरव जाता है श्री हिराचन्द दोशी को। जिनका जन्म सोलापुर निवासी श्री नेमचन्द एवं मां रतनबाई दोशी के परिवार में सन् ५-११-१८५६ को हुआ था। आपके पिता पारम्परिक रूप से व्यवसायी थे। जिनका

ही अनुशरण कर आपके पुत्र और पौत्रों ने जो कीर्तिमान स्थापित किया वह केवल समाज के लिए गौरव की बात है।

शिक्षा :

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सोलापुर में ही हुई। बाद में आपको संस्कृत का विशेष ज्ञान कराने के उद्देश्य से घर पर ही शिक्षक की व्यवस्था कर दी गई। इसके साथ आप स्वरुचि से जैनधर्म का भी शिक्षण लेते थे, जो बाद में आपके जीवन का एक क्रम बन गया और उसी स्वाध्याय के कारण आप अपनी लेखनी को चला सके।

दायित्व :

आपके पिता का देहावसान मात्र १५-१६ वर्ष की अवस्था में ही हो जाने से आपको परिवार की जिम्मेदारियों को निर्वाहन करना पड़ा। परम्परित व्यवसाय के लिये बाध्य हो आजीविकोपार्जन किया। कुछ समझ आने पर आपने औरंगाबाद मिल की एजेन्सी ली तथा साथ ही बम्बई में एक ज्वेलरी की दुकान भी स्थापित की। जिनमें सफलता प्राप्त करने पर आपके नाम और काम बहुगुणित वृद्धिंगत हुए। पारिवारिक दायित्वों को आपने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राजुबाई के साथ आरम्भ किया। जिनसे आपको पांच संतानों की प्राप्ति हुई, उनमें चार पुत्र एवं एक पुत्री थी।

सामाजिक अवदान :

आर्थिक व पारिवारिक रूप से सम्पन्न होने के कारण आपने अपने जीवन में अनेक संस्थाओं की स्थापना एवं उनकी प्रगति में योग किया। आपके द्वारा स्थापित संस्थाओं में ऐलक पन्नालाल पाठशाला की स्थापना सन् १८८४ में सम्पन्न हुई। जहां आयुर्वेद, अभियन्त्रिकी, संस्कृत आदि विषयों के साथ राजकीय शिक्षण की व्यवस्था थी। जैन बोर्डिंग, अनाथालय और गोरक्षा केन्द्र जैसे सेवा संस्थान भी उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही आपने अनेक संस्थाओं को उदारता से दान प्रदान कर उनको कार्यक्षम एवं गतिशील किया। आपके द्वारा पांच ग्रन्थमालाओं की स्थापना भी की गई थी। जिनमें से आज भी कुछ कार्यरत हैं। मुम्बई प्रान्तिक जैन सभा की स्थापना कर आपने जैनों को राज्य स्तर पर संगठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

ACE Scanner
PDF Scanner

राजनैतिक अवदान :

आपमें स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूट कर भरी होने के कारण स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। स्वतन्त्रता के पूर्व आपने नगर सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सोलापुर नगरपालिका के आप सर्वप्रथम सदस्य बने। और बाद में उपाध्यक्ष और अध्यक्ष तक के पदों का कार्य कुशलता के साथ सम्हाला। आपकी कार्यकुशलता एवं सर्वप्रिय लोकव्यावहारिकता के कारण आपकी ख्याति 'मेकर ऑफ सोलापुर' के नाम हो गयी थी। यह यथार्थता के निकट भी है, कि जो सुव्यवस्थितपना और भव्यता के साथ विकास के दिन सोलापुर में आये, उनमें आपका योग अविस्मरणीय है।

साहित्यिकरुचि :

आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के साथ भी आपमें साहित्यिक रुचि अत्यन्त गहन थी। आप निरन्तर स्वाध्याय करते, मनन करते और उस पर सारगर्भित रूप से लिखने का भी प्रयास करते रहे। इसी का परिणाम है कि आपने अनुवाद की एक लम्बी शृंखला खड़ी कर दी। आपके द्वारा प्रमुख रूप से लिखे गये निबन्धों का संग्रह है 'जीवाला कर्माचे बंधन कशाने होतात'। इसके अलावा रत्नकरण्डश्रावकाचार का हिन्दी व मराठी अनुवाद, कुन्दकुन्दाचार्यकृत श्रावकधर्म, पूज्यपादकृत उपासकाचार, आदिपुराणातील श्रावकधर्म, तत्त्वार्थसूत्रातील श्रावकधर्म, पद्मनन्दिकृत श्रावकाचार, पद्मनन्दिकृत अनित्य पंचाशत का गुजराती एवं मराठी अनुवाद, आपळी प्रार्थना, सल्लेखना अथवा मृत्युमहोत्सव, श्रावक प्रतिक्रमण, श्रीपार्श्वनाथचरित्र, श्री महावीर चरित्र, सद्बोधमालिका, व्यंतरांच्या आराधनेपासून नुकसान, शासनदेवता पूजा चर्चा (हिन्दी व मराठी), निर्माल्य चर्चा और जैन ज्योतिष प्रस्तावना आदि गणनीय हैं।

चलती बिरिया :

आपके अमृत महोत्सव के दौरान जो हर्षोल्लास था, वह सम्पूर्ण प्रान्त में व्याप्त था। इस समारोह की अध्यक्षता दादा नौरोजी भाई एवं मुख्य आतिथ्य स्वीकार किया था सर सेठ हुकमचन्द इन्दौर ने। किन्तु यह खुशखबरी जब तक जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपती तब तक एक समाचार और सुनने मिला, जो दुःखद था। अमृत महोत्सव के मात्र सवा माह बाद दिनांक २ फरवरी १९३७ को आपने सोलापुर में इस भौतिक देह का विसर्जन कर इहलीला को समाप्त कर दिया।

पं. हीरालाल 'कौशल'

संयोग और वियोग नदी के दो तटों की भांति जीवन में सदैव विद्यमान रहते हैं। व्यक्ति इन दोनों तटों के बीच अपने जीवन प्रवाह को गतिमान रख उत्थान व पतन के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ मृत्यु के सागर में विलीन हो जाता है। यह मृत्यु का सागर प्रत्येक जीवन प्रवाह का गन्तव्य है, क्योंकि अन्ततः प्रत्येक प्रवाह अपने अस्तित्व को वहीं जाकर समाप्त करता है।

अपने पदचिह्नों से स्मारक रूप प्रतीत होने वाले पं. हीरालाल जी का जन्म ११ मई सन् १९१४ को ललितपुर में श्री रामप्रसाद जी के यहां हुआ। उम्र के साथ बढ़ती प्रतिभा ने इस ललित बालक ने लोगों को अचंभित किया।

विद्याध्ययन :

योग्यता में निखार हेतु शिक्षा को माध्यम बनाते हुये आपने प्राथमिक शिक्षा ललितपुर में ही प्राप्त की। पश्चात् १९२८ से ३६ तक सर सेठ हुकमचन्द जैन महाविद्यालय इन्दौर में जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ पं. वंशीधर जी न्यायालंकार से सिद्धान्त, सुप्रसिद्ध दार्शनिक पं. जीवंधर जी से दर्शनशास्त्र तथा धुरंधर विद्वान् पं. शम्भूनाथ त्रिपाठी से व्याकरण और साहित्य का गम्भीर अध्ययन कर शास्त्री और न्यायतीर्थ की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। भाषण, लेखन और कविता के सृजन के संगम रूप आप मेधावी छात्र के रूप में यहां से ही पहचाने जाने लगे थे।

आजीविकोपार्जन :

दो वर्ष तक जैन स्कूल दरियागंज देहली में कार्य करने के बाद सन् १९३८ में हीरालाल जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सदर बाजार दिल्ली में उच्च कक्षाओं को हिन्दी एवं नैतिक शिक्षा के अध्यापन का कार्य किया। आप एक आदर्श शिक्षक थे। एम.ए. तक के छात्रों को नैतिक शिक्षा की प्रेरणा देकर दिगम्बर जैन परिषद परीक्षाबोर्ड की जैनधर्म सम्बन्धी परीक्षाओं की तैयारी कराते रहे।

साहित्यसुश्रुषा :

सर्वप्रथम आपने मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति विद्यापीठ इन्दौर में अवैतनिक अध्यापन कराते हुए समिति की मुखपत्रिका 'वीणा' का सम्पादन किया। सन् १९३६ में सूरत में श्री पं. परमेष्ठीदास जी के सहयोगी के रूप में हिन्दी शिक्षा का

प्रचार एवं प्रसार किया, जिसका सराहना दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा मद्रास एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने की। आपकी सेवा के परिणामस्वरूप आपको इनका स्थायी सदस्य बना लिया गया।

उर्दू पत्र 'जैन प्रचारक' को हिन्दी में आरम्भ करके आपने १० वर्ष तक सम्पादन कार्य कर इसके अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषांक निकाले। अनेक ग्रन्थों पर प्रस्तावनादि लिखकर उन्हें सर्वसुलभ बनाने में आपका योगदान भी सराहनीय रहा। जैन श्रावकों को सभी आवश्यकपूजाएं एवं पाठादि से अलंकृत एक व्यवस्थित पूजनपाठ प्रदीप का संग्रह एवं सम्पादन कर आपने अपने यश को बहुगुणित कर लिया।

समाज सेवा :

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला दिल्ली के अध्यक्ष, दिगम्बर जैन परिषद् परीक्षाबोर्ड के उपमन्त्री और अन्य स्थानीय जनसेवी संस्थाओं में सक्रिय रूप से सहयोग कर आपने समाज के विकास में अपूर्व योगदान किया।

उपाधियां :

१९३४ में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से 'साहित्यरत्न' की उपाधि पत्र को प्राप्त किया। गांधी जी ने आपको साहित्य सेवा की जो प्रेरणा और आशीर्वाद दिया उसका प्रभाव आपके जीवन पर गहरे रूप से परिलक्षित होता है।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर सन् १९४० में समाज ने बैरिस्टर चम्पतराय जी की उपस्थिति में आपको 'विद्याभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया। अन्य एक समारोह में 'वाणीभूषण' की पदवी से भी आपको सुशोभित किया गया था।

पुरस्कार एवं सम्मान :

बापू की मांगलिक प्रेरणास्वरूप आपको अनेक पुरस्कार रजत एवं स्वर्ण पदक के रूप में प्राप्त हुए। ५ सितम्बर १९७२ में शिक्षक दिवस पर आदर्श शिक्षक के रूप में विज्ञान भवन, दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षामन्त्री श्री नरूलहसन साहब ने आपको राजकीय सम्मान से अलंकृत करते हुए विद्वत्समाज में गौरवान्वित किया।

इस प्रकार आपका सारा जीवन शिक्षा, सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करने में समर्पित रहा। आपने सन् १९९७ में इस देहिक जीवन से विराम ले स्वर्गवास करते हुए इस जगत् में अपनी अक्षीण यश:काय को प्रतिष्ठित करा दिया।

ACE Scanner
PDF Scanner

डॉ. प्रो. हीरालाल जैन

श्रेष्ठतम अध्यापक, प्रवचनकार, वक्ता, बहुभाषाविद्, जैनधर्म-दर्शनविज्ञ, अन्वेषक, इतिहास एवं पुरातत्त्व के समान अधिकारी, सफल सम्पादक एवं अनुवादक के रूप में डॉ. हीरालाल जी लब्धख्यात रहे हैं। आप उत्तरभारत के तथा डॉ. ए. एन. उपाध्ये दक्षिणभारत के विशिष्ट सरस्वती उपासकों में गिने जाते रहे हैं, जिनकी सानी इस सदी में कोई दिखाई नहीं दी। १८ सितम्बर सन् १८९९ को इस प्रकाशपुंज का उदय नरसिंहपुर जिले के गागई ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री बालचन्द जी इस ग्राम के प्रतिष्ठित व धार्मिक व्यक्ति थे और माता श्रीमती भुतरोबाई धर्मसंस्कारों से सम्पन्न महिला। माता-पिता की धार्मिक रुचि तथा साहित्यिक प्रवृत्ति का प्रभाव बालक हीरालाल पर भी पड़ा।

लम्बा कद, गौरवर्ण, पानीदार आंखें, चेहरे पर खेलती मन्दमुस्कुराहट एवं गंभीरता की झलक और विनम्रता से मिश्रित सौन्दर्य और आकर्षक के अद्भुत संगम रूप इस नवयुवक का १४-१५ वर्ष की आयु में गोटेगांव के श्री जवाहरलाल जी की सुपुत्री सोनाबाई के साथ दाम्पत्य जीवन आरम्भ हुआ। आपने तीन संतानों को इस धरा पर अवतरित होने में सहयोग किया।

ज्ञानार्जन :

गागई, गाडरवाडा, नरसिंहपुर, जबलपुर आदि स्थानों पर आपने शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर सन् १९२० में इलाहाबाद से बी.ए. तथा सन् १९२२ में एम.ए. संस्कृत प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एल.एल.बी. की परीक्षा में भी आपने प्रथम श्रेणी अर्जित की। आपने परीक्षाओं में उच्च अंक प्राप्त कर प्रावीण्यसूची में स्थान पाया और छात्रवृत्तियों का उपयोग भी किया। सन् १९२२ से १९२५ तक आपको उत्तरप्रदेश सरकार की ओर से अनुसंधानमूलक अध्ययन के लिए एक सौ रूपये मासिक छात्रवृत्ति स्वीकृत की गई थी। आपने जैन साहित्य विषय का चयन कर तीन वर्ष तक जैन साहित्य के इतिहास की रूपरेखा पर गंभीरतापूर्वक विशेष अध्ययन किया। अधिकांश जैन साहित्य प्राकृत भाषा में होने के कारण आपने प्राकृत के सभी भेदों का गहन अध्ययन कर इसी विषय पर अपना शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

कार्यक्षेत्र :

म.प्र. शासन के किंग एडवर्ड कालेज अमरावती में सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति के साथ ही जुलाई सन् १९२१ में अपने कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया। अध्यापन कार्य करते हुये आपने साहित्य एवं साहित्य भण्डारों की अपूर्व सेवा की।

कारंजा के जैन शास्त्र भण्डारों का सूक्ष्म अवलोकन किया और तीन-चार हजार ग्रन्थों की सूची तैयार की। इनमें दस बारह ग्रन्थ ऐसे भी थे, जिनके नाम से भी विद्वान् परिचित नहीं थे और वे भाषाशैली की दृष्टि में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थे। आपने उदारमना श्री गोपाल अम्बादास जी बंगरे को इससे अवगत कराया और उनकी रुचि साहित्य प्रकाशन की ओर की। आपके प्रयास से ही 'कारंजा जैन सीरिज' और 'देवेन्द्रकीर्ति जैन सीरिज ग्रन्थमाला' की स्थापना हुई।

अपभ्रंश के ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन में - णायकुमार चरिउ, सुदंसण चरिउ, जसहर चरिउ, करकण्डुचरिउ, सावयधम्मदोहा, पाहुडदोहा आदि विस्तृत प्रस्तावना के साथ अत्यन्त कुशलता एवं सूझबूझ के साथ सम्पादित हैं, जिन्हें कारंजा की ग्रन्थमाला से ही प्रकाशित कराया।

आपने कारंजा के शास्त्रागारों में उपलब्ध अश्रुतपूर्व अपभ्रंश के ग्रन्थों का विशेष परिचय, उनकी प्रस्तावना एवं ग्रन्थों का अवतरण लिखकर एक आलेख युनिवर्सिटी जनरल इलाहाबाद भेजा। उसके प्रकाशित होने से मात्र भारत ही नहीं वरन् यूरोप और अमेरिका के विद्वानों का ध्यान अपभ्रंश भाषा व साहित्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ।

षट्खण्डागम व टीका के सम्पादन और अनुवाद में सन् १९३५ से १९५६ तक निरन्तर संलग्न रहे, तत्कालीन विरोधों और प्रतिकूलताओं से विचलित हुए बिना ही। इसी बीच आपकी पत्नि का वियोग होने पर उनके अन्तिम संस्कार के समय आपने दृढप्रतिज्ञा की 'मैं उसकी स्मृति में जीवनभर साहित्य सेवा करता रहूंगा'। आपने अहर्निश दो-दो बजे तक जागकर कार्य को पूर्ण किया, जिससे हिन्दी अनुवाद सहित १६ भागों का प्रकाशन संभव हो सका।

मौलिकसृजन :

'भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान' आपकी अमर कृति है, जो इतनी लोकप्रिय हुई कि उसका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ। तत्त्वसमुच्चय के साथ

आपने लगभग १५० से अधिक शोधपत्रों का लेखन कर साहित्य जगत् में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है।

सन् १९२३ में बैरिस्टर जुगमंदरलाल जी की प्रेरणा से और ब्र. शीतलप्रसाद जी के सहयोग से आपने गोम्मटसार की टीका के त्रुटित भाग की पूर्ति की अन्यथा यह ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हो सकता था।

पं. श्री नाथूराम प्रेमी ने आपसे श्रवणबेलगोल के शिलालेखों का देवनागरी में अनुवाद कर संग्रह के प्रकाशन का अनुरोध किया, जिसे सहर्ष स्वीकार किया।

जैन शोध संस्थान वैशाली के जन्मदाता :

सेवा निवृत्ति के उपरान्त बिहार सरकार के आग्रह पर वैशाली में जैन शोध संस्थान स्थापित और विकसित किया। जो आज भी जैन साहित्य के क्षेत्र में अग्रगामी संस्था है।

आप जबलपुर विश्वविद्यालय के विशेष अनुरोध पर वैशाली से जबलपुर आ गये। यहां के विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग को संस्कृत, पालि एवं प्राकृत के उच्चस्तरीय शोध का केन्द्र बनाया और अनेक प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन किया।

धर्म और समाज को उन्नति के शिखर पर देखने की अभिलाषा रखने वाले आप अनेक धार्मिक संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहे तथा अनेक ग्रन्थामालाओं के सम्पादक के रूप में ख्याति प्राप्त करते रहे।

उपाधियां/सम्मान :

डॉ. श्री हीरालाल जी की अभूतपूर्व साहित्यिक उपलब्धियों को लक्ष्य कर बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा संस्थापित संस्था सोहनराय वांकेराय जैन अकादमी आफ विज्डम एण्ड कल्चर ने आपको 'डाक्टर आफ लॉ' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। अपभ्रंश के अनेक ग्रन्थों के सम्पादन व प्रकाशन के कारण आप नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा 'डी.लिट्' की उपाधि से अलंकृत किये गये।

महाप्रयाण :

वस्तुतः जैन साहित्य समुद्र के पारगामी, ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित निधि के लिये सर्वतो भावेन समर्पित, विलुप्तप्राय जैनागम के अन्वेषक, शोधक, अनुवादक एवं विलक्षण प्रतिभा के पुंज सरस्वती पुत्र का १३ मार्च सन् १९७३ को स्वर्गवास हो गया। उनका अवदान आचन्द्रदिवाकर स्मरणीय रहेगा। ❑

पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

प्रभावोत्पादक प्रवचनकर्त्ता, कुशल सम्पादक, महानतम साहित्यकार, अनुवादक एवं निबन्धकार, समाज के कर्णधार व देश के गौरव पं. हीरालाल जी का जन्म परवार जाति के श्री दरयावलाल जी के परिवार में श्रावण कृष्णा अमावस्या संवत् १९६१ को साढूमल कस्बे में हुआ था।

बहारों से विभूषित यह आंगन कालचक्र रूपी तेज हवाओं से पतझड़ के रूप में उस समय परिवर्तित हुआ, जब पौने दो वर्ष के बच्चे को छोड़कर मां श्रीमती राजरानी ने स्वर्गारोहण किया। बालक के बड़े भाई एवं भावज के कानों में मरणासन्न मां के शब्द तब गूंज रहे थे कि 'बेटी ले, मां की अन्तिम निशानी है, आज से भावज होने के साथ ही साथ तूं इसकी मां भी है।' मातृसुखवंचित यह बालक सबकी आंखों का तारा बन गया।

विद्यार्जन :

छह वर्ष की वय में प्रारम्भिक शिक्षण आरम्भ कर विशारद और न्यायमध्यमा की शिक्षा स्थानीय विद्यालय में ग्रहण की। इसी बीच भावज के देहावसान के कारण संकटाच्छन्न हुए परिवार के बीच स्व. सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी ने आपको छात्रावास में रख सर सेठ हुकमचन्द दिगम्बर जैन महाविद्यालय इन्दौर से धर्मशास्त्री, न्यायतीर्थ एवं साहित्यशास्त्री की परीक्षा को पास करा दिया। पं. वंशीधर जी के चरणसानिध्य में सिद्धान्तशास्त्री के शिक्षण लेने का अवसर मिला शिक्षा मन्दिर जबलपुर में। इसके साथ आपने लौकिक शिक्षण सम्बन्धी परीक्षाएं देकर अपनी ज्ञानपिपासा को तृप्त किया।

दाम्पत्यजीवन :

शिक्षण के बीच में ही सन् १९२४ में आपने दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। किन्तु वियोगों का सिलसिला अनवरत चालू रहा। सन् १९३५ में आपकी पत्नी ने भी आपका साथ छोड़ दिया। द्वितीय विवाह श्रीमती चिन्तामणि जी के साथ हुआ, जिन्होंने आपको संघर्षों के बीच सहयोग दिया। आपके पांच पुत्रियां तथा छह पुत्र योग्य शिक्षा आदि ग्रहण कर उच्च पदों पर कार्यरत हैं।

आपने अर्थोपार्जन के लिए अध्ययन उपरान्त सन् १९२४ से ३८ तक स्याद्वाद

महाविद्यालय वाराणसी एवं बाद में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महाविद्यालय ब्यावर में अध्यापन का कार्य किया।

जिनवाणी के लाल :

सन् १९३९ से ग्रन्थों का सम्पादन कर आपने मां जिनवाणी की जो सेवा की है वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। जैन साहित्योद्धारक फण्ड अमरावती, वीरशासन संघ कलकत्ता, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी आदि विभिन्न संस्थाओं से प्रकाशित अनेक ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद किया। उनमें षड्खण्डागम के छह भागों, कषायपाहुड, प्राकृतपंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, वसुनन्दिश्रावकाचार, जिनसहस्रनाम, जैनधर्मामृत, प्रमेयरत्नमाला, छहढाला, द्रव्यसंग्रह, श्रावाकाचार संग्रह पांच भाग, दयोदय, सुदर्शनोदय, वीरोदय आदि अनेक ग्रन्थ आपकी प्रतिभा एवं योग्यता के प्रमाण हैं।

आपने कुन्दकुन्दाचार्य कृत समस्त ग्रन्थों का, सावयधम्मदोहा, पाहुडदोहा आदि का दोहानुवाद तथा पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, पुरुषार्थानुशासन, परमागमसार, परमात्मप्रकाश जैसे जैन ग्रन्थों का अनुवाद किया। किन्तु खेद है कि इनमें कुछ अभी भी अप्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त आपने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लगभग २५० से अधिक शोध व विचारपूर्ण लेख लिखे हैं।

समाजसेवा :

अमरावती में हिन्दी माध्यम से मान्टेसरी शिक्षण पद्धति द्वारा बच्चों को पढ़ाने हेतु सन् १९४२ में बाल मन्दिर की स्थापना की। लगभग दो साल तक उसका सफल संचालन कर उसे लोकप्रियता दिलायी। नूतन शिक्षण पद्धति से सम्बद्ध इस मन्दिर की उम्र भी बाल ही रही, क्योंकि आपके जाने के बाद उसके योग्य अन्य संचालक न मिल सका।

सम्मान :

समाज ने अनेक अवसरों पर आपका सम्मान किया। सागर में षड्खण्डागम की वाचना के अवसर पर आपको विशेष रूप से सम्मान करते हुए रजत पत्र प्रदान किया गया। पर्युषणपर्व के अवसर पर प्राप्त होने वाले सम्मानों की परिगणना कर पाना तो संभव ही नहीं है।

मृत्यु से महामिलन :

निरन्तर जिनवाणी सेवा में रत रहने वाले इस गहन अध्येता ने अपने निजी

पुस्तकालय में लगभग ढाई हजार पुस्तकों को संग्रहीत किया। आपकी विचारधारा थी कि 'फटे वस्त्र पहिनकर भी नई पुस्तकें खरीदना चाहिए'। आपने अन्त समय तक उनका अध्ययन-मनन-चिन्तन करते हुए आत्मसाधना में संलग्न रह सन् १९८३ में सदा के लिए विराम ले लिया। आपकी निस्पृह साहित्यसाधना एवं जिनवाणी सेवा आपको आचन्द्रार्क अमर रखने में समर्थ है।

हुकमचन्द बुखारिया 'तन्मय'

लेखक या रचनाकार की दृष्टि व जीवनसृष्टि का सम्बन्ध आवश्यक रूप से किसी दर्शन से होता है, साथ ही वह सांस्कृतिक/सामाजिक परिवेश से भी सम्बद्ध होता है। उस युग का प्रभाव होने के कारण ही लेखक युगसंवाहक बन जाता है। श्री हुकुमचन्द बुखारिया भी एक ऐसे ही ख्यात हस्ताक्षर थे, जिनने युग की परिस्थितियों को आत्मसात् किया और उसे साहित्य में सदा के लिए सुरक्षित कर दिया। परतन्त्रता की बेडियों में बंधे तन्मय जी का जन्म झांसी जिलान्तर्गत ललितपुर में श्री फूलचन्द और श्रीमती जगरानी के सम्पन्न परिवार में हुआ था। आपके पिता नगरपालिका के मनोनीत सदस्य होने से नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गण्य थे।

विद्यालाभ :

ललितपुर में ही बी.ए. तक की परीक्षायें उत्तीर्ण कर 'एक पंथ दो काज' की कहावत को चरितार्थ करते हुये आप स्थानीय पी. एन. हाईस्कूल में अध्यापक हो गये और अध्ययन के क्रम को जारी रख आपने हिन्दी में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् नियमित छात्र के रूप में सन् १९५४ में होल्कर कालेज इन्दौर से एल.एल.बी. की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। इस अध्ययन के दौरान आपने इन्दौर में स्थानीय दैनिक 'इन्दौर समाचार' में कुछ महीनों तक सम्पादकीय विभाग में कार्य भी किया।

गृहस्थजीवन की जिम्मेदारी :

सन् १९३५ में श्री शाह रज्जूलाल की सुपुत्री निराशादेवी के साथ गृहस्थ जीवन को प्रारम्भ किया। अर्थोपार्जन के लिए आपने आरम्भ में ललितपुर में ही एक खादी भण्डार खोला, जो नेताओं की उधारी के कारण अन्ततः बन्द करना पड़ा।

अनन्तर आप चार वर्षों तक अध्यापन के कार्य में रत रहे। सन् १९५५ से आप ललितपुर में ही वकालात को आजीविकोपार्जन के लिये चुना और उसमें सफल भी रहे।

सेवाक्षेत्र की विविधता :

राष्ट्र के प्रति समर्पण और देशभक्ति की भावना पैतृकसम्पत्ति के रूप में प्राप्त होने के कारण नेताओं और अंग्रेजी शासन के नृशंस अत्याचारों की करुणामयी कहानियों को सुनकर पन्द्रह-सोलह वर्ष की अपरिपक्व अवस्था से ही राजनीति में भाग लेने के लिए भावनायें बलवती हो गयीं। सन् १९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय छह महीने तथा १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन में एक वर्ष तक आप क्रमशः जेल एवं झांसी के कारागृहों में रहे।

साहित्य सेवा के क्षेत्र में आने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति का वातावरण होना हुआ, और यही कारण है कि आपकी रचनाओं में वीर रस की प्रधानता होती थी, यदा-कदा शृंगार रस भी आपकी साहित्यबगिया में आ धमकता था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में - आहुति, पाकिस्तान, मेरे बापू, प्रह्लाद, वीरलाल पद्मधर, एवं मराठा मुक्ति का द्वार प्रमुख हैं। इसके अलावा पत्र एवं पत्रिकाओं में सैकड़ों कविताएं और लेख प्रकाशित होते रहते थे। आपके अनेक गीत, अतुकान्त गद्यगेय काव्य और कविताएं अभी भी अप्रकाशित हैं।

समाजसेवा के क्षेत्र में आपके योगदान को रेखांकित करना अत्यन्त आवश्यक है। आप सन् १९५४ से ५९ तक नगरपालिका ललितपुर के सदस्य एवं शिक्षा चेयरमेन रहे तथा १९६१ से १९६४ तक श्री वर्णी जैन इन्टर कालेज ललितपुर के मन्त्री एवं प्रबन्धक रहे।

सम्मान :

समाज उसका सम्मान करती है, जिसके व्यक्तित्व या कृतित्व से वह प्रभावित होती है। श्री तन्मय जी ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति थे जिन्हें समाज की नजरों ने पहचाना और अपनी आंखों में बसाया। आपको वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में लगभग १० बार प्रथम स्थान प्राप्त करने पर अनेक ट्राफियों से नवाजा गया। 'वीरलाल पद्मधर' नामक खण्डकाव्य पर १००१/- पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुए थे। इसके अलावा सैकड़ों अभिनन्दन पत्र और सम्मान पत्र, जो कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं एवं स्थानों से प्राप्त हुए थे, आपके कक्ष की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इस तरह चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी श्री तन्मय जी ने कानून के पण्डित, देशभक्त, साहित्यसेवी और समाजसेवी जैसे अनेक गुणों की विविधता से जन-जन के हृदय में स्थान एवं कीर्ति को प्राप्त किया, जो उनके प्रयाण के बाद भी अक्षुण्ण है।

पं. ज्ञानचन्द्र 'स्वतन्त्र'

साहित्याराधक, सम्पादक, समाजसुधारक, राष्ट्रभाषाप्रचारक एवं प्रभावक प्रवचनकार थे पं. श्री ज्ञानचन्द्र जी 'स्वतन्त्र', जो कि सूरत वालों के नाम ख्यात हुये। मध्यप्रदेश के गुना जिले की मुंगावली तहसील के अन्तर्गत बहादुरपुर ग्राम में १ जनवरी सन् १९१२ को मंगलवार की रात्रि २ बजकर १० मिनिट पर आपका जन्म गोलालारे पंचरत्न गोत्रीय श्री मथुराप्रसाद एवं श्रीमती मुक्तादेवी की सन्तान के रूप में हुआ। जन्म के मात्र तीन माह बाद ही आपके दादा जी का देहावसान हो गया। और १ वर्ष की उम्र में मातृवियोग का कष्ट सहना पड़ा। अशुभकर्मों के तीव्रोदय के कारण ४ वर्ष की आयु होते ही पितृच्छाया से भी विहीन हो गये। तब आपका पालन-पोषण आपके मामा ने किया। दो बड़ी बहिनों हीरा और माया के साथ आपका तीसरा नम्बर था। पिता के द्वितीय विवाह से एक पुत्र नित्यानन्द और एक पुत्री गुलाबबाई ने जन्म पाया किन्तु दुर्भाग्यवश सभी अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो गये।

शिक्षा :

सर्वप्रथम महावीर पाठशाला साढूमल में दो वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की। यहां आपके प्रथम गुरु थे पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री। अनन्तर आपने इन्दौर में सर सेठ हुकमचन्द विद्यालय में ८ वर्ष तक रहकर एवं एक वर्ष स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में रह प्रवेशिका, विशारद, मेट्रिक, शास्त्री, आचार्य, न्यायतीर्थ और न्यायालंकार की परीक्षायें अनेक अभावों से जूझते हुए भी योग्यता के साथ पास कीं। आप बहुभाषाविद् थे। आपका हिन्दी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, पालि, अपभ्रंश, अंग्रेजी और उर्दू के साथ ज्योतिष पर पूर्ण अधिकार था।

दाम्पत्यजीवन :

सन् १९३६ में सिरोंज निवासी श्री देवीदास जी की प्रथम पुत्री गीतादेवी के साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हुआ। अध्ययनोपरान्त आजीविकोपर्जन के

लिए सन् १९३२ में आनन्दपुर पाठशाला में एक वर्ष अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् मिरोंज में धार्मिक शिक्षण के साथ हाईस्कूल में संस्कृत भाषा के अध्यापक के रूप में कार्य किया। सन् १९४१ में कुछ दिन सनावद में धर्माध्यापक रह पाये कि सूरत के जैनमित्र कार्यालय में अपनी प्रतिभा प्रदर्शन एवं समृद्धि करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यहां आपने जैनमित्र, दिगम्बर जैन, जैन महिलादर्श आदि का सम्पादन एक समसामायिक लेखों द्वारा जनचेतना जागृत करते हुए हिन्दी व गुजराती अनुवाद की दक्षता भी प्राप्त की। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रचारक होने के कारण आपने अनेक विद्यार्थियों एवं साधुओं को हिन्दी, संस्कृत एवं न्याय का अध्ययन कराया।

सेवाकार्य :

धार्मिक क्षेत्र में आपका अमूल्य योगदान रहा। आपने गुजरात में हिन्दू पद्धति से प्रचलित विवाह परम्परा को बदल कर जैन विवाह की पद्धति आरम्भ की साथ ही जैन पूजा एवं प्रतिष्ठा के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे।

भारत छोडो आन्दोलन में सक्रिय योगदान करके स्वतन्त्रता एवं देशभक्ति के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दिया। हिन्दी भाषा के प्रचार करने के उद्देश्य से आप राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रचारक रहे।

साहित्याराधना :

स्वतन्त्र जी की प्रतिभाशालिनी लेखनी से अनेक ग्रन्थों की प्रसूति हुई। उनमें प्रकाशित कृतियों में – १. जैनधर्म पर लोकमत, २. जैनधर्म बदल लोकमत (मराठी), ३. भगवान् महावीर सन्देश (मराठी), ४. जैनशतक का हिन्दी अनुवाद, ५. वेसुरा राग, ६. पापों का पछतावा, ७. मानव बने मानव, ८. हम कैसे सुधरे, ९. प्रायश्चित्त शुद्धि आत्मधर्म, १०. विवाह क्या है ?, ११. मानवता के पथ भाग १ व २, १२. गागर में सागर, १३. स्वर्गनरक, १४. दाम्पत्यजीवन, १५. श्रीमद् राजचन्द्र जी की विशिष्टताओं, १६. दिगम्बर जैन साहित्य में विकार (हिन्दी अनुवाद), १७. ज्येष्ठ जिनवर की कथा, १८. प्रकाश की किरणें, १९. मुनि श्री वीरसागर जीवनी, २०. नारी, २१. आचार्य कुन्दकुन्द एवं बनारसीदास की जीवनी, २२. मानव बनिये, २३. विवाह पर आदर्श संस्था, २४. दहेज एक अभिशाप, २५. मुनि श्री समकितसागर जी का जीवनवृत्त, २६. सोनानु पांजरू (हिन्दी अनुवाद), २७. जैनव्रतकथासंग्रह।

अप्रकाशित कृतियों में – १. इस पार, २. उस पार, ३. हम आगे बढ़ रहे हैं,

४. नारी के भूषण, ५. संस्कार नहीं जावे, ६. नारी के दूषण, ७. जिन्हें कि हम भूल जाते हैं, ८. ये भयंकर पापलीलाएं, ९. दो पहलू, १०. जीवन में संयम का महत्त्व, ११. विधे हुये मोती, १२. बेरंग बुकपोस्ट, १३. वाइफ और पत्नी, १४. ईमानदार तांगे वाला।

आपने पत्रों का सम्पादन करते हुए अनेक सामयिक एवं प्रभावी सम्पादकीय तो लिखे ही, साथ ही अनेक ग्रन्थों की प्रस्तावना एवं उनका संशोधन जिनवाणी की सेवा के रूप में किया। पत्रकारिता में अनेक बार धमकियां मिलने पर भी आपने अपने लक्ष्य को ओझल नहीं किया। सदैव सादगी और निर्भीकता के साथ समाजसुधार एवं धर्म के उदात्त मूल्यों के प्रचार के लिए समर्पित रहे।

अन्त का पूर्वाभास :

जीवनभर साहित्याराधना करने वाले स्वतन्त्र जी ने मृत्यु का लगभग पूर्वाभास कर लिया था, अतः प्रवचनार्थ बाहर जाने के कार्य से विराम ले लिया। २० जुलाई १९९० को उच्चरक्तचाप की चल रही दवाएं स्वतः बन्द कर दीं और ६ अगस्त १९९० को प्रातः प्रवचनोपरान्त सभी से क्षमायाचना 'आगे मिलना हो न हो' कहते हुए की। रात्रि में करकंडुचरिउ का स्वाध्याय करते हुए ८.३० बजे आपने इस नश्वर संसार एवं देह का परित्याग कर दिया।

आपकी सेवाभावना की पवित्र स्मृतियां आज भी जनचेतना जागृत करती है। आपके परिजनों ने आपके कार्यों को सतत् गतिशील रखने एवं पुण्यस्मृति बनाये रखने हेतु 'गीताज्ञानआराधनास्वतन्त्र पारमार्थिक न्यास, गंजबासौदा' का गठन कर साहित्याराधना एवं समाज सेवा के कार्यों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की।

❑

ACE Scanner
PDF Scanner

मुनि अमृतचन्द्र 'सुधा'

अमृतचन्द्र 'सुधा' का जन्म सन् १९२२ में आगरा में हुआ था। आपके पिता पं. युगलकिशोर जी शहर के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। सन् १९३८ में इन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय की मुनि दीक्षा ले ली थी। आपने लगभग सात कविता की पुस्तकें लिखी हैं, जो सभी प्रकाशित हो चुकी हैं।

❑

अमृतलाल 'चंचल'

अमृतलाल जी 'चंचल' का नाम जैन समाज के लिए अपरिचित नहीं है। आपने विद्यार्थी अवस्था से ही साहित्यिक कार्यों की ओर अपनी रुचि को प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया था। आपने भक्तामरस्तोत्र एवं रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि का मधुर एवं सरस शैली में पद्यानुवाद किया है। इसके अलावा आपकी अनेक रचनाएं समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी।

❑

अमृतलाल 'फणीन्द्र'

श्री अमृतलाल जी टीकमगढ के रहने वाले थे। आपने कविता के क्षेत्र में विशेष प्रगति की थी। आपकी कविताएं, कहानियां एवं एकांकी आदि समाज की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में विश्वक्रान्ति और रैयत की लड़ाई के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

आप ओरछा स्टेट के एम. एल. ए. तथा ओरछा सेवा संघ के सहायक मन्त्री रहे। आपने साहित्य, समाज और देश की अनेक रूपों में सेवा की है।

❑

आनन्दीलाल 'आनन्दोपाध्याय'

मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध नगर जयपुर में वि.सं. १९७० को अपने जन्म से आनन्दित करने वाले 'आनन्दोपाध्याय' जी का पूरा नाम आनन्दीलाल जैन था।

PDF Scanner ACE Scanner

आपने उपाध्याय की परीक्षा पास करने के बाद शास्त्री की भी परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

भावों के अतिरेक की अभिव्यक्ति के लिए आपने कविता के माध्यम को चुना। उपाध्याय की परीक्षा पास होते न होते ही आपकी लेखनी आरम्भ हो गयी थी। जिसे आपने अन्त तक साथ रखा। आनन्दोपाध्याय उपनाम के साथ आपकी अनेक रचनाएं जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं।

कविजगत् का यह देदीप्यमान नक्षत्र वि.सं. २००० को आकाश की शून्यता में विलीन हो गया।

कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा कोविद'

पं. परमेष्ठीदास जी का नाम जैन साहित्य के क्षेत्र में एक सुख्यात नाम है। आपकी ही धर्मपत्नी का नाम है कमलादेवी जी। आप धर्म, न्याय और साहित्य का मनन का कविता के क्षेत्र में उतरी थी। आपकी रचनाओं में जहां दार्शनिकता है तो वहां साहित्य और ललितकला का दर्शन भी। आपकी रचनाएं उच्चकोटि की होने के कारण आपको अनेक कविसम्मेलनों में स्वर्ण और रजत पदक प्राप्त हुए थे। आपकी रचनाएं सुधा, कमला आदि साहित्यिक पत्रिकाओं में आमन्त्रित होती रहती थी। आपने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले जेलयात्रा भी की थी।

पं. कल्लप्पा निटवे

श्री निटवे जी मराठी साहित्य जगत् के वह देदीप्यमान सूर्य हैं जिसने अपनी साहित्य सेवा रूप किरणों से इस जगत् को प्रकाशित किया।

आपके द्वारा अनुवादित ग्रन्थों में उपदेश रत्नमाला, देवागमस्तोत्र, आत्ममीमांसा, सागारधर्मामृत, पंचास्तिकाय, समयसार, प्रश्नोत्तर माणिक्यमाला, सम्यक्त्व कौमुदी, जैनधर्मामृतसार, रयणसार, अमितगति श्रावकाचार, जीवंधरचरित, महापुराण, आदिपुराण आदि उल्लेखनीय हैं। इसकेसाथ ही आदिपुराण पर आधारित 'महापुराणामृत' नामक स्वतन्त्र रचना का सृजन आपकी लेखनी से हुआ है।

श्री विटवे जी का संस्कृत, प्राकृत व मराठी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। आपकी काव्यमर्मज्ञता व भाषान्तरपटुता आपके मराठी अनुवादों में स्पष्ट झांकती है।

❑

चन्द्रराज इन्द्र

दक्षितभारत के सुविख्यात साहित्यकार थे श्री चन्द्रराज इन्द्र। उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों में आत्मानुशासन टीका, परमात्मप्रकाश टीका, सागारधर्मामृत टीका और ज्योतिर्मयमार्ग आदि प्रमुख हैं।

❑

श्री चन्द्रराज शेट्टी

दक्षिण भारत के अधिकांश विद्वानों की भांति श्री चन्द्रराज शेट्टी की साहित्य सेवा ही उनका परिचय शेष है। वे साहित्यकार और चित्रकार के रूप में विख्यात थे।

साहित्यिककर्म :

'मूगीलूमने', 'भारतद महानगरगळु', 'विधि', 'मंगळुरीनिन्दसधुरैप' और 'कविमुद्दन' आदि बीस कृतियों की रचना कर श्री शेट्टी ने साहित्य भण्डार की अभिवृद्धि की है। मंगलूर से प्रसारित होने वाले 'वंदने माळै' धारावाहिक का सरल रूप से मंचन भी आपने ही किया था।

चित्रकलाभिरुचि :

चित्रकला के प्रति आपकी आरम्भ से ही रुचि रही। आपने कन्नड प्रान्तीय साहित्यिक चित्र चरित्रों का संग्रह/संकलन कर एक दुर्लभ प्रदर्शनी ही तैयार की। उनके इस संकलन का सूक्ष्म निरीक्षण कर केन्द्रीय साहित्य अकादमी के अध्यक्ष सहित विशिष्ट कलामर्मज्ञों ने इनकी प्रशंसा की। संघ संस्था के माध्यम से होने वाले कार्यों को व्यक्तिगत रुचि लेकर शीघ्र पूर्ण कराने में आप सदैव तत्पर रहते थे

❑

चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर'

आपका जन्म ५ फरवरी सन् १९१९ में हुआ था। आपने उज्जैन के माधव कालेज से एफ. ए. तक शिक्षा प्राप्त की थी। उसके बाद व्यापार में संलग्न हो गये। आप सन् १९३५ से साहित्य के क्षेत्र में अग्रसर हुए थे। आपकी कविताएं तत्कालीन माधुरी, मदारी और जयाजीप्रताप जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं मेंप्रकाशित होती रहती थी।

❑

चांदमल जैन 'शशि'

साहित्य जगत में चांद-सी आभा लिये, अपनी लेखनी से लोगों को शीतलता प्रदान करने वाले श्री चांदमल जैन 'शशि', जिन्होने १३ जून १९१० को नगवाडा ग्राम (जयपुर) में जन्म लिया था।

अपने सम्पूर्ण जीवन को अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत करने वाले श्री शशि जी ने साहित्यरत्न, एम.ए. हिन्दी व संस्कृत, बी.टी. आदि अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर अपनी बुद्धि को प्रमाणित किया था।

बचपन से ही आपकी कविता करने में रुचि थी। आपकी कवितायें जैनबन्धु, जैनदर्शन आदि अनेक पत्रों में प्रकाशित हुई। आपकी कविताओं में प्रकृति वर्णन के साथ ही उद्बोधक तत्त्वों की प्रचुरता तथा गम्भीरता को सरलीकरण कर प्रस्तुत करने की योजना रही।

७ जून १९७४ को आपका स्वर्गवास हो गया। आपके निधन से हुई क्षतिपूर्ति कर पाना समाज के लिए आसान कार्य नहीं है।

❑

पं. चिमनलाल

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जन्में पं. चिमनलाल जी कवि हृदय थे। अर्हन्नीति और प्रायश्चित्त ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद आपकी कुशल लेखनी द्वारा प्रस्तुत हुआ। इसके अतिरिक्त अनेक असंकलित पद्यों में आपके कवित्व की छटा देखने

को मिलती है। संवत् १९६९ तक आपके मौजूद रहने की बात अनेक किंवदन्तियों से उपलब्ध होती है।

चैनसुख लुहाडिया

चैनसुख लुहाडिया का जन्म संवत् १८८७ में जयपुर नामक गुलाबी शहर में हुआ। आप एक सफल हिन्दी भाषी कवि के रूप प्रसिद्ध व आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे।

काव्यवृक्ष के रूप में आत्मबोध दर्शनदशक, श्रीपतिस्तोत्र, कई पूजायें तथा अन्य कई रचनायें आपसे प्रसूत हुई हैं। जिनका रसास्वादन कर आज प्राणी तृप्त हो रहे हैं।

समस्यापूर्ति के शौकीन श्री लुहाडिया जिनका कि स्वर्गवास सं. १९४९ को हुआ, अपनी कृतियों के माध्यम से आज भी जीवंत हैं।

ए.पी. चोगले

उत्तरभारत में जैन जागृति करने वाले महानुभावों में ए.पी. चोगले अग्रणी थे। जैन साहित्य के प्रकाशन हेतु आपने महावीर मुद्रणालय की स्थापना कर कार्य आरम्भ किया। प्रो. कुन्दनलाल जी के साथ आदिपुराण ग्रन्थ का शास्त्रीय पद्धति से सम्पादन किया। आपके प्रयास से ही 'जिन-विजय' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आपने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा जैन कवि काव्य धर्म विषयक अन्य विद्वानों के गलत अभिप्रायों/भ्रांतियों का खण्डन/निवारण किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके अनेक लेख मुद्रित हुये हैं।

एम. जगत्पाल्लैय्या, ज्योतिषी

जैनदर्शन, संगीत, ज्योतिषविद्या के विशेषज्ञ एवं नृत्यादि कलाओं में पारंगत एम. जगत्पाल्लैय्या आशुकवि, साहित्यकार एवं सम्पादक के साथ संस्थापक के रूप में भी ख्यात थे।

पंचनमस्कार मन्त्रद महिमा, वालिन वेलकु, हृदयविषो, गानसुधा, देवपूजारहस्य आदि १८ कृतियों का आपने सृजन किया। भैरवग्रन्थमाला के आप संस्थापक एवं सम्पादक भी रहे।

❑

जवाहरलाल शाह

बीसवीं शताब्दी में जन्में जयपुर निवासी श्री शाह काव्य जगत् के वास्तव में लाल ही थे। आपकी लेखनी से काव्यधारा का जो निर्मल प्रवाह प्रवाहित हुआ, उसमें अवगाहित हो व्यक्ति निश्चित ही पवित्रता को प्राप्त होता है।

आपके द्वारा चेतनविलास, आलोचनापाठ, बीस तीर्थंकर पूजा, समुच्चयपूजा आदि की रचनायें हुईं।

वि.सं. १९५२ में आपके देहावसान से साहित्य जगत् निश्चित ही क्षतिग्रस्त हुआ।

❑

जवाहिरलाल जैन

जयपुर में दिसम्बर १९०९ का वह दिन सौभाग्यशाली हुआ जब जवाहिरलाल जी ने जन्म लियासा। अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से पिता जीवनलाल जी को आनन्दित करते हुये इस लाल ने शनैः शनैः युवावस्था में प्रवेश किया।

शिक्षा :

अध्ययन में रुचि रखते हुये आपने इतिहास, राजनीति एवं हिन्दी में विशारद की परीक्षायें उत्तीर्ण की।

साहित्यसेवा :

गद्य एवं पद्य के जाने-पहचाने लेखक श्री लाल जी की अनेक रचनायें प्रकाशित हुई हैं। कई पत्रों में भी आपकी कवितायें प्रकाशित हुई हैं, जो आपके कृतित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

❑

टी.के. तुकोल

श्रेष्ठतम शिक्षावेत्ता, आरम्भ में अंग्रेजी के प्राध्यापक एवं अन्त में कैंगलोर विश्वविद्यालय के कुलपति रहने वाले योग्य विद्वान् थे टी. के. तुकोल। शिक्षाविद् तथा साहित्यकार होते हुये भी आप जनसमुदाय में अपरीचित ही बने रहे। आपकी कुछ-कुछ प्रसिद्धि आपके कर्नाटक उच्चन्यायालय के न्यायाधिपति होने के बाद ही आरम्भ हुई।

अंग्रेजी, कन्नड, तमिल और जैनधर्म-दर्शन-साहित्य के पर्याप्त अध्येता श्री तुकोल ने अपने विद्यार्थी जीवन से ही लेख लिखना आरम्भ कर दिया था। जो यथावसर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। आपके द्वारा लिखित लेख जैनधर्म और कन्नडभाषा विषयक साहित्य का अगाध पाण्डित्य स्पष्ट लक्षित कराते हैं। अंग्रेजी भाषा के प्राध्यापक पद पर नियुक्ति के बाद ही आपने गवर्ट ब्रीजेश के काव्य 'इन्ट्रोडक्शन ऑफ दी टेस्टमेंट ऑफ ब्यूटी' पर पीठिका लिखी। जिसकी सराहना अंग्रेजी के विद्वानों ने भी भरपूर की। आज भी इसका उच्च स्थान सुरक्षित है।

पम्प कवि शतमान उत्सव के आयोजन में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आपने अनेक साहित्यकारों को प्रोत्साहित कर उनकी साहित्यिक गतिविधियों को वृद्धिंगत किया। ❑

टी. के. पाटिल

शिक्षण के क्षेत्र में अधिकारी के पद पर रहकर श्री पाटिल ने जीवन पर्यन्त शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिये अनवरत रूप से परिश्रम किया। अनेक शिक्षण संस्थाओं को, उनकी आरम्भिक दशा में अहोरात्रि प्रयास कर मूर्तरूप प्रदान किया।

श्री पाटिल जी साहित्य प्रेमी भी थे। उन्होने साक्षरता प्रयास के उद्देश्य से एक नाटक लिखा था - 'हळ्ळीय ज्ञानाप्प' इसका उन्होने प्रयोग कराया तथा यह अनेक स्थानों पर मंचित भी हुआ। आप अनेक व्यक्तियों को प्रोत्साहित कर उनकी पदोन्नति में सहायक बने। वे साहित्य रचनाओं के प्रकाशन प्रसारण के साथ इसके प्रसार के प्रमुख माध्यम पत्रिका व्यवसाय से भी जुडे रहे। परोपकार के लिये जीवन समर्पित कर्ता श्री पाटिल जी सदैव स्मरणीय रहेंगे। ❑

तात्याराव नेमिनाथ पांगल

मराठी भाषाविद् श्री पांगल जी की कीर्ति का अन्यतम साधन सुरस ग्रन्थमाला नामक प्रसिद्ध लोकप्रिय प्रकाशन है। आपने गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण पर अत्यन्त परिश्रम पूर्वक दीर्घ अध्ययन के उपरान्त तीर्थंकरों केचरित्र मराठी में लिखे। इस ग्रन्थ से न केवल तीर्थंकरों के चरित्र प्रकाशित हो सके वरन् भारतीय प्राचीन संस्कृति का इतिहास भी प्रकाशितहुआ।

आपका सन् १९१३ में पूना की वसंतव्याख्यानमाला में दिया हुआ जैनधर्म सम्बन्धी व्याख्यान आपकी यशोगाथा को विस्तृत करने वाला हुआ। पिताजी के अच्छे लेखक और कवि होने के संस्कारों ने आपको भी साहित्य के क्षेत्र में स्थापित करने में मदद की। आपने जैनेतिहास पर अनेक पुस्तिकाएं एवं उपन्यास लिखे। जिनमें रत्नत्रयमार्गप्रदीप, पद्यावली तथा अभंग आदि रचनायें विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई।

❑

थानसिंह अजमेरा

व्यक्ति का कोई एक महत्त्वपूर्ण कार्य भी व्यक्ति को कीर्ति के शिखर तक आरूढ कराने में कामयाब होता है। थानसिंह अजमेरा जी, जिनका जन्म २० सदी के पूर्वार्द्ध में अजमेरा जयपुर में हुआ, अपनी कृति 'थानविलास' से अमर हो गये। विविध प्रकार की रचनाओं के संग्रह के रूप में इस कृति में लेखक की भाषा व शैली उच्चकोटि की है। इसके अतिरिक्त आपने संवत् १९३४ में 'बीस तीर्थंकर पूजा' लिखी, जो आपकी यश:कीर्ति को उच्च से उच्चतर की ओर ले गयी।

❑

पं. दरबारीलाल सत्यभक्त

सत्यधर्म के संस्थापक पंडित दरबारीलाल जी ने, व्यक्ति और कवि दोनों रूप में समाज और साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया था। आप उच्चकोटि के लेखक, विद्वान् और विचारक थे। जीवन में जिस साधना का मार्ग आपने अपनाया था और जिस मानसिक उथल-पुथल के कारण वह उस मार्ग तक पहुंचे

थे, उसमें उनका दार्शनिक मन और भावुक हृदय दोनों समान रूप से सहायक हुए थे।

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि 'सत्यभक्त' जी बहुत ही संवेदनशील व्यक्ति थे। उनकी संवेदनायें पाठकों छू लेने वाली होती थीं। आपका साहित्य मात्र प्रचारात्मक या आवश्यकता की पूरी नहीं था, अपितु एक निश्चित दर्शन और विचार से उद्‌भूत और ओतप्रोत था।

आपने 'सत्यसन्देश' और 'संगम' जैसी पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी संसार ही नहीं वरन् मानव संसार की सेवा का कार्य किया। इसके अतिरिक्त आपकी अनेक पुस्तकें भी इस संसार के लिए अनुपम भेंट हैं।

❑

ए. दुरई स्वामी नैनार

जीवनवृत्त एवं शिक्षा :

दक्षिण भारत के तिरूवण्णामलै जिला के अन्तर्गत तच्चमवाडी ग्राम में १६ मई सन् १९१८ को श्री नैनार का जन्म हुआ था।

लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त विद्यालय में प्रधानाध्यापक पद पर सेवाकार्य करते हुए ही आप सेवानिवृत्त हुये।

श्री नैनार द्वारा तमिल में लिखित/अनूदित एवं प्रकाशित कृतियां निम्न हैं- १. नियमसार, २. समयसार. ३. पद्मपुराण, ४. महाधवल।

साहित्यसेवा :

राज्यसरकार ने आपको 'रजतपदक' और 'नल्लसिरियर' उपाधि से सम्मानित किया था।

धर्म, समाज और साहित्यसेवा में रत नैनार का २३ मई १९९३ को निधन हो गया।

❑

डॉ. धन्यकुमार इजारी

आयुर्वेदिक कालेज में प्राध्यापक के पद पर सेवायें प्रदान करने वाले डॉ धन्यकुमार इजारी साहित्यसृजक तथा धर्म-संस्कृति के लिए समर्पित थे। उनकी आरोग्य विषयक कृतियों का निर्माण मुख्य रूप में किया है। 'आरोग्यभाग्य' आदि कृतियों का प्रकाशन कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड से हुआ है। आप अनेक अन्तिमरूप देने में आपनी अग्रणी भूमिका रही है।

पं. नाथूराम डोंगरीय

पं. नाथूराम जी डोंगरीय समाज के सुपरिचित एवं शास्त्री विद्वान् थे, जिनका समाज में विशेष स्थान होता है। आपके लेख और कविताएं जैन और जैनेतर पत्रों में छपती रही हैं।

आपने कटनी के जैन शिक्षा संस्थान में आरम्भिक अध्ययन कर बनारस से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। आपको संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी पर तो पूर्ण अधिकार था ही, साथ अन्य अनेक भाषाओं का ज्ञान था।

आपके द्वारा लिखित 'जैनधर्म', 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' और 'समयसार' नामक पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद रूबाईयों की शैली में किया था, जो अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ।

मास्टर नानूलाल भांवसा

चैत्र कृष्ण ४ विक्रम संवत् १९५० को गुलाबी शहर के नाम से प्रसिद्ध नगरी जयपुर में जन्मी इस विभूति ने अपने भावपूर्ण गीत-संगीत से जन-जन को प्रभुभक्ति के अमृतपान से तृप्त किया। आपके छोटे भ्राता श्री छोटेलाल जी जो कि क्रान्तिकारी थे और लार्ड हार्डिंग के बम काण्ड में जेल भी गये थे, आजीवन गांधी जी के भक्त बन साथ रहे।

शिक्षा : [illegible]

गणित के विशेषज्ञ माने जाते थे।

साहित्यसृजन :

[illegible]

भजन गाते तब प्राणी आत्मविभोर हो झूम जाते थे। [illegible]

आध्यात्मिक पदों को लिपिबद्ध किया है। [illegible]

भजनसंग्रह' के नाम से प्रकाशित हुई है। [illegible]

इं. स्ती. पद्मनाथ शर्मा

दक्षिणभारत के विख्यात विद्वानों में एक श्री एम. की. पद्मनाथ शर्मा का नाम है। उन्हें दर्शन का महापण्डित कहा जाता था। अन्य जिनवाणी साहित्य की सम्पादक तथा ४० से अधिक कृतियों के सृजनकार होकर साहित्यमण्डल में अनुपम उपहारों से गौरवमण्डित करने वाले रहे। श्री मद्यनन्दि आचार्य कृत पदार्थसार का विद्वतापूर्ण सम्पादन कर उसे मैसूर विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराया। अन्य कृतियों में अंजनापवनंजय, जैनदर्शन, देवागम, तत्वार्थसूत्र, स्तुतिविद्या, धर्मनाथपुराण, योगसार आदि प्रमुख हैं।

डॉ. वाय. जे. पद्मराजय्या

दक्षिणभारत में जन्मे जैनधर्म-दर्शन के प्रख्यात प्रतिभावान् विद्वान् थे डॉ. वाय. जे. पद्मराजय्या। आपने बेंगलिंजज विश्वविद्यालय से डी. फी. एच. आई. की उपाधि प्राप्त की थी। अंग्रेजी भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। उनकी उपलब्ध अनेक कृतियों में से एक है - जैन थ्योरी ऑफ नालेज, जो उनके गहन अध्ययन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। अल्पायु में ही आपका देहावसान हो गया था।

लेखों की मर्यादा सुरक्षित रखी और जनसाहित्य को प्रोत्साहन दिया। पत्रिका के माध्यम से ही जैन समाज में सामाजिक व धार्मिक चेतना का अलख जगाया।

श्री मिर्जी अण्णाराय जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित कराने वाली कृति का आपने सम्पादन किया।

आपकी प्रमुख कृति 'जैनतत्त्वसार' में जैनधर्म का संक्षिप्त परिचय है। जैनधर्म के बड़े विद्वानों के लेखों का कन्नड में अनुवाद किया। कारकलचरित्र, महावीरजयन्ती, मूडबिद्री, परमात्मप्रकाश (संस्कृत), आत्मानुशासन (संस्कृत), तिरुक्कुरल आदि ग्रन्थों की प्रस्तावना का अनुवाद आपने कन्नड में किया है।

प्रकाश शास्त्री

राजस्थान की मरुभूमि में जयपुर नामक शहर किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। इसी प्रकार श्री प्रकाश जी शास्त्री का व्यक्तित्व अपनी ही साहित्य रूप किरणों से जगत् को आलोकित करता है। सन् १९७२ में जयपुर शहर में पिता श्री बालचन्द जी सोनी की गोद में पले-बढ़े श्री शास्त्री ने अपने प्रकाश नाम को सार्थक किया और अज्ञानान्धकार को यथासंभव दूर किया।

शिक्षा एवं साहित्य सेवा :

आपने सन् १९३४ में न्यायतीर्थ, और इसके बाद क्रमशः शास्त्री तथा काव्यतीर्थ की परीक्षा पास की।

बचपन से ही साहित्यिक गतिविधि में रुचि होने से श्री शास्त्री के लेख सन् १९३३ से ही जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे। दर्शन और अध्यात्मपरक लेख लिखने में विशेष रुचि रखने वाले श्री शास्त्री जी प्राचीन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आपने पं. चैनसुखदास जी के संस्कृत ग्रन्थ 'निक्षेपचक्र' का हिन्दी अनुवाद किया। वीरवाणी में आपने 'जयपुर राज्य के दिगम्बर जैन साहित्यकार' लेखमाला के माध्यम से सारे साहित्यकारों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया। इसके साथ ही सूर्यसागर ग्रन्थमाला के द्वारा प्रकाशित तथा आचार्य सूर्यसागर जी द्वारा लिखित 'संयमप्रकाश' नामक ग्रन्थ का सफल सम्पादन किया।

आपके असमय निधन से साहित्य जगत् को अत्यधिक क्षति पहुंची।

फूलचन्द 'मधुर'

आप सागर निवासी चौधरी श्री रामचरणलाल जी के सुपुत्र थे। आपको अल्पावस्था से ही कविता के विषय में रुचि थी। शिक्षा मिडिल तक ही शिक्षण ग्रहण कर सके थे। आपने बड़ी सरस रचनाएं साहित्य जगत् को प्रदान की हैं। इस स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी की देशप्रेम से ओतप्रोत रचनाएं युग की आवाज बनकर गूंजती हैं। आपका एक मानवगीत नामक कवितासंग्रह प्रकाशित भी हुआ था।

टी. सी. ब्रह्मसूरिय्या

करणानुयोग तथा कर्मसिद्धान्त विषयक ग्रन्थों के रचनाकार थे श्री टी. सी. ब्रह्मसूरिय्या। उन्होंने निजी धनराशि से मुद्रणालय स्थापित कर अनेक जैन ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। 'गुरुदेव' आदि पत्रिकाओं में आपने अनेक लेख लिखकर कन्नड साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि की है।

श्री भंवरलाल पोल्याका

जयपुर निवासी श्री पारसमल जी की अद्वितीय संतान जिसने सन् १९१८ में जन्म ले साहित्य जगत को गौरवान्वित किया। साहित्य जगत् के इस सूर्य ने उदित होते ही न केवल परिवार वरन् संपूर्ण जगत् को तृप्त किया।

शिक्षा :

प्रारम्भिक शिक्षा की प्राप्ति के पश्चात् आगे के शिक्षण हेतु आपने जैन संस्कृत कालेज में प्रवेश लिया और जैन दर्शनाचार्य तथा साहित्यशास्त्री की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

साहित्यसेवा :

शिक्षा की परम्परा को जीवित रखने हेतु आपने साहित्य सृजन किया। कुशल वक्ता, लेखक और समालोचक के साथ आपकी निःस्वार्थ सेवाओं ने साहित्य जगत् को समृद्धता प्रदान की। जयपुर से प्रकाशित होने वाली 'महावीर जयन्ती स्मारिका' के आप कई वर्षों तक प्रधान सम्पादक रहे।

'तमिलभाषा का जैन साहित्य' नाम से प्रकाशित आपकी रचना महत्वपूर्ण है। लालित्य व प्रसाद गुण से युक्त आपकी अन्य रचनायें अनुपम शैली का दिग्दर्शन कराती हैं।

❑

भगवन्त गणपति गोयलीय

आपका वास्तविक नाम श्री भगवानदास है, आपके पिता का नाम श्री गणपतिलाल था। कविता का कल्पवृक्ष आपके कुटुम्ब में सदा ही फूला-फला है। आपके पितामह श्री भूरेलाल मोदी आशुकवि थे।

भगवन्त जी बहुपाठी, विचारशील और प्रतिभावान् व्यक्ति थे। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त आपको बंगला, गुजराती और मराठी के साहित्य का भी अच्छा ज्ञान था।

आपकी गद्य-पद्यमय प्राथमिक रचनाएं प्राय: 'विद्यार्थी' और 'भारतजीवन' नामक पत्रों में प्रकाशित होती थीं। आपकी कविताओं को उस समय भी बड़ी रुचि से पढ़ा जाता था। वे समाज में स्फूर्ति पैदा करने में सक्षम होती थीं।

आप 'जातिप्रबोध', 'धर्मदिवाकर' और 'महाकोशल-कांग्रेस-बुलेटिन' के वर्षों तक सम्पादक रहे। आपके लेख, कविताएं और कहानियां भारत के अनेक प्रसिद्ध पत्रों में छपती रहीं।

भगवन्त जी कर्मठ देश-सेवक थे। आप रायपुर सेन्ट्रल जेल की काली कोठरिया में महीनों रहे और वहां के 'उच्च पदाधिकारियों के आदेश पर आपको भयंकर मार मारी गई, जिसकी आवाज नागपुर कौन्सिल से टकराई।'

❑

मंजय्या हेगड़े

श्री हेगडे दक्षिणभारत के ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होने धर्मस्थल क्षेत्र के कार्तिक उत्सव में होने वाले आयोजनों में लोगों के हृदय में साहित्य, संस्कृत और धर्म के प्रति चेतना जागृत की। उन्होने सर्वधर्म सम्मेलन आयोजन आरम्भ किया। वे स्वयं उत्तम चित्रकार, संगीतकार तथा साहित्यकार थे। उनकी कतिपय कृतियां

हैं- श्री गोम्मटेश्वर, परमात्मप्रकाश आदि। उन्होंने विविध कृतियों का सृजन कर कन्नड प्रान्त के जन साहित्य को गौरवान्वित किया।

❑

पं. महाचन्द

हिन्दी गद्य व पद्य दोनों को अपनी लेखनी से समृद्ध करने वाले पं. महाचन्द जी का जन्म सीकर शहर में हुआ था।

बुद्धि की तीव्र विलक्षणता के कारण आप विद्वानों की श्रेणी में अग्रणीय रहे। संवत् १९१५ में आपने त्रिलोकसार पूजा लिखी जो अत्याधिक लोकप्रिय हुई। जैनदर्शन के प्रमुख ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र पर आपके द्वारा लिखित हिन्दी टीका में अनेक भक्ति परक पद पाठक को भक्ति के सरोवर में अवगाहित कराने में सफल होते हैं। चूंकि आप राजस्थान निवासी थे, इसलिये आपकी रचनाओं में भाषा हिन्दी होने पर भी उनमें राजस्थानी का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। प्रत्येक पद में नाम के प्रयोग के साथ 'बुध' शब्द का प्रयोग शायद आपके उपनाम को सूचित करता है।

❑

पं. मिलापचन्द शास्त्री

मिलनसार, वात्सल्यमयी, सादगीपूर्ण व्यक्तित्व के धनी पं. मिलापचन्द जी शास्त्री साहित्य जगत् के एक अनूठे नक्षत्र थे। जिनने अपनी लेखनी से दर्शन का अनुपम सागर तरंगायित किया था। जिला जयपुर के प्रतापपुरा ग्राम में वि.सं. १९७१ को जन्में शास्त्री जी बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न थे। जन्म के कुछ समय पश्चात् ही आप पालन पोषण हेतु जयपुरस्थ श्री मगनलाल जी पहाडिया की गोद में आ गये।

शिक्षा :

संस्कारों की सरिता में अवगाहन करते हुये आपने शास्त्री एवं न्यायतीर्थ की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

PDF Scanner ACE Scanner

साहित्य सेवा :

लेखनी को थामें आपके कर कमलों से साहित्य जगत् ने समृद्धि पायी। पावनप्रवाह और जैनदर्शन सार नामक सुन्दर हिन्दी गद्य टीकायें आपकी लेखनी से निसृत हुई। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके निबन्ध आपकी धर्मविषयक विज्ञता को उजागर करते रहते थे।

मोतीचन्द हीराचन्द गांधी

मराठी साहित्यकारों में एक नाम उल्लेखनीय अवश्य होता है, और वह है मोतीचन्द हीराचन्द गांधी। जीवनविषयक जानकारी से अनभिज्ञ होने पर भी हम यह कहने में समर्थ हो पा रहे हैं कि आप अज्ञात के नाम से साहित्य जगत् में स्थान बनाने वाले रहे हैं।

साहित्यकर्म :

आपकी सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाली रचना है साधुशिक्षा। इसके अनन्तर बृहत्कथाकोश, त्रिषष्ठिस्मृति, आत्मसिद्धि, सज्जनचित्तवल्लभ आदि आपकी मुख्य कृतियां हैं।आपके द्वारा पंचम वेद के रूप में प्रसिद्ध कुरलकाव्य का मराठी भाषान्तर भी प्रस्तुत किया गया था, जिसकी भूमिका प्रो. चक्रवर्ती ने स्वयं लिखी थी। इसके साथ ही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय का अनुवाद भी मराठी साहित्य के लिये आपकी विशिष्ट देन के रूप में परिगणित किया जाना चाहिये।

राजमल बेगस्या

बेगस्या जी का जन्म १७ मार्च सन् १९३७ को राजस्थान के जयपुर शहर में हुआ था। आपने प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण कर इतिहास एवं समाजशास्त्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने हेतु एम.ए. की परीक्षायें पास कीं।

हिन्दी व राजस्थानी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखने वाले कवि बेगस्या जी अपनी गायकी के द्वारा जनसमुदाय को भाव विभोर कर देते थे। व्यंगात्मक एवं उपदेशात्मक पुट में निबद्ध आपकी सैकड़ों रचनायें अध्यात्म एवं भक्ति का अनुपम संयोग उपस्थित करती हैं।

PDF Scanner ACE Scanner

राजेन्द्रकुमार 'कुमरेश'

आपने आयुर्वेद कालेज, कानपुर से आयुर्वेदाचार्य तक अध्ययन किया था। सन् १९३२ से साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश कर कविता एवं लेखों का लिखना आरम्भ कर दिया था। आपके लेखन में भाषा सुगम लेकिन गहन होती थी, जो कि स्वाभाविक एवं वास्तविक भी होती थी। आपने 'अंजना' और 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' नामक दो खण्डकाव्यों की रचना के अलावा भी अनेक रचनायें की थीं।

❑

लक्ष्मीचन्द जैन

भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली के निदेशक, साहित्यकार व सम्पादक के रूप में पहचाने जाने वाले थे श्री लक्ष्मीचन्द जैन। आपका जन्म सन् १९०९ में हुआ। आपकी पत्नी श्रीमती कुन्था जैन एवं पुत्री इन्दु जैन हिन्दी साहित्य जगत् की जानी मानी लेखिका हैं।

आपने अपना कार्यक्षेत्र दिल्ली बनाया। आकाशवाणी दिल्ली के प्रोग्राम नियोजक के रूप में कार्य आरम्भ किया। तदनन्तर 'ज्ञानोदय' जैसे युगान्तरकारी साहित्यिक एवं सामाजिक पत्रिका कां सफल सम्पादन आपने किया। इसके बाद तो आप भारतीय ज्ञानपीठ के संचालन एवं उसकी प्रगति में शिरमौर बन गये। आपके कार्यकाल में इस संस्था ने जो विकास के दिन देखे हैं, अब शायद कभी पुन: देखने मिल सकें।

आपने अपने जीवन में अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया। आप कवि, निबन्धकार एवं मनीषी चिन्तक थे।

२१ अक्टूम्बर सन् १९९९ को ९० वर्ष की आयु में लम्बी बीमारी के बाद आपका निधन हो गया, जिससे समाज को जो क्षति हुई उसे शायद ही पूरा किया जा सके।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

लोकनाथ शास्त्री

जैनधर्म, संस्कृति एवं साहित्य के लिए समर्पित श्री लोकनाथ शास्त्री को मूडबिद्री के श्री वाणीविलास जैन सिद्धान्त भवन के संस्थापक के रूप में जाना जाता था। आपके द्वारा रचित जैनधर्म प्रश्नोत्तर, सृष्टिवाद, शोभनसमुच्चय, नवरत्नपरीक्षा आदि १२ कृतियां जैनसाहित्य भण्डार को समर्पित हैं।

❑

मारूनाडु वर्धमान हेगड़े

'गमककवि' के रूप में सुविख्यात हैं मारूनाडु वर्धमान हेगड़े। जिनकथा आदि के माध्यम से धर्मप्रभावना करने में आपका अपूर्व योगदान रहा। आपने 'बाहुबलिगीतांजलि', 'जीवनगीतांजलि', 'महावीर', 'शान्तिनाथगीतांजलि' और 'जैनइतिहास' आदि १० कृतियों का सृजन कर साहित्यश्री के भण्डार की अभिवृद्धि की है। कन्नड प्रान्त की बोली में उन्होंने 'कवनकाव्य' की रचना की जो आबालवृद्ध शिक्षित-अशिक्षित सभी के लिए उपयोगी है।

❑

वीरेन्द्रकुमार जैन

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यह नाम किसी पहचान की आवश्यकता नहीं रखता, अपितु अपनी पहचान स्वयं निर्धारित करने में सक्षम एवं सफल रहा है। आप प्रतिभावान् कवि एवं कलावान् कहानीकार एवं उपन्यास लेखक थे। आपका पहला कहानी संग्रह 'आत्मपरिचय' के नाम से प्रकाशित हुआ था। जिसका हिन्दीजगत् में पर्याप्त आदर हुआ। बाद में एक और नीलांजना, मृत्युदूत, शून्य पुरुष और वस्तुएं तथा अनुत्तर योगी जैसी अनेक रचनायें आपसे प्राप्त हुईं। आपने अनेक वर्षों तक हिन्दी मासिक 'नवनीत' का भी सफल सम्पादन किया था।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

आपका जन्म १५ अक्टूबर सन् १९२४ को धनोरा (मेरठ) में हुआ था। आपने हाई स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की और सहारनपुर में इम्पीरियल बैंक में खजांची हो गये।

आपको हिन्दी साहित्य पर बचपन से ही अनुराग था और स्वत: कविता रचना के कार्य में संलग्न भी हो गये थे। थोड़े ही समय में आपने इस दिशा में जो उन्नति की थी वह आश्चर्यकारी एवं आदरणीय थी। आप एक भावुक हृदय कवि और संवेदनापूर्ण लेखक थे।

❑

सुमेरुचन्द्र शास्त्री 'मेरु'

आप बहराइच के रहने वाले थे। आपको व्याकरण, न्याय और साहित्य का परिनिष्ठ व अगाध ज्ञान हासिल हुआ था। खडी बोली में सवैया आदि छन्दों की रचना करना आपका प्रिय शौक था। आप कवि संघ, बहराइच के मन्त्री थे। समस्यापूर्ति रचना करने में भी आपको महारत हासिल थी।

❑

डॉ. सौभाग्यमल दोसी

साहित्य साधक के रूप में डॉ. दोसी की साहित्यिक गतिविधियां उन्हें समाज के एक अनुपम स्थान पर प्रतिष्ठित करती हैं। अजमेर शहर में जन्में श्री दोसी संगीत मण्डली के साथ धार्मिक उत्सवों में जब भजन व कविता पाठ करते थे तब जनसमुदाय मुग्ध हो भक्तिरस के सागर में गोते लगाने लगता था।

अनवरत ४५ वर्षों से भी अधिक समय तक साहित्यिक क्षेत्र पर दिया गया आपका अपूर्व योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

❑

PDF Scanner ACE Scanner

हीराचन्द नेमचन्द

अपने नाम व काम के अनुरूप अपने व्यक्तित्व की चमक से जगत् को प्रकाशित करने वाले श्री हीराचन्द्र नेमचन्द जी का नाम बीसवीं सदी के आद्य जैन साहित्योद्धारक व दानवीर के रूप में यदि किया जाता है। आपने जैन साहित्य का मराठी तथा हिन्दीभाषा में प्रसार करने के उद्देश्य से सन् १८८५ ईस्वी से 'जैनबोधक' मासिक पत्र आरम्भ किया।

आपके अनुवादित ग्रन्थों में - रत्नकरण्डश्रावकाचार, षोडशकारणभावना आदि हैं। अहिंसापरमो धर्मः नामक निबन्ध तथा अन्य धर्म ग्रन्थ भी आपने मराठी के ही समान हिन्दी तथा गुजराती में अनुवादित किये हैं।

आपकी स्वतन्त्र रचनाओं में पार्श्वनाथ चरित्र, महावीरचरित्र, भट्टारक चर्चा, पात्रदान तथा नवधाभक्ति, शासनदेवतापूजन, पाप-पुण्य के कारण, निर्माल्य चर्चा आदि प्रमुख हैं। 'क्या वेश्यानृत्य से तेरापंथी में बाधा होगी' नामक निबन्ध में आपने अपने अनुभव और विचारों को सारगर्भित रूप से प्रस्तुत किया है।

'जैनकथासंग्रह' आपकी अन्यतम रचना है, जिसमें २४ पौराणिक कथाएं गुंथित हैं। इसके अलावा आपका 'जैनधर्मपरिचय' नामक व्याख्यान भी हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है, जो आपकी लोकप्रिय का द्योतक है।

इस प्रकार जीवन पर्यन्त साहित्य सेवा कर आपने साहित्यभण्डार की जो समृद्धि की वह सदैव स्मरणीय रहेगी।

❑

मुंशी हीरालाल छाबड़ा

संवत् १९२० में राजस्थान की मरूभूमि को अपने जन्म से पावन करने वाले श्री छाबड़ा जी राजस्थानी के साथ ही उर्दू व फारसी के उत्कृष्ट विद्वान् थे।

आपकी भावना तरंगों से निबद्ध 'चौबीस तीर्थंकर पूजा' वीर निर्वाण संवत् २४४६ में प्रकाशित हुई। ढूँढारी शब्दों ने पूजन में जहां माधुर्य को सिंचित किया वहीं सरल भाषा से उसे भावपूर्ण बनाने में सहयोग भी किया। इसके साथ ही अन्य रचनायें भी कवि को जीवन्त रखने में कामयाब हुईं।

❑

आधारग्रन्थसूची

१. **बीसवी शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान** - डा. नरेन्द्रसिंह राजपूत, आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर, १९९७ प्रथम

२. **जैन जागरण के अग्रदूत** - अयोध्याप्रसाद गोयलीय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, १९५२ प्रथम

३. **परवार जैन समाज का इतिहास** - सम्पा. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, भारतवर्षीय दिग. जैन परवार सभा, जबलपुर, १९९२ प्रथम

४. **गोलापूर्व जैन समाज का इतिहास** - सम्पा. डा. सुरेन्द्र जैन,

५. **पं. नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ** -

६. **पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ** -

७. **पं. दरबारीलाल कोठिया अभिनन्दन ग्रन्थ** -

८. **पं. लालबहादुर शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ** -

९. **पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री साधुवाद ग्रन्थ** - सम्पा. डा. विलास संगवे, पं. जगन्मोहनलाल साधुवाद ग्रन्थ प्रकाशन समिति, कुण्डलपुर, १९८९ प्रथम

१०. **विद्वद् अभिनन्दन ग्रन्थ** - सम्पा. विमलकुमार सौरया, श्री दिग. जैन शास्त्रि परिषद्, टीकमगढ़,

११. **दिगम्बर जैन साधु ग्रन्थ परिचय** - सम्पा. ब्र. धर्मचन्द्र शास्त्री, आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला, जयपुर, १९८५, प्रथम

१२. **डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल अभिनन्दन ग्रन्थ** - सम्पा. पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ, डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, रीवां, १९९८ प्रथम

१३. **ब्र. शीतलप्रसाद जी** - अजितप्रसाद जैन, सेन्ट्रल जैन पब्लिंशिग हाऊस, लखनऊ, १९५१

१४. **पं. मूलचन्द वत्सल जीवनगाथा** - सम्पा. पं. परमेष्ठीदास जैन, वत्सल स्मारक निधि, दमोह, १९६०, प्रथम

१५. **राजस्थान का जैन इतिहास** - सम्पा. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री महावीर

PDF Scanner ACE Scanner

अकादमी, जयपुर,
१६. पं देवकीनन्दन स्मृति ग्रन्थ - सम्पा. पं. माणिकचन्द चौवरे, श्री महावीर ज्ञानोपासना समिति, कारंजा, १९९० प्रथम
१७. राजस्थान का जैन साहित्य - सम्पा. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, प्रथम
१८. क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी का संक्षिप्त परिचय - डा. दयाचन्द्र साहित्याचार्य, श्री गणेश दिग. जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर, १९९९ प्रथम
१९. फिरोजाबाद के गौरव श्रद्धेय पं. माणिकचन्द्र न्यायाचार्य - पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री, संगम प्रकाशन, फिरोजाबाद,
२०. पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ : परिचयपत्र - डा. प्रेमचन्द रांवका, पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ जन्म शताब्दी समारोह समिति, जयपुर, २०००, प्रथम
२१. पं. गोरेलाल शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पा. श्रीयांसकुमार सिंघई, पं. गोरेलाल शास्त्री अभिनन्दन समिति, छतरपुर, १९९९ प्रथम
२२. संत सौरभ - नीरज जैन, भारतवर्षीय दिग. जैन महासभा, लखनऊ, १९९६, प्रथम
२३. डा. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पा. भागचन्द्र भागेन्दु, डा. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य अभिनन्दन समिति, दमोह, १९९८ प्रथम
२४. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पा.
२५. पं. बाबूलाल जमादार अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पा. , श्री दिग. जैन शास्त्रि परिषद्, बडौत, १९८१, प्रथम
२६. गोलापूर्व जैन समाज : इतिहास एवं सर्वेक्षण - सम्पा. डा. सुरेन्दकुमार जैन,
२७. श्री मूलचन्द किसनदास कापडिया अभिनन्दन ग्रन्थ -
२८. बम्बई दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा अमृत महोत्सव
२९. पं. माणिकचन्द न्यायाचार्य अभिनन्दन के अवसर पर प्रकाशित पत्रिका
३०. प्रशान्तमूर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज (छाणी) स्मारिका - सम्पा. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जैन समाज, शाहपुर,
३१. आधुनिकजैनकवि : सम्पादिका रमा जैन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वितीय संस्करण १९४७

PDF Scanner ACE Scanner

उत्तरप्रदेश

पं. अजितकुमार शास्त्री ११३
मुनि अमृतचन्द्र 'सुधा' ३६५
कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा कोविद' ३६६
कविवर कल्याणकुमार 'शशि' १३९
पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य १५१
प्रो. खुशालचन्द गोरावाला १५४
क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी ६७
पं. गुणभद्र जी १५७
पं. गोविन्दराय शास्त्री १६३
पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ १६४
ब्राह्मी चन्दाबाई १०७
पं. जम्बूप्रसाद शास्त्री १७९
पं. जुगलकिशोर मुख्तार १८७
जैनेन्द्रकुमार जैन १९१
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन १९४
पं. ठाकुरदास शास्त्री १९७
वाबू दयाचन्द गोयलीय २०४
पं. दामोदरदास जी २१३
दिगम्बरदास जैन एडवोकेट २१४
पं. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री २१७
पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ २४७
पं. फूलचन्द्र शास्त्री जखौरा २४९
पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री २५०
पं. बलभद्र जैन २५४
पं. बाबूलाल जैन जमादार २५७
पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री २६२
बिहारीलाल जैन 'चैतन्य' २६४
भगवत्स्वरूप 'भगवत्' २६७
पं. मक्खनलाल शास्त्री २७५
क्षु. मनोहरलाल वर्णी ७१
पं. माणिक्यचन्द्र कौन्देय २८४
डॉ. मुनीन्द्रकुमार २८७
पं. मुन्नालाल 'मणि' २८९
यशपाल जैन ३००
पं. रतनचन्द मुख्तार ३०२
पं. राजधरलाल जैन ३०४
मा. रामसिंह जैन ३०५
लक्ष्मीचन्द 'सरोज' ३१२
पं. लालाराम शास्त्री ३१५
पं. वंशीधर न्यायालंकार ३१८
पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य ३२०
आचार्य विमलसागर ३१
कवि शर्मनलाल 'सरस' ३२६
शान्तिस्वरूप 'कुसुम' ३८५
ब्र. शीतलप्रसाद ८७
पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री ३२९
ब्र. श्रीलाल काव्यतीर्थ ९९
मुनि समकितसागर ५९
पं. सिद्धिसागर प्राणाचार्य ३३४
आचार्य सुधर्मसागर १०
पं. सुमेरुचन्द शास्त्री ३४१
सुमेरुचन्द्र शास्त्री 'मेरु' ३८५
बाबू सूरजभानु वकील ३४३
हजारीलाल 'काका' ३४५
पं. हीरालाल 'कौशल' ३५२
पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ३५७
हुकमचन्द बुखारिया 'तन्मय' ३५९

कर्नाटक

मिर्जी अण्णाराय ११५
पं. एस. पी. अनन्तराज शास्त्री १२०
वी. के. अनन्तराम शास्त्री ११९

PDF Scanner ACE Scanner

मुनि आदिसागर ५३
पं. इन्द्रकुमार शास्त्री १२६
डॉ. ए. एन. उपाध्ये १२८
आचार्य कुन्थुसागर ७
मुनि कुलभूषण ५५
चन्द्रराज इन्द्र ३६७
श्री चन्द्रराज शेट्टी ३६७
ए. पी. चौगुले ३६९
एम. जगत्पालैय्या ज्योतिषी ३६९
मुनि जम्बूसागर ५४
एस. वी. जिनचन्द्र शास्त्री १८१
दौर्बली जिनदास शास्त्री २२०
टी. के. तुकोल ३७१
टी. के. पाटिल ३७१
आचार्य देशभूषण २५
के. एस. धरणेन्द्रय्या २२१
डॉ. धन्यकुमार इजारी ३७४
जी. पी. धन्यकुमार शास्त्री २२५
डी. नागराज शास्त्री २३१
एस. डी. नागेन्द्र शास्त्री २३२
क्षु. नेमिसागर वर्णी ७३
एस. पी. पद्मण्णा २३८
पं. डी. पद्मनाभ शर्मा २३९
एम. सी. पद्मनाभ शर्मा ३७५
डॉ. वाय. जे. पद्मराजय्या ३७५
पद्मराज हुन्गुन्द ३७६
डी. एस. परमाज ३७६
डी. पुट्टुस्वामी ३७७
टी. सी. ब्रह्मसूरिय्या ३७९
ब्रह्मसूरि शास्त्री २६६
पं. के. भुजबली शास्त्री २७१
मंजय्या हेगडे ३८०
पं. लोकनाथ शास्त्री ३८४
पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री ३२२
मारुनाडु वर्धमान हेगडे ३८४
मुनि विश्वनन्दि ५६
प्रो. वी. वी. बागी ३२५
ए. शान्तराज शास्त्री ३२७
आचार्य शान्तिसागर दक्षिण १
ए. सुब्बैय्या शास्त्री ३३६

केरल

पं. बी. लोकपाल शास्त्री ३१७

गुजरात

पं. मूलचन्द किसनदास काप. २१६
ब्र. मूलशंकर देसाई १०१
मुनि वर्धमानसागर ४९

तामिलनाडु

एस. अय्यन नैनार १२१
क्षु. इन्द्रभूषण ८३
प्रो. ए. चक्रवर्ती १६६
प्रो. एस. ए. जैन १३३
मुनि गजपतिसागर ५७
ए. दुरई स्वामी नैनार ३७३
टी. एस. भरतचक्रवर्ती २७०
जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल ३३१

दिल्ली

बैरिस्टर चम्पतराय जैन १६८

पश्चिम बंगाल

बाबू छोटेलाल जैन १७३

पंजाब

बाबू कामताप्रसाद १४६
डॉ. लालबहादुर शास्त्री ३१३

PDF Scanner ACE Scanner

मध्यप्रदेश

आचार्य अजितसागर ३९
अमृतलाल 'फणीन्द्र' ३६५
डॉ. कन्छेदीलाल साहित्याचार्य १३५
पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद' १३६
पं. कमलकुमार जैन १३८
ब्र. कस्तूरचन्द नायक ९२
पं. कस्तूरचन्द शास्त्री १४४
क्षु. गुणभद्रसागर ८२
डॉ. गुलाबचन्द चौधरी १५८
पं. गोरेलाल शास्त्री १६०
पं. गौरीलाल सिद्धान्तशास्त्री ९८
चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर' ३६८
पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री १७६
ब्र. जयसागर १०६
पं. जीवन्धर जैन न्यायतीर्थ १८४
पं. दयाचन्द सिद्धान्तशास्त्री २०७
पं. दरबारीलाल कोठिया २०९
ब्र. दीपचन्द वर्णी ९५
स. सिं. धन्यकुमार जैन २२२
धन्यकुमार 'सुधेश' २२३
डॉ. नरेन्द्र जैन 'विद्यार्थी' २२७
पं. नाथूराम प्रेमी २३३
मुनि नेमिसागर ४५
पं. पन्नालाल बाकलीवाल २४३
पं. परमानन्द शास्त्री २४६
ब्र. प्रेमसागर ९६
फूलचन्द 'मधुर' ३७९
पं. बारेलाल राजवैद्य २५९
बालचन्द जैन पुराविद् २६०
डॉ. महेन्द्रकुमार जैन २८०
पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २८१
पं. पन्नालाल साहित्याचार्य २९१
पं. मूलचन्द शास्त्री २९२
पं. मूलचन्द 'वत्सल' २९४
पं. मोहनलाल शास्त्री २९९
आर्यिका विमलमति ६३
आचार्य विमलसागर २७
पं. शोभाचन्द भारिल्ल ३२८
ऐलक सम्यक्त्वसागर ६६
ब्र. पं. सरदारमल 'सच्चिदानन्द' १०२
क्षु. सिद्धसागर ८०
आचार्य सुमतिसागर ३२
पं. सुमेरुचन्द्र 'दिवाकर' ३३८
आचार्य सूर्यसागर २०
डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन ३४७
डॉ. प्रो. हीरालाल जैन ३५४
मुनि क्षीरसागर ४७
पं. ज्ञानचन्द्र 'स्वतन्त्र' ३६१
मुनि ज्ञानभूषण ५०
मुनि ज्ञानसागर ५१

महाराष्ट्र

अण्णासाहेब बाबासाहेब लट्ठे ११६
आचार्य आर्यनन्दी ३७
पं. कल्लप्पा निटवे ३६६
पं. कल्लप्पा भरमप्पा निटवे १४०
क्षु. चन्द्रमति ८६
मुनि जयकीर्ति ५२
पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले १८२
आर्यिका जिनमति ६१
तात्याराव नेमिनाथ पांगल ३७२
तात्यासाहेब केशवराव चौपडे १९८

PDF Scanner ACE Scanner

पं. तेजपाल काला २००
दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे २०२
पं. नरेन्द्रकुमार भिसीकर २२६
बाबगोंडा भुजगोंडा पाटील २५५
मोतीचन्द हीराचन्द गांधी ३८२
सेठ रावजी नेमचन्द शहा ३०७
श्रीमती रूपवती 'किरण' ३०९
क्षु. विशालमति ८५
मुनि वीरसागर ४४
आचार्य समन्तभद्र ३५
हिराचन्द नेमचन्द दोशी ३४९
हीराचन्द नेमचन्द ३८६

राजस्थान

अर्जुनलाल सेठी ११३
आनन्दीलाल 'आनन्दोपाध्याय' ३६५
पं. इन्द्रलाल शास्त्री १२७
डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल १४२
पं. गुलाबचन्द दर्शनाचार्य १६०
चांदमल जैन 'शशि' ३६८
पं. चिमनलाल ३६८
पं. चैनसुखदास जैन १७०
चैनसुख लुहाडिया ३६९
थानसिंह अजमेरा ३७२
जवाहरलाल शाह ३७०
जवाहिरलाल जैन ३७०
मास्टर नानूलाल भांवसा ३७४
डॉ. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य २३५
पन्नालाल अग्रवाल २४१
पार्श्वनाथ निगोत्या ३७७
प्रकाश शास्त्री ३७८
पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ २६७
भंवरलाल पोल्याका
पं. महाचन्द
मिलापचन्द कटारिया
पं. मिलापचन्द शास्त्री
राजमल बेगस्या
ब्र. लाडमल
आर्यिका विशालमति
आचार्य शान्तिसागर छाणी
क्षुल्लकमणि शीतलसागर
आचार्यकल्पश्रुतसागर
डॉ. सौभाग्यमल दोशी
मुंशी हीरालाल छाबडा
आचार्य ज्ञानसागर

हरियाणा

पं. कैलाशचन्द्र जैन 'पंचरत्न'
क्षु. जिनेन्द्र वर्णी
बाबू सुमेरचन्द्र

अनिर्धारित

अमृतलाल 'चंचल'
बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय
भगवन्त गणपति गोयलीय
जुगमन्दरलाल जैनी
पं. झम्मनलाल
पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त'
पं. नाथूराम डोंगरीय
महात्मा भगवानदीन
राजेन्द्रकुमार 'कुमरेश'
लक्ष्मीचन्द जैन
वीरेन्द्रकुमार जैन
क्षु. ज्ञानसागर

❑❑❑